Visit **Dwarkadheeshvastu.com** For

FREE Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers

****

All Music is also available in CD format. CD Cover can also be print with your Firm Name

****

We also provide this whole Music and Data in PENDRIVE and EXTERNAL HARD DISK.

Contact : Ankit Mishra (+91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com)

|| श्रीहरिः ||

श्री गुरू ग्रंथ साहिब की प्रमुख वाणियाँ

(पंजाबी)

(हिन्दी अनुवाद सहित)

विषय सूची

सुणि साखी मन जपि पिआर 7

1. भक्त ध्रुव जी 10
2. भक्त प्रहलाद जी 19
3. महर्षि वाल्मीकि जी 31
4. श्री रामचन्द्र जी 38
5. साखी सीता जी की 44
6. शिव जी भगवान 47
7. सनकादिक 49
8. शेषनाग 50
9. शुकदेव मुनि जी 52
10. राजा जनक 59
11. भक्त अंगरा जी 66
12. भक्त अम्ब्रीक जी 68
13. गौतम मुनि और अहल्या की साखी 73
14. महावीर हनुमान जी 81
15. गनिका 87
16. कपिल मुनि 94
17. अजामल 96
18. साखी पिंगला की 107
19. माता यशोदा 113
20. साखी कुबिजा मालिन की 115
21. भक्त बिदुर 117
22. साखी द्रौपदी की 121
23. राजा हरिचन्द 127
24. सत्यवादी राजा हरीशचन्द्र जी 130
25. राजा उग्रसैन 139
26. साखी ऊधो की 143
27. साखी अक्रूर जी की 144
28. गजिन्द्र हाथी 148
29. भक्त सुदामा 151
30. राजा बली 155
31. साखी राजा भक्तों की 157
   (i) राजा परीक्षित 157
   (ii) परूरवा 158
   (iii) भगीरथ 158
   (iv) मानधाता 158
   (v) रुकमांगद 159
   (vi) रावण 159
   (vii) राजा अजय 160
   (viii) बाबा आदम 160
   (ix) अरुण पिंगला 161
   (x) इन्द्र रो पड़ा 161
32. साखी ब्रह्मा और सरस्वती की 162
   (i) कर्ण की कथा 163
   (ii) समुद्र खारा होना 163
   (iii) कैसी दैत्य 164
   (iv) काली सर्प 164
   (v) दुरबाशा ऋषि 165
   (vi) अठारह पुराण 165
   (vii) सहसबाहु 166
   (viii) रक्तबीज 166
   (ix) मधु कीटब 167
33. महादेव ने अपने पुत्र का वध करना 167
   (i) वृंदावन 169
   (ii) पारजात 170
34. ब्रह्मा जी 170
35. साखी चंद्रहांस की 171
   (i) चंद्रहांस की भक्ति की लगन 172
   (ii) साखी धृष्टबुद्धि मंत्री की 173
   (iii) जल्लादों का चंद्रहांस को जंगल में ले जाना 175
   (iv) राजा कुलिन्द्र से चन्द्रहांस का मेल 178
   (v) धृष्टबुद्धि का चंदनपुर आना और चंद्रहांस को पहचानना 179

(vi) विख्या से मेल और विवाह 181
(vii) चंद्रहांस की जगह मदन की मृत्यु 183
(viii) चंद्रहांस का दूसरा विवाह और धृष्टबुद्धि की मृत्यु 185
36. महाबली अर्जुन 187
37. भीष्म पितामह 193
38. साखी गरुड़ की 201
39. देवा पंडा की प्रार्थना 203
40. भक्त कबीर जी 208
(i) भक्त कबीर जी की जन्म कथा 208
(ii) कबीर जी का भक्त जाहिर होना 211
(iii) कबीर जी का बाणी उच्चारणा 213
(iv) कबीर जी का बीमार होना 217
(v) कबीर जी का गुरु धारण करना 220
(vi) रामानंद जी के पास कबीर जी का उपस्थित होना 222
(vii) महांदानी कबीर जी 226
(viii) कबीर जी का साधुओं को भोजन करवाना 228
(ix) संसार अस्थिर है 233
(x) जात-पात एवं कबीर जी 237
(xi) बादशाह का कबीर जी को सजा देना 244
(xii) कबीर जी को आग में फेंकना 256
(xiii) कबीर जी को हाथी के आगे फेंकना 262
(xiv) कबीर जी का उपदेश 268
(xv) कबीर जी ने काशी को त्याग देना 271
(xvi) अन्न की महिमा 273
(xvii) कबीर जी का निधन 276
41. भक्त रविदास जी 278
(i) श्री रामानंद के दर्शन 278
(ii) साखी भक्त रविदास जी के पूर्व जन्म की 280
(iii) रविदास जी ने भक्ति तथा कर्म करना 283
(iv) पंडितों की दुश्मनी 286
(v) चितौड़ की रानी 293
(vi) भक्त जी का ठाकुर नदी में बहाना 305
(vii) भक्त जी का बाणी उच्चारणा 307
(viii) मीरां बाई व भक्त रविदास जी 310
(ix) भक्त रविदास जी का मेवाड़ जाना 316
(x) भक्त रविदास जी का उपदेश 322
(xi) भक्त रविदास जी तथा पारस 327
(xii) भक्त रविदास जी के पक्के मन्दिर बनने 330
42. भक्त पीपा जी 333
(i) राजा को स्वप्न आना 335
(ii) संतों से मिलन 337
(iii) पीपा जी भक्त बने 340
(iv) भगवान श्री कृष्ण जी के दर्शन 343
(v) सीता सहचरी की रक्षा 345
(vi) ठग साधु तथा सीता जी 346
(vii) सूरज मल सैन को उपदेश 349
43. श्री सैन जी 351
44. गुरु रामानंद जी 355
45. भक्त धन्ना जी 358
46. भक्त नामदेव जी 366
(i) माता-पिता एवं बचपन 367
(ii) ठाकुरों को दूध पिलाना 368
(iii) पुंडरपुर में बीठुल के चरणों में 371
(iv) नामदेव जी की तीर्थ यात्रा 372
(v) मृत गाय सजीव करना 374
(vi) देहुरा घूमना 378
(vii) नामदेव जी ने वेरागी बनना 382
(viii) सूखे कुएं में पानी 383
(ix) बीठुल जी के चरणों में 385
(x) नामदेव जी का नया घर 387
(xi) भक्त नामदेव जी का परलोक गमन 389
47. भक्त जै देव जी 390
(i) जै देव जी का पहला चमत्कार 392
(ii) जै देव राजकवि 393

(iii) तीर्थ यात्रा पर भगवान के दर्शन 394
(iv) भक्त जै देव की पद्मावती से शादी 396
(v) जै देव जी का अपने गांव मुड़ना 398
(vi) गीत गोबिंद की रचना 399
(vii) 'गीत गोबिंद' पुरी के मंदिर में भेजना 402
(viii) भक्त जी का लुटना 405
(ix) भक्त जै देव जी का स्वर्गवास 407
48. भक्त त्रिलोचन जी 408
(i) जै चंद को उपदेश 415
49. भक्त सूरदास जी 417
(i) सूरदास बनना 418
(ii) बादशाही कोप 420
(iii) सूर सागर की रचना 421
50. भक्त परमानंद जी 422
51. भक्त बेणी जी 423
52. भक्त भीखण जी 428
53. बाबा शेख फरीद जी 430
(i) पहली घोर तपस्या 432
(ii) अहंकार का सिर नीचा 432
(iii) दूसरी बार तपस्या करना 434
(iv) मुरशद धारण करना 435
(v) पाकपटन में उपदेश तथा गद्दी 439
54. भक्त सधना जी 440
(i) भक्त सधना का मांस बेचने का कार्य छोड़ना 442
(ii) हत्या का आरोप लगना 443
55. सत्ता और बलवंड 447
(i) सत्ता और बलवंड को कुष्ठ रोग होना 451
56. बाबा सुन्दर दास जी 458
57. साखी बारह तीर्थों की 459
(i) घुसमेश्वर तीर्थ 460
(ii) नागेश्वर अथवा लंकेश्वर 463
(iii) सेतबंध रामेश्वर 464
(iv) श्री मल्लिकार्जुन तीर्थ 464
(v) सोमनाथ 465
(vi) श्री महांकलेश्वर 466
(vii) केदारनाथ बद्रीनाथ 467
(viii) भीम शंकर 467
(ix) ओंकारेश्वर जी 467
(x) श्री विशेश्वर जी 468
(xi) त्रियंबकेश्वर 468
(xii) वैद्यनाथ 468
58. राजा जनमेजे को कुष्ठ होना 471
59. जरासंध का वध 481
60. श्री कृष्ण जी ने हाथी को मारना 483
61. श्री कृष्ण जी तथा चंडूर की कुश्ती 483
62. चंद्रावली से छल करना 485
63. देवी का तीर्थ थापना 488
64. भाई मेहरू जी 491
65. श्री अमृतसर जी का इतिहास 493
(i) अमृतसर की पवित्रता 496
(ii) साखी अमृतसर नाम पड़ने की 497
(iii) शहर की अवस्था 507
(iv) बाबा अट्टल साहिब 509
(v) गुरु के बाग का हाल 510
66. भाई तिलकू जी 514
67. भाई समुंदा जी 517
68. साधू रणीया जी 521
69. भाई भाना परोपकारी जी 523
70. भाई साईयां जी 527
71. भाई सरखाना जी 531
72. भाई सुजान जी 535
73. जदू तपस्वी 540
74. छज्जू झीवर 544
75. भाई जोगा सिंघ जी 548
(i) जोगा सिंघ के माता-पिता की इच्छा 550
(ii) भाई जोगा सिंघ का विवाह 552
(iii) होशियारपुर रुकना 554
76. बीबी बसंत लता जी 558

सुणि साखी मन जपि पिआर

१ ओं सतिगुर प्रसादि ॥

सुणि साखी मन जपि पिआर ॥ अजामलु उधरिआ कहि ऐक बार ॥ बालमीकै होआ साध संगु ॥ ध्रू कऊ मिलिआ हरि निसंग ॥१॥ तेरिआ संता जाचउ चरन रेनै ॥ ले मसतकि लावउ करि क्रिपा देन ॥१॥ रहाउ ॥ गनिका उधरी हरि कहै तोत ॥ गजइन्द्र धिआइओ हरि कीओ मोख ॥ बिप्र सुदामे दालदु भंज ॥ रे मन तूं भी भजु गोबिंद ॥२॥ बधिकु उधारिओ खमि प्रहार ॥ कुबिजा उधरी अंगुसट धार ॥ बिदरु उधारिओ दासत भाइ ॥ रे मन तू भी हरि धिआइ ॥३॥ प्रहिलाद रखी हरि पैज आप ॥ बसत्र छीनत द्रोपती रखी लाज ॥ जिनि जिनि सेविआ अंत बार ॥ रे मन सेवि तू परहि पार ॥४॥ धंनै सेविआ बाल बुधि ॥ त्रिलोचन गुर मिली भइ सिधि ॥ बेणी कउ गुरि कीओ प्रगासु ॥ रे मन तू भी होहि दासु ॥ जै देव तिआगिओ अहंमेव ॥ नाई उधरिओ सैनु सेव ॥ मनु डीगि न डोलै कहूं जाई ॥ मन तू भी तरसहि सरणि पाइ ॥६॥ जिह अनुग्रहु ठाकुरि कीओ आपि ॥ से तैं लीने भगत राखि ॥ तिन का गुणु अवगणु न बीचारिओ कोई ॥ इह बिधि देखि मनु लगा सेव ॥७॥ कबीर धिआइओ एक रंग ॥ नामदेव हरि जीऊ बसहि संगि ॥ रविदास धिआए प्रभ अनूप ॥ गुर नानक देव गोविंद रूप ॥८॥१॥

(बसंतु महला ५, पन्ना ११९२)

यह आदेश पांचवे पातशाह श्री गुरु अर्जुन देव जी का है। शहीदों

के सिरताज तथा ईश्वरीय बाणी को प्रगट करने वाले शहंशाह फरमाते हैं कि हे जीव! ज्ञान प्राप्ति के लिए साखियों का अध्ययन कर, जिससे तुम्हारे हृदय में प्यार उत्पन्न होगा। वहीं प्यार 'जत' का रूप धारण कर लेगा। अजामल ने एक बार 'नारायण' का सिमरन किया तो वह संसार से पार हो गया जिसने ईश्वर की एक बार स्तुति की है उसके पाप कट गए। वह जन्म-मरन के चक्कर से मुक्त हो गया। वह पारब्रह्म से ऐसे घुल-मिल गया, जैसे नदियां सागर में अरूप हो जाती हैं तथा कोई भेद नहीं रहता। पांचवें पातशाह श्री गुरु अर्जुन देव जी ने उन सभी भक्तों के नाम लिए, जिन्होंने उस नारायण हरि का यश गान किया है। इन सारे भक्तों के जीवन वृतांत की शृंखला का नाम भक्त माला है। इसका अध्ययन शांति, प्रेम, एकता, कल्याण, गुरु प्यार और मानव आदर-सत्कार प्राप्ति का एक अमूल्य साधन है, क्योंकि नेक और करनी वाले पुरुषों के जीवन जन-साधारण के लिए उजाला का धरहरा होते हैं। जिनके बीच अंधकार में गिरने से बचते हैं। इसलिए इतिहास का अध्ययन करने पर जोर दिया जाता है। आत्मिक संसार का इतिहास अनूठा है और इसे केवल भक्त तथा गुरमुख ही समझते हैं, जो वरोसाए गए हैं। जिन पर परमात्मा ने विशिष्ट कृपा की। जीव चौरासी योनियों के चक्कर में भटकता-फिरता योनियां भोग कर इसलिए कष्ट झेलता रहा क्योंकि वह परमेश्वर की आराधना को भूल कर उससे दूर ही रहा। जैसे सतिगुरु जी ने तीसरे स्वरूप में फरमाया है-

हउमै जलते जलि मुए भ्रमि आये दूजै भाई ॥

इस संसार को पाप तथा अन्याय की अग्नि से जलता देखकर ही सतिगुरु नानक देव जी ने मानव कल्याण हेतु अवतार लिया तथा भेदभाव दूर करके लोगों में भक्ति की शक्ति पैदा की।

पूरै सतिगुरि राखि लीए आपणै पंनै पाइ ॥

इहु जगु जलता नदरी आइआ गुर कै सबदि सुभाइ ॥
सबदि रते से सीतल भए नानक सचु कमाइ ॥१॥

(सलोक महला ३ वार सोरठि महला ४, पन्ना ६४३)

अर्थात्-इस माया के चमत्कार, अहंकार तथा लालच की अग्नि से जलने वाले जगत में जीव आत्मा को पूर्ण तौर पर सतिगुरु ही बचा सकते हैं क्योंकि वह अपने भक्तों की स्वयं लाज रखते हैं। संसार को जलता देखकर गुरु जी ने शब्द रूपी ऐसा बाण चलाया तो संसार शीतल हो गया। जो शब्द से जुड़े वह शीतल हो गए। भाव-शांत तथा संतोष में रहे। भक्त जन स्वयं तो इस संसार रूपी सागर में तैरते हैं, जिसमें अनेक प्रकार के मगरमच्छ, तेंदुए भाव माया के चमत्कार हैं, जो इन पर कोई असर नहीं करते, लेकिन अपने सेवकों तथा वंश को भी पार कर सकते हैं।

पातशाह फरमाते हैं-

सफलिओ सतिगुरु सेविआ धंनु जनमु परवाणु ॥ जिना सतिगुरु जीवदिआ मुइआ न विसरै सेई पुरख सुजाण ॥ कुलु उधारे आपणा सो जन होवै परवाणु ॥ गुरमुखि मुए जीवदे परवाणु हहि मनमुख जनमि मराहि ॥ नानक मुए न आखीअहि जि गुर कै सबदि समाहि ॥२॥

(पन्ना ६४३)

इसलिए हे जगत जीवो ! आओ भक्त जनों की कथाओं-साखियों का अध्ययन करें ताकि मन को तृप्ति मिले। आज सारा संसार माया, अहंकार, वासना, लालच आदि अवगुणों से जल रहा है। परमाणु शक्ति से संसार को एक बार ही नष्ट करने के प्रयास किए जा रहे हैं। भक्ति से विमुख नास्तिक विपरीत ही सोच रहे हैं। इसलिए उनकी स्मरण शक्ति को बदलना अति आवश्यक है। सारी सृष्टि, खलकत तथा शक्तियां परम परमेश्वर की हैं। परमात्मा ही सबका कर्ता-हर्ता

है। इन ऋषियों–मुनियों की धरती पर प्रेम एवं भक्ति की वर्षा अवश्य होनी चाहिए। आओ सुनें तथा प्रेम कथा करें 'श्री गुर भक्त माल' की जैसे कि ग्रंथों में बताया गया है।

नालि नराइणु मेरै ॥ जमदूतु न आवै नेरै ॥
कंठि लाइ प्रभ राखै ॥ सतिगुर की सचु साखै ॥

(सोरठि महला ५, पन्ना ६३०)

भक्त ध्रुव जी

आदि काल जिसका नाम सतियुग है, इसी काल में भक्त ध्रुव जी का जन्म राजा उतानपाद के महल हुआ। इनकी माता का नाम सुनीती था। वह बड़ी धार्मिक, नेक और पतिव्रता नारी थी। राजा उतानपाद की दो रानियां थी। छोटी रानी एक तो बहुत सुन्दर थी, दूसरा चंचल मन और ईर्ष्यालु थी। उसने राजा को अपने वश में किया हुआ था तथा उसे सदा अपने महल में ही रखती थी। उसका भी एक लड़का था जो राजा के पास ही रहता था। राजा उसे गोद में उठा कर बड़ा प्रेम करता था। सुनीती के पुत्र ध्रुव को छोटी रानी राजा की गोद में बैठकर पिता के प्रेम का आनंद न लेने देती। ऐसी दशा में बालक कई बार सोचता कि पुत्र के प्रति पिता के मन का प्यार बहुत सुखदायक होता है। वह यह भी सोचता कि जिस बालक को पिता का प्यार नहीं मिलता, उस बालक का जीवन अधूरा है। उसके मन में सारी उम्र वेदना खत्म नहीं होती।

भाई गुरदास जी ने भक्त ध्रुव जी के जीवन की कथा इस प्रकार ब्यान की है :-

ध्रू हसदा घर आइआ कर पिआरु पिउ कुछड़ि लीता।
बाहहु पकड़ उठालिआ मन विच रोस मत्रेई कीता।
डुडहुलिका मां पुछे तूं सावाणी है कि सरीता।

सावाणी हां जनम दी नाम न भगती करम द्रिड़ीता।
किस उदम ते राज मिलै सत्रू ते सभ होवन मीता।
परमेसिर आराधीऐ जिदू होईऐ पतित पुनीता।
बाहरि चलिआ करन तप मन बैरागी होइ अतीता।
नारद मुनि उपदेसिआ नाम निधान आमिओ रस पीता।
पिछहु राजे सदिआ अबिचल राज करहु नित नीता।
हार चले गुरमुखि जग जीता।१।

भाई गुरदास के कथन अनुसार ध्रुव एक दिन बालकों के साथ खेलता हुआ राजमहल में पहुंचा। वह बड़ा प्रसन्नचित्त था। उसे हंसता देखकर राजा उतानपाद के मन में पुत्र के प्रति मोह उत्पन्न हुआ, प्यार उमड़ा। ध्रुव को पकड़ कर उसने गोद में बिठा लिया। जकड़ कर हृदय से लगाया और माथे पर प्यार देते हुए राजा उससे तोतली आवाज़ में बातें करने लगा।

जब राजा अपने पुत्र ध्रुव से प्रेम भरी बातें कर रहा था तो उसकी छोटी रानी सुरुचि आ गई। वह उनसे ईर्ष्या करती थी। वह अपने पुत्र को राज का राजा बनाना चाहती थी। उसने जब देखा कि उसकी सौतन का पुत्र ध्रुव राजा की गोद में बैठा प्रेम प्राप्त कर रहा है तो उसके मन में बहुत क्रोध आया। उसके माथे पर बल पड़ गए, होंठ मरोड़े गए। उसने शीघ्र ही बालक को बाजू से पकड़ कर राजा की गोद से उठाकर कहा–'तुम राजा की गोद में नहीं बैठ सकते, निकल जाओ ! इस महल में दोबारा इस ओर कभी मत आना।'

अपनी छोटी रानी सुरुचि की इस गलत हरकत को देखकर राजा उतानपाद चुप ही रहा। उसे कोई बात न सूझी। वह रानी की सुन्दरता और यौवन का दास था। वासना ने उसे दबाया हुआ था। जिस कारण वह कुछ भी बोल न सका। वह यह भी कह न सका कि उसे क्या अधिकार था, पिता की गोद से पुत्र को बाजू से पकड़ कर उठाने

का। वह चुप ही रहा। सुरुचि के माथे के बल ने उसको शांत कर दिया और वह केवल उसे देखता ही रह गया।

दूसरी ओर बालक ध्रुव पिता की गोद से उठाए जाने के कारण दुःख अनुभव करता और आहें भरता हुआ अपनी माता की तरफ चला गया। उसके नन्हें पैर मुश्किल से चलने के लिए बढ़ते थे। बालक बड़ा बुद्धिमान था, मन में सोचने लग गया कि उसे अपने ही पिता की गोद में से क्यों वंचित किया गया है ? वह आखिर राजा का पुत्र था। जैसे-जैसे वह अपनी माता के करीब जा रहा था वैसे-वैसे उसका रुदन बढ़ता गया। मां के पास जाकर उसकी चीखें निकल गईं, जैसे कि उसकी किसी ने खूब पिटाई की हो।

प्यारे पुत्र को रोता देखकर सुनीती का हृदय भर गया। उसने पुत्र को उठा लिया और गोद में बिठाने का यत्न किया। पुत्र ! मां के होते हुए तुम्हें क्या हुआ है ? क्या किसी ने तुम्हें मारा है ? इतना क्यों रो रहे हो, रोने का मुझे शीघ्र कारण बताओ।

'मां......मैं पिता जी की गोद में बैठा हुआ था, छोटी मां ने मुझे बाजू से पकड़ कर उठा दिया। कहा......तू नहीं बैठ सकता। रोते हुए ध्रुव ने इस तरह अपने रोने का कारण बताया।'

'ठीक है, पुत्र ! मेरे लाल ! तुम्हें अपने पिता की गोद में नहीं बैठना चाहिए। तुम्हारा कोई अधिकार नहीं।......कोई अधिकार नहीं मेरे लाल ! रानी ने पुत्र को जकड़ कर हृदय से लगा लिया। उसका मुख चूमा और साथ ही रानी का दिल रो पड़ा। उसकी आंखों में आंसू आ गए।'

'मां...... ! सत्य बताओ तुम रानी हो कि दासी ? मुझे कुछ पता तो चले ?' मासूम बालक ध्रुव ने पूछा। उसके मन में प्राकृतिक रूप से ज्ञान आ गया।

'पुत्र ! हूं तो मैं रानी ! पर...... !' वह चुप कर गई।

'फिर पिता जी की गोद में क्यों नहीं बैठ सकता ?'

'क्योंकि भक्ति नहीं की। भक्ति न करने के परिणाम स्वरूप यह दशा हो रही है। राज सुख भक्ति करने वालों को ही मिलता है।'

'मां ! बताओ फिर मैं क्या करूं, जिस कारण मुझे राज सुख मिले। मुझे कोई राज सिंघासन से न उठाए, कोई न डांटे ?'

सात वर्ष की आयु के बालक के मन ने प्रश्न किया, तो ममता भरे हृदय वाली मां ने कहा, 'पुत्र ! परमात्मा की आराधना करनी चाहिए। उसकी आराधना तपस्या के कारण ही राज सुख प्राप्त होता है।'

'अच्छा मां ! मैं ईश्वर की भक्ति करने जा रहा हूं।' ध्रुव ने उत्तर दिया।

मां 'पुत्र ! अभी भक्ति करने का समय नहीं, अभी तुम बालक हो। तुम्हारे जाने के बाद मैं क्या करूंगी ? मेरा अस्तित्व पुत्र तुम्हारे साथ ही है। मुझे पहले ही कोई नहीं पूछता। अगर तुम चले गए तो फिर मेरा क्या बनेगा ?' इस तरह रानी अपने पुत्र से प्यार करती हुई बोलती गई। उसके मन में चिंता होने लगी। एक माता भला अपने पुत्र को आंखों से कैसे ओझल कर सकती है ?

रात हो गई, पर ध्रुव को नींद न आई। उसकी आंखों के आगे सौतेली मां का गुस्से से भरा चेहरा, बांहों से पकड़ कर खींचने का दृश्य, राज और तपस्या का ख्याल था। वह बेचैन-सा हुआ उठ कर बैठ गया, उसने देखा कि मां सो रही है। सोती हुई मां को देख कर राजमहल त्याग देने का इरादा और भी दृढ़ हो गया। आधी रात आगे और आधी पीछे थी। ध्रुव राजमहल में से चुपके से खिसक गया और बाहर आ गया। विधाता की ऐसी लीला हुई कि राजभवन के पहरेदार भी आंखें बंद करके सो गए।

नंगे पांव बालक जंगल में पहुंच गया। रात का समय था। अंधेरा

और भयानक जंगल लेकिन वह निर्भयता से चलता गया। उसने किसी चीज की कोई परवाह न की। उसकी आंखें मसाले की तरह सुर्ख हो रही थीं। शेर और बघेल दहाड़ रहे थे, शोर मच रहा था लेकिन वह तनिक भी न डरा। मासूम हृदय से पुकारने लगा-'हे ईश्वर ! मैं आ रहा हूं। मैं आपका नाम नहीं जानता......मैं नहीं जानता कि आप कहां हैं।'

वह थक कर धरती पर बैठ गया। उसे नींद आ गई। आंख खुली तो सुबह हो चुकी थी। सूर्य की सुनहरी किरणों से जंगल जगमगा रहा था। रंग-बिरंगे बनफूल खिले हुए थे। वृक्षों पर पक्षी इलाही राग गा रहे थे। वातावरण शांत था। उठकर ध्रुव आगे को चल दिया। आगे फूलों वाली झील थी जिसका निर्मल जल नीले रंग की झलक दिखा रहा था। उसके किनारे वह जा खड़ा हुआ। उसने देखा कि पक्षियों के अलावा चौपाया जानवर आते और पानी पी पी कर वापिस जा रहे हैं। वह भी किनारे बैठ गया। जल पिया और उठकर ध्यान से देखने लगा। ईश्वर कहां होगा।......उठकर ऊंची आवाज़ लगाई, 'ईश्वर ! ईश्वर ! मैं आया हूं।'

उसके आवाज़ लगाते ही नारद मुनि आ गए। नारद मुनि को देखकर उसने कहा, 'क्या आप ईश्वर हैं ?' 'नहीं! बालक, मैं ईश्वर नहीं ईश्वर बहुत दूर रहता है, वहां तुम नहीं जा सकते।' नारद ने उत्तर दिया।

ध्रुव-'मैं क्यों नहीं जा सकता ?'

नारद-'तुम्हारी आयु छोटी है, तुम राजा उत्तानपाद के पुत्र हो। मैं यह जानता हूं तपोवन दूर है। मार्ग में भयानक जंगल है। भूत-प्रेत तुम्हें खा जाएंगे। भूख, प्यास, बिजली, बारिश, शीत तथा गर्मी आदि तुम्हारा शरीर सहन नहीं कर सकता। आओ मेरे साथ मैं तुम्हें तुम्हारे पिता के पास ले जाऊं। वह तुम्हें राज दे देगा आधा राज।'

ध्रुव हंस पड़ा 'आधा राज' ! अभी मैं परमात्मा के दर्शन करने

जा रहा हूं, अगर दर्शन कर लूंगा आधा राज तो क्या पूरा राज अवश्य ही मिल जाएगा। उसने मन ही मन सोचा और फिर निडरता से बोला देखिए ! मैं नहीं जानता कि आप कौन हैं ? कहां से आए हैं। यदि आप मुझे परमात्मा की भक्ति से रोकते हो तो फिर मेरे दुश्मन हो। आपके लिए केवल यहीं अच्छा है कि यहां से चले जाओ। अपने मार्ग जाओ। कोई भूत-प्रेत मुझे खा जाए, आपको क्या ?

मासूम बालक ध्रुव के मुख से ऐसे वचन सुनकर एवं उसका दृढ़ विश्वास देखकर नारद मुनि आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने बालक की ओर देखा और उपदेश दिया-ठीक है, बालक रूप में कोई तुम महान आत्मा हो। तुम्हारा विचार उचित है। परमात्मा की स्तुति करना सबसे अच्छा कर्म है इसलिए यह मंत्र कंठस्थ कर लो-'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' और आंखें बंद कर 'केशव कलेष हरि' हरि का ध्यान करते रहना। कोई विघ्न नहीं पड़ेगा। तुम्हारे समस्त कार्य सम्पूर्ण होंगे।

ऐसा उपदेश करके ब्रह्मशक्ति से नारद मुनि अलोप हो गए। उनका अलोप होना ध्रुव के लिए आश्चर्य की बात थी। उसने सोचा कहीं यहीं तो ईश्वर नहीं थे। बालक के मन में संदेह उपजा। वह आगे जाकर एक पत्थर की शिला के ऊपर बैठ गया और भक्ति करने लगा।

दूसरी ओर मां सुनीती जागी। उसने अपने कंवल नयनों से अपने पुत्र की तरफ देखा तो उसका बिस्तरा खाली था। शीघ्रता से वह उठी। दिल धड़कने लगा, आवाज़ लगाई ध्रुव ! ध्रुव मेरा लाल कहां है ? महल में शोर मच गया। दासियां आईं लेकिन किसी ने यह न बताया कि ध्रुव कहां है ? सारे महल में ढूंढा, महल के साथ बाग में भी देखा। दास-दासियों से पूछा, लेकिन उसका कोई पता न चला। सुनीती व्याकुल हो गई। उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया और उसके सिर के बाल गले में अपने-आप ही बिखर गए।

राजा उतानपाद को जब इसकी सूचना मिली तो वह सुनीती के

महल में पता करने जाने लगा लेकिन छोटी रानी ने उसे रोक लिया। 'राजन ! मत जाएं ! स्वयं ही मिल जाएगा। उसने कोई चालाकी की होगी। स्वयं ही छिपा दिया होगा। वह आपको चकित करना चाहती है।'

छोटी रानी की बात सुनकर राजा रुक गया। मन ही मन में जब सोच रहा था तो एक तारा हाथ में पकड़े नारद मुनि जी खड़ाऊं की खड़खड़ाहट करते हुए आ गए।

राजा के पास आकर "नारायण ! हरि नारायण !" उच्चारा। हे राजन ! आज क्या बात है, आप परेशान हैं क्या छोटी रानी ने घूरा है ?

नारद मुनि के मुख से यह सुनकर राजा कुछ शर्मिन्दा हो गया। त्रिकालदर्शी नारद मुनि को प्रणाम करते हुए राजन ने कहा हे मुनि जन ! मेरी बड़ी रानी सुनीती का पुत्र ध्रुव राजमहल में से खो गया है। उसकी चिंता है। कल उसे छोटी रानी ने मेरी गोद में से उठा लिया था। इससे नाराज होकर पता नहीं ध्रुव किधर चला गया ? 'हरि नारायण' कथन करके नारद मुनि बोले-हे राजन !......आपका पुत्र गुम नहीं हुआ। वह तो तपोवन में जा कर भक्ति करने लग गया है। राजन ! उस मासूम का हृदय दुखाकर आपने बड़ी भूल की है। राज सुख के कारण तथा माया के चमत्कार से आप मोहित हो गए हैं। आपका पुत्र प्रेम हो सकता है लेकिन नारी प्रेम प्रबल है। आप रूप एवं वासना के गुलाम हो गए थे जिससे अपने पुत्र को प्यार नहीं दिया। रानी सुरुचि ने दुत्कार दिया। ऐसा कर्म और भेदभाव करने वाला पुरुष सदैव दुखी होता है। ध्रुव 'केशव कलेष' की भक्ति करके राज सुख प्राप्त करेगा।

ये बातें सुनकर राजा बड़ा लज्जित हुआ और ध्रुव का तपोवन में जाना सुनकर बड़ी हैरानी हुई। उसने नारद मुनि की ओर देखकर पूछा

'क्या सचमुच ही मेरा पुत्र तपोवन को चला गया ? वह घोर तप करेगा ? मासूम-सा बालक भूख, गर्मी और सर्दी कैसे सहन करेगा। उफ ! यह कहकर राजा ने आह भरी। उसे आश्चर्य हुआ और बोला, हे मुनिवर ! यह आपने बड़ी अशुभ खबर सुनाई है। कृपा करके आप जाकर मेरे पुत्र को वापिस ले आएं, मैं उसे अपना आधा राज देता हूं। वह अपने राज में सुख से जीवन व्यतीत करके धर्म करे। जीवन की सारी खुशियां पाए। लेकिन मैं यह नहीं देख सकता कि मेरा पुत्र ध्रुव भूख-प्यास से मरे।'

नारद मुनि -हे राजन ! वापिस लाने की कोशिश करना, पर वह आएगा नहीं। वह अवश्य ही तपस्या करेगा।'

यह कहकर नारद मुनि 'हरि नारायण !' कहते हुए रानी सुनीती के पास गए तथा उसे हौंसला दिया और कहा-हे रानी! आपकी गोद सफल हुई, चिंता न करें ! खुश होइए, आपका पुत्र महान भक्त बनेगा।

राजा उतानपाद जंगल में ध्रुव के पास उसे राजमहल में लाने हेतु मनाने के लिए गया। ढेर-सा लालच दिया तथा मिन्नतें की परन्तु राजा अपने पुत्र ध्रुव को वापिस लाने में सफल न हो सका। वह निराश होकर वापिस आ गया।

राजा के जाने से ध्रुव को दृढ़ विश्वास हो गया कि भक्ति करना उचित है। यदि तपस्या से पूर्व आधा राज मिलता है तो भक्ति करने से अवश्य प्रभु एवं उनकी भक्ति का नाम मिलेगा। वह बिना अन्न-जल से रहकर घोर तपस्या करने लगा। इन्द्र देवता ने ध्रुव की तपस्या को भंग करने के लिए अनेक यत्न किए, माया के चमत्कार दिखाए लेकिन ध्रुव अडिग रहा। उसने नेत्र न खोले। अंत में इन्द्र ने 'मायावी' दैत्य ध्रुव को भयभीत करने के लिए भेजा। वह दैत्य बड़ा भयानक था। उसने तपोवन में भयानक खौफ पैदा कर दिया। उसने अंधेरी, बारिश, ओले तथा वृक्ष गिराए और धरती को हिला दिया परन्तु ध्रुव

अडिग बैठा रहा। घोर तपस्या करते-करते ध्रुव ने इन्द्र को भयभीत कर दिया।

इन्द्र अपने राज दरबार से चलकर विष्णु भगवान के पास आया। उनको कहने लगा-'प्रभु ! ध्रुव तपस्या कर रहा है कहीं...... !'

इन्द्र की बात पूरी न हुई पर भगवान विष्णु सारी बात अंतर-दृष्टि से जान गए। उन्होंने कहा हे इन्द्र ! ध्रुव जिस इच्छा को धारण करके घोर तप कर रहा है, वह पूरी होगी। उसकी इच्छा आपका राज लेने की नहीं। वह तो अपने परमात्मा का ध्यान कर रहा है। उसे वह अवश्य मिलेगा। ऊंची पदवी तथा संसार में प्रसिद्धि प्राप्त होगी।

इन्द्र यह सुनकर अपने राजभवन में प्रसन्न होकर चला गया। तत्पश्चात् विष्णु भगवान अपना रूप बदल कर तपोवन में पहुंच गए। उन्होंने वैसा ही रूप धारण किया जैसा कि ध्रुव के ध्यान में था। श्री हरि ने ध्रुव की कठोर तपस्या को भंग करके प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिए। ध्रुव श्री हरि भगवान विष्णु के दर्शन करके अति प्रसन्न हुआ। उसकी प्रसन्नता देखकर श्री हरि ने वचन किया -'घोर तपस्या द्वारा तुमने हमारा मन मोह लिया है, जब तक सृष्टि है तुम्हारी भक्ति एवं नाम प्रसिद्ध रहेगा। जाओ राज सुख प्राप्त होगा और तुम्हारा नाम सदा अमर रहेगा, यह वर देकर अपने भक्त को घर भेज कर भगवान विष्णु अपने आसन की तरफ चले गए।

नारद मुनि ने इस बारे राजा उतानपाद को सूचित किया। वह रथ लेकर अपने पुत्र का स्वागत करने के लिए खुशी से आया। ध्रुव के आगमन पर प्रजा ने मंगलाचार तथा खुशियां मनाईं। रानी सुनीती के लिए पुत्र के आगमन पर संसार फिर से रोशन हो गया। इस खुशी में उसने सब को बधाई दी।

राजा उतानपाद ने अपने पुत्र की घोर तपस्या के फलस्वरूप अपना सारा शासन उसे सौंप दिया। श्री हरि के वरदान से ध्रुव का नाम राज

करने के बाद संसार में अमर हो गया। आज 'ध्रुव तारे' के नाम से याद किया जाता है। वह जीवन का एक अमिट और अडोल केन्द्र है। हे जिज्ञासु जनो-जो भक्ति करता है, वह उत्तम पदवी, मोक्ष तथा ख्याति प्राप्त करता है। यह सब भगवान की लीला है।

भक्त प्रहलाद जी

आदिकाल में दैत्य तथा देवता भारतवर्ष में नवास करते थे। उत्तराखण्ड में श्री राम चन्द्र के अवतार से पूर्व भक्त प्रहलाद का जन्म अत्याचारी दैत्य राजा हिरनाक्श के शासनकाल में हुआ। इस भक्त की महिमा अपरंपार है। गुरुबाणी में अनेक ऐसी तुकें हैं जिनमें भक्त प्रहलाद का नाम विद्यमान है। वह राम नाम का सिमरन करता था। उस समय 'राम' का अर्थ ईश्वर सर्व शक्तिमान है, से जाना जाता था जिसकी महिमा वेद भी गाते हैं।

प्रहलाद की कथा जिसका वर्णन पुराणों में भी आता है, उसका वर्णन इस तरह है एक कश्यप नामक ऋषि था। वह घोर तपस्या करता था। घने जंगलों में तपस्या करने के बाद उसका मन जंगल छोड़कर मानव जीवन की तृष्णाओं की ओर आकर्षित हुआ। सामाजिक बंधनों की लालसा में घूमते हुए उसका मन 'दिती' नाम की सुन्दर और नव-यौवन कन्या को देखकर डोल गया। उसने दिती से विवाह करने का प्रस्ताव रखा, जिसे दिती ने स्वीकार कर लिया। अपने माता-पिता की स्वीकृति से दिती ने कश्यप ऋषि से विवाह करा लिया।

कुछ समय के बाद दिती के गर्भ से दो पुत्रों और एक पुत्री का जन्म हुआ। पुत्रों का नाम हिरण्यकशिप तथा हिरनाक्श और पुत्री का नाम हालिका था। बड़े होने पर दोनों पुत्रों ने तीनों लोकों में हाहाकार मचाकर राज कायम कर लिया। एक दिन हिरण्यकशिप के अत्याचार

को देखकर श्री विष्णु भगवान ने विराट रूप में हिरण्यकशिप का वध कर दिया। उसकी मृत्यु से डरकर उसके भाई हिरनाक्श ने सोचा कि विराट भगवान कहीं उसका भी वध न कर दें, इसलिए वह काफी भयभीत हो गया। विराट क्योंकि देवता तथा हिरनाक्श दैत्य था, देवताओं से मुकाबला करना बड़ा कठिन था लेकिन अपने भाई हिरण्यकशिप के वध का प्रतिशोध लेने के लिए हिरनाक्श क्रोधित होकर मार्ग ढूंढने लगा। अन्त में उसने ब्रह्मा जी को प्रसन्न करके वर प्राप्ति के लिए घोर तप आरम्भ कर दिया। आंधी, वर्षा, बर्फ, गर्मी आदि सहन करते हुए तप भी इतना कठिन किया कि इन्द्र जैसे देवता घबरा गए।

इन्द्र ने हिरनाक्श की राजधानी पर हमला करके लूटमार मचा दी, जिनमें अनेक दैत्य मारे गए और हिरनाक्श की गर्भवती पत्नी किआधू को लेकर इन्द्र देवता स्वर्ग लोक चल पड़ा। जब इन्द्र हिरनाक्श की पत्नी किआधू को लेकर जा रहा था तो मार्ग में नारद मुनि जी उसको मिल गए। नारद मुनि जी त्रिकालदर्शी थे, उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि किआधू ऐसे बालक की मां बनने वाली है जिसका सितारा बहुत ही उज्ज्वल है और वह भक्त बनेगा। नारद मुनि ने इन्द्र को कहा हे देवराज ! लड़ाई तो पुरुषों से होती है, स्त्री पर हाथ उठाना उचित नहीं है। यह स्त्री निर्दोष है, निर्दोष स्त्री को कष्ट देना भगवान का अपमान करना है, इसलिए तुम इसको छोड़ दो।

पहले तो इन्द्र बेकार की बातें करने लगा, फिर उसको नारद मुनि की महिमा और दिव्य दृष्टि का ध्यान आया तो उसने हिरनाक्श की पत्नी किआधू को छोड़ दिया। नारद मुनि किआधू को अपने आश्रम में ले गए और अपनी पुत्री की तरह उसकी देखभाल की।

दैत्य कन्या और हिरनाक्श दैत्य की पत्नी किआधू नारद मुनि के आश्रम में रही तो उसका जीवन आचरण बिल्कुल ही बदल गया,

वह भक्ति और हरि नाम का जाप करने लगी। नारद मुनि भी उसको ज्ञान की बातें सुनाया करते थे। नारद मुनि के ज्ञान का प्रभाव हिरनाक्श की पत्नी के गर्भ में पल रहे बच्चे पर भी पड़ा। कुछ दिनों के बाद किआधू ने नारद मुनि के आश्रम में ही एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम प्रहलाद रखा गया। इस बारे भाई गुरदास जी फरमाते हैं :-

घरि हरणाखस दैत दे कलरि कवलु भगतु प्रहिलादु ।
पढ़न पठाइआ चाटसाल पांधे चित होआ अहिलादु ।
सिमरै मन विचि राम नाम गावै सबदु अनाहदु नादु ।
भगति करनि सभ चाटड़ै पांधे होइ रहे विसमादु ।
राजे पासि रुआइआ दोखी दैति वधाइआ वादु ।
जल अगनी विचि घतिआ जलै न डुबै गुर परसादि ।
कढ़ि खड़गु सदि पुछिआ कउणु सु तेरा है उसतादु ।
थंम पाड़ परगटिआ नर सिंघ रूप अनूप अनादि ।
बेमुख पकड़ि पछाड़िअनु संत सहाई आदि जुगादि ।
जै जै कार करनि ब्रहमादि ।२।

भाई गुरदास जी के वचन अनुसार वीराने में कंवल का फूल खिला, दैत्य के घर भक्त पैदा हुआ।

हिरनाक्श दैत्य ने घोर तप किया तो उसके घोर तप को देखकर ब्रह्मा जी प्रगट हुए और उसके कान में कहा-'तप प्रवान' मांग लो जो वर मांगना है।

यह सुनकर हिरनाक्श ने अपनी आंखें खोलीं और ब्रह्मा जी को अपने समक्ष खड़ा देखकर कहा-'प्रभु ! मुझे केवल यही वर चाहिए कि मैं न दिन में मरूं, न रात को, न अंदर मरूं, न बाहर, न कोई हथियार काट सके, न आग जला सके, न ही मैं पानी में डूब कर मरूं, सदैव जीवित रहूं।'

ब्रह्मा, हिरनाक्श दैत्य की यह बात सुनकर बड़े आश्चर्यचकित हुए।

उन्होंने सोचा कि यह दैत्य है इसको अगर ऐसा वर दे दिया तो यह विपरीत बुद्धि वाला बड़ी ही खलबली मचाएगा। पर अब क्या करें ? वचन किया था और उसका तप भी पूरा हो गया है। इसलिए उन्हें वर देना ही पड़ा। 'तथास्तु' कह कर ब्रह्मा जी अन्तर्ध्यान हो गए। हिरनाक्श उठकर खड़ा हो गया, उसे अहंकार हो गया। उसके अहंकार से सारा देव लोक घबरा गया।

वर प्राप्त करके हिरनाक्श अपनी राजधानी में पहुंचा। उसी समय नारद मुनि जी भी उसकी पत्नी किआधू और पुत्र प्रहलाद को लेकर वहां पहुंचे। नारद मुनि ने हिरनाक्श को सारी बात बताई कि इन्द्र देव ने उसकी राजधानी पर हमला करके लूट मार की है और उसको तहस-नहस कर दिया है। नारद मुनि की बात सुनकर हिरनाक्श को बहुत क्रोध आ गया। उसने अपने सारे दैत्यों को जो छिपे हुए थे एकत्रित किया और उनको अपने तप की कथा सुनाई। हिरनाक्श से यह सुनकर दैत्यों का साहसबढ़ गया। हिरनाक्श ने कहा- चलो ! हम सब दैत्य एकत्रित होकर देवताओं से बदला लेंगे। तुम में से जो भी मर जाएगा वह मेरी तप शक्ति से जीवित हो जाएगा।

तब हिरनाक्श ने अपने सब दैत्यों को लेकर देव लोक पर अपनी सेना लेकर देवताओं की पुरियों पर हमला कर दिया। सबसे बड़ा हमला इन्द्रपुरी पर किया गया। इन्द्र देव हिरनाक्श का मुकाबला न कर सका और अपनी रानियों तथा देव दासियों सहित ब्रह्म लोक की तरफ भाग गया। हिरनाक्श ने सारी इन्द्रपुरी उजाड़ दी। देवताओं की ऐसी मार-काट की, जैसी कि किसी ने देखी न हो। अनेक देवताओं को अंगहीन कर दिया गया। इन्द्र की सेना को नष्ट करके, इन्द्र पुरी को लूट कर, अनेक अप्सराओं को अपने कब्जे में करके हिरनाक्श अपनी राजधानी में लौट आया। उसने आते ही अपने राजधानी में ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई भी स्त्री-पुरुष किसी देवता या भगवान

का नाम न ले बस केवल यहीं जाप किया जाए कि "जले हिरनाक्श ! हरे हिरनाक्श ! थले हिरनाक्श ! सब शक्तियों के मालिक हिरनाक्श ही हिरनाक्श !"

सभी देवता घबरा कर भयभीत हो गए। उनकी बर्बादी का समय आ गया। सारे प्रमुख देवता भगवान विष्णु जी के पास फरियाद लेकर गए और जा कर पुकार की–हे प्रभु ! आपकी महिमा तो अलोप हो रही है। सभी देवी–देवताओं का नाम मिटाया जा रहा है। विचार कीजिए इस तरह धर्म और नेकी अलोप हो जाएगी तथा अधर्म, पाप और शैतानी शक्तियां प्रबल हो जाएंगी। कोई उपाय सोचो। दैत्य हिरनाक्श को वर देकर ब्रह्मा जी ने ठीक नहीं किया। सभी देवता मारे जाएंगे।'

विष्णु जी ने ब्रह्मा जी को बुलाया और पूछा कि आप ने हिरनाक्श को ऐसा वर क्यों दिया ? सभी देवता भयभीत हैं। तब ब्रह्मा जी ने कहा–'हिरनाक्श ने कठोर तप करके मुझ से ऐसा वर प्राप्त किया है। अब उसकी मृत्यु का कोई उपाय भगवान ही बताएं।'

बहुत सोच–विचार कर विष्णु जी ने कहा, हे देवताओ ! घबराओ मत, धर्म ही प्रायः राज करता है, अधर्म की शक्ति राज नहीं करती। हिरनाक्श की मृत्यु का कारण उसका अधर्म तथा अहंकार होगा। हिरनाक्श के घर प्रहलाद नाम का पुत्र हुआ है, उस बालक के हृदय में राम नाम का प्रकाश होगा। यही विधि हिरनाक्श की मृत्यु का कारण बनेगी, चिंता मत करो। धर्म और अधर्म की लड़ाई आरम्भ हो जाएगी।' यह सुनकर सभी देवता प्रसन्न हो गए। वह अपने–अपने स्थानों की ओर चले गए। उनके जीवन का अंधकार दूर हो रहा था।

विष्णु भगवान ने हिरनाक्श को मारने के लिए अपने प्रयत्न आरम्भ कर दिए। उन्होंने बालक प्रहलाद के हृदय में ज्ञान और भक्ति के दैवी गुण प्रगट कर दिए। जब प्रहलाद छः वर्ष का हुआ तो उसे

पाठशाला पढ़ने के लिए भेजा गया। उस पाठशाला में और भी बहुत से लड़के पढ़ते थे।

पाठशाला के मुख्य अध्यापक का नाम संडा मरका था। वह प्रसन्न हुआ कि राजपुत्र प्रहलाद के पढ़ने आने के कारण उसकी बहुत शोभा होगी, उसको बहुत कुछ मिला करेगा तथा उसके जन्म-जन्मांतर की भूख दूर हो जाएगी। उसने बड़ी खुशी-खुशी प्रहलाद को पढ़ाना शुरू किया। आरम्भिक शिक्षा शुरू की। बुनियादी अक्षर पढ़ाने से पहले अध्यापक ने सब बालकों से कहा- सभी कहो कि हिरनाक्श महाराज की जय।

सब ने कहा-'हिरनाक्श महाराज की जय।'

परन्तु बालक प्रहलाद खड़ा देखता ही रहा। वह चुप रहा। इस तरह कुछ दिन बीत गए। प्रहलाद के अध्यापक ने देखा कि प्रहलाद हिरनाक्श का नाम नहीं लेता। वह नाम लेने के समय चुप कर जाता है। यह सब विष्णु भगवान की ही प्रेरणा थी, उसने लीला खेलनी थी, सो खेलने लग पड़ा।

अध्यापक संडे मरके ने प्रहलाद से प्रेम से कहा-प्रहलाद बेटा ! श्री हिरनाक्श महाराज जी का नाम लो।

प्रहलाद बोला-गुरु जी ! हिरनाक्श तो मेरे पिता जी का नाम है। भला मैं अपने पिता जी का नाम कैसे ले सकता हूं ? ऐसा कैसे हो सकता है ?

अध्यापक ने कहा-'यह ठीक है कि वह तुम्हारे पिता हैं, तुम बड़ी तकदीर वाले हो। पर उन्होंने तपस्या के बल पर सभी देवी-देवताओं को जीत लिया है, वह अमर हो गए हैं और कभी मर नहीं सकते। यह उनका ही आदेश है कि भगवान का नाम न लेकर उनका ही नाम लिया जाए-'श्री हिरनाक्श-जले थले हिरनाक्श।'

यह सुन कर प्रहलाद मुस्करा दिया। विष्णु जी की कृपा से उसकी

आत्मा एक वृद्ध ऋषि की तरह ज्ञान प्रकाशमान हो गई। उसको सच्चे धर्म का ज्ञान हो गया और उसकी जुबान पर एक ही नाम आया- "राम नाम......जले थले अग्नि हवा सब में राम-राम......भगवान राम।"

'गुरु जी ! देवताओं से ऊपर भी एक भगवान है......राम को पिता जी ने विजय नहीं किया। इसलिए सब का दाता राम है।'

प्रहलाद के मुख से यह बातें सुनकर अध्यापक की आत्मा डर गई, उसने जान लिया कि यह अवश्य ही कोई अवतारी बालक है, भला छः सात वर्ष का बालक और बातें करे आत्मिक ज्ञान की ?

अध्यापक ने प्रहलाद को समझाने का बहुत यत्न किया, मगर प्रहलाद न माना। वह राम नाम जपता रहा। उसने पाठशाला के दूसरे लड़कों को भी राम नाम में लगा दिया। जोर-जोर से राम नाम जपने की धुनें गाई जाने लगीं। प्रभु ने ऐसी लीला रची जिससे हिरनाक्श राजा का ऐसा अपमान हुआ कि अध्यापक डर के मारे तड़प उठा, उसका शरीर थर-थर कांपने लग गया। वह हिरनाक्श दैत्य के क्रोध से डरता था। उसने हिरनाक्श का क्रोध देखा हुआ था, वह किसी की जान तक नहीं बख्शता। उसे पूछने वाला कोई नहीं था। प्रहलाद उसका कहना नहीं मानता था, अध्यापक ने प्रहलाद को मारा-पीटा और डराया-धमकाया, बातों के साथ बहुत समझाया। अंत में एक गुस्से-भरी आवाज़ जो किसी मर्द की लगती थी उसमें अध्यापक को उत्तर मिला-गुरु जी ! कुछ भी हो सब राम ही राम है, राम से बड़ा कोई ओर नहीं, राम ने ही दैत्यों को मारना है।

अध्यापक सिर पर पैर रख कर तेज़ी के साथ भाग गया। हिरनाक्श के दरबार में पहुंच कर झुककर प्रणाम करके उसने हाथ जोड़ कर कहा, 'महाराज! मैं विवश हूं कहने के लिए, छोटा मुंह और बड़ी बात है, आपका राजपुत्र आपका नाम नहीं लेता, वह तो राम-राम कहता है।'

भगवान की ऐसी लीला हुई कि उस समय अध्यापक के मुंह से निकला 'राम' शब्द हिरनाक्श के दरबार में इतना गूंजा कि उसे अपने कानों में उंगली डालनी पड़ी। उसे क्रोध आ गया। वह क्रोधित हो कर बोला-'यह नहीं हो सकता......कोई भी मेरे नाम के अतिरिक्त किसी और का नाम न जपे। यदि ऐसा हुआ तो वह जीवित नहीं रहेगा। प्रहलाद से मैं स्वयं पूछूंगा।'

हिरनाक्श के इन शब्दों के साथ दरबार गूंज पड़ा। सब दरबारी और सेवक डर गए और डर से कांप उठे। उनको ऐसा प्रतीत हुआ जैसे भूचाल आया था और दरबार हिल गया।

हिरनाक्श ने अपने पुत्र प्रहलाद को बुलाया। उस समय क्रोध से उसका मुंह लाल सुर्ख हुआ पड़ा था। प्रहलाद ! तुम्हारे अध्यापक ने शिकायत की है कि तुम मेरा नाम नहीं लेते ? हिरनाक्श ने अपने पुत्र प्रहलाद से पूछा।

प्रहलाद ने उत्तर दिया-'आप मेरे पिता हो, पिता जी आप का नाम लेना क्या मुझे शोभा देता है ? पिता जी का तो आदर करना चाहिए।' प्रहलाद मुस्कराता हुआ बोलता जा रहा था। वह निर्भय था। वास्तव में प्रहलाद के माध्यम से जगत की महान शक्ति भगवान विष्णु मुस्करा रहे थे।

'यह बात नहीं।' हिरनाक्श बोला।

'और कौन-सी बात है पिता जी ?' प्रहलाद ने फिर प्रश्न किया। उसकी छोटी-छोटी आंखों ने दैत्य की मलीन आत्मा की तरफ देखा, काली आत्मा क्रोध और अहंकार से भरी हुई थी।

हिरनाक्श ने फिर कहा 'राम नाम मत लो। मेरा नाम लो, हिरनाक्श के नाम की माला फेरो।'

यह सुनकर प्रहलाद हंस पड़ा। इतनी जोर से हंसा जैसे कोई बड़ा पुरुष हंसता है, जिसे त्रिलोक का ज्ञान होता है। वह बोला-'हे राजन !

यह आपका अहंकार है। आपने घोर तप करके भगवान से वर लिया है, जिससे आप ने वर लिया है, वही तो मेरे भगवान राम हैं। जिन्हें तीनों लोकों का ज्ञान है।'

'यह नाम मत लो। मैं तुम्हें मार दूंगा।' हिरनाक्श बोला। उसके शरीर को जैसे झटका लगा हो। उसकी जुबान से बड़ी मुश्किल से ही 'राम' शब्द निकल रहा था। पर प्रहलाद खुश था उसके मन में मृत्यु का बिल्कुल भी भय नहीं था। वह प्रसन्नचित खड़ा रहा।

प्रहलाद ने कहा 'मैं राम का नाम क्यों न लूं ! नारद मुनि के आश्रम में ही मैंने यह शिक्षा ली थी, उस समय मैं अपनी माता के गर्भ में था। राम का नाम तो मेरे रोम रोम में बसा हुआ है जिसे मैं कभी नहीं भूल सकता। राम ही सर्वोपरि हैं मेरे लिए।'

'ले जाओ ! इसे यहां से ले जाओ। दरिया में डूबा कर मार दो !' हिरनाक्श ने आदेश दिया। अपने ही पुत्र को हिरनाक्श ने शत्रु समझ लिया था।

जब प्रहलाद को हिरनाक्श के दरबारियों ने पकड़ा तो उसका दरबार डोल गया। सभी दरबारी बड़े हैरान हुए। प्रहलाद की मां ने बहुत प्रार्थना की, मगर हिरनाक्श ने उसकी एक भी न सुनी। सारे दरबार में सन्नाटा छा गया, गम की लहर सब ओर फैल गई, मगर प्रहलाद फिर भी मुस्करा रहा था, उसके नेत्रों में अनोखी चमक आ गई।

दैत्य प्रहलाद को पकड़ कर चल पड़े। लेकिन हिरनाक्श के भय से कोई ऊंची सांस भी नहीं लेता था, मगर सबका दिल रो रहा था, क्योंकि मासूम प्रहलाद सबको प्रिय था। वह प्यारी-प्यारी बातें करके सबको अपनी तरफ आकर्षित करता था।

रड़ नदी, जिसे आजकल सतलुज दरिया कहा जाता है, उस समय मुलतान शहर के पास से ही गुजरती थी, मुलतान ही हिरनाक्श का शहर था। वह आधे पंजाब का राजा था।

हाथ–पांव बांधे बिना ही दैत्यों ने प्रहलाद को नदी में फैंक दिया। ऐसे फैंका जैसे कोई भारी पत्थर फैंका हो।

मगर धन्य है प्रभु ! प्रहलाद का राम जो अदृश्य है, सर्वशक्तिमान हैं, सर्वव्यापक हैं, वह पहले ही वहां पहुंच गए। उन्होंने अपने भक्त को अपने हाथों में उठा लिया और उसके प्राणों की रक्षा की।

'जुग जुग भगत उपाइआ, पैज रखता आया राम राजे ।'

प्रहलाद बच गया और किनारे पर आ गया। प्रहलाद को किनारे पर आया देखकर दैत्य उसकी तरफ दौड़े। प्रहलाद मुस्कराया। दुष्ट हिरनाक्श को मारने के लिए ही भगवान ने यह कौतुक रचा ।

मासूम बालक समझ कर दैत्यों ने सर्व शक्तिमान भगवान को फिर पकड़ लिया। उसके शरीर से भारी पत्थर बांध कर फिर दरिया में डुबोया। प्रहलाद पहले नीचे गया, फिर तुरन्त ही ऊपर आ गया, उस समय उसके शरीर के साथ कोई पत्थर नहीं था। वह टूट कर नीचे ही रह गया। दैत्य हैरान हो गए। वह भयभीत हो गए। वे समझ गए कि यह सब किसी मायावी शक्ति का खेल है। उनको कुछ ऐसा ही दिखाई दिया जैसे अनोखी शक्तियां उन्हें डरा रही थीं। वह प्रहलाद को छोड़ कर भाग गए। हिरनाक्श को जाकर सारी बात बताई कि– वह पानी में नहीं डूब रहा, पत्थर से भी तैर जाता है। राम ! राम ! बोलता जाता है।

हिरनाक्श ने दैत्यों को बहुत डांटा तथा दूसरे दैत्यों को आदेश दिया कि जाओ इसे ऊंचे पर्वत से नीचे गिरा दो। मैं तुम्हें शक्ति देता हूं। उसे उठा कर ले जाओ।

उन दैत्यों ने ऐसा ही किया। वह उसे उठा कर पर्वत पर ले गए। जब उसे पर्वत की चोटी से नीचे गिराने लगे तो प्रहलाद ने 'राम' कहा। 'राम' का नाम लेते ही प्रहलाद को ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वह हवा में झूल रहा हो। वह धीरे धीरे नीचे आया और धरती के ऊपर

अपने पैरों के बल खड़ा हो गया। उसे तनिक भी चोट न आई। राम ने अपने भक्त की फिर से लाज रख ली।

पर्वत में ऐसी बिजली की शक्ति उत्पन्न हुई कि वहां पर खड़े दैत्य वहीं पर गिर कर राख हो गए। राम का प्यारा भक्त प्रहलाद अपने पांव पर चलता हुआ अपनी राजधानी में आ गया। वह फिर राम नाम का गुणगान करने लगा। अब तो वह और भी ऊंचे स्वर में गाता। सारा शहर, पशु-पक्षी और वहां की ईमारतें भी 'राम नाम' का गुणगान करने लगी। हिरनाक्श अब भयभीत हो गया। उसने क्रोध में आ कर प्रहलाद को पकड़ कर पीटना शुरू कर दिया। पर प्रहलाद मुस्कराता रहा। उसको तनिक भी क्रोध न आया, न ही उसे कोई दर्द हुआ।

'होलिका' हिरनाक्श की बहन थी। उसे वर प्राप्त था कि अग्नि उसे जला नहीं सकेगी। उसको मायावी शक्ति देकर हिरनाक्श ने कहा-'इस बालक को गोद में लेकर चिता में बैठ जाओ, चिता में आग लगेगी और प्रहलाद जल जाएगा, मगर तुम मायावी शक्ति के कारण नहीं जलोगी। ऐसी औलाद से तो बे-औलाद होना अच्छा है।'

होलिका ने ऐसा ही किया। वह प्रहलाद को गोद में लेकर चिता में बैठ गई। जब चिता को आग लगाई गई तो आग ने उल्टा उसे ही पकड़ लिया। होलिका अग्नि की लपटों से चिल्लाने लगी। प्रहलाद पर अग्नि का कोई प्रभाव न पड़ा और वह हंसता रहा। वह जैसे-जैसे हंसता गया वैसे-वैसे ही अग्नि की लपटें तेज होती गईं। जैसे-जैसे अग्नि तेज होती गई होलिका आग में चिल्लाती रही। जलती आग से वह बाहर न आ सकी। होलिका अग्नि में जल कर राख हो गई। दैत्य और देवता सब हैरान हो गए। धर्म का ऐसा खेल देखकर भक्त जन अत्यंत प्रसन्न हुए। प्रहलाद आग की लपटों में से बचकर कुशलपूर्वक निकल आया।

कढि खड़ग सद पुछिआ कउण सु तेरा है उस्ताद ।।
थंम पाड़ प्रगटिआ नरसिंघ रूप अनूप अनाद ।।

दैत्य हिरनाक्श अपनी बहन होलिका के जलने पर बड़ा दुखी हुआ और उसकी कोई पेश न चल सकी। पापी, दुष्ट, अहंकारी हिरनाक्श ने आग बबूला होकर राम के भक्त प्रहलाद को लोहे के तपते हुए खम्भे के साथ बांध दिया। तपते खम्भे से भक्त प्रहलाद पर कोई असर न हुआ और वह मुस्कराने लगा। गुस्से से हिरनाक्श लाल पीला हो गया, उसी तरह जैसे डूबता सूर्य लाल होता है। उसका अंतिम समय आ चुका था।

'बताओ तुम्हारा कौन रक्षक है ?' हिरनाक्श ने प्रहलाद से पूछा।

'मेरा रक्षक राम है' प्रहलाद ने उत्तर दिया।

कहां है ?

'मेरे पास, मेरे साथ, वह सदा रहता है......घाट-घाट में बसता है। जरा होश करो, तुम्हारी मृत्यु आई है।'

'मेरी मृत्यु नहीं ! तुम्हारी मृत्यु......आई है ! यह कह कर हिरनाक्श तलवार उठाने ही लगा था कि खम्भा फट गया। उस खम्भे में से विष्णु भगवान नरसिंघ का रूप धारण करके जिसका मुख शेर का तथा धड़ मनुष्य का था, प्रगट हुए। भगवान नरसिंघ अत्याचारी दैत्य हिरनाक्श को पकड़ कर शेर की तरह दहाड़ने लगे। उन्होंने हाथों से पकड़ कर हिरनाक्श का पेट चीर कर उसकी आंतड़ियां बाहर निकाल दीं।

भगवान नरसिंघ ने कहा-अहंकारी दैत्य ! तुम्हारे पापों का घड़ा भर चुका है। देख तू न दिन को मर रहा है और न ही रात को। इस समय दिन अन्दर बाहर है। धरती के ऊपर भी नहीं मर रहा। प्रभु ने कहा-न तू किसी अस्त्र-शस्त्र से मर रहा है। हाथों पर उठा कर घुटनों के ऊपर रखा हुआ है। नरसिंघ भगवान ने यह कह कर हिरनाक्श

की इहलीला समाप्त कर दी। हिरनाक्श के वध पर प्रहलाद एवं अन्य भक्त जन भगवान नरसिंघ का गुणगान करने लग गए। तदुपरांत भगवान नरसिंघ का क्रोध जब शांत हुआ तो उन्होंने भगवान विष्णु के रूप में दर्शन देकर भक्तों को कृतार्थ कर दिया। उन्होंने भक्त प्रहलाद की भक्ति पर प्रसन्न होकर राज पाठ प्रदान किया और धर्म का राज करने का उपदेश दिया। सारे ब्रह्माण्ड में जै जैकार होने लगी।

हे जिज्ञासु जनों ! जो भी मनुष्य इस धरती रूपी ब्रह्माण्ड में जन्म लेता है, यदि वह प्रभु का सिमरन एवं भक्ति करता है तो अपना जन्म सफल करके मोक्ष प्राप्त करता है।

जैसा कि सतिगुरु जी महाराज फरमाते हैं :-

जपि मन माधो मधुसूदनु हरि श्री रंगो परमेसरो सति परमेसरो प्रभु अंतरजामी ॥ सभ दूखन को हंता सभ सूखन को दाता हरि प्रीतम गुन गाओ ॥१॥ रहाउ ॥

(पन्ना १२०१)

महर्षि वाल्मीकि जी

महर्षि वाल्मीकि का जन्म त्रैता युग में अस्सू पूर्णमाशी को एक श्रेष्ठ घराने में हुआ। आप अपने आरम्भिक जीवन में बड़े तपस्वी एवं भजनीक थे। लेकिन एक राजघराने में पैदा होने के कारण आप शास्त्र विद्या में भी काफी निपुण थे।

आप जी के नाम के बारे ग्रंथों में लिखा है कि आप जंगल में जाकर कई साल तपस्या करते रहे। इस तरह तप करते हुए कई वर्ष बीत गए। आपके शरीर पर मिट्टी दीमक के घर की तरह उमड़ आई थी। संस्कृत भाषा में दीमक के घरों को 'वाल्मीकि' कहा जाता है। जब आप तपस्या करते हुए मिट्टी के ढेर में से उठे तो सारे लोग आपको वाल्मीकि कहने लगे। आपका बचपन का नाम कुछ और था, जिस

बारे कोई जानकारी पता नहीं लगी।

भारत में संस्कृत के आप पहले उच्चकोटि के विद्वान हुए हैं। आप जी को ब्रह्मा का पहला अवतार माना जाता है। प्रभु की भक्ति एवं यशगान से आपको दिव्यदृष्टि प्राप्त हुई थी और आप वर्तमान, भूतकाल तथा भविष्यकाल बारे सब कुछ जानते थे। श्री राम चन्द्र जी के जीवन के बारे आप जी को पहले ही ज्ञान हो गया था। इसलिए आप जी ने श्री राम चन्द्र जी के जीवन के बारे पहले 'रामायण' नामक एक महा ग्रंथ संस्कृत में लिख दिया था। बाद में जितनी भी रामायण अन्य कवियों तथा ऋर्षियों द्वारा लिखी गई है, वह सब इसी 'रामायण' को आधार मानकर लिखी गई हैं।

जब महर्षि वाल्मीकि को 'रामायण' की कहानी का पूर्ण ज्ञान हो गया तो आप जी ने एक दिन अपने एक शिष्य को बुलाया तथा तमसा नदी के किनारे पर पहुंच गए। इस सुन्दर नदी पर वह पहली बार आए थे। वह नदी के तट पर चलते-चलते बहुत दूर निकल गए। अंत में वह नदी के एक तट पर जाकर रुक गए।

नदी का वह किनारा बड़ा सुन्दर तथा हरा-भरा था। नदी का सुन्दर किनारा और निर्मल जल देखकर वाल्मीकि जी बहुत प्रसन्न हुए। निर्मल जल को देखकर वह नदी पर स्नान करने गए। स्नान करते-करते वह उस जंगल में पहुंच गए जहां एक पेड़ पर बैठे चकवा चकवी प्रेम रस में डूबे हुए थे।

चकवा चकवी प्रेम करते बड़े प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। वाल्मीकि जी अभी उनकी तरफ देख ही रहे थे कि एक शिकारी उधर आ निकला।

उसने चकवे की हत्या कर दी। अपने प्यारे पति को तड़पता देखकर चकवी बहुत दुखी हुई तथा विलाप करने लग गई। शिकारी के निंदनीय कार्य को देखकर महर्षि वाल्मीकि बहुत क्रोधित हो गए। उन्होंने एक श्लोक संस्कृत में उच्चारण किया जिसका भाव था, 'हे शिकारी तूने

जो प्रेम लीला कर रहे चकवे के प्राण लिए हैं इस कारण तेरी शीघ्र ही मृत्यु हो जाएगी तथा तेरी पत्नी भी इसी तरह दुखी होगी।'

वाल्मीकि जी के मुख से यह वचन स्वाभाविक ही निकल गए। फिर वह सोचने लगे कि मैं पक्षियों का दुःख देखकर यह सारा श्राप युक्त वचन क्यों कर बैठा। लेकिन जब अपने कहे हुए उत्तम तथा अलंकारक श्लोक की तरफ देखा तो बड़े प्रसन्न हुए। वह उस श्लोक को दोबारा गाने लगे। फिर उन्होंने अपने शिष्य भारद्वाज को कथन किया कि वह इस श्लोक को कंठस्थ कर ले ताकि इसे भूल न जाए। शिष्य भारद्वाज ने उस समय यह श्लोक कंठस्थ कर लिया।

इस तरह मासूम पक्षी की मृत्यु ने महर्षि वाल्मीकि के मन पर वैरागमयी प्रभाव डाला। पक्षी के तड़पने, मरने तथा मरने से पहले प्रेम लीला की झांकी महर्षि की आंखों से ओझल नहीं हो रही थी। इस विचार में डूबे हुए वाल्मीकि अपने आश्रम में आ पहुंचे।

लेकिन आश्रम में आकर भी आप उस श्लोक को मुंह में गुणगुनाने लगे। आप जी को दिव्यदृष्टि द्वारा जो श्री रामचन्द्र जी का जीवन चरित्र ज्ञात हुआ था, आप जी ने मन बनाया कि क्यों न उस श्लोक की धारणा में श्री रामचन्द्र जी का जीवन चरित्र लिख दिया जाए।

यह विचार बनाकर महर्षि वाल्मीकि जी सुन्दर ज्ञानवर्धक श्लोकों वाली 'रामायण' लिखने लगे। ऊंचे ख्यालों वाले शब्द, पिंगल तथा व्याकरण एवं नियम-उपनियम अपने आप उनके पास इकट्ठे होने लगे। फिर महर्षि वाल्मीकि जी जब अन्तर-ध्यान हुए तो श्री रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता, दशरथ, कैकेयी, माता कौशल्या तथा हनुमान आदि मुख्य पात्रों के बारे सारे छोटे से छोटे हाल का भी सूक्ष्म ज्ञान हो गया। यहां तक कि श्री रामचन्द्र जी का हंसना, बोलना, मुस्कराना तथा खेलना भी कानों में सुनाई देने लगा। आंखें उनके वास्तविक स्वरूप को देखने लगीं। सीता तथा श्री रामचन्द्र जी के जो संवाद

वन में होते रहे महर्षि जी को उनका भी ज्ञान होता गया। जो भी घटनाएं घटित हुई थीं, वे याद आ गईं।

फिर महर्षि वाल्मीकि जी ने अपने शिष्यों के पास से बेअंत भोज पत्र मंगवाए तथा उनके ऊपर लिखना शुरू कर दिया जो बहुत मनोहर हैं तथा सम्पूर्ण रचना को सात कांडों सात सौ पैंतालीस सरगों तथा चौबीस हजार श्लोकों में विभक्त किया गया है।

जब महर्षि वाल्मीकि रामायण का मुख्य भाग लिख चुके थे तो सीता माता श्री रामचन्द्र की ओर से वनवास दिए जाने के कारण उनके आश्रम में आई। आप जी ने अपने सेवकों को सीता माता को पूरे आदर-सत्कार से रखने के लिए कहा। कुछ समय के बाद सीता माता के गर्भ से दो पुत्रों ने जन्म लिया। उन पुत्रों के नाम लव तथा कुश रखे गए। महर्षि ने उन बच्चों के पालन-पोषण का विशेष ध्यान रखा। अल्प आयु में ही उनकी शिक्षा शुरू कर दी। महर्षि वाल्मीकि स्वयं लव एवं कुश को पढ़ाते थे। बच्चों को संस्कृत विद्या के साथ-साथ संगीत तथा शस्त्र विद्या भी दी जाती थी। वाल्मीकि लव एवं कुश को रामायण भी पढ़ाने लगे।

वह दोनों बालक शीघ्र ही संस्कृत के विद्वान, संगीत के सम्राट बन गए। वे शस्त्र विद्या में भी काफी निपुण हो गए। महर्षि ने सोचा कि इन बालकों के द्वारा राम कथा को जगत में प्रचारित किया जाए। उन बालकों को वाल्मीकि ने राम कथा मौखिक याद करने के लिए कहा। बालकों लव कुश ने कुछ समय में ही चौबीस हजार श्लोक कठंस्थ कर लिए। वह अपने मीठे गले तथा सुरीली सुर में रामायण गाने लगे। उन्होंने दो सात सुरों वाली वीणाएं लीं तथा राम कथा का गुणगान करने लगे।

जब वह गायन कला में परिपूर्ण हो गए तो वाल्मीकि जी ने उनको आज्ञा दी की वह दूर-दूर जाकर उस उच्च तथा कल्याणकारी काव्य

का प्रचार करें। दोनों राजकुमार जो श्रीराम चन्द्र जी के समान सुन्दर, विद्वान तथा बलशाली थे, ऋषियों, साधुओं तथा जनसमूह में जाकर रामकथा का गायन किया करते थे। उनके सुरीले गान ने काव्य को और ऊंचा कर दिया। जब वह गाते तो श्रोता बहुत प्रसन्न एवं वैरागमयी हो जाते। सब के नेत्रों में श्रद्धा, हमदर्दी तथा भक्ति के नीर बहने लग जाते। प्रत्येक नर-नारी उनकी उपमा करके बालकों लव कुश के पीछे-पीछे चल पड़ते। लव कुश केवल उस काव्य का गायन ही नहीं कर रहे थे बल्कि एक नया संदेश भी दे रहे थे। भूतकाल की घटनाएं वर्तमान काल की घटनाएं प्रतीत हो रही थीं। लव तथा कुश रामकथा का गायन करके वापिस महर्षि वाल्मीकि जी के आश्रम में आ जाया करते थे। वह अपनी माता सीता जी का बहुत सत्कार करते थे।

उन दिनों में ही श्री रामचन्द्र जी ने चक्रवर्ती राजा बनने के लिए अश्वमेध यज्ञ करने का फैसला किया। उन्होंने यज्ञ के लिए एक घोड़ा छोड़ा तथा ऐलान किया कि जो इस घोड़े को पकड़ेगा, उसे लक्ष्मण के साथ युद्ध करना होगा। लक्ष्मण एक बड़ी सेना लेकर घोड़े के पीछे-पीछे जा रहा था। जब यह घोड़ा महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के निकट पहुंचा तो लव कुश ने उस घोड़े को पकड़ लिया तथा अपने आश्रम लाकर एक पेड़ के साथ बांध दिया। जब लक्ष्मण सेना लेकर निकट आया तो उसने बालकों को घोड़ा छोड़ने के लिए कहा। लेकिन लव कुश ने मना कर दिया और कहा, "हमें यह घोड़ा बहुत पसंद है, हम इसकी सवारी किया करेंगे, आप कोई अन्य घोड़ा छोड़ दीजिए।" लेकिन लक्ष्मण ने उनको समझाया कि 'यह अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा है जो भी इस घोड़े को पकड़ेगा, उसे हमारे साथ युद्ध करना पड़ेगा।" पर बालक आगे से कहने लगे, "हम युद्ध करने को तैयार हैं लेकिन हम घोड़ा नहीं छोड़ेंगे।"

लक्ष्मण ने उनको युद्ध के लिए तैयार होने के लिए कहा। वह बालक भी महर्षि वाल्मीकि जी से युद्ध विद्या का ज्ञान प्राप्त कर चुके थे तथा जो योद्धा ब्रह्मज्ञानी वाल्मीकि से युद्ध विद्या ग्रहण कर चुका हो, वह भला कैसे हार सकता है। इसलिए दोनों बालक तीर कमान लेकर तथा कवच पहन कर घोड़ों पर सवार होकर मैदान में आ गए। लक्ष्मण की सेना के सामने डटकर उन्होंने निर्भीकता से कहा, "यदि आप में हिम्मत है तो हमारे ऊपर हमला करो।"

लक्ष्मण ने एक तीर छोड़ा जिसे लव ने अपने तीर से ही रोक लिया। फिर लव कुश ने तीरों की ऐसी वर्षा की कि लक्ष्मण की सेना वहीं पर ढेर हो गई। लक्ष्मण यह चमत्कार देखकर बड़ा हैरान हुआ, वह फिर बालकों को समझाने लगा। लेकिन लव कुश ने लक्ष्मण को वही मार दिया।

लक्ष्मण की हार के बारे में जब श्री राम चन्द्र जी को पता लगा तो उन्होंने शत्रुघ्न को एक बड़ी फौज देकर रणभूमि में भेजा। लेकिन शत्रुघ्न भी दोनों बालकों का मुकाबला न कर सका तथा पराजित हो गया। उसे भी महर्षि वाल्मीकि के शिष्यों ने धरती पर धूल चटा दी।

शत्रुघ्न की हार का समाचार सुनकर श्री रामचन्द्र जी ने भरत को भेजा। भरत ने पहले आकर लव कुश को बहुत समझाया लेकिन बालकों के ऊपर इसका कोई असर न हुआ। उन्होंने भरत की भी सारी सेना को मार डाला तथा भरत भी मूर्छित होकर गिर पड़ा।

फिर श्री रामचन्द्र जी स्वयं सेना लेकर आए। वह ऐसे शूरवीर बालकों को देख कर बहुत खुश हुए। उन्होंने बालकों की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा उनको घोड़ा छोड़ने के लिए कहा। पर बालकों ने उनकी बात की तरफ कोई ध्यान न दिया तथा युद्ध आरम्भ कर दिया। कुछ ही समय में श्री रामचन्द्र जी की सेना मार फैंकी।

अंत में उन्होंने श्री रामचन्द्र जी को भी घायल कर दिया। पूर्ण

तौर पर विजय प्राप्त करके लव- कुश माता सीता को मिलने गए तथा कहा कि उन्होंने भारत के सर्वश्रेष्ठ राजा को पराजित कर दिया है तथा अब सारे देश के मालिक बन गए हैं। जब सीता माता ने यह बात सुनी तो उनको शक हुआ कि इस देश के राजा तो श्री रामचन्द्र जी हैं, इन्होंने कहीं अपने पिता जी को ही न पराजित कर दिया हो। वह उसी समय रणभूमि पर उस राजा को देखने गई। जब उन्होंने श्री रामचन्द्र जी को घायल अवस्था में मूर्छित देखा तो ऊंची-ऊंची रोने लग पड़ी और कहा कि तुम दोनों ने मेरा सुहाग मुझ से छीन लिया है। यह बात सुनकर बालक बड़े हैरान हुए। फिर सीता माता ने परमात्मा के आगे प्रार्थना की कि यदि मैं पतिव्रता स्त्री हूं तो प्रभु मेरे सुहाग को जीवन दान दें। महर्षि वाल्मीकि जी को भी सारी बात का पता लग गया। उन्होंने श्री रामचन्द्र जी के मुंह पर पवित्र जल के छींटे मारे तो वह उठ कर बैठ गए। अपने पास दो शूरवीर बालकों, सीता तथा महर्षि वाल्मीकि जी को देख कर बहुत हैरान हुए। महर्षि जी ने फिर उनको सारी बात समझाई। श्री रामचन्द्र जी ने सीता माता का धन्यवाद किया तथा अपने दो शूरवीर पुत्रों को देख कर बहुत खुश हुए। फिर उन्होंने महर्षि वाल्मीकि जी को कहा कि अपनी कृपा दृष्टि से मेरे दूसरे भाईयों और सेना को भी जीवन दान की कृपा करें। सीता माता ने फिर प्रार्थना की तो रामचन्द्र जी के सारे भाई तथा सैनिक जीवित होकर उठ खड़े हुए। फिर श्री रामचन्द्र जी महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में गए तथा सीता और बालकों को साथ ले जाने की इच्छा प्रगट की। वाल्मीकि जी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ सीता माता तथा बालकों को उनके साथ जाने की आज्ञा दे दी। दोनों बालक और सीता माता अयोध्या पहुंच गए। जब सारे नगर वासियों को पता लगा तो उन्होंने बहुत खुशियां मनाईं। शूरवीर बालकों को देखने के लिए सारा नगर उमड़ आया।

लव और कुश जिन को राम कथा सम्पूर्ण मौखिक याद थी उन्होंने सारी कथा सुरीली मधुरवाणी में नगर वासियों को सुनाई। श्री रामचन्द्र जी अपनी सारी जीवन कथा सुन कर धन्य हो गए। उन्होंने महर्षि वाल्मीकि कृत इस अमर कथा को सुन कर कहा, "जब तक यह दुनिया रहेगी महर्षि वाल्मीकि जी की यह कथा चलती रहेगी, धन्य हैं महर्षि वाल्मीकि जी, उनकी सदा ही जै होगी।"

वाल्मीकि जी ने बाद में उत्तराकांड लिखा। इस तरह वाल्मीकि जी एक उच्चकोटि के विद्वान तथा शस्त्रधारी शूरवीर थे। उनमें एक अवतार वाले सारे गुण विद्यमान थे। आज अगर संसार श्री रामचन्द्र जी की कहानी को जानता है तो वह केवल महर्षि वाल्मीकि जी की मेहनत के फलस्वरूप। उन्होंने अपने जीवन के कई साल उनकी जीवन गाथा को ब्यान करने में लगा दिए।

श्री रामचन्द्र जी

'रोवै रामु निकाला भइया ।। सीता लछमणु विछुड़ि गइआ ।।'

(पन्ना ९५४)

अयोध्या के राजा दशरथ सुत मर्यादा पुरुषोतम श्री रामचन्द्र जी 24 अवतारों में से एक माने गए हैं। भारत के अधिकांश भागों पर हिन्दू सनातनी संक्षेप ईश्वर या भक्ति जाप है। यहां पर बहुत सारे श्री रामचन्द्र जी के मन्दिर हैं जहां पर भक्त जन 'सीता राम' 'राम ! राम !' 'सीता राम' सिमरन करते रहते हैं। इन मन्दिरों में इनकी मूर्तियों पर भक्त प्रभु श्री राम की श्रद्धा एवं पूर्ण विश्वास से पूजा करते हैं।

कथा का वर्णन करने से पूर्व आपको यह बता देना भी आवश्यक है कि 'राम' शब्द सर्वशक्तिवान परमात्मा का भी संकेत है। गुरबाणी में वाहिगुरु और परमात्मा के संकेत रूप में 'राम' शब्द हजार बार आया है। विशेषकर तीसरे पातशाह की बाणी में 'राम' शब्द अनेकों

और अनगिनत बार इस्तेमाल हुआ है।

राम नामु रसु राम रसाइणु हरि सेवहु संत जनहु ॥

(पन्ना ८००)

सचि नवेलड़ीए जोबनि बाली राम ॥
आओ न जाओ कही अपुने सह नाली राम ॥

(बिलावलु महला १ छंत, पन्ना ८४३)

तू जानत मै किछु नही भव खंडन राम ॥

(बिलावलु रविदास, पन्ना ८५८)

'रामकली' रागः-गुरुबाणी में एक राग का नाम 'रामकली' रखा गया है और इस राग के लगभग हर वाक में 'राम' शब्द है। 'राम' को वाहिगुरु का संकेत व्यक्त किया गया है।

राम नामु जपि संगि सहाई गुरमुखि पावहि सचु धना ॥
राजा राम की सरणाई ॥ *(रामकली महला ४, पन्ना ८९९)*

राम कबीरा एक भए है कोई न सकै पछानी

(रामकली, पन्ना ८६९)

इसलिए 'राम' नाम वाहिगुरु, सतिनाम सब वाहिगुरु या उस परम परमेश्वर के नाम रखे गए हैं। जो शक्ति जगत का मूल है, जीवनधारा है। इसी का ध्यान करके स्वयं को जानने का नाम भक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति को किसी तरह धर्मान्धता में आकर 'राम' शब्द से नास्तिकता की तरफ ध्यान नहीं देना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति को राम कथा का श्रवण करना चाहिए। जो अनेकों जीवन शिक्षा देने के साथ साथ भक्ति मार्ग की ओर ले जाने की प्रेरणा भी देती है।

रघुकुल (वंश) में अयोध्या के राजा दशरथ की तीन रानियां थीं, कौशल्या, कैकेई तथा सुमित्रा। राजा दशरथ के पास प्रत्येक सुख समृद्धि थी लेकिन कोई भी पुत्र नहीं था। राजा ने पुत्र प्राप्ति के लिए

यज्ञ किया। उस यज्ञ में से राजा दशरथ को चार पुत्रों का वर मिला। रानी कौशल्या के गर्भ में से श्री राम ने जन्म लिया । रानी कैकेई ने भरत तथा सुमित्रा ने लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न को जन्म दिया। राजा दशरथ ने चारों पुत्रों के जन्म समय अयोध्या में बेअंत खुशियां मनाई। राम तथा लक्ष्मण का आपस में हार्दिक प्रेम था। चारों राजकुमारों ने गुरु विशिष्ट से शिक्षा ग्रहण की। विश्वामित्र ने अनेकों प्रकार के अस्त्र-शस्त्र चलाने की विद्या प्रदान की। यज्ञ भूमि को श्री रामचन्द्र एवं लक्ष्मण ने दैत्यों का वध करते हुए पावन किया तथा विश्वामित्र जी के साथ घूमते हुए जनकपुरी पहुंच गए।

वहां राजा जनक की पुत्री सीता का स्वयंवर था। इस स्वयंवर में शर्त यह थी कि भगवान शिव के धनुष को अगर कोई चिला चढ़ा कर दिखाए तो वही सीता जी से शादी कर सकता है। बारी-बारी सभी राजाओं ने अपना बल लगाया पर भगवान शिव के धनुष पर चिला न चढ़ा सके।

अंत में श्री रामचन्द्र जी ने शिव जी के धनुष पर चिला चढ़ा दिया। चिला चढ़ाते हुए श्री रामचन्द्र जी ने धनुष को ही तोड़ दिया। इससे यह प्रगट हुआ कि श्री रामचन्द्र जी बड़े बलवान हुए है। जो अन्य राजा नहीं कर सके वह श्री रामचन्द्र जी ने क्षण में ही कर दिखाया।

धनुष को तोड़कर श्री रामचन्द्र जी ने सीता जी को विजय कर लिया। सीता जी बहुत ही सुन्दर रूपसी थी, उनका रूप देखते ही बनता था। श्री रामचन्द्र जी की विजय के बाद राजा दशरथ को अयोध्या में संदेश भेजा गया। राजा दशरथ ऋषियों, मंत्रियों, राजपुरोहितों और दरबारियों के साथ बारात लेकर जनक पुरी पहुंचे। राजा दशरथ के पहुंचते ही श्री रामचन्द्र जी और सीता जी का विवाह कर दिया गया। श्री रामचन्द्र जी के विवाह के समय ही उनके अन्य भाईयों का विवाह भी वहीं कर दिया गया। विवाह के पश्चात श्री रामचन्द्र

जी सीता जी सहित अयोध्या नगरी पहुंचे। अयोध्या के लोगों ने मंगलाचार किया और धूमधाम से खुशियां मनाईं।

जैसे होनी ने करना होता है वैसे ही हो जाता है, उसे कोई रोक नहीं सकता। राजा दशरथ श्री रामचन्द्र जी की वीरता तथा बुद्धिमानी पर बहुत प्रसन्न हुए। उसने मंत्रियों से सलाह-मशविरा करके अयोध्या का राज-तिलक श्री रामचन्द्र को देने का फैसला किया। सारी प्रजा में खबर भेजी गई। राजपुरोहित के परामर्श पर धार्मिक रीति-रिवाज और रस्में पूरी की गईं।

लेकिन जिस दिन श्री रामचन्द्र का राज्याभिषेक करना था, उससे एक दिन पहले रात को राजा दशरथ की छोटी रानी कैकेई जो अत्यंत रूपवंती थी वह बड़ी अप्रसन्न थी। उसकी सेविका मंथरा, भरत को राजसिंघासन देने के लिए कैकेई को उकसा चुकी थी। राजा दशरथ रानी कैकेई के महल में ही रहता था। कैकेई ने राजा के आगे विनती की कि-हे राजन ! देवराज इन्द्र से युद्ध करते समय घायल अवस्था में जब मैंने आपकी सेवा की थी तो उस सेवा के बदले में प्रसन्न होकर आपने मुझे दो वचन मांगने को कहा था। मगर उस समय मुझे कुछ नहीं चाहिए था इसलिए मैंने आपसे कहा था कि समय आने पर मैं आपसे अपने वचन मांग लूंगी। वह वचन मुझे आज चाहिए, मेरे वचन पूरे करें।

राजा दशरथ ने कहा-'हे कैकेई ! मांग लो, वचन तो पूरे करने ही पड़ेंगे। रघुकुल की रीत ही ऐसी चली आ रही है जो वचन दिया जाता है उसे पूरा किया जाता है। तुम जो मांगना चाहती हो, मांग लो हम अवश्य पूरा करेंगे।'

उस समय राजा दशरथ बहुत प्रसन्न थे। खुशी के जोश में उन्होंने यह विचार भी नहीं किया कि वचन अच्छे-बुरे भी मांगे जा सकते हैं।

तदुपरांत कैकेई ने अपने दो वचन मांगे और कहा कि मुझे पहला

वचन यह चाहिए कि रामचन्द्र को चौदह वर्ष का वनवास दिया जाए और दूसरा वचन, मेरे पुत्र भरत को अयोध्या राजतिलक। भरत ही इस राज का राजा बने, इसलिए भरत का ही राज्याभिषेक किया जाए। राज्याभिषेक के लिए भरत को अभी उसके ननिहाल से बुला लिया जाए।

यह सारी बातें कैकेई ने एक ही सांस में कह डालीं। उसने राजा और प्रजा का हित भी नहीं सोचा, केवल राम की सौतेली मां बन कर दिखा दिया।

कैकेई के मुंह से यह सारी बातें सुनकर राजा दशरथ आश्चर्यचकित हुए उसका मुंह देखते रह गए। वह बहुत चिंतित हो गए, उनके मुंह से कोई शब्द भी नहीं निकल रहा था। उनको कैकेई से ऐसी आशा नहीं थी कि कैकेई उनसे इस तरह के वचन मांगेगी, उनसे धोखा करेगी। वह गुमसुम से हो गए उनके मुंह से बस इतना ही निकला– कैकेई ! तुम मुझसे ऐसी दुश्मनी करोगी, मुझसे ऐसे वचन मांगोगी, मैंने सोचा भी नहीं था, तुम्हें मेरे हृदय पर कटारी नहीं चलानी चाहिए थी ।

इस गम के कारण राजा की शारीरिक और मानसिक दशा ही बिगड़ गई। वह मृत्यु शैया पर पड़ गया। उधर राज्याभिषेक की पूरी तैयारी करके जब श्री रामचन्द्र जी राजा दशरथ को मिलने आए तो वह बोल न सके। उनकी यह दशा देखकर श्री रामचन्द्र बहुत हैरान हुए। उनकी इस दशा का कारण पूछने पर कैकेई ने बताया कि 'पुत्र राम ! तुम्हारे पिता ने मुझे दो वचन मांगने को कहा था जो मैंने आज मांग लिए हैं। पहला वचन तुम्हें चौदह साल का बनवास और दूसरा वचन भरत को राजतिलक। राजा दशरथ आपको यह सब इसलिए नहीं बता सकते क्योंकि आप इनके प्रिय पुत्र हो। इन्होंने जो मुझे यह दो वचन दिए हैं उसके अनुसार पिता की आज्ञा का पालन करना आपका परम धर्म है।

'ठीक है माता जी ! यह कह कर श्री रामचन्द्र जी कैकेई के महल से बाहर आ गए। बाहर आकर अपनी कीमती पोशाक, आभूषण उतार कर वनवास के वस्त्र पहन कर वनों को जाने के लिए तैयार हो गए। उनकी पत्नी सीता जी और उनके छोटे भाई लक्ष्मण भी साथ जाने को तैयार हो गए। सारी प्रजा को रोता बिलखता छोड़ कर श्री रामचन्द्र जी अयोध्या से वनों के लिए चल पड़े। राजा दशरथ श्री रामचन्द्र के जाने के बाद गम से मर गए। जब भरत को इसकी खबर मिली तो वह भी भाई के बिछुड़ने के कारण दुखी हो गया। भरत ने राजतिलक लेने से इन्कार कर दिया। वह श्री रामचन्द्र के पीछे-पीछे वनों में चल पड़ा। जब श्री रामचन्द्र जी से मिलाप हुआ तो उनसे वापिस चलने की प्रार्थना की, मगर श्री रामचन्द्र जी ने इन्कार कर दिया। अन्त में भरत श्री रामचन्द्र जी की खड़ाऊं लेकर वापिस अयोध्या आ गया तथा उनको राज सिंघासन पर रखकर स्वयं सेवक बन कर राज चलाता रहा।

श्री रामचन्द्र जी गंगा पार करके दक्षिण की ओर वनों में आ गए। जो जंगल इस समय वर्तमान उड़ीसा में है और 'पंचवटी' स्थान पर रहने लगे। यहां पर लंका के राजा रावण की बहन शूर्पनखा आई। वह श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण पर मोहित होकर उन को रिझाने लगी। उसकी यह पाप वृति देखकर लक्ष्मण ने उसका नाक काट दिया। अपने इस अपमान का बदला लेने के लिए शूर्पनखा ने अपने भाई रावण को उकसाया। रावण एक साधू का वेश धारण करके पंचवटी आया और धोखे से सीता जी को उठा कर ले गया।

श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण सीता जी को ढूंढते हुए दूर दक्षिण के अन्त तक चले गए। वे दोनों बड़े व्याकुल थे। इस दौरान उनका मिलाप हनुमान जी से हुआ। हनुमान जी की सहायता से सीता जी का पूरा पता चल गया कि वह रावण के पास अशोक वाटिका में

है। श्री रामचन्द्र जी ने वानर सेना सहित रावण की लंका पर हमला किया और उस हमले में रावण अपने पुत्रों सहित मारा गया। सोने की लंका जल गई और लंका का राज रावण के भाई विभीषण को सौंप सीता जी को साथ लेकर श्री रामचन्द्र जी अयोध्या पहुंचे। उनके वापिस आने की खुशी में लोगों ने दीपमाला की और श्री रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक किया गया।

श्री रामचन्द्र जी को प्रभु अवतार माना जाता है। इसलिए नेक पुरुषों ! श्री रामचन्द्र जी की कथा सुनने वाले के मन में धर्म के प्रति लगन पैदा होती है और माता-पिता की आज्ञा मानने का उपदेश मिलता है।

साखी सीता जी की

सीता जी राजा जनक की पुत्री थी। इनके जन्म की कथा भी बड़ी अनोखी है। कथा अनुसार-धर्मी राजा जनक के राज्य में भयानक अकाल पड़ गया। बारह साल तक बरसात न हुई। उसके राज के जंगल, खेत, तालाब सब सूख गए। पशु और पक्षी भूख-प्यास से व्याकुल होने लगे। अनेकों लोग मरने लगे। राजा काफी घबरा गया क्योंकि राजा का धर्म प्रजा की रक्षा करना होता है, जो अपनी प्रजा की रक्षा न करे, वह राजा नहीं होता। लोगों के मरने का पाप राजा जनक के सिर लगने लगा। राजा बहुत ही चिंतित हो गया।

राजा जनक ने एक सभा बुलाई। उस राज्य सभा में अपने राज के सारे बुद्धिमानों और ज्योतिषियों को बुलाया गया। सभा में यह विषय उठाया गया कि राज्य में इतना अकाल पड़ने का क्या कारण है ? किस पाप का फल है ? सभी बुद्धिमानों ने अपनी अपनी बुद्धि अनुसार उत्तर दिए। पर राजा को संतुष्टि न हुई। एक वृद्ध ऋषि ने कहा-'हे राजन ! बात यह है कि आपके राज्य में रावण के दूत एक

घड़ा दबा गए हैं। जितनी देर तक वह निकाला न जाएगा, उतनी देर तक आपके राज्य में नुक्सान ही नुक्सान होगा। किसी नेक कर्म के कारण आप बच गए है, नहीं तो कुल ही नष्ट हो जाती।'

'वह घड़ा कैसा है ? उसमें क्या है ?' राजा ने पूछा। वह सब कुछ जानने को उत्सुक था।

ऋषि ने कहा–'हे राजन ! एक समय अहंकारी और पापी राजा रावण ने अपने राज्य के ऋषि और तपस्वी लोगों से 'कर' मांगा था, पर ऋषियों के पास 'कर' की माया कहां ? जब रावण के दूत ऋषि आश्रम में 'कर' लेने गए तो सभी ऋषियों ने सलाह करके एक घड़े में अपने शरीर का रक्त डाला और उस घड़े का मुंह बंद कर दिया। उन्होंने साथ ही दूतों को कह दिया कि रावण इस घड़े का मुंह न खोले। यदि खोलेगा तो उसका सर्वनाश हो जाएगा। इसमें रावण का काल है। जो राजा गरीबों को तंग करता है वह सुखी नहीं हो सकता। दूत राजा रावण के पास घड़ा ले गए। रावण घड़ा खोल कर देखने लगा तो दूत ने रोक दिया कि अगर इसे खोलागे तो सर्वनाश हो जाएगा। यह सुन कर रावण क्रोध में आ गया, उसने आदेश दिया कि इस घड़े को दूर किसी राज्य की धरती में दबा आओ। दूत उस घड़े को आपके राज्य में दबा गए। वह घड़ा निकाला जाए और उसका मुंह खोला जाए तो पापी रावण का नाश हो जाएगा क्योंकि वह अभी भी प्रजा को बहुत तंग कर रहा है। उसे प्राप्त की हुई ब्रह्म विद्या का डर है।'

'वह घड़ा कैसे निकाला जा सकता है ?' राजा जनक ने पुनः प्रश्न किया। उसका हृदय प्रसन्न हो गया। उसको आशा की किरण दिखाई दी कि वह प्रजा के दुःख अवश्य ही दूर करेगा।

'आप सोने का हल लेकर उस खेत में जाएं जहां पर घड़ा है। उस घड़े का मुंह खोल दें।' ऋषि ने सारी बात स्पष्ट कर दी।

राजा ने उसी समय सोने का हल तैयार करने का हुक्म दिया।

सोने का हल तैयार किया गया। राजा जनक ने खेत में हल जोता। हल जोतने से बहुत तेज आंधी आई और फिर बादल भी घिर आए, अचानक उसके हल से घड़ा अटका। घड़े को निकाला गया। जब उस घड़े का मुंह खुला तो उसमें एक छोटी-सी सुन्दर कन्या थी। उस सुन्दर कन्या को राजा जनक ने उठा लिया। खेत में से निकलने के कारण उस कन्या का नाम सीता रखा गया।

घड़े का मुंह खुलने पर मूसलाधार वर्षा हो गई। प्रजा आनंद से झूम उठी। धीरे-धीरे समय व्यतीत होता गया और सीता राज महल में पल कर बड़ी हो गई। उसने एक दिन शिव धनुष को उठा लिया। यह देखकर राजा जनक ने निश्चय किया कि जो कोई राजकुमार शिव धनुष पर चिला चढ़ाएगा, उससे ही सीता का विवाह होगा। श्री रामचन्द्र जी ने राजा दशरथ की यह शर्त पूरी करके सीता जी से विवाह किया और अयोध्या ले आए।

जब श्री रामचन्द्र जी को वनवास हुआ तो सीता जी अपने पति परमेश्वर के दुःख-सुख में सहायक होने के कारण उनके साथ ही एक जोगन का रूप धारण करके वनों में चली गई, राजमहल के सुखों को त्याग दिया।

लंकापति रावण जब धोखे से आपका हरण करके ले गया तो श्री रामचन्द्र जी से बिछुड़ने के कारण वियोग में आप बहुत दुखी हुईं। रावण ने आपको अशोक वाटिका में रखा। रावण द्वारा दिए गए कष्ट सीता जी ने अपने शरीर और मन पर सहन किए। पर स्त्री धर्म का त्याग न किया। किसी प्रकार के लोभ में नहीं आई बल्कि रावण का काल बनी। सीता जी के कारण ही रावण की मृत्यु हुई। उसका सारा कुल ही समाप्त हो गया।

रावण को मारने के बाद जब सीता जी ने श्री रामचन्द्र जी के चरणों में माथा झुकाया तो श्री रामचन्द्र जी ने सीता जी के धर्म की परीक्षा

की। उनको अग्नि में बिठाया। अग्नि देवता ने सीता जी के शरीर को न जलाया। धर्म की जय हुई।

श्री रामचन्द्र जी सीता जी को लेकर वापिस अयोध्या आ गए। कुछ समय सुख से व्यतीत हुआ। सीता जी गर्भवती हुई। मां बनने की आशा पूरी होने लगी तो एक दिन ऐसा आया कि श्री रामचन्द्र जी ने सीता जी को वनवास का हुक्म दे दिया। सीता जी को वनवास देने का कारण केवल अपनी प्रजा में उठी आवाज़ थी। मर्यादा पुरुषोतम श्री रामचन्द्र जी ने सीता जी को त्याग कर अत्यंत दुःख उठाया।

लक्ष्मण सीता जी को यमुना पार उत्तराखंड के जंगलों में छोड़ गया। सीता जी घने जंगलों में विचरण करती हुई महर्षि वाल्मीकि जी के आश्रम में पहुंची। (जिस स्थान को आजकल राम तीर्थ कहा जाता है और ज़िला अमृतसर में है।) महर्षि वाल्मीकि जी के आश्रम में रह कर ही सीता जी ने दो सुन्दर राजकुमारों को जन्म दिया। एक का नाम लव और दूसरे का नाम कुश रखा।

दोनों राजकुमार जवान हुए। महर्षि वाल्मीकि जी ने उन दोनों को शस्त्र और शास्त्र विद्या सिखाई। छोटे राजकुमार बड़े शूरवीर बने। श्री रामचन्द्र जी ने चक्रवर्ती राजा होने की घोषणा की और अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा छोड़ा। लव कुश ने घोड़ा पकड़ लिया और युद्ध किया। युद्ध में श्री रामचन्द्र जी अपने पुत्रों के हाथों घायल हो गए। उसी समय सीता जी और श्री राम चन्द्र जी का मिलाप हुआ। मगर सीता जी धरती मां की गोद में समा गईं। उन्होंने अपने धर्म का पालन किया। धर्म पालन करने के कारण आज मंदिरों में सीता जी का नाम श्री राम से पहले लिया जाता है।

शिव जी भगवान

हिन्दू ग्रंथ अठारह पुराण, छः शास्त्र ब्रह्माण, रुपायण तथा महाभारत

आदि बेअंत देवते मानते हैं। कहते हैं कि पहले देवी देवते आजकल के स्त्री-पुरुषों की तरह ही घूमते-फिरते और वर-श्राप दिया करते थे। एक बार एक किसान ने अपने स्वार्थ के लिए अपने देवता को मारा। उस किसान ने उसकी टांगें तोड़ दीं और उस दिन से देवता पत्थर की मूर्ति से प्रगट होने लगे। उन्होंने मनुष्य जीवन धारण करना छोड़ दिया। इसी तरह देवता शिव जी एक महान देवता हैं।

शिव जी भगवान को शंकर भी कहते हैं। शिव शंकर, नीलकण्ठ, नागरती आदि इनके ग्यारह से ऊपर नाम हैं।

कलयुग में काले पत्थर की पूजा होती है, जिसे शिवलिंग कहा जाता है। जो तस्वीर शिव जी की पुरुष रूप में मिलती है वह भी अद्भुत है। ऊंचा छः फुट कद, सिर पर जटाएं, जटाओं में गंगा की धारा का प्रगट होना और माथे पर आधे चांद का निशान। तीसरी आंख, रुद्राक्ष और सांपों की गले में माला। शेर की खाल, नंगे शरीर पर विभूति मली हुई और एक हाथ में शंख, दूसरे में त्रिशूल, कहीं नंदी बैल के ऊपर सवारी और साथ सुंदर नारी जिसे पार्वती, कमला, लक्ष्मी आदि नाम दिए जाते हैं। वास्तव में वह शांति की देवी हैं। जब जगत में प्रलय आता है तो शिव नृत्य करते हैं, उस नृत्य को तांडव कहा जाता है। जब महा विनाश होने लगता है तो पार्वती अपना शांति का नाच करके शिव के क्रोध को शांत करती हैं। शिव को नृत्य तथा राग का देवता भी माना जाता है। शिव नृत्य, नृत्य का नाम है।

शिव भगवान को अमर देवता माना जाता है। भारत में कई हजार सालों से शिव पूजा प्रधान है। इनके दो पुत्र कार्तिक और गणेश हुए हैं। गणेश जी का धड़ मनुष्य का और मुंह हाथी का है, वह बहुत ज्ञानवान, प्रतापी विद्या गुरु हैं।

शिव जी का कंठ नीला है इसलिए उन्हें नीलकण्ठ भी कहते हैं। इसकी एक कथा भी है-जब देवताओं और दैत्यों ने समुन्द्र मंथन

किया था तो नौ रत्नों के साथ विष भी निकला था। वह सारा विष शिव जी ने पी लिया था, ताकि किसी जगत जीव का नाश न हो। विष को इन्होंने अपने गले में रख लिया। उस विष के प्रभाव के कारण शिव जी का कंठ नीला हो गया।

'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में 'शिव शंकर' शब्द बहुत बार आता है। जिसका भाव है महान महा माया, प्रतापी शक्ति।

सनकादिक

सनकादिक एक समाजिक शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ है सनक तथा और। अलंकार और दृष्टांतिक ढंग से लिखा हुआ यह शब्द गुरुबाणी में बहुत बार मिलता है। भाव यह कि ब्रह्मा जी के चार पुत्र थे–सनक, सनंदन, सनातन और सनत कुमार। जब इन सब को इकट्ठा करके बताना हो तो या फिर यह कहना हो कि ब्रह्मा जी के चारों पुत्र तो 'सनकादिक' ही कह दिया जाता है। यह सभी इकट्ठे रहते थे। सबसे ज्यादा अद्‌भुत बात यह है कि चारों भाई बाल अवस्था में ही रहे भाव– पांच साल से अधिक न बढ़े। इन पर माया ने असर न किया। क्योंकि माया उन पर असर करती है जो बाल अवस्था को छोड़ कर किशोर अवस्था में जाते हैं। यह चारों भाई माया से रहित रहे।

ये सदा विचरण करते रहते जैसे हवा विचरण करती है। अच्छे, बुरे, ऊंचे, नीचे स्थान पर जाते। भक्तों का रक्षक स्वयं प्रभु है। ये चारों ही संसार का चक्कर काटते रहे।

पुराणों में लिखा है कि सनकादिक (चारों) भाई एक बार परमात्मा के दर्शन करने के लिए चल पड़े। मन की मौज ऐसी आई कि जब ये परमात्मा के मुख्य द्वार के सातवें पड़ाव पर पहुंचे तो इनको द्वारपालों ने रोक लिया। द्वारपालों को आदेश था कि कोई भीतर न आए। मानव

देह वाले तो बिल्कुल भी आगे नहीं जा सकते थे।

परमात्मा के द्वार के आगे खड़े द्वारपाल जय और विजय दोनों सगे भाई थे। वे बड़े ही वफादार सेवक थे।

'आप आगे नहीं जा सकते। पहले अनुमति लेनी पड़ेगी।' विजय ने सनक को कहा, क्योंकि सनक आगे था।

'कोई आवश्यकता नहीं अनुमति की।' सनक ने उत्तर दिया, पर वह दोनों भाई आगे से न हटे।

सनक को क्रोध आ गया। उसने हाथ मार कर कहा 'पीछे हटो राक्षसों। जाओ तुम तो बुरे राक्षस हो।'

सनक का श्राप खाली न गया। उसी समय वह दोनों भाई राक्षस बन गए और स्वर्ग में से निकाल दिए गए। वह पृथ्वी पर आ गिरे। ब्रह्मा जी के पुत्रों का श्राप अटल रहा। जय विजय ने तीन जन्म दैत्य रूप में धारण किए। दोनों ही तीनों जन्म में भाई ही बनते रहे। हिरण्यकशिप तथा हिरनाक्श, शिशुपाल तथा दंत वक्र, कुम्भकर्ण तथा रावण। इन्होंने राक्षस योनि में जन्म लेकर भगवान के भक्तों को अत्यंत तंग किया। सदैव अहंकार में रहे। जब भी अहंकार और पाप बढ़ जाता है तब परमात्मा अवतार धारण करके भक्तों के कल्याण हेतु आते हैं।

चारों भाईयों ने भगवान के दर्शन किए। सारी उम्र उनके तन और मन पर माया ने कोई प्रभाव न डाला। बोलो सनकादिक की जै, भक्तों के रक्षक परमात्मा की जै।

शेषनाग

ईश्वर की माया अनंत है। माया का पसार यह जगत जीव हैं। चौरासी लाख योनियों वनस्पति और धातु सबका भेद जानना कठिन और असंभव है। चौरासी लाख योनियों में एक नाग योनि है। हिन्दू मिथ्याहासिक कथा अनुसार नाग भी एक देवता है और वह भी

महाबली देवता है। भारत के बहुत सारे जंगली और सभ्य भागों में नाग की पूजा होती है। गुरुबाणी में आता है~

एक जीह गुण कवन बखानै ॥ सहस फनी सेख अंत न जानै ॥

(पन्ना १०८३)

इस महावाक का अर्थ करें तो भाव यह है कि उस परमात्मा के गुण एक जीभ वाला पुरुष क्या कर सकता है जबकि सौ फन वाला शेषनाग भी अंत नहीं ले सकता, जबकि वह नए से नया नाम सौ जीभ से लेता है। शेषनाग का उच्चारण किया 'सहंसर नामा' है।

शेषनाग की कथा यह है कि इस जगत में पानी ही पानी था। (जैसे आज का विज्ञान कहता है, तीन गुणा पानी और एक गुणा धरती है। धरती के नीचे भी पानी तथा धरती के ऊपर भी पानी है) परमात्मा ने अपनी माया शक्ति के साथ धरती बनाई क्योंकि धरती पर जीवों की रचना करनी थी। पानी में धरती को कैसे रखा जाए ? परमात्मा ने शेषनाग को कहा कि धरती को उठा कर पानी में खड़े हो जाओ। यह सुन कर शेषनाग घबरा गया, उसने प्रार्थना की-'हे प्रभु ! मैं तो एक तुच्छ जीव हूं, इतना भार कैसे उठाऊंगा ' तब परमात्मा ने उत्तर दिया "सब कुछ हो जाएगा। धरती का भार तो पानी के सहारे होना है। तुम्हारे सिर को भार कम लगेगा, सिर्फ सहारा मात्र ही है।'

'एक प्रार्थना और है प्रभु !' शेषनाग ने कहा।

'वह क्या ? दिल खोल कर पूछ लो।' परमात्मा ने आगे से उत्तर दिया।

'वह बात यह है कि यदि मैं आपकी शक्तियों का यश आपका नाम लेकर चारों पहर करूं तो यह भार उतर कर किसी दूसरे के सिर जा सकेगा ?' शेषनाग की प्रार्थना थी।

'ठीक है।' यह कह कर परमात्मा ने धरती शेषनाग के सौ फन पर रख दी। हे जिज्ञासु जनो ! तब से शेषनाग धरती का भार उठा

कर परमात्मा का नाम ले रहा है। उसका अन्त कोई नहीं पा सकता। नए से नया नाम लेते हुए अन्त में 'बेअंत' पर आ खड़ा। साहिब सतिगुरु गोबिंद सिंघ जी ने भी अपनी बाणी 'जापु साहिब' में परमात्मा के बेअंत नाम उच्चारण किए हैं। उसकी महिमा वर्णन नहीं की जा सकती। वह बेअंत ही है।

शुकदेव मुनि जी

बारह वरे गरभासि वसि, जंमदे ही सुक लई उदासी।
माइआ विच अतीत होइ मन हठ बुधि न बंद खलासी।

शुक का शाब्दिक अर्थ है-तोता। शुकदेव जी महर्षि ब्यास जी के पुत्र थे। इनके जन्म की अद्भुत कथा इस प्रकार है-

पार्वती तथा भगवान शिव का आपस में अटूट प्रेम था। एक दिन कैलाश पर्वत पर अकेले बैठे थे। पार्वती ने अपने दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की हे प्रभु ! आप जी की यह कैसी माया है, स्त्री बहुत जल्दी वृद्ध हो जाती है। जब वह वृद्ध हो जाती है तो वह जीवन का सुख आनंद प्राप्त नहीं कर सकती। आपका और मेरा अटूट प्रेम है। मुझे डर है कि आप तो त्रिकाल एक ही समान रहने वाले हो, पर मुझ पर जरूर बुढ़ापा आ जाएगा। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि मुझे अमर कथा सुना कर अमर कर दें। जिससे मुझ पर बुढ़ापा कोई प्रभाव न डाले, मैं सदा जवान रहूं तथा आपके अंग-संग रहूं। यह आपकी दासी की प्रार्थना है।

शिव जी अपनी मस्ती में प्रसन्नचित्त बैठे थे। उन्होंने उत्तर दिया- ऐसा ही होगा और अमर कथा सुनाने लग पड़े। शिव जी अमर कथा सुनाते गए। उस समय और कोई नहीं था, केवल तोता ही प्राकृतिक तौर पर बैठा था। वह कथा सुनता रहा। शिव जी चाहते थे कि यह कथा अन्य कोई न सुने ताकि प्रभु की माया अथवा रचना में कोई

फ़र्क न पड़े, मरना-जीना कायम रहे। इसलिए शिव जी ने पार्वती से कहा कि वह कथा सुनते समय बीच-बीच में 'हां' अथवा 'हुंगारा' देती रहे।

थोड़ी कथा सुन कर पार्वती सो गई। पार्वती के सोने का शिव जी को पता नहीं चला। पार्वती के स्थान पर कथा सुनते समय तोता हुंगारा भरता रहा। जब कथा समाप्त हुई तो शिव जी हैरान थे कि पार्वती तो सोई थी फिर हुंगारा कौन देता रहा। उन्होंने देखा तो पता लगा कथा तो तोते ने सुन ली थी। शिव जी तोते को मारने के लिए उठ खड़े हुए। तोता भाग कर गंगा किनारे पहुंच गया। आगे आगे तोता और पीछे-पीछे शिव जी महाराज थे। तोता न मरा और उड़ता-उड़ता ब्यास जी के आश्रम में आ गया।

ऋषि ब्यास की अर्द्धांगिनी ऋतु स्नान करके पवित्र गोद थी। अमर कथा सुनकर तोता अमर तथा त्रिकालदर्शी हो चुका था। उसने शिव जी के क्रोध से बचने के लिए पवन का रूप धारण किया और ब्यास की पत्नी के गर्भ में प्रवेश कर लिया।

यह देखकर शिव जी आश्रम के आगे जम कर बैठ गए। उन्होंने विचार किया कि जब तोता बच्चे के रूप में बाहर आएगा तो वह उसको मार देंगे। पर तोता माता के गर्भ में बारह साल अंदर ही भक्ति करता रहा। बारह साल बीत गए।

ऋषि ब्यास की पत्नी बहुत ही परेशान हुई। ब्यास की पत्नी ने संत और परमात्मा को बार-बार निवेदन किया कि उसको सुखी कर दिया जाए। परमात्मा को उस पर दया आ गई। शुकदेव भक्ति करता था। भक्ति करता हुआ देख कर परमात्मा ने उसको कहा कि हे शुकदेव ! अब तुम बाहर आ जाओ। शिव जी अब तुम्हें मार नहीं सकेंगे।

शुकदेव ने कहा-'हे प्रभु ! यदि मैं बाहर आ गया तो माया का

साया मेरे ऊपर पड़ेगा। उस साए ने मुझे भजन नहीं करने देना तथ भगवान शिव जी ने भी अपना हठ नहीं छोड़ना।'

उस समय परमात्मा ने कहा कि यह नहीं हो सकता कि आप हमेश गर्भ में रहो। आपकी माता बहुत दुःखी है। आप पर माया समाधि लगाने तक असर नहीं करेगी। शिव जी भी चले जाएंगे। शीघ्र बाह आ जाओ।

इस तरह परमात्मा के हुक्म से शुकदेव ने जन्म लिया तथा जन्म लेते ही वनों को चले गए। जंगल में जाकर उन्होंने समाधि लगा ली वह कई वर्षों तक तपस्या करते रहे लेकिन किसी को गुरु धारण नहं किया, गुरु धारण किए बिना मोक्ष प्राप्त नहीं होता और न ही मन वश में रहता है।

तप करते हुए शुकदेव को कई वर्ष बीत गए। सिर पर लम्बी-लम्बी जटाएं हो गईं तथा शरीर भी काफी बढ़ गया। उन्होंने अन्न-जल की तरफ मुंह न लगाया और बिना आहार के ही रहे। उनकी लम्बी-लम्बी जटाओं पर पक्षियों ने घौंसला बना लिया। एक पक्षियों का ऐसा जोड़ा आया जो अनुभवी प्रकाश वाला था। एक पक्षी ने दूसरे को कहा-"हमें यहां अपना घौंसला नहीं बनाना चाहिए।"

दूसरा 'क्यों ? क्या बात है ?'

पहला-यह ऋषि तपस्या अवश्य करता है लेकिन यह है निगुरा ! निगुरे पुरुष के पास रहना पाप होता है-हो सकता है इसी प्रभाव से हम नरक को चले जाएं, बहुत बड़ी भूल की है।

दूसरा-'चलो फिर यहां से उड़ चलें। यहां रहना उचित नहीं।'

इस तरह विचार-विमर्श करके वह पक्षी वहां से उड़ गए। वापिस मुड़कर फिर नहीं आए। त्रिकालदर्शी शुकदेव को अंतर-दृष्टि द्वारा पता चल गया। उन्होंने समाधि भंग करके आंखें खोलीं और जंगल से उठकर अपने पिता ब्यास जी के आश्रम में आ गए।

'हे पिता जी ! पक्षियों के एक जोड़े ने वन में कथन किया है कि मैं निगुरा हूं, इसलिए आप मुझे कोई गुरु बताएं, जिसे मैं धारण करूं।'

शुकदेव ने पिता के आगे प्रार्थना की।

पुत्र की बात सुनकर ब्यास जी सोच में डूब गए। अंत में उन्होंने अपनी राय इस प्रकार प्रगट की और कहा-'हे पुत्र ! राजा जनक के अलावा तुम्हारा कोई गुरु नहीं हो सकता। उसके राज्य में जाकर उसे गुरु धारण कर लो।

पिता का हुक्म सुनकर शुकदेव राजा जनक के दरबार में पहुंच गया। जब राजमहल में उपस्थित हुआ तो कौतुक देखकर बड़ा चकित हो गया। उसने देखा कि राजा जनक राजमहल में एक विचित्र दशा पर खड़ा था। उसका एक पैर कड़ाहे में था और दूसरा एक सुन्दर रूपसी के नग्न बदन में खडा था। यह कौतुक देखकर शुकदेव असमंजस में पड़ गया। वह हैरान होकर वहीं खड़ा मन में सोचता रहा-'यह राजा मेरा कैसे गुरु बन सकता है।' उसी पल एक और कौतुक हुआ। राजदूत ने दरबार में आकर संदेश दिया कि नगर में आग लग गई है। उसने बताया कि इतनी भयानक आग से नगर को बड़ा नुक्सान हो रहा है। धीरे-धीरे खबर आई कि सारा नगर जल कर राख हो गया है। उस अग्नि की ज्वाला अब बढ़कर मुख्य द्वार तक पहुंच रही है।

शुकदेव मुख्य द्वार पर तूंबी और कपीन लटका आया था। उसे ख्याल आया कि कहीं उसकी तूंबी और कपीन जलकर राख न हो जाएं। वह दौड़ कर बाहर जाने लगा तो राजा जनक ने उसे आवाज़ देकर रोक लिया। राजा जनक बड़ा क्रोधित होकर बोला।

'......वाह, ऋषि पुत्र ! बारह साल तुम ने माता के गर्भ में भक्ति की। चौबीस साल समाधि लगाई। 36 वर्ष बीतने के बाद भी मोह-

माया त्याग नहीं सके ? क्या करता रहा ? सारा नगर जल गया, उसकी कोई चिंता नहीं, एक तूंबी कपीन की चिंता ? क्या यह वस्तुएं मिल नहीं सकती हैं। जाओ ! चले जाओ यहां से। तुम्हारे जैसे मोह - माया के दास को मैं अपना शिष्य नहीं बना सकता।

यह कह कर राजा जनक ने उसे अपने महल में से बाहर निकाल दिया। महल से अपमानित होकर शुकदेव क्रोध एवं अहंकार का शिकार हो गया। संसार की माया ने उसे काबू कर लिया। वह बुरा - भला कहता हुआ अपने पिता के पास आ गया। उसने अपनी सारी आपबीती सुनाई तो ऋषि ब्यास ने कहा-'हे शुकदेव ! यह सब झूठ है। उसने तेरी परीक्षा लेने के लिए यह कौतुक रचा। न नगर को आग लगी न ही कोई जला। सिर्फ तुम्हारी परीक्षा लेनी थी और परीक्षा में तुम असफल रहे।'

शुकदेव ने हाथ जोड़ कर कहा-'फिर पिता जी मैं क्या करूं ? अब तो मैं भी लज्जित हूं।'

ब्यास- पुत्र ! यही तो माया का असर है।......एक पिता क्रोधित होकर बच्चे को घर से बाहर निकालता है, वह क्रोध थोड़ी देर के लिए ही होता है। फिर जब उसका क्रोध शांत होता है तो वह बच्चे को घर बुला लेता है और बच्चा घर वापिस आ जाता है। एक पिता बच्चे को हमेशा के लिए नहीं त्याग सकता। इसी तरह गुरु शिष्य का सम्बन्ध है, उसके पास फिर जाओ।

'जाऊं कैसे ? मुझे कोई मार्ग दिखाओ।'

पुत्र की यह बात सुन कर ब्यास ने कहा-ऐसा करो कि तुम राजा जनक के महल के पास जाओ ! महल के पश्चिम की ओर खड़े हो जाना। वहां एक झरोखा है उस झरोखे में से राजा जनक साधुओं के भोजन के जूठे पतल फैंकेगा। उस समय तुम्हें झरोखे के नीचे खड़े देख लेगा। डरना नहीं, शर्म और घृणा न करना, बस झरोखे

के नीचे खड़े रहना। चाहे तुम पर जूठन ही क्यों न गिर जाएं। ऐसा करने से तुम्हें गुरु दर्शन होंगे।

पिता से शिक्षा लेकर शुकदेव आश्रम से चल पड़ा। वह बड़ी तेजी से चलता हुआ राजा जनक के महल में पहुंच गया। पिता द्वारा बताए हुए झरोखे के नीचे खड़ा हो गया। उसने स्वयं का त्याग कर लिया। उसने ऐसे अनुभव किया जैसे उस में सोच ज्ञान या चेतनता नहीं थी। वह एक पत्थर की मूर्ति था, जिस पर राजा जनक जूठे पतल फैंकता गया।

सतिगुरु रामदास जी ने अपनी बाणी में फरमाया है-

जात नजाति देखि मत भरमहु सुक जनक पगीं लगि धियावैगो ॥
जूठन जूठि पई सिर ऊपरि खिनु मनूआ तिलु न डुलावैगो ॥

((पन्ना ३०९)

सतिगुरु जी फरमाते हैं-हे गुरसिक्खों ! ऊंच-नीच, जाति या कुल का ख्याल छोड़ो, यह तो एक भ्रम है। वास्तव में शरीर और आत्मा के कारण ऊंचे और नीचे सभी एक समान हैं। भक्ति की दुनिया तो वैसे ही अद्‌भुत है।

शुकदेव खड़ा रहा। राजा उस पर जूठन फैंकता रहा। 12 साल बीत गए। एक दिन राजा जनक को दया आ ही गई। राजा ने शुकदेव को अपने पास बुलाया। उसको स्नान कराया।

यहीं पर बात समाप्त न हुई। राजा जनक ने और परीक्षा लेनी चाही। वह परीक्षा यह है कि शुकदेव पर नारी की सुन्दरता प्रभाव डालती है या नहीं ? राजा ने तेल की थाली भरी और उसे शुकदेव के हाथ पर रख दिया। थाली रख कर राजा जनक ने कहा-"हे ऋषि पुत्र ! यह थाली न उल्टे न गिरे। सारे नगर की परिक्रमा करके आओ। देखना मार्ग में कहीं ठोकर न लग जाए।"

अब थाली ऐसी थी कि अगर ध्यान न रखा जाए तो वह उल्ट

कर गिर सकती थी। थाली का ध्यान रखना और चलते जाना, दोनों ही कठिन कार्य थे मगर शुकदेव हाथ में थाली उठा कर चल पड़ा। मार्ग में राग रंग हो रहे थे। स्त्रियां सुन्दर वस्त्र पहन कर और हार शृंगार करके मंगलाचार कर रहीं थीं। कहीं गीत गाए जा रहे थे तो कहीं नृत्य हो रहा था। ऋषि पुत्र को देखने के लिए अनेक स्त्रियां आ गईं। वह ऋषि पुत्र को देखती रहीं पर शुकदेव ने किसी भी स्त्री की तरफ न देखा। वह तेल की थाली में अपना चेहरा देखता हुआ चलते-चलते अपनी मंजिल पर पहुंच गया। तेल तनिक भर भी न गिरा। राजा जनक बहुत प्रसन्न हुआ। उसने शुकदेव को अपना शिष्य बना लिया।

शुकदेव ऐसा भक्त हुआ कि जिस पर माया ने बिल्कुल भी असर न किया। वह जन्म से ही सिद्ध था। मनुष्य को माया ही बांधती है। यदि माया असर न करे तो जीव कहीं टिक कर नहीं बैठता। वह चलता-फिरता रहता है। ऐसी ही दशा मुनि शुकदेव की थी। वह लगातार ही चलता रहता। ऐसा ब्रह्मज्ञानी हो गया था कि मिट्टी और सोना, पुरुष और नारी में कोई भेद नहीं था रहा। संत-मंडलियों के साथ घूमता रहता। उसने काम, क्रोध, अहंकार, लालच और मोह आदि को मार दिया था।

कहते हैं कि एक बार प्रभु ने उसकी परीक्षा लेनी चाही। संत मण्डली के साथ घूमता हुआ गंगा के किनारे आ गया। आगे स्त्रियां स्नान कर रहीं थीं। शुकदेव ने ध्यान न दिया, वह भी एक तरफ हो कर स्नान करने लग गया। स्नान करके चलने लगा तो एक अति सुन्दर और युवा स्त्री नृत्य करती हुई आई। शुकदेव के आगे होकर नाचने लग पड़ी। ऐसे हाव भाव दिखाए जो मन को मोहित करने वाले थे पर शुकदेव के मन और नेत्रों पर कोई असर न हुआ। वह अडिग रहे और आगे चले गए, कोई ध्यान न दिया। स्त्री बड़ी लज्जित

हुई। उस दिन के बाद शुकदेव की कोई परीक्षा न हुई।

राजा जनक

जनक जी एक धर्मी राजा थे। उनका राज मिथिलापुरी में था। वह एक सद्पुरुष थे। न्यायप्रिय और जीवों पर दया करते थे। उनके पास एक शिव धनुष था। वह उस धनुष की पूजा किया करते थे। आए हुए साधू-संतों को भोजन खिलाकर स्वयं भोजन करते थे।

लेकिन एक दिन एक महात्मा ने राजा जनक को उलझन में डाल दिया। उस महात्मा ने राजा जनक से पूछा- हे राजन ! आप ने अपना गुरु किसे धारण किया है ?

यह सुन कर राजा सोच में पड़ गया। उसने सोच-विचार करके उत्तर दिया-हे महांपुरुष ! मुझे याद है कि अभी तक मैंने किसी को गुरु धारण नहीं किया। मैं तो शिव धनुष की पूजा करता हूं।

यह सुनकर उस महात्मा ने राजा जनक से कहा राजन ! आप गुरु धारण करो। क्योंकि इसके बिना जीवन में कल्याण नहीं हो सकता और न ही इसके बिना भक्ति सफल हो सकती है। आप धर्मी एवं दयावान हैं।

'सत्य वचन महाराज।' राजा जनक ने उत्तर दिया और अपना गुरु धारण करने के लिए मन्त्रियों से सलाह-मशविरा किया। तब यह फैसला हुआ कि एक विशाल सभा बुलाई जाए। उस सभा में सारे ऋषि, मुनि, पंडित, वेदाचार्य बुलाए जाएं। उन सब में से ही गुरु को ढूंढा जाए।

सभा बुलाई गई। सभी देशों से सूझवान पंडित, विद्वान और वेदाचार्य आए। राजा जनक का गुरु होना एक महान उच्च पदवी थी, इसलिए सभी सोच रहे थे कि यह पदवी किसे प्राप्त हो, किसको राजा जनक का गुरु बनाया जाए। हर कोई पूर्ण तैयारी के साथ आया था। सभी

विद्वान आ गए तो राजा जनक ने उठकर प्रार्थना कि 'हे विद्वान और ब्राह्मण जनो ! यह तो आप सबको ज्ञात ही होगा कि यह सभा मैंने अपना गुरु धारण करने के लिए बुलाई है। परन्तु मेरी एक शर्त यह है कि मैं उसी को अपना गुरु धारण करना चाहता हूं जो मुझे घोड़े पर चढ़ते समय रकाब के ऊपर पैर रखने पर काठी पर बैठने से पूर्व ही ज्ञान कराए। इसलिए आप सब विद्वानों, वेदाचार्यों और ब्राह्मणों में से अगर किसी को भी स्वयं पर पूर्णतः विश्वास है तो वह आगे आए। आगे आ कर चन्दन की चौकी पर विराजमान हो पर यदि चन्दन की चौकी पर बैठ कर मुझे ज्ञान न करा सका तो उसे दण्ड मिलेगा। क्योंकि सभा में उस की सबने हंसी उड़ानी है और इससे मेरी भी हंसी उड़ेगी। इसलिए मैं सबसे प्रार्थना करता हूं कि योग्य बल बुद्धि वाला सज्जन ही आगे आए।

यह प्रार्थना करके धर्मी राजा जनक अपने आसन पर बैठ गया। सभी विद्वान और ब्राह्मण राजा जनक की अनोखी शर्त सुनकर एक दूसरे की तरफ देखने लगे। अपने-अपने मन में विचार करने लगे कि ऐसा कौन-सा तरीका है जो राजा जनक को इतने कम समय में ज्ञान करा सके। सब के दिलों-दिमाग में एक संग्राम शुरू हो गया। सारी सभा में सन्नाटा छा गया। राजा जनक का गुरु बनना मान्यता और आदर हासिल करना, सब सोचते और देखते रहे। चन्दन की चौकी की ओर कोई न बढ़ा। यह देखकर राजा जनक को चिंता हुई। वह सोचने लगा कि उसके राज्य में ऐसा कोई विद्वान नहीं ? राजा ने खड़े हो कर सभा में उपस्थित हर एक विद्वान के चेहरे की ओर देखा। लेकिन किसी ने आंख न मिलाई। राजा जनक बड़ा निराश हुआ।

कुछ पल बाद एक ब्राह्मण उठा, उसका नाम अष्टावक्र था। जब वह उस चन्दन की चौकी की ओर बढ़ने लगा तो उसकी शारीरिक संरचना देखकर सभी विद्वान और ब्राह्मण हंस पड़े। राजा भी कुछ

लज्जित हुआ। उस ब्राह्मण की कमर पर दो बल थे। छाती आगे को और पेट पीछे को गया हुआ था। टांगें टेढ़ी थीं और हाथों का तो क्या कहना, एक पंजा है ही नहीं था तथा दूसरे पंजे की उंगलियां जुड़ी हुई थीं। जुबान चलती थी और आंखें तथा चेहरा भी ठीक नहीं था। वह आगे होने लगा तो मंत्री ने उसको रोका और कहा-पुनः सोच लीजिए ! राजा जनक की संतुष्टि न हुई तो मृत्यु दण्ड मिलेगा। यह कोई मजाक नहीं है, यह राजा जनक की सभा है।

अष्टावकर बोला–हे मन्त्री ! यह बात आपको कहने का इसलिए साहस पड़ा है क्योंकि मैं शरीर से कुरुप दिखता हूं। हो सकता है गरीब और बेसहारा हूं। आपके मन में भी यह भ्रम आया होगा कि मैं शायद लालच के कारण आगे आने लगा हूं। इससे यह प्रतीत होता है कि जैसे इस भरी सभा में कोई ज्ञानी नहीं, कोई राजा का गुरु बनने की योग्यता नहीं रखता, वैसे आप भी अज्ञानी हो। आप ने अपने जैसे अज्ञानियों को ही बुलाया है। पर मैं सभी से पूछता हूं क्या ज्ञान का सम्बन्ध आत्मा और दिमाग के साथ है या किसी के शरीर के साथ ? जो सुन्दर शरीर वाले, तिलक धारी, ऊंची कुल और अच्छे वस्त्रों वाले बैठे हैं, वह आगे क्यों नहीं आते ? सभी सोच में क्यों पड़ गए हो ? मेरे शरीर की तरफ देख कर हंसते हुए शर्म नहीं आती, क्योंकि शरीर ईश्वर की रचित माया है। उसने अच्छा रचा है या बुरा। जिसको तन का अभिमान है, उसको ज्ञान अभिमान नहीं हो सकता, अष्टावकर गुस्से से बोला। उसकी बातें सुन कर सभी तिलकधारी राज ब्राह्मण शर्मिन्दा हो गए। उन सब को अपनी भूल पर पछतावा हुआ।

राजा जनक आगे बढ़ा। उसने हाथ जोड़ कर कहा, 'आओ महाराज ! अगर आप को स्वयं पर विश्वास है तो ठीक है। मेरी संतुष्टि कर देना।'

अष्टावकर चन्दन की चौकी पर विराजमान हो गया। उसी समय

राजा ने घोड़ा मंगवाया। वह घोड़ा हवा से बातें करने वाला था। उसकी लगाम बहुत पक्की थी। अष्टावकर ने घोड़े की ओर देखा। तदुपरांत राजा जनक की तरफ देख कर कहने लगा, 'हे राजन ! यदि मैंने आपको ज्ञान करा दिया तो आप ने मेरा शिष्य बन जाना है।'

'यह तो पक्की बात है !' राजा जनक ने उत्तर दिया।

'जब मैं आपका गुरु बन गया और आप मेरे शिष्य तो मुझे दक्षिणा भी अवश्य मिलेगी।' अष्टावकर ने कहा।

'यह भी ठीक है महाराज ! आपको दक्षिणा मिलनी चाहिए।' राजा जनक ने आगे से कहा।

'क्योंकि मैंने आप को ज्ञान का उपदेश उस समय देना है, जब आपने रकाब के ऊपर पैर रखना है और फिर आपने घोड़ा दौड़ा कर दूर निकल जाना है, इसलिए मेरी दक्षिणा पहले दे दीजिए। परन्तु दक्षिणा तन, मन और धन किसी एक वस्तु की हो।' अष्टावकर बोला।

राजा जनक सोच में पड़ गया कि बात तो ठीक है। दक्षिणा तो पहले ही देनी पड़ेगी। पर दक्षिणा दूं किस वस्तु की तन की, मन की या धन की। इन तीनों का सम्बन्ध ही जीवन से है। अगर एक भी कम हो जाए तो हानि होगी, जीवन सुखी नहीं रहता। यह अनोखा ऋषि है, इसकी बातें भी अनोखी हैं। राजा सोचता रहा पर उसको कोई बात न सूझी। वह कोई भी फैसला न कर सका।

राजा जनक ने कहा, 'महाराज ! मुझे राजमहल में जाने की आज्ञा दीजिए। मैं वापिस आ कर आपको बताऊंगा कि मैं किस वस्तु की दक्षिणा दे सकता हूं।'

'आप जा सकते हैं।' अष्टावकर ने आज्ञा दी।

यह सुन कर सारी सभा में सन्नाटा छा गया। सभी विद्वान सोचने लगे कि यह कुरुप ब्राह्मण अवश्य गुणी है।

राजा जनक राजमहल में चला गया और अष्टावकर चंदन की चौकी

पर विराजमान हो गया। उसकी पूजा होने लगी। जैसे कि गुरु धारण करने से पहले गुरु पूजा करनी पड़ती है।

राजा जनक महल में पहुंचा और रानी से कहा–जिसको मैं गुरु धारण करने लगा हूं, वह तन, मन और धन में से एक को दक्षिणा में मांगता है। बताओ मैं क्या दूं, क्योंकि आप मेरी दुःख सुख की साथी हो।

यह सुन कर रानी सोच में पड़ गई। कुछ समय सोच कर उसने कहा-'हे राजन ! यदि धन दान किया तो दुःख प्राप्त होगा, गरीबी आएगी, यदि तन दान किया तो कष्ट उठाना पड़ेगा, अच्छा यही है कि आप मन को दक्षिणा में दे दीजिए। मन को देने से कोई कष्ट नहीं होगा।'

राजा जनक विचार करने लगा कि रानी ने जो सलाह दी है वह ठीक है या नहीं। पर विचार करके वह भी इसी परिणाम पर पहुंचा और सभा में आकर उसने हाथ जोड़ कर अष्टावकर को कहा-'मैं गुरु दक्षिणा में मन अर्पण करता हूं। अब मेरे मन पर आपका अधिकार हुआ।'

'चलो ठीक है। अब आप घोड़े पर चढ़ने की तैयारी करें। आपका मन मेरा है तो मेरा कहना अवश्य मानेगा।' अष्टावकर ने आज्ञा की। सभा में बैठे सब हैरान हो गए कि यह राजा जनक का गुरु बनने लगा है, कैसे कुरुप व्यक्ति के भाग्य जाग पड़े।

राजा घोड़े के ऊपर चढ़ने लगा, अभी रकाब में पैर रखा ही था कि अष्टावकर बोला, राजन ! मेरे मन की इच्छा नहीं कि आप घोड़े के ऊपर चढ़ो। यह सुनकर राजा ने उसी समय रकाब से पैर उठा कर धरती पर रख लिए तथा अष्टावकर की ओर देखने लगा। घोड़े के ऊपर चढ़ने की उसकी मन की इच्छा दूर हो गई। उसी समय अष्टावकर ने दूसरी बार कहा राजन ! मेरा मन चाहता है कि आस -

पास का लिबास उतार दिया जाए। राजा जनक उसी समय वस्त्र उतारने लगा तो उसको ज्ञान हुआ, मन पर काबू पाना, मन के पीछे स्वयं न लगना ही सुखों का ज्ञान है। मन भटकता रहता है। राजा जनक ने उसी समय अष्टावकर के चरणों में माथा झुका दिया और कहा, 'आप मेरे गुरु हुए।'

उसी समय खुशी के मंगलाचार होने लग पड़े। यज्ञ शुरू हो गया। बड़े-बड़े ब्राह्मणों को अष्टावकर के चरणों में लगना पड़ा।

राजा जनक के बारे में भाई गुरदास जी फरमाते हैं :-

भगत वडा राजा जनक है गुरमुख माइआ विच उदासी।
देव लोक नो चलिआ गण गंधरब सभा सुख वासी।
जमपुर गईया पुकार सुणि विललावन जीअ नरक निवासी।
धरमराइ नों आखिओनु सभनां दी कर बंद खलासी।
करे बेनती धरमराइ हउ सेवक ठाकुर अबिनासी।
गहिने धरिअनु एक नाउ पापां नाल करै निरजासी।
पासंग पाप न पुजनी गुरमुख नाउ अतुल न तुलासी।
नरकहु छुटे जीअ जंत कटी गलहु सिलक जम फासी।
मुकति जुगति नावै की दासी।

राजा जनक बहुत बड़ा प्रतापी हुआ, जो माया में उदास था। गुरु धारण करने के बाद उसने बहुत भक्ति की। मन को ऐसा बना लिया कि माया का कोई भी रंग उस पर प्रभाव नहीं डालता था। मोह माया, लोभ, अहंकार तथा वासना, काम का जोश भी उसके मन की इच्छा अनुसार हो गया। वह राजा भक्त बन गया।

एक दिन उसके मन में आया कि आखिर मैं भक्ति करता हूं......क्या पता भक्ति का असर हुआ है कि नहीं ? क्यों न परीक्षा लेकर देखा जाए। बात तो अहंकार वाली थी पर उसके मन में आ गई। जो मन में आए वह हो जाता है।

एक दिन राजा ने अद्भुत ही कौतुक रचा। उसने एक तेल का कड़ाहा गर्म करवाया। उस छोटे कड़ाहे के पास बिछौना बिछा कर उस पर अपनी सबसे सुन्दर स्त्री को कहा कि वह लेट जाए। जब स्त्री लेट गई तो राजा जनक ने एक पैर कड़ाहे में रखा और एक उस स्त्री के बदन पर। वह अडोल खड़ा रहा। अग्नि ने उसको जरा भी आंच न आने दी।......और रानी की सुन्दरता, पैर द्वारा शरीर के स्पर्श ने उसके खून को न गरमाया, गर्म तेल उबलता था, रानी की जवानी दोपहर में थी। यह देखकर लोग राजा जनक की जै जै बोलने लगे। वह धर्मात्मा-बड़ा भक्त बन गया। उसके पश्चात राजा को कभी माया ने न भरमाया।

प्रतापी राजा जनक की कथा बड़ी विस्तृत है। यदि पूरी कथा ब्यान करने लगे तो ग्रन्थों के ग्रन्थ बन जाएंगे। भक्त की कथाएं ही खत्म न हों। आपका अन्तिम समय आ गया। पंचतत्व शरीर को छोड़ कर अगली दुनिया की तरफ जाना था। शरीर को जैसे ही आत्मा ने छोड़ा तो कुदरत की तरफ से अपने आप ही बेअंत शंख बजने लग गए, नरसिंघे बोले, मंगलाचार की ध्वनियां उत्पन्न हुईं। कहते हैं देवता और गन्धर्व आए, अप्सराएं आईं। भक्त जन और नेक आत्माओं के दल स्वागत करने के लिए आए।

कहते हैं, जनक ने जो भक्ति का दिखावा किया था, वह परमात्मा के दरबार में उसका अहंकार लिखा गया। जब देवता लेने के लिए आए तो परमात्मा ने हुक्म दिया-हे देवताओ ! राजा जनक को नरक वाले रास्ते से देवपुरी ले आना, क्योंकि उसके अहंकार का फल उसको अवश्य मिले। यहां बे-इंसाफी नहीं होती, इंसाफ होता है। बस इतना ही काफी है। उसका फूलों वाला बिबान उधर से ही आए।

जिस तरह परमात्मा का हुक्म था, सब ने उसी तरह ही मानना था। देवताओं ने राजा जनक का बिबान नरकों की तरफ मोड़ लिया।

नरक आया। नरकों में हाहाकार मची हुई थी। जीव पापों और कुकर्मों का फल भुगत रहे थे। कोई आग में जल रहा था तो कोई उल्टा लटकाया हुआ था और नीचे आग जल रही थी। कई आत्माओं को गर्म तेल के कड़ाहों में डाला हुआ था। तिलों की तरह कोहलू में पीसे जा रहे थे। हैरानी की बात यह थी कि वह न मरते थे और न जीते थे। आत्माएं दुःख उठाती हुई तड़प रही थीं। नरक की तरफ देख कर राजा जनक ने पूछा-यह कौन-सा स्थान है ? नरक के राजा यमदूत ने कहा-महाराज ! यह नरक है, उन लोगों के लिए जो संसार में अच्छे काम नहीं करते रहें, अब दुःख उठा रहे हैं।

राजा जनक ने कहा-इन सब को अब छोड़ देना चाहिए। बहुत दुःख उठा लिया है। देखो कैसे मिन्नतें कर रहे हैं।

यम परमात्मा की आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। हां, यदि कोई पुण्य का फल दे तो इनको भी छुटकारा मिल सकता है।

राजा जनक को रहम आ गया। उसने कहा मेरे एक पल के सिमरन का फल लेकर इन को छोड़ दो।

यमों ने तराजू मंगवाया। एक तरफ राजा जनक के सिमरन का फल रखा गया और दूसरी तरफ नरकगामी आत्माएं बिठाईं। धीरे-धीरे सभी नरकगामी आत्माएं तराजू पर चढ़ गईं। नरक खाली हो गया। आत्माएं राजा जनक के साथ ही स्वर्ग की ओर चल पड़ीं। बड़े प्रताप और शान से राजा जनक परमात्मा के दरबार में उसके देव लोक में पहुंचा।

भक्त अंगरा जी

गुरु ग्रंथ साहिब में एक तुक आती है :

'दूरबा परूरउ अंगरै गुर नानक जसु गाइओ ।।'

(पन्ना १३९०)

जिसने ईश्वर का नाम सिमरन किया है, यदि कोई पुण्य किया है, वह प्रभु भक्त बना और ऐसे भक्तों ने सतिगुरु नानक देव जी का यश गान किया है। अंगरा वेद काल के समय भक्त हुआ है। इसने सिमरन करके अथर्ववेद को प्रगट किया। कलयुग और अन्य युगों के लिए अंगरा भक्त ने ज्ञान का भंडार दुनिया के आगे प्रस्तुत किया। इस भक्त का सभी यश करते हैं। इस भक्त विद्वान के पिता का नाम उरु तथा माता का नाम आग्नेय था।

भक्त अंगरा एक राज्य का राजा था। इसके मन में इस बात ने घर कर लिया कि सभी प्रभु के जीव हैं और यदि किसी जीव को दुःख मिला तो इसके लिए राजा ही जिम्मेवार होगा। राजा को अपनी प्रजा का सदैव ध्यान रखना चाहिए। इन विचारों के कारण अंगरा बच-बच कर सावधानी से राज करता रहा। राज करते हुए उसे कुछ साल बीत गए।

एक दिन नारद मुनि जी घूमते हुए अंगरा कीराजधानी में आए। राजा ने नारद मुनि का अपने राजभवन में बड़ा आदर-सत्कार किया। राजा अंगरा ने विनती की कि मुनिवर ! राजभवन छोड़कर वन में जाकर तपस्या क्यों न की जाए ? राज की जिम्मेदारी में अनेक बातें ऐसी होती हैं कि कुछ भी अनिष्ट होने से राजा उनके फल का भागीदार होता है। उसने कहा कि मैं तप करके देव लोक का यश करने का इच्छुक हूं।

राजा अंगरा के मन की बात सुनकर नारद मुनि ने उपदेश किया- राजन !आपके ये वचन ठीक हैं। आपका मन राज करने से खुश नहीं है। मन समाधि-ध्यान लगाता है। मनुष्य का मन जैसा चाहे वही करना चाहिए। मन के विपरीत जाकर किए कार्य उत्तम नहीं होते। ये दुःख का कारण बन जाते हैं। जाएं ! ईश्वर की भक्ति करें।

देवर्षि नारद के उपदेश को सुनकर अंगरा का मन और भी उदास हो गया। उसने राज-पाठ त्याग कर अपने भाई को राज सिंघासन पर बैठा दिया तथा प्रजा की आज्ञा लेकर वह वनों में चला गया। अंगरा ने वन में जाकर कठोर तपस्या की। भक्ति करने से ऐसा ज्ञान हुआ कि उसके मन में संस्कृत की कविता रचने की उमंग जागी। उसने वेद पर स्मृति की रचना की। 17वीं स्मृति आपकी रची गई है।

अन्त काल आया। कहते हैं कि जब प्राण त्यागे तो ईश्वर ने देवताओं को आपके स्वागत के लिए भेजा। आप भक्ति वाले वरिष्ठ भक्त हुए। जिनका नाम आज भी सम्मानपूर्वक लिया जाता है। परमात्मा की भक्ति करने वाले सदा अमर हैं।

बोलो ! सतिनाम श्री वाहिगुरु।

भक्त अम्ब्रीक जी

अंबरीक मुहि वरत है राति पई दुरबासा आइआ।
भीड़ा ओस उपारना उह उठ नहावण नदी सिधाइआ।
चरणोदक लै पोखिआ ओह सराप देण नो धाइआ।
चक्र सुदरशन काल रूप होई भीहांवल गरब गवाइआ।
ब्राहमण भंना जीउ लै रख न हंघन देव सबाइआ।
इन्द्र लोक शिव लोक तज ब्रहम लोक बैकुंठ तजाइआ।
देवतिआं भगवान सण सिख देई सभना समझाइआ।
आई पइआ सरणागती मारीदा अंबरीक छुडाइआ।
भगत वछलु जग बिरद सदाइआ।४।

हे भक्त जनो ! भाई गुरदास जी के कथन अनुसार अम्ब्रीक भी एक महान भक्त हुआ है। इनकी महिमा भी भक्तों में बेअंत है। आप को दुरबाशा ऋषि श्राप देने लगे थे लेकिन स्वयं ही दुरबाशा ऋषि राजा अम्ब्रीक के चरणों में गिर गए। ऐसा था वह भक्त।

भक्त अम्ब्रीक पहले दक्षिण भारत का राजा था और वासुदेव अथवा श्री कृष्ण भक्त था। यह माया में उदासी भक्त था। इनके पिता का नाम भाग था। वह भी राजा था। जब यह युवा हुआ तो राजसिंघासन पर आसीन हुआ। राजा साधू-संतों की अत्यंत सेवा किया करता था और आए गए जरूरत मंदों की सहायता करता था।

राजा अम्ब्रीक में बहुत सारे गुण विद्यमान थे। वह अपनी सारी इन्द्रियों को वश में रखता था। वह प्रत्येक व्यक्ति को एक आंख से ही देखता और हर निर्धन, धनी, सन्त और भिक्षुक का ध्यान रखता। बुद्धि से सोच-विचार कर जरूरत मंदों की सेवा करता जितनी उनको आवश्यकता होती। वह भंडारा करके अपने हाथों से प्रसाद श्रद्धालुओं में बांटता। वह प्रतिदिन राम का सिमरन करता तथा नंगे पांव चलकर तीर्थ यात्रा के लिए जाता और कानों से सत्संग का उपदेश सुनता।

राजा अम्ब्रीक ऐसा त्यागी हो गया कि वह राज भवन, कोष, रानियां, घोड़े-हाथी किसी वस्तु पर अपना अधिकार नहीं समझता था। वह सब वस्तुएं प्रजा एवं परमात्मा की मानता था। एकादशी के व्रत रखता एवं पाठ-पुजा में सदा मग्न रहता। इस तरह राजा अम्ब्रीक को जीवन व्यतीत करते हुए कई वर्ष बीत गए।

एक वर्ष श्री कृष्ण जी की भक्ति की प्रेम मस्ती तथा श्रद्धा भावना में लीन होकर उसने प्रतिज्ञा की कि वह हर वर्ष एकादशियां रखेगा। तीन दिन निर्जला व्रत और मथुरा-वृंदावन में जाकर यज्ञ करके दान पुण्य भी देगा। उसने ऐसी प्रतिज्ञा कर ली। अम्ब्रीक एक आशावादी राजा था। उसने भरोसे में सभी बातें पूरी कर लीं और मंत्रियों सहित मथुरा-वृंदावन में पहुंच गया। मथुना और वृंदावन में उसने यमुना स्नान करके यज्ञ लगाया। ब्राह्मणों को उपहार एवं दान दिया। वस्त्र तथा अन्न के अलावा सोने के सींगों वाली गऊएं भेंट में दान कीं।

कई स्थानों पर पुराणों में लिखा है कि राजा अम्ब्रीक ने करोड़ों गाएं दान कीं। अर्थात् ढ़ेर सारा दान पुण्य किया।

ऐसा समय आ गया कि ब्राह्मण छत्तीस प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन खा कर तथा दान-दक्षिणा लेकर कृतार्थ होकर घर को विदा हो गए तो राजा को आज्ञा मिली कि वह अपना व्रत खोल ले। जब राजा ने अपना व्रत खोला तो वह खुशी-खुशी इच्छा पूर्ण होने पर स्वयं ही राजभवन को चल पड़ा।

राजा राज भवन में अभी पहुंचा भी नहीं था कि उसे मार्ग में दुरबाशा ऋषि आ मिले। राजा ने उन्हें झुककर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर विनती की :

'हे शिरोमणि मुनिवर ! क्या आप राजभवन में भोजन करेंगे। यज्ञ का भोजन लेकर तृप्त होकर निर्धन राजा अम्ब्रीक को कृतार्थ करें।'

'जैसी राजन की इच्छा ! भोजन का निमंत्रण स्वीकार करता हूं लेकिन यमुना में स्नान करने के बाद।'

ऋषि दुरबाशा ने उत्तर दिया।

यह कहकर ऋषि चल पड़ा। उसने मन में अनित्य धारण किया था। वह दरअसल राजा अम्ब्रीक को मोह-माया के जाल में फंसाने हेतु आया था। वैसे भी दुरबाशा ऋषि मन का क्रोधी एवं छोटी-छोटी बातों पर श्राप दे दिया करता था। इसके श्राप देने से कितनों को ही नुक्सान पहुंचा, वह बड़े प्रसिद्ध थे।

निमंत्रण देकर प्रसन्नचित राजा अम्ब्रीक अपने राजमहल में चला आया और ऋषि दुरबाशा का इंतजार करने लग गया। द्वाद्वशी का समय भी बीतने के निकट था लेकिन ऋषि दुरबाशा न आया। पंडितों ने आग्रह किया कि राजन ! आप व्रत खोल ले लेकिन अम्ब्रीक यही उत्तर देता रहा 'नहीं ! एक अतिथि के भूखे रहने से पहले मेरा व्रत खोलना ठीक नहीं।

ऋषि दुरबाशा पूजा-पाठ में लीन हो गया। वह जान-बूझकर ही देर तक न पहुंचा। जब ऋषि न आया तो ब्राह्मणों ने चरणामृत पिला कर व्रत खुलवा दिया और कहा कि चरणामृत अन्न नहीं।

ऋषि दुरबाशा समय पाकर राजा अम्ब्रीक के राज भवन में उपस्थित हुआ। उसने योग विद्या से अनुभव कर लिया कि राजा अम्ब्रीक ने व्रत खोल लिया है। उसे गुस्से करने का बहाना मिला गया। ऋषि दुरबाशा ने अम्ब्रीक को अपशब्द बोलने शुरू कर दिए। उसने कहा कि एक अतिथि को भोजन पान करवाए बिना आपने व्रत खोल कर शास्त्र मर्यादा का उल्लंघन किया है। आपको क्षमा नहीं किया जाएगा।

ऋषि दुरबाशा ने आग बबूला होकर कहा-चण्डाल ! अधर्मी! मैं तुम्हें श्राप देकर भस्म कर दूंगा। महांमुनि क्रोध में आकर बुरा-भला कहता गया।

राजा अम्ब्रीक उनकी चुपचाप सुनता रहा। उसने उनकी किसी बात का बुरा नहीं मनाया और खामोश खड़ा रहा। राजा का हौंसला देखकर ऋषि का मन डोल गया लेकिन क्रोध वश होकर उसने कोई बात न की। जब दुरबाशा ऋषि अपशब्द कहकर शांत हुए तो राजा अम्ब्रीक ने हाथ जोड़कर विनती की-हे महामुनि जी ! जैसे पूजनीय ब्राह्मणों ने आज्ञा की, वैसे ही मैंने व्रत खोला। आपकी हम राह देखते रहे। उधर से तिथि बीत रही थी। अगर भूल हुई है तो भक्त को क्षमा करें। जीव भूल कर बैठता है। आप तो महा कृपालु धैर्यवान मुनि हैं। दया करें! कृपा करें ! कुछ जीवन को रोशनी प्रदान करें। मैं श्राप लेने जीवन में नहीं आया। जीव कल्याण की इच्छा पूर्ण करने के लिए पूजा की है।

लेकिन इन बातों से ऋषि दुरबाशा का क्रोध शांत न हुआ। वह और तेज हो गया जैसे वह धर्मी राजा को तबाह करने के इरादा से

ही आया हो। उसने अपने क्रोध को और चमकाया तथा क्रोध में आकर दुरबाशा ने अपने बालों की एक लट उखाड़ी। उस लट को जोर से हाथों में मलकर योग बल द्वारा एक भयानक चुड़ैल पैदा की और उसके हाथ में एक तलवार थमा दी जो बिजली की तरह चमक रही थी।

उस चुड़ैल को देखकर ब्राह्मण, माननीय लोग और राजभवन के सारे व्यक्ति डर गए। अधिकतर ने अपनी आंखें बंद कर लीं लेकिन धर्मनिष्ठ और भक्ति भाव वाला राजा अम्ब्रीक न डगमगाया और न ही डरा, वह शांत ही खड़ा रहा।

जैसे ही चुड़ैल धर्मनिष्ठ राजा अम्ब्रीक पर हमला करने लगी तो राजा के द्वार के आगे जो भगवान का सुदर्शन चक्र था, वह घूमने लगा। उसने पहले चुड़ैल का बाजू काट दिया और उसके बाद उसका सिर काट कर उसका वध कर दिया। वह चक्र फिर दुरबाशा ऋषि की तरफ हो गया। आगे आगे दुरबाशा ऋषि तथा पीछे-पीछे सुदर्शन चक्र, दोनों देव लोक में जा पहुंचे लेकिन फिर भी शांति न आई। देवराज इन्द्र भी ऋषि की रक्षा न कर सका।

दुरबाशा बहुत अहंकारी ऋषि था। वह सदा साधू-संतों, भक्त जनों और अबला देवियों को क्रोध में आकर श्राप देता रहता था। उसने शकुंतला जैसी देवी को भी श्राप देकर अत्यंत दुखी किया था। इसलिए ईश्वर ने उसके अहंकार को तोड़ने के लिए ऐसी लीला रची।

भयभीत दुरबाशा ऋषि को देवताओं ने समझाया कि राजा अम्ब्रीक के अलावा आपका किसी ने कल्याण नहीं करना और आप मारे जाएंगे। परमात्मा उसके अहंकार को शांत करने के लिए ही यह यत्न कर रहा था। उसने तप किया, पर तप करने से वह अहंकारी हो गया।

दुरबाशा परलोक और देवलोक से फिर दौड़ पड़ा। वह पुनः राजा अम्ब्रीक की नगरी में आया और अम्ब्रीक के पांव पकड़ लिए। उसने मिन्नतें की कि हे भगवान रूप राजा अम्ब्रीक ! मुझे बचाएं ! मैं आगे से किसी साधू-संत को परेशान नहीं करुंगा। दया करें ! मेरी भूल माफ करें !

जब दुरबाशा ऋषि ने ऐसी मिन्नतें की तो राजा अम्ब्रीक को उस पर दया आ गई। उसने दुरबाशा की दयनीय दशा देखी तो वह आंसू बहा रहा था। राजा को उसकी दशा पर तरस आ गया। राजा अम्ब्रीक ने हाथ जोड़कर ईश्वर का सिमरन किया। प्रभु ! दया करें, प्रत्येक प्राणी भूल करता रहता है। उसकी भूलों को माफ करना आपका ही धर्म है। हे दाता ! आप कृपा करें ! मेहर करें ! राजा अम्ब्रीक ने ऐसी विनती करके जब सुदर्शन चक्र की तरफ संकेत किया तो वह अपने स्थान पर स्थिर हो गया। दुरबाशा के प्राणों में प्राण आए। सात सागरों का जल पीने वाला दुरबाशा ऋषि धैर्यवान राजा अम्ब्रीक से पराजित हो गया। उससे क्षमा मांगकर वह अपने राह चल दिया। इस प्रकार राजा अम्ब्रीक जो बड़ा प्रतापी था, संसार में यश कमा कर गया तथा भवजल से पार होकर प्रभु चरणों में लिवलीन होकर उनका स्वरूप हो गया। कोई भेदभाव नहीं रहा। भाई गुरदास जी के वचनों के अनुसार भक्त के ऊपर परमात्मा ने कृपा की जिससे भक्त अम्ब्रीक ने संसार से मोक्ष प्राप्त किया।

गौतम मुनि और अहल्या की साखी

प्राचीन काल से भारत में अनेक प्रकार के प्रभु भक्ति के साधन रहे हैं। उस पारब्रह्म शक्ति की आराधना करने वाले कोई न कोई साधन अख्तयार कर लेते थे जैसा कि उसका 'गुरु' शिक्षा देने वाला परमात्मा एवं सत्य मार्ग का उपदेश करता था भाव प्रभु का यश गान

करता था। ऐसे ही भक्तों में एक गौतम ऋषि जी हुए हैं। गुरुबाणी में विद्यमान है। 'गौतम रिखि जसु गाइओ॥' जिसका भावार्थ है कि गौतम ऋषि ने जिस तरह प्रभु का सिमरन एवं गुणगान किया था, वह प्रभु का प्यारा भक्त हुआ। पुराणों में जिसकी एक कथा का वर्णन है, जो महापुरुषों और जिज्ञासुओं को इस प्रकार सुनाई जाती है।

गौतम ऋषि सालगराम शिवलिंग के पुजारी थे। उन्होंने कई वर्ष परमात्मा की कठिन तपस्या की। भोले भंडारी शिव जी महाराज ने इन पर कृपालु होकर वर दिया–हे गौतम ! जो मांगोगे वही मिलेगा। तेरी हर इच्छा पूर्ण होगी। हम तुम पर अति प्रसन्न हैं।

यह वर लेकर गौतम ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और दिन–रात प्रभु के सिमरन में व्यतीत करने लगे। संयोग से गौतम ऋषि को एक दिन पता चला कि मुदगल की कन्या जिसका नाम अहल्या था, उसके विवाह हेतु स्वयंवर रचा जा रहा है। अहल्या इतनी सुन्दर थी कि हरेक उससे शादी करने का इच्छावान था। इन्द्र जैसे स्वर्ग के राजा महान शक्तियों वाले देवते भी तैयार थे। देवताओं और ऋषियों की इच्छा, उनके क्रोध को देखकर मुदगल ने ब्रह्मा जी से विनती की हे प्रभु ! मेरी कन्या के शुभ कार्य के बदले युद्ध होना ठीक नहीं। आप हस्तक्षेप करके देवताओं को समझाएं। वह युद्ध न करें तथा कोई और उपाय सोचकर कृपा करें।

ब्रह्मा जी ने विनती स्वीकार कर ली। वह स्वयं ही सालस बन बैठे और उन्होंने सारे देवताओं व ऋषियों–मुनियों, जो विवाह करवाने के चाहवान थे, को इकट्ठा करके कहा–देखो ! मुदगल की पुत्री सुन्दर है लेकिन उसको वर एक चाहिए। आप सब चाहवान हैं। यह भूल है। यदि स्वयंवर मर्यादा पर चलना है तो आप में से जो चौबीस मिनटों में धरती का चक्कर लगाकर प्रथम आए, उससे अहल्या का विवाह कर दिया जाएगा।

ब्रह्मा जी से ऐसी शर्त सुनकर सारे देवता पहले तो बड़े हैरान हुए लेकिन फिर सबने अपने अपने तपोबल पर मान करके यह शर्त प्रवान कर ली। देवराज इन्द्र तथा ब्रह्मा जी के पुत्रों सनक, सनन्दन, सनातन और सनत को बड़ा अभिमान था। उन्होंने मन ही मन में सोचा कि वह बाजी जीत जाएंगे। त्रिलोकी की परिक्रमा करनी उनके लिए कठिन नहीं।

मुदगल की पुत्री अहल्या की सुन्दरता और शोभा सुनकर गौतम ने उससे विवाह रचाने की इच्छा रखी और अपने सालगराम से प्रार्थना की। सालगराम ने गौतम ऋषि को दर्शन दिए और कहा–हे गौतम ! यदि आपकी ऐसी इच्छा है तो वह अवश्य पूर्ण होगी। आप मेरी परिक्रमा कर लें, बस त्रिलोकी की परिक्रमा हो जाएगी। आप सबसे पहले आए ब्रह्मा जी को दिखाई देंगे।

विवाह के लिए शर्त की दौड़ शुरू हो गई। ऋषि गौतम ने सालगराम की परिक्रमा कर ली। उधर देवराज इन्द्र तथा अन्य देवता जब परिक्रमा करने लगे तो वह बहुत तेज चले। हवा से भी अधिक रफ्तार पर दौड़ते गए लेकिन जिस पड़ाव पर जाते, वहां गौतम ऋषि होते। वे बड़े हैरान हुए तथा गुस्से में आकर मारने के लिए भागे मगर वह तो माया रूपी हो चुके थे। इसलिए कोई ताकत उनको नष्ट नहीं कर सकती थी।

भगवान सालगराम की महान शक्ति से गौतम ब्रह्मा जी के पास पहले आ गए। ब्रह्मा जी अत्यंत प्रसन्न हुए। फिर ब्रह्मा जी ने अहल्या तथा गौतम को परिणय सूत्र में बांधने का फैसला किया। यह सुनकर देवता बड़े निराश और नाराज हुए, उन्होंने बड़ी ईर्ष्या की। जबरदस्ती छीनने का प्रयास किया, पर ब्रह्मा जी की शक्ति के आगे उनकी एक न चली। वह वापिस अपने अपने स्थानों पर चले गए। गौतम अहल्या को लेकर अपने आश्रम में आ गया। गौतम का आश्रम गंगा के किनारे

था। वह तपस्या करने लगा, उसकी महिमा दूर-दूर तक फैल गई।

इन्द्र देवता नाराज हो गए, देश में अकाल पड़ गया, सारी धरती दहक उठी। साधु, संत, ब्राह्मण तथा अन्य सब लोग बहुत दुखी हुए। उनके दुःख को देख कर गौतम ऋषि का दिल भी बड़ा दुखी हुआ। उसने सालगराम की पूजा की और प्रार्थना की कि हे भगवान ! मुझे शक्ति दीजिए ताकि मैं भूखे लोगों को भोजन खिलाकर उनकी भूख को मिटा सकूं। भगवान ने गौतम की प्रार्थना स्वीकार कर ली और गौतम ने लंगर लगा दिया, भगवान की ऐसी कृपा हुई कि किसी चीज़ की कोई कमी न रही। हर किसी ने पेट भर कर और अपने मनपसंद का खाना खाया। गौतम का यश तीनों लोकों में फैल गया। उसके यश को देखकर इन्द्र और भी तड़प उठा, वह पहले ही अहल्या को लेकर क्रोधित था। इन्द्र ने माया शक्ति से काम लेना चाहा। इस माया शक्ति से उसने एक गाय बनाई, गाय की रचना इस प्रकार की कि जब गौतम उसे हाथ लगाएगा तो वह मर जाएगी।

वह गाय गौतम के आश्रम में पहुंची। गौतम आश्रम से बाहर निकला तो गाय को हटाने के लिए उसने जब हाथ लगाया तो वह धरती पर गिर कर मर गई।

इन्द्र की चाल के अनुसार ब्राह्मणों ने शोर मचा दिया कि ऋषि गौतम के हाथ से गाय की हत्या हो गई, उसको अब प्रायश्चित करना चाहिए। पर सालगराम भगवान की कृपा से गौतम ऋषि को पता चल गया कि यह इन्द्र का माया जाल था। गौतम ने उन सब झूठे ब्राह्मणों को श्राप दिया और कहा-"जाओ ! तुम्हारी भूख कभी नहीं मिट सकती, यह भूख जन्म-जन्म ऐसे ही रहेगी।" यह श्राप लेकर ब्राह्मण बहुत दुखी हुए और गौतम ने भोजन बंद कर दिया।

इस प्रकार दिन-प्रतिदिन गौतम का यश बढ़ता गया और वह अहल्या के साथ जीवन व्यतीत करता रहा। उसके घर एक कन्या

ने जन्म लिया। वह कन्या भी बहुत रूपवती थी। वह आश्रम में खेल कूद कर पलने बढ़ने लगी।

इन्द्र ने अपना हठ न छोड़ा। वह अहल्या के पीछे लगा रहा। वह प्रेम लीला करने के लिए व्याकुल था। वासना की ज्वाला उसे दुखी करती थी। उसकी व्याकुलता बाबत भाई गुरदास जी ने वचन किया है :-

गोतम नारि अहलिआ तिस नो देखि इंद्र लोभाणा।
पर घर जाइ सराप लै होई सहस भग पछोताणा।
सुंञा होआ इन्द्र लोक लुकिआ सरवर मन शरमाणा।
सहस भगहु लोइण सहस लैदोई इन्द्र पुरी सिधाणा।
सती सतहुं टलि सिला होइ नदी किनारे बाझ पराणा।
रघुपति चरन छुहंदिआं चली स्वर्ग पुर सणे बिबाणा।
भगत वछल भलिआई अहुं पतित उधारण पाप कमाणा।
गुण नो गुण सभको करै अउगुण कीते गुण तिस जाणा।
अवगति गति किआ आखि वखाणा।१८।

भाई गुरदास जी अहल्या की कथा बताते हुए कहते हैं कि अहल्या का सौंदर्य देख कर इन्द्र लोभ में आ गया था। उसे कई बुद्धिमानों ने समझाया-हे इन्द्र ! पराई-नारी का भोग मनुष्य को नरक का भागी बनाता है। इस तरह का विचार कभी भी अपने मन में नहीं लाना चाहिए। आपकी पहले ही अनेक रानियां हैं। सारी इन्द्रपुरी नारी सुन्दरता से भरी पड़ी है, उन्हें धोखा नहीं देना चाहिए। पतिव्रता नारी एक महान शक्ति है।

पर जब इन्द्र ने हठ न छोड़ा तो उसके एक धूर्त सलाहकार ने कहा कि 'गौतम जिस समय गंगा स्नान करने जाता है, तब पूजा-पाठ का समय होता है। उस समय भोग-विलास नहीं किया जाता, प्रभु का गुणगान किया जाता है। अच्छा यह है कि आप माया शक्ति से मुर्गे और चन्द्रमा से सहायता लें।

'वह क्या सहायता करेंगे ?' इन्द्र ने पूछा। मुझे इसके बारे में जरा विस्तार से बताओ।

इन्द्र की बात सुनकर उसके सलाहकार ने कहा–'मुर्गे की बांग से गौतम सुबह उठता है और चन्द्रमा निकलने पर वह गंगा स्नान करने जाता है। अगर मुर्गा पहले बांग दे दे और चन्द्रमा पहले निकल जाए तो वह गंगा स्नान करने चला जाएगा और इस प्रकार आपको एक सुनहरी अवसर मिल जाएगा।'

'यह तो बहुत अच्छी चाल है।' इन्द्र ने कहा। इन्द्र खुशी से बोला–मैं अभी मुर्गे और चन्द्रमा से सहायता मांगता हूं, उनसे अभी बात करता हूं। वह अवश्य ही मेरी सहायता करेंगे। फिर साहस करके इन्द्र मुर्गे और चन्द्रमा के पास पहुंचा। उनको सारी बात बताई और अपने पाप का भागी उन्हें भी बना लिया। वे दोनों उसकी सहायता करने को तैयार हो गए। उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी।

रात नियत की गई तथा नियत रात को ही मुर्गे ने बांग दे दी। चन्द्रमा भी निकल आया। गौतम ने मुर्गे की बांग सुनी तो अपना तौलिया धोती उठा कर गंगा स्नान के लिए चल पड़ा। वास्तव में अभी गंगा स्नान का समय नहीं हुआ था। जब वह गंगा स्नान करने लगा तो आकाशवाणी हुई 'हे ऋषि गौतम ! असमय आकर ही स्नान करने लगे हो, अभी तो स्नान का समय नहीं है। तुम्हारे साथ धोखा हुआ है। यह सब एक माया जाल है। तुम्हारे घर पर कहर टूट रहा है, जाओ जा कर अपने घर की खबर लो। यह आकाशवाणी सुनकर गौतम वापिस चल पड़ा।

उधर गौतम के जाने के पश्चात इन्द्र ने बिल्ले का रूप धारण किया। बिल्ले का रूप धारण करने का कारण यह था कि गौतम अहल्या को अकेले नहीं छोड़ता था क्योंकि देवता उसके पीछे पड़े थे। जब भी गौतम स्नान करने जाता तो अपनी पुत्री अंजनी को कुटिया के

सामने द्वार पर बिठा जाता था।

इन्द्र ने जब देखा कि अंजनी द्वार के आगे बैठी है और पूछेगी कि आप कौन है ? तो वह क्या उत्तर देगा, इसलिए इन्द्र ने बिल्ले का रूप धारण कर लिया और भीतर चला गया। अंजनी ने ध्यान न दिया। इन्द्र की माया शक्ति से अंजनी को नींद आ गई, वह बैठी रही। भीतर जाकर इन्द्र ने गौतम मुनि का भेस धारण कर लिया, उसके जैसी ही सूरत बना ली। अहल्या को कुछ भी पता न चला। इन्द्र अहल्या से प्रेम-क्रीड़ा करने लग गया। अभी वह अंदर ही था कि बाहर से गौतम आ गया।

'अंदर कौन है ?' अंजनी को गौतम ने पूछा। उस समय गौतम की आंखें गुस्से से लाल थीं। वह बहुत व्याकुल था।

'माजार' अंजनी ने उत्तर दिया। इसके दो अर्थ हैं एक तो 'मां का यार' और दूसरा 'बिल्ला'। वह बहुत घबरा गई।

गौतम भीतर चला गया। उसने देखा कि इन्द्र उसी का रूप धारण करके नग्न अवस्था में ही अहल्या के पास बैठा था। उसकी यह घिनौनी करतूत देखकर गौतम ऋषि ने अपने भगवान सालगराम को याद किया और इन्द्र को श्राप दिया-"हे इन्द्र ! तू एक भग के बदले पाप का भागी बना है। तुम्हारे शरीर पर एक भग के बदले हजारों भग होंगे। तुम दुखी होकर दुःख भोगोगे।"

गौतम ऋषि का यह श्राप सुनकर इन्द्र घबराया। लेकिन इन्द्र पर श्राप प्रगट होने लगा। उसका शरीर फूटने लगा। हजार भग नज़र आने लगीं। शर्म का मारा छिपता रहा।

इन्द्र से ध्यान हटाकर गौतम ऋषि ने चन्द्रमा को श्राप दिया। तुम तो धर्मी थे, जगत को रोशान करने वाले मगर तुमने एक अधर्मी, पापी का साथ दिया है इसलिए डूबते चढ़ते रहोगे, बस एक दिन सम्पूर्ण कला होगी। जबकि चांद पहले सम्पूर्ण कला में रहता था परन्तु उसी

समय श्राप के बाद उसकी कला भी कम हो गई।

मुर्गे को भी श्राप दिया -'कलयुग में तुम असमय बांग दिया करोगे। तुम्हारी बांग पर कोई भरोसा नहीं करेगा।

गौतम ऋषि तब तीनों को श्राप दे कर फिर अहल्या की ओर मुड़ा। उस समय वह बहुत ही सुन्दर लग रही थी जिसके समान कोई दूसरी नारी न थी। उसको भी गौतम ने श्राप दे दिया–'हे अहल्या ! तुम एक पतिव्रता स्त्री थी। क्या तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी जो एक पराये पुरुष को पहचान न सकी, पत्थर की तरह लेटी रही जाओ– तुम पत्थर का रूप धारण कर लोगी। तुम्हारा कल्याण न होगा। इस के पश्चात नारी का धर्म कमज़ोर हो जाएगा। कलयुग में नारी बदनाम होगी।

जब यह श्राप अहल्या ने सुना तो वह हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगी–हे प्रभु ! मेरा कोई दोष नहीं है, मैंने तो बस आपका रूप देखा। मुझे क्षमा करो, मेरे साथ धोखा हुआ है। मैं तो आपकी दासी हूं। मेरा धर्म है.....।'

अहल्या का विलाप एवं पुकार सुनकर गौतम को दया आई और उसने दूसरा वचन किया–'शिला के रूप में तुम्हें कुछ काल तक रहना पड़ेगा। जब श्री राम चन्द्र जी अवतार लेंगे तो उनके पवित्र चरण स्पर्श से तुम फिर से नारी रूप धारण करोगी और तुम्हारा कल्याण होगा।

आश्रम में से निकल कर अहल्या गंगा किनारे पहुंची तो उसका शरीर पत्थर हो गया। वह श्राप में सोई रही। अहल्या बहुत देर तक पत्थर बनी रही। श्री राम चन्द्र जी ने अयोध्या नगरी में जन्म लिया। श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण तथा विश्वामित्र के साथ जब उस तपोवन में आए तो उनके चरणों के स्पर्श से अहल्या फिर नारी रूप में आ गई।

उधर बृहस्पति के कहने पर इन्द्र फिर गौतम के पास गया और

अपनी भूल की माफी मांगी। हाथ जोड़े, पैर पकड़े, कहा–फिर कभी पर–नारी को नहीं देखूंगा। तब इन्द्र का रोगी शरीर भी ठीक हो गया। वह अपने इन्द्र लोक चला गया।

महावीर हनुमान जी

दाधीले लंका गडु उपाड़ीले रावण बणु सलि बिसलि आनि तोखीले हरी ॥ करम करि कछउटी मफीटसि री ॥५॥

(पन्ना ६९५)

महावीर हनुमान जी श्री रामचन्द्र जी के अनन्य भक्त हुए हैं जो अमर हैं और शूरवीरों में गिने जाते हैं। इनको पवन पुत्र और अंजनी पुत्र भी कहा जाता है। इन्होंने घोर तपस्या की। पवन पुत्र हनुमान जी ने रावण की सोने की लंका को जला कर राख कर दिया था।

महावीर हनुमान जी के जन्म की कथा ग्रन्थों में इस प्रकार लिखी गई है। हनुमान अंजनी के एक ब्रह्मचारी पुत्र थे। अंजनी महर्षि गौतम की कन्या थी। उसको गौतम ऋषि ने श्राप दिया था कि 'अंजनी तुम मां के धोखे में आई हो, जाओ तुम कुंआरी ही बच्चे को जन्म दोगी।'

ऐसा श्राप सुनकर कन्या बहुत ही चिंतित हुई, पर वह ज्यादा समय चिंता में न रही बल्कि उसने ईश्वर की भक्ति आरम्भ कर दी। उसने घोर तपस्या की कि उसके पिता का दिया श्राप टल जाए। अंजनी शिव भक्त थी। उसने दिन–रात तपस्या की। उसने धरती में एक कोठड़ी बनवाई और निश्चय किया कि वह किसी पुरुष के दर्शन न करेगी। उसने सोचा कि किसी पुरुष को न देखने के कारण उसका मन विचलित नहीं होगा। जब मन ही विचलित न होगा तो कुंआरी मां कैसे बनेगी। यह सोचकर वह दिन–रात तपस्या करती रहती और भक्ति से अपने मन को काबू में रखती।

अंजनी की भक्ति और तपस्या की चर्चा चारों ओर फैल गई।

उसका तीनों लोकों में यश होने लगा। सभी देवी–देवता उसकी तपस्या की महिमा गाने लगे। तीनों लोकों में यह चर्चा भी होने लगी कि अगर अंजनी इसी प्रकार तपस्या करती रही तो अवश्य कोई न कोई घटना घटेगी।

दूसरी ओर गौतम ऋषि जी शिव भक्त थे। शिव जी ने उनको जो वर दिए थे वह टल नहीं सकते थे, न ही कोई वर टालने की समर्था रखता था। इसलिए गौतम के दिए हुए श्राप टल नहीं सकते थे। वह अटल रहते थे।

अंजनी की घोर तपस्या देख कर शिव जी को विचार करना ही पड़ा। वह विचार करके पृथ्वी पर आए। पृथ्वी लोक में आने पर पृथ्वी डोली। अंजनी का हृदय भी डोला मगर वह तपस्या में लीन हो गई।

शिव जी भगवान गौतम के मठ में पहुंचे। वहां अंजनी का धरती में मठ देख कर उस के पास पहुंचे। अंजनी ने वहां पर एक छोटा–सा झरोखा रखा था, जिससे वह सांस के लिए हवा लेती थी। उसी में से चांद और सूर्य की रोशनी जाती थी। उसी में से जीव–जन्तुओं की आवाज़ें सुनाई देती थी। अंजनी न किसी को देखती थी और न ही उसे कोई देख सकता था। भगवान शिव ने अपनी आत्मिक शक्ति से अंजनी को देखा। उसको आवाज़ दी–

'हे गौतम कन्या अंजनी !'

यह आवाज़ सुन कर अंजनी का हृदय कांपा। उसने भगवान शिव की आवाज़ पहचान ली। अंजनी ने शिव जी से कहा–हे प्रभु ! क्यों कि आप पुरुष रूप में इस पृथ्वी लोक पर आए हैं, इसलिए मैं आप के दर्शन नहीं कर सकती और न ही पूजा कर सकती हूं।

'हे अंजनी ! ऐसा क्यों कह रही हो ? पूरी बात तो करो।' शिव जी ने अंजनी को कहा।

'नहीं, महाराज ! मैं आपके दर्शन नहीं कर सकती, क्योंकि मेरे ही पिता महर्षि गौतम ने मुझे श्राप दिया है।

'क्या श्राप दिया है ?' भगवान शिव ने पूछा।

'श्राप यह है कि मैं कुंआरी ही मां बनूंगी। पर मैं ऐसा नहीं होने देना चाहती, इसलिए मैं किसी पुरुष के दर्शन न करूंगी।

'ये मिथ्या ज्ञान तुम्हें हुआ है। तुमने जन्म लिया है, स्त्री का रूप धारण किया है। इसलिए इस घोर तपस्या को छोड़ दो और जो जीवन नारी का है उसे भोगो।'

जब भगवान शिव ऐसा बोल रहे थे तब अंजनी का शरीर गर्म होता गया, उसे पसीना भी आने लगा। उसके रक्त और हृदय में वासना जागने लगी, उसका मन डोलने लगा। मन डोलता हुआ दिखाई देने लगा तो वह एकदम जोश और क्रोध से बोली–हे प्रभु ! मैंने पुरुष के दर्शन नहीं करने, मेरा मन डोल रहा है, कृपा करके आप अपनी शक्ति लेकर यहां से चले जाएं। मेरी प्रतिज्ञा न तोड़ो, मेरी तपस्या को भंग न करो। चले जाओ ! आप ने अपने मन में जरूर कुछ रखा होगा।

शिव जी ने कहा–अंजनी ! तुम्हारी तपस्या पूरी नहीं हो सकती, क्योंकि तुमने किसी को गुरु धारण नहीं किया। गुरु धारण किए बिना तपस्या का फल नहीं मिलता, तुम्हारा कल्याण कैसे होगा ?

यह सुन कर अंजनी घबरा उठी। उसके शरीर से पसीना निकलने लगा तो उसने प्रार्थना की–हे प्रभु ! अगर गुरु धारण करूंगी तो दक्षिणा कैसे दूंगी और किस वस्तु की दक्षिणा देनी होगी।

'कोई चिंता न करो, सब कुछ हो जाएगा।' शिव जी ने कहा।

अंजनी ने गुरु धारण करने का विचार कर लिया। वह शिव शक्ति से मुग्ध हो गई। उसने शिव जी को 'गुरमन्त्र' देने का निवेदन किया। शिव जी ने प्रसन्न होकर कहा–कान इधर करो, नेत्रों से मैं तुम्हें गुरमंत्र

देता हूं। अंजनी ने ऐसा ही किया, शिव जी ने 'ओउ्म नमो भगवते वासुदेव' कह कर गुरमंत्र दे दिया। अंजनी को गुरमंत्र दे कर शिव जी अलोप हो गए।

शिव जी के चले जाने के पश्चात अंजनी का व्यक्तित्व ही बदल गया, वह तड़प उठी। उसके मन ने अनुभव किया कि मेरे साथ छल हुआ है। भगवान शिव जी मेरे पिता का दिया हुआ श्राप पूरा कर गए हैं। मैं तो कांपती जा रही हूं।

जैसे कुदरत की मर्यादा है-वह गर्भवती हो गई तथा बच्चे को जन्म देने के समय ही वह अपने मठ में से निकली। उसको मठ में से निकलते हुए किसी ने न देखा। निकलकर सीधी वन की ओर चली गई। वन में ही उसने एक बच्चे को जन्म दिया। बच्चे को जन्म देते ही वह आकाश में उड़ गई। उसने न तो बच्चे का मुंह देखा और न ही किसी पुरुष का।

अंजनी के बालक का नाम हनुमान रखा गया। बड़ा होकर वह पवन पुत्र कहलाया। उस में महान शक्तियां आ गईं। फिर हनुमान जी युवा होकर दक्षिण के जंगलों में चले गए और अपनी सेना बना कर रहने लगे। वह बहुत शक्तिशाली थे क्योंकि भगवान शिव ने इनकी आत्मा एक भील को मारकर प्रवेश की थी। उनका शरीर भी बहुत विशाल था।

रावण को मारने के लिए सीता जी के हरण की लीला भगवान ने रची। रावण सीता जी को उठा कर लंका ले गया। सीता को ढूंढते हुए श्री रामचन्द्र जी जब दक्षिण के जंगलों में पहुंचे तो वहीं उनका मेल हनुमान जी से हुआ। हनुमान ने श्री रामचन्द्र जी के जी भरकर दर्शन किए है।

श्री रामचन्द्र जी का हुक्म पाकर हनुमान जी सीता जी को ढूंढने के लिए अपनी वानर सेना सहित निकल पड़े। ढूंढते-ढूंढते सागर के

किनारे आकर रुक गए। सागर बहुत विशाल था, जब सागर की ओर देखा तो कुछ घबराए। उनको अपनी शक्ति और बल का ज्ञान नहीं था, क्योंकि बचपन में एक ऋषि ने उनकी शरारतों से तंग आकर उन्हें श्राप दिया था कि तुम अपनी सारी शक्ति और बल भूल जाओगे, जब तुम्हें कोई तुम्हारी शक्ति और बल का ज्ञान कराएगा तो सारी शक्ति और बल फिर से आ जाएगा। उस समय उनके साथी सुग्रीव ने कहा–हे हनुमान ! अपने बल को पहचानो, अपनी शक्ति को याद करो, तुम्हारे अंदर बहुत बल है, तुम सरलता से इस सागर को लांघ सकते हो, जरा कहो जय श्री राम।

हनुमान जी ने 'जय श्री राम' कह कर एक किलकारी मारी जो कि बहुत गर्जवीं थी जिससे धरती और आकाश कांप उठे। हनुमान जी ने जैसे ही बांह फैलाई और उछले तो पक्षियों की तरह आकाश में उड़ गए। नीचे सागर की लहरें छलांगें लगा रही थीं। आकाश में उड़ते हुए हनुमान जी रावण की सोने की लंका में पहुंच गए। वहां अशोक वाटिका में सीता जी के दर्शन किए और उन्हें श्री रामचन्द्र का संदेश दिया। रावण की सारी अशोक वाटिका उन्होंने तबाह कर दी। हनुमान जी को लंकापति रावण के समक्ष पेश किया गया और दरबार में उनकी पूंछ को आग लगा दी गई जिस पर उन्होंने अपनी पूंछ से सोने की लंका को जला दिया। अनेकों आदमी इस अग्नि में जल गए, फिर भी निकल कर सागर पार कर लिया। सीता जी का संदेश श्री रामचन्द्र जी तक पहुंचाया। श्री राम जी से कहा–हे प्रभु ! लंका पर चढ़ाई करो सीता माता जी बहुत दुखी हैं।

श्री रामचन्द्र जी ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए वानर सेना तैयार की। हनुमान जी की सेना बहुत बड़ी थी। दक्षिण के सारे वानर बहु-संख्या में एकत्रित हो गए और रामेश्वर के मुकाम पर आ गए जब श्री रामचन्द्र जी ने सागर पर सेतु बांधना आरम्भ किया तो हनुमान

जी ने बहुत कार्य किया। अपनी शक्ति से भारी पत्थरों को उठाया और राम नाम लिख कर पानी में फैंकते गए और विशाल सागर पर सेतु बांध दिया।

हे जिज्ञासु एवं भक्त जनों ! महांवीर हनुमान जी की अनेक प्रकार की कथाएं हैं जो भी इनका श्रवण करता है, उसका कल्याण होता है।

राम भक्त हनुमान जी ने लंका पर चढ़ाई के समय रावण के विरुद्ध युद्ध में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। उन्होंने एक महान कार्य किया। वह कार्य आज तक विख्यात है। रावण के विरुद्ध युद्ध में लक्ष्मण जी मूर्छित हो गए। लक्ष्मण का मूर्छित हो जाना श्री रामचन्द्र जी के लिए असहनीय था। वह विलाप करने लगे। वैद्य को बुलाया गया। उसने विनती की कि हे प्रभु ! लक्ष्मण जी मूर्छित हैं वह ठीक हो सकते हैं।

'कैसे ठीक हो सकते हैं ? वैद्यराज जी, जल्दी बताएं।' श्री रामचन्द्र जी ने उनसे पूछा। उनका प्रिय भाई और साथी युद्ध भूमि में मूर्छित पड़ा था, वह बात नहीं कर रहा था। श्री रामचन्द्र जी दुःख से व्याकुल हो रहे थे।

वैद्य जी ने कहा–'द्रोणा गिरि पर्वत पर संजीवनी बूटी है, अगर वह आ जाए तो लक्ष्मण जी की मूर्छा ठीक हो सकती है।'

श्री रामचन्द्र जी–'वैद्य जी ! वह बूटी आ सकती है।'

वैद्य–'कौन लाएगा ? ऐसा शक्तिवान कौन है, जो रातों रात समुद्र पार करके जाए और संजीवनी बूटी सुबह युद्ध छिड़ने से पहले लेकर आ जाए।

श्री रामचन्द्र जी 'हमारा वीर हनुमान जाएगा। जिसके पास समस्त शक्तियां हैं।'

यह कह कर श्री रामचन्द्र जी ने हनुमान जी को आदेश दिया कि वह शीघ्र जा कर संजीवनी बूटी ले आएं। उसी समय हनुमान जी

ने 'श्री राम' का नाम लिया और आकाश में उड़ कर शीघ्र ही द्रोणा गिरि पर्वत पर जा पहुंचे। वहां पहुंच कर उन्होंने देखा कि सारा पर्वत ही दीपमाला की तरह जगमगा रहा था। हर एक बूटी जगमग कर रही थी। उस पर्वत की ओर देख कर हनुमान जी ने विचार किया कि कौन-सी बूटी लेकर जाऊं, अगर एक बूटी ले गया और जरूरत दूसरी की हुई तो फिर आना मुश्किल हो जाएगा। क्या पता लक्ष्मण जी होश में न आएं। उन्होंने श्री रामचन्द्र जी का नाम लेकर ऐसे छलांग मारी कि शरीर का आकार पर्वत जितना बढ़ा लिया। हनुमान ने लम्बे हाथ से पर्वत उखाड़ दिया और हाथ में पर्वत उठाकर लंका की ओर उड़ने लग गए। वह रातो-रात लंका की धरती पर पहुंच गए। लोगों ने देखा कि जगमगाता पर्वत चला आ रहा है। उन्होंने सोचा शायद कोई नगरी ही उड़ कर आ रही है। यह देखकर लोगों का दिल दहल गया।

हनुमान ने पर्वत उस स्थान से दूर रख दिया जहां पर लक्ष्मण मूर्छित पड़े हुए थे। वैद्य ने संजीवनी बूटी ली और लक्ष्मण को स्वस्थ कर दिया। वह उठकर जब बैठे तो हनुमान, श्री राम चन्द्र, सुग्रीव आदि बड़े प्रसन्न हुए। ऐसे बलशाली श्री हनुमान की महिमा अपरम्पार है। जिसने भी परमात्मा की अटूट हृदय से भक्ति की उसका संसार में यश गान हुआ।

इसलिए :-

जप मन साखी ते धर धिआन ॥ तेरा होई जाई कलिआन ॥

गनिका

गनिका एक वेश्या थी जो शहर के एक बाजार में रहती थी। वह सदा पाप कर्म में कार्यरत रहती थी। उसके रूप और यौवन सब बाजार में बिकते रहते थे। वह मंदे कर्म करके पापों की गठरी बांधती जा

रही थी। जब सायं हो जाती तो उसके घर में रौनकें बढ़ जाती तथा महफिलें सजी रहतीं। रात को दीया जलते ही वह हार- शृंगार करके अपने सुन्दर यौवन को आकर्षित करती हुई बैठ जाती।

पर - सूआ पड़ावत गनिका तरी ॥
सो हरि नैनहु की पूतरी ॥ (पन्ना ८७४)

भक्तों ने वचन किया है कि तोते को पढ़ाती हुई गनिका भवजल से तर गई। वह परमात्मा के नयनों की पुतली बनी। वह भक्तों में गिनी जाने लगी। उसका ऐसा जीवन बदल गया।

उसके पाप एवं नरकी जीवन में से निकलने की कथा इस प्रकार है–वह बुरे कर्मों में व्यस्त हुई जीवन को ही भूल गई थी। मनुष्य जीवन के मनोरथ का उसे बिल्कुल भी ज्ञान नहीं था। एक दिन एक साधू जिसके पास एक तोता था, वहां आ गया।

कहते हैं कि वह साधू नगर से बाहर रहता था। वह भीड़–भाड़ में कम ही आता। उस रात इतनी वर्षा हुई कि वहां ऊंची–नीची धरती जल–थल दिखाई देने लगी। साधू ने देखा कि सर्दी से उसका तोता भी मरने लगा है। यह तोता उसको प्राणों से भी प्यारा था, क्योंकि वह 'राम–राम' जपता था। उसने तोते के पिंजरे को उठाया तथा नगर की ओर चल पड़ा। उसने अपनी गोदड़ी तथा अन्य वस्त्र ऊपर लिए हुए थे। कुदरत की शक्ति का मुकाबला करना उसके वश से बाहर था। वह पैदल चलता हुआ नगर आ गया, पर कोई ठिकाना न मिला। रात का समय था। सब लोग अपने–अपने घरों में द्वार बंद करके बैठे हुए थे। बहुत घूमने–फिरने पर भी साधू को कोई ठिकाना न मिला, वह चलता रहा।

गनिका का घर आया। दीया जल रहा था, द्वार भी खुला हुआ था। वह राम का नाम लेकर भीतर चला गया। गनिका उसे देखकर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुई। उसने सोचा कि वर्षा और तूफान में

भी उसके पास ग्राहक आया है, जो उसके तन का सौदा करेगा और उसको पैसे खटाएगा। उसने बड़ी खुशी से कहा......आओ, मेरी आंखों में बैठो, मैं आपका रास्ता देख रही थी।

गनिका की यह बात सुन कर और उसके रूप तथा शृंगार को देख कर साधू बड़ा हैरान हुआ। साधू ने गनिका से कहा-'पुत्री ! बाहर वर्षा बहुत हो रही है जिस कारण मेरी झोंपड़ी बह गई। मैं अपने तोते सहित सहारा लेने आया हूं।'

'पुत्री' शब्द से गनिका का पापी मन कांप उठा। वह एक बार कांपी तथा फिर मायूस होकर बोली-'आप ने रात ठहरना है ?

हां, 'पुत्री ! हमने रात ठहरना है। हरेक आत्मा परमात्मा का अंश है और शरीर आत्मा का घर। शरीर को आश्रय देना नेक मार्ग पर चलना होता है। पुत्री ! परमात्मा ने तुम्हें सुख के सभी साधन दिए हैं, तुम उसे याद करती होगी।

साधू सहज स्वभाव बोलता गया। उसकी आत्मा सचमुच ही बड़ी निर्मल थी, परन्तु गनिका जिसका वास्तविक नाम 'चन्द्रमणी' था, वह साधू की बातें सुनकर घबराने लगी। वह तो पापिन थी, उसने घबरा कर कहा-'आप साधू हैं ?'

हां, 'मैं साधू हूं। मेरे मालिक ने मुझे साधू बना कर अपने नाम के सिमरन में लगाया है। वही मालिक सबका जीवन दाता और अन्न दाता है।'

गनिका के मन में भी कुछ नेक भाव आए, क्योंकि उस दिन से पहले उस जैसा साधू महात्मा पुरुष पहले कभी भी उसके पास नहीं आया था जो उसको पाप कर्म की ओर न लगाता। उसके पास वही पुरुष आते जो उसके तन का सौदा करके उसके मैले मन पर और अधिक मैल फैंक देते। उस दिन गनिका सुबह स्नान करके घूमती रही। वर्षा अभी भी हो रही थी।

'आप साधू हैं, भगवान के भक्त ! ठीक है। आओ......बैठो और भीगे वस्त्र उतार कर दूसरे वस्त्र पहन लो। गनिका को शायद जीवन में पहली बार साधू की सेवा करने का अवसर मिला है। आओ...... क्या पता मेरे जीवन में ऐसी घटना होनी होगी।'

यह कह कर उसने साधू के भीगे वस्त्र उतरवाए और उसे गर्म वस्त्र दिए। उसने साधू और तोते के लिए आग जलाई। जब वह गर्म होकर अपने आपको ठीक अनुभव करने लगे तो तोते ने अपनी आदत अनुसार राम का नाम लेना शुरू कर दिया। चन्द्रमुखी गनिका को उनकी बातें अनोखी लगी। उसने साधू से पूछा-'महाराज ! भोजन करोगे ?'

हां, 'पुत्री ! मैं भी भूखा हूं और यह पक्षी भी भूखा है, जो भगवान ने हमारी किस्मत में लिखा है, वह देगा। आज नहीं तो कल। उसकी जैसी इच्छा है वैसा ही होना है।' साधू ने उत्तर दिया।

'मेरे पास जो कुछ है उसको स्वीकार करें-पर मैं गनिका (वेश्या) हूं, जिसे इस घर में आए बारह साल हो गए हैं। पुरुषों के मन की खुशियां पूरी करती रही हूं। मैं तो पापिन हूं, पापिन के घर का भोजन ! गनिका चन्द्रमुखी ने कहा। उसके चेहरे पर गम्भीरता आ गई, शायद उसके जीवन में यह पहली घटना थी।

साधू ने देखा, गनिका ने अपने पाप कर्मों को अनुभव कर लिया है। अब इसको उपदेश देना ठीक है। साधू ने कहा-'तुम्हारा दिया भोजन स्वीकार होगा। इस जगत में माया का प्रवेश है। माया का प्रभाव जब जीव पर पड़ता है तो वह भगवान को भूल कर काम, क्रोध और मोह में फंस जाता है। जीवन मार्ग से दूर हो जाता है, राम नाम का सिमरन नहीं करता। कुछ ऐसे पुरुष होते हैं जो अपने ही स्वार्थ के लिए किसी दूसरे को कुमार्ग पर भेज देते हैं, ऐसा ही जगत का दस्तूर है।'

ठीक है महाराज ! आप सत्य कहते हैं। पुरुषों ने ही मुझे कुमार्ग पर डाला है। मैं पापिन हूं, पर पापिन होने का ज्ञान मुझे आपके ही दर्शन करने पर हुआ है। जब आपने मुझे 'पुत्री' कहा। मेरे घर में चाहे जवान आए चाहे बूढ़ा, कभी मुझे बहन या पुत्री किसी ने नहीं कहा। न ही मुझे पता है कि मेरी मां कौन थी और पिता कौन ? बस ऐसे ही जीवन व्यतीत होने लगा। वर्षा होते दो दिन हो गए लेकिन वह नहीं आए जो अपने स्वार्थ के लिए आते थे।

इस प्रकार गनिका चन्द्रमुखी को ज्ञान होता गया। उसका शरीर और मन कांपने लगा। उसको ऐसा अनुभव होने लगा जैसे उसमें एक महान परिवर्तन आ रहा हो। एक दर्द और पीड़ा हो रही थी।

मतलब ही तो सब कुछ है, इस समाज की जान है। मुझे और मेरे तोते को मतलब था आसरा लेने का, हम चल कर आ गए। इस मतलब के दो रूप हैं एक तो है मायावादी तथा दूसरा ईश्वरवादी। अगर जीव को यह मतलब हो कि उसका जीवन अच्छा बने, तो वह राम नाम का सिमरन करने के लिए साधू-सन्तों और नेक पुरुषों की संगत करे। सेवा का भाव अपने मन में रखे। धर्म और समाज की मर्यादा कायम रखे तो ठीक है । देख पुत्री ! अगर तुमने एक पति धारण किया होता, उसकी सेवा करती, उससे ही तन और मन की जरूरत पूरी किया करती तो बच्चे होते। बच्चों और पति की सुख-शांति के लिए पूजा-पाठ करती, सभी तुझे देवी कहते। जीव कर्म से जाना जाता है शरीर से नहीं। इसलिए भला है, जो बीत गया सो बीत गया, आगे से नेक मार्ग पर चलना। भगवान, जिसने जीवन दिया है, वह रोजी-रोटी भी देता है।

गनिका चंद्रमुखी ने साधू को भोजन कराया। उसने तोते को चूरी खिलाई और उनके चरणों में लग गई। साधू की संगत ने उसके मन को बदल दिया तथा उसको पापों का एहसास करा दिया। इसीलिए

तो सद्पुरुष हमेशा कहते हैं कि सदा साधू-सन्त, गुरु पीर, नेक पुरुषों की संगत करनी चाहिए। भाई गुरदास जी ने संगत का बहुत ही बड़ा महत्व बताया है। भाई गुरदास जी फरमाते हैं :-

सण वण वाड़ी खेत इक परउपकार विकार जणावै।
खल कढाइ वढाइ सण रसा बंधन होई बनावै।
खासा मलमल सिरीसाफ सूत कताइ कपाह वणावै।
लजण कजण होइकै साध असाध बिरद बिरदावै।
संग दोख निरदोख मोख संग सुभाउ न मान मिटावै।
त्रपड़ होवै धरमसाल साध संगति पग धूड़ धुमावै।
कुटकुट सण किरतास कर हरिजस लिख पुराण सुणावै।
पतित पुनीत करे जन भावै। (१९-२५)
पथर चित कठोर है चूना होवै अगीं दधा।
अग बुझै जल छिड़कीऐ चूने अग उठै अति वधा।
पाणी पाए विहु न जाइ अगन ना फुटे अवगुण बधा।
जीभै उते रखिआ छाले पवन संग दुख लधा।
पान सुपारी कथ मिल रंग सुरंग संपूरण सधा।
साध संगति मिल साध होइ गुरमुख महां असाध समधा।
पाप गवाइ मिले पल अधा। (२०-२५)

साधू-संगत का ऐसा फल है कि जो गनिका के मन पर प्रभाव डाल गया। वह सारी-सारी रात सत्संग करती रहती।

अगले दिन वर्षा बंद हो गई। आकाश बिल्कुल साफ हो गया। धूप निकली तो साधू ने चलने की तैयारी की। तब गनिका चन्द्रमणी ने प्रार्थना की 'महाराज ! मुझ पर एक उपकार करो, यह तोता दे जाओ। मैं इससे 'राम नाम' सुना करुंगी, इसको पढ़ाया करूंगी। अच्छा हो अगर आप भी यहां पर ही रहें।

अच्छा पुत्री ! अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो यह लो पिंजरा। इसको

संभाल कर रखना, हम अपनी कुटिया में जाते हैं। तुम्हारे घर रहने से लोग तुम्हारी और मेरी दोनों की निंदा करेंगे। लोक निंदा करानी अच्छी नहीं होती। हम चलते हैं।'

यह कह कर साधू चला गया। वह अपना तोता छोड़ गया। वह तोता राम का नाम बोलता। गनिका कहती, बोल गंगा राम 'राम-राम'।

गनिका चन्द्रमणी को ऐसी लगन लगी कि वह दिन-रात गंगा राम को 'राम' नाम का पाठ पढ़ाने लगी। उसका मन पाप कर्मों से हट गया। उसने राम नाम की धुनी गानी शुरू कर दी। धीरे-धीरे उसकी बैठक खाली रहने लगी और 'राम नाम' की गूंज आने लगी। उसे तन और मन की होश न रही। वह भूखी ही 'राम' नाम जपती रहती।

गनिका चन्द्रमणी की भक्ति देख कर भगवान प्रसन्न हो गया। उसने चन्द्रमणी को अपने पास बुलाने के लिए एक बहाना बना लिया। वह बहाना यह था कि उसने पिंजरे में सांप का रूप धारण करके अपने काल दूत को भेजा। उसने पहले तोते को डंक मारा, उसकी आत्मा को पहले भेज दिया तथा फिर बैठा रहा। गनिका उठी, उसने तोते को बुलाया, बोल गंगा राम 'राम-राम।' पर उसको कोई आवाज़ न आई। उसने अपना हाथ पिंजरे में डाल कर तोते को हिलाया तो सांप ने उसको डंस लिया। उसी समय उसकी आत्मा शरीर त्याग गई। आत्मा के लिए बिबान आया, नरसिंघे बजे। शंखों की धुन में वह मृत्यु -लोक से स्वर्ग-लोक में पहुंच गई। इस कथा पर भाई गुरदास जी ने कहा है-

गई बैकुण्ठ बिमान चढ़ नाम नाराइण छोत अछोता।
थाऊं निथावें माण मणोता।

कपिल मुनि

कोलकाता का दरिया हुगली जहां सागर में जा कर मिलता है उस स्थान को 'गंगा-सागर' संगम कहा जाता है। माघी वाले दिन वहां महापर्व या मेला लगता है। उस स्थान को कपिल मुनि का आश्रम माना जाता है जो सतयुग में हुए।

कपिल मुनि के बारे गुरुबाणी में लिखा है :-

गावहि कपिलादि आदि जोगेसुर अपरंपर अवतार वरो ॥

(पन्ना १३८९)

इसका भाव यह है कि परमात्मा को कपिल देव जैसे मुनि और योगी भी याद करते है, जो एक महर्षि और अवतार थे। उनको लोग अभी तक याद करते हैं तथा वह भक्ति में लिवलीन रहे।

महर्षि कपिल मुनि, ऋषि मनु की पुत्री देवहुती का पहला पुत्र था जो सरस्वती के किनारे पैदा हुआ तथा आश्रम में पला।

मनु जी ने देवहुती का विवाह करदम ऋषि से कर दिया था। वह बहुत ही सूझवान और त्रिकालदर्शी था। उसकी कुटिया कुदरत के घर में थी और वह सदा भक्ति और ज्ञान में लिवलीन रहता। वह देवहुती को अत्यंत प्यार करता था, क्योंकि देवहुती जितनी सुन्दर थी, उतनी ही अक्लमंद और सूझवान थी। वह पतिव्रता नारी थी, उसने कभी आंख उठा कर भी किसी पर-पुरुष की ओर नहीं देखा था। उसका ज्ञान, धर्म तथा कर्म सूर्य और चांद की किरणों के समान निर्मल और पवित्र था।

दिन व्यतीत होते गए और ऐसा समय आया कि वह अनजाने बच्चे की मां बन गई। जैसे ही बच्चे ने उसके गर्भ में प्रवेश किया वैसे ही उसको बहुत सुन्दर-सुन्दर सपने आने लगे। वह सोते-जागते मन में अच्छी भावना रखने लगी।

उसने एक दिन अपने पतिदेव से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि 'हे नाथ ! मुझे ज्ञान उपदेश दिया करो, क्योंकि मैंने सुना है कि अगर माता बच्चे को गर्भ में रख कर अच्छी भावना मन में करे, अच्छा ज्ञान सुने तो उसका पुत्र महान ज्ञानवान बनता है। मेरी इच्छा है कि मेरा पुत्र महर्षि बने।'

करदम ऋषि ने जब अपनी पत्नी से ऐसी प्रार्थना सुनी तो वह बोले– हे देवहूती ! तुम्हारी बात ठीक है। बच्चे के स्वभाव और ज्ञान पर माता-पिता के गुणों और कर्मों का प्रभाव पड़ना जरूरी है, तुम देव पूजा किया करो, ज्ञान सुना करो। पर मुझे एक बात का अनुभव होता है?

'किस बात का अनुभव होता है नाथ ! मुझे भी बताओ। देवहूती ने पूछा।

बात यह है कि मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस बालक ने तुम्हारी कोख को पवित्र किया है वह जरूर कोई अवतार है। हो सकता है विष्णु अवतार हो। क्योंकि ऐसा ही प्रभाव पड़ा नजर आता है। जब तुम चलती हो, जहां भी जाती हो, कुदरत तुम्हारा स्वागत करती है। मुरझाए फूल खिल जाते हैं। तुम्हारे चेहरे पर भी चमक है।

हे नाथ ! आपके वचन सत्य हो। मेरे सौभाग्य जो मैं ऐसे बच्चे को जन्म दूं। इस प्रकार पति-पत्नी बातें करते हुए उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे जिस दिन बच्चे ने जन्म लेना था। पहली बार रोना था और जगत को हंसाना था, सूर्य की किरणें देखनी थीं, जगत की हवा लेनी थी। कितना भाग्य वाला अच्छा दिन होता है वह जब किसी के घर कोई बच्चा जन्म लेता है।

बच्चे ने प्रभात के समय जन्म लिया। जन्म होने के पश्चात करदम मुनि ने जब बच्चे को देखा तो वह खुशी से उछल पड़ा। बच्चे के नेत्र कमल जैसे थे। चेहरा प्रभावशाली और सरवन चक्र वाला था।

खुशी की लहर में झूमते हुए उसने बच्चे का नाम 'कपिल' रख दिया। इसलिए नामदेव या कपिल मुनि अपने नेत्रों और भूरे सुनहरी बालों के कारण बहुत मशहूर हुए थे। आपको भगवान का अवतार भी माना जाता है।

कपिल मुनि कोई आठ नौ साल के हुए तो उसकी मां ने ऐसे चमत्कार देखे जिससे वह विष्णु का अवतार सिद्ध हो गए। उसने अपने पुत्र से ज्ञान प्राप्त किया और उपदेश लिया। कपिल घोर तपस्या करने के लिए जंगलों में चला गया। घूमते-घूमते गंगा सागर पर अपना आश्रम बना लिया। कई हजार साल तपस्या करता रहा।

बोलो भक्तों की जै ! सतिनाम श्री वाहिगरु !

अजामल

अजामल उधरिआ कहि ऐक बार ॥ *(पत्रा ११९२)*

हे भक्त जनो ! अजामल की कथा श्रवण करो। इस कथा के श्रवण करने वाले को यम भी तंग नहीं करता। वह ऊंचे चाल-चलन वाला बनता है। सुनने वाले के पाप मिटते हैं। उसका कल्याण होता है, उसे मोक्ष मिलता है।

अजामल उस समय का बहुत बड़ा पापी माना गया है। वह पापी किसलिए था ? उसने क्या कसूर किया था ? इसकी कथा इस प्रकार है :-

अजामल एक राज-ब्राह्मण का पुत्र था। उसका पिता राजा के पास पुरोहित भी था और वजीर भी। वह बहुत अक्लमंद था। उसके सूझवान होने की चर्चा चारों ओर थी।

अजामल की आयु जब पांच साल की हुई तो उसके माता-पिता ने उसको विद्यालय में दाखिल करवा दिया। वह जिस गुरु से पढ़ता था वह बहुत ही सूझवान था। सूझवान गुरु को जब सूझवान शिष्य

मिल जाता है तो वह बहुत खुश हो जाता है। ऐसी ही हालत अजामल के गुरु की भी थी। उसने देखा कि अजामल की ज़ुबान पर सरस्वती बैठी है वह जो भी शब्द पढ़ता या सुनता वही कंठस्थ कर लेता। उसका कंठ भी रसीला था। जब वह वेद मंत्र पढ़ता तो एक अनोखा ही रंग दिखाई देता था। वह बहुत ही बुद्धिमान निकला। उसने केवल दस साल में ही बीस साल की विद्या प्राप्त कर ली। उसकी विद्वता की चहुं ओर प्रसिद्धि हो गई। ऐसी प्रसिद्धि कि बड़े-बड़े विद्वान भी उसके दर्शन करने आते थे।

एक दिन अजामल के गुरु ने कहा-'अजामल ! अभी तुम शिष्य हो !'

'हां, गुरुदेव मैं शिष्य हूं-पर कितनी देर शिष्य रहूंगा ?' 'कोई चार साल और लगेंगे। चारों वेद और उपनिषद पूरे हो जाएंगे।'

'जो आज्ञा गुरुदेव।'

उसके गुरु ने उसकी ओर ध्यान से देख कर कहा- अजामल जब मेरे पास आओ या अपने घर को जाओ तो नगर से बाहर-बाहर आया-जाया करो। नगर में कभी नहीं जाना, क्योंकि अभी तुम्हारे वस्त्र विद्यार्थी के हैं। गुरु की आज्ञा का पालन करना होगा। आज्ञा का पालन न किया तो दु:ख उठाओगे। सुखी वही रहता है जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है, क्योंकि गुरु को हर प्रकार के ज्ञान और कर्म का बोध होता है।'

हे गुरुदेव ! क्या मैं पूछ सकता हूं कि आप मुझे नगर में आने से क्यों रोकते हो ? अजामल ने उत्तर दिया। उसका उत्तर सुनकर गुरु चुप कर गया। केवल इतना ही कहा-नगर से बाहर-बाहर आया-जाया करो, ऐसा ही कर्म है।

अजामल ने गुरु की आज्ञा का पालन किया। वह नगर के बाहर बाहर ही आया-जाया करता था। न ही वह इस बारे किसी से बात

किया करता था कि उसके गुरु ने उसको नगर में जाने से मना किया है। इस तरह कई साल बीत गए। वह विद्या पढ़ता रहा। उसकी आयु अब बीस साल की हो गई। वह बहुत सुन्दर दर्शनी जवान निकला। नेत्रों में डोरे आए उसकी विद्या पूरी होने वाली थी। उसके पश्चात उसने गुरु दक्षिणा दे कर आज़ाद हो जाना था।

एक दिन उसका अपने मन से झगड़ा हो गया। उसने कहा, गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करके नगर में से जाना ही ठीक है। आखिर यह तो देखा जाए, गुरु जी रोकते क्यों हैं ?

उसके एक मन का यह भी कहना था कि अजामल ! गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करेगा तो नरक का भागी होगा, बहुत दुःख भोगेगा।

देखा जाएगा, अजामल ने मन सुदृढ़ किया और वह अपने गुरु के पास से उठ कर उस मार्ग को छोड़ कर जिससे वह रोज़ आया-जाया करता था, अनदेखे रास्ते से नगर में से चल पड़ा।

अजामल के गुरु ने उसको इसलिए नगर में जाने से रोका था क्योंकि नगर में माया का विस्तार था। धन के रूप के चमत्कार ऐसे थे कि नौजवान का मन उस ओर शीघ्र आकर्षित हो जाता था। नवयुवक को पूर्ण ज्ञान नहीं होता था। गुरु के आश्रम के आगे वेश्याओं का बाजार था, सारी ही वेश्या नगरी थी। उस मुहल्ले में वेश्याएं बैठती थीं। वह युवा-पुरुषों को अपने वश में करती थी। ऐसी हवा से बचाने के लिए ही गुरु ने अजामल को रोका था। गुरु चाहता था कि अजामल राजपुरोहित बन जाए। जब विवाह हो जाएगा तो फिर इस ओर ध्यान नहीं जाएगा। ऐसा ही विचार गुरु का था, क्योंकि गुरु के लिए शिष्य ही उसका पुत्र होता है, उसका ध्यान रखना गुरु का कर्त्तव्य और धर्म होता है। शिष्य का भी धर्म है कि वह गुरु की सेवा करे, उसकी आज्ञा का पालन करे। अजामल जब जाने लगा तो गुरु ने

स्मरण करवाया कि अजामल ! शहर के अन्दर मत जाना ।

'बहुत अच्छा गुरुदेव' कह कर अजामल चल पड़ा। पर वह आश्रम में से निकल कर नगर के अंदर ही अंदर द्वार की ओर चल पड़ा। वह जैसे ही द्वार के भीतर गया, वैसे ही उसे नगर की महिमा बड़ी अनोखी-सी लगी। बहुत चहल-पहल थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि सुन्दर नारियां हाव-भाव करती इधर-उधर घूमती दिखाई दीं। वह पुरुषों से मधुर बातें करती थीं। उनके रूप बहुत सुन्दर थे। नरगिस के फूल जैसे नयन थे। उनके अर्द्ध-नग्न तन गुलाब की पत्तियों की तरह चमकते थे। वह शोभा वाली थी।

उन सुन्दर नारियों को देखता हुआ अजामल अपने घर को चला गया। घर जाकर उसका मन पढ़ने और पाठ याद करने में न लगा। उसका मन बेचैन हो गया तथा जो कुछ देखा था वहीं सामने घूमने लगा। जब रात को नींद आई तो वही सपने आते रहे जो उसने नगर में देखा था। सुबह उठ कर स्नान किया। जब गुरु के पास गया तो गुरु ने उसकी आंखों में लाली देखी और पूछा-अजामल ! रात सोए नहीं, क्या बात है ?

'सोया था गुरुदेव !'

'आंखें लाल और मन उखड़ा-सा क्यों है ?'

'पता नहीं गुरुदेव ?'

'नगर से बाहर-बाहर गया था, बाहर-बाहर आया था।'

अजामल ने पहले तो गुरु की आज्ञा का उल्लंघन किया और बाद में दूसरी महान भूल यह की कि गुरु से झूठ बोल दिया। उसने झूठ बोलते हुए कहा-गुरुदेव बाहर-बाहर गया था। वह झूठ बोला। इसलिए उसकी आत्मा कांपी, पर वह झूठ बोल चुका था।

उस दिन पढ़ने में मन न लगा। दो दोष हो गए। अजामल के मन पर बहुत भार रहा। दूसरा उसकी आंखों के सामने नगर के नजारे

थे वह पाठ को पढ़ने नहीं देते थे। जैसे तैसे उसने समय व्यतीत किया। जब छुट्टी मिली तो फिर उस नगर के रास्ते ही चल पड़ा। उस नगर की वासना भरी महिमा को देखता रहा। देखता-देखता वह घर चला गया।

इस प्रकार दस-बारह दिन व्यतीत हो गए। वह नगर आता-जाता रहा। नारी रूप लीला ने उसके युवा मन को प्रभावित कर दिया। जादू जैसा असर और उसका मन डगमगाने लगा। जब मन डगमगा जाए तो मनुष्य शीघ्र शिकार हो जाता है। एक दिन एक रूपवती नवयौवना अभी खिलती जवानी 16-17 वर्ष की आयु वाली वेश्या ने उसका बाजू पकड़ लिया। उसे जाल में फंसा कर पाप कर्म की तरफ लगा लिया। वह अधिकतर समय उसके पास बैठा रहा। वह भोग-विलास में डूब गया और फिर घर चला गया। घर उसे पराया-सा लगा। उसकी आंखों में नींद न आई। सुबह पढ़ने के लिए गुरु आश्रम में समय पर न पहुंच सका।

पहले ही अजामल ने मंदे कर्म-दोष किए थे। एक गुरु की आज्ञा की अवज्ञा तथा दूसरा झूठ बोलना। उसने अब दो पाप और कर दिए। एक जूठन खाई और पराई नारी का गमन करना। वह वासना की ओर बढ़ गया। वेश्या का जूठा भोजन भी खा लिया। इन चारों ही महां-दोषों ने उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी। वह गुरु के पास जाता लेकिन मन भटकने से पाठ न कर पाता।

उसका सूझवान गुरु यह सब कुछ जान गया था लेकिन अपने मन की तसल्ली करने के लिए एक दिन अपने शिष्य अजामल के पीछे-पीछे चल पड़ा। उसने अपनी आंखों से देख लिया कि उसका बुद्धिमान शिष्य अजामल एक वेश्या के दर पर चला गया है। वह वापिस लौट आया और बहुत बैचेन रहा। अगले दिन जब अजामल आया तो गुरु ने उसे कहा-अजामल इस आश्रम से चले जाओ, तुमने जो कुछ पढ़ना

था वह पढ़ लिया है। यह कह कर गुरु ने अजामल को भेज दिया। तदुपरांत गुरु ने अजामल के पिता को बुलाकर कर कहा-

'आप अजामल का विवाह कर दें। इसका अब कुंवारा रहना योग्य नहीं।'

अजामल का पिता राजपुरोहित था। राजपुरोहित होने के कारण उसके लिए अजामल का विवाह करना कोई मुश्किल कार्य न था। उसने शीघ्र ही अजामल के लिए योग्य कन्या देखकर उसे परिणय सूत्र में बांध दिया।

अजामल का विवाह हो गया। उसके घर एक सुन्दर, सुशील, गुणवंती तथा तेजवान दुल्हन आ गई । लेकिन अजामल का मन अब भी चंचल ही रहा। वह अपनी पत्नी से तृप्त न हुआ। वह वेश्या के द्वार पर फिर जाने लग गया। परन्तु उसका वेश्या के पास जाना छिपा न रह सका। इसका सब को पता चल गया। उसकी धर्मपत्नी ने काफी यत्न किए कि वह उसके पास ही रहे। सोलह श्रृंगार भी किए, नृत्य तथा संगीत से उसे प्रसन्न करने का प्रयास किया लेकिन अजामल का मन पापी ही रहा। वेश्या की जूठन और शराब ने उसकी बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया था। उसकी सत्यवंती पत्नी अनेक प्रयास करके हार गई।

एक दिन अजामल का पिता परलोक गमन कर गया। उसके पश्चात राजा ने अजामल को राजपुरोहित बना दिया। राजपुरोहित बनने पर उसकी जिम्मेदारी और बढ़ गई। वह धर्म, समाज और राज्य का अध्यक्ष बन गया। धन-दौलत काफी बढ़ गई। किसी बात की कमी न रही, तब भी उसने न सोचा। वह सोचता भी कैसे ? पांच दोष उसके ऊपर लग गए थे। गुरु की आज्ञा की अवज्ञा। झूठ बोलना। जूठन खानी और मदिरापान। पांचवा महान दोष -वेश्या का गमन करना था।

उसने उच्च पदवी मिलने पर भी वेश्या के पास जाना न छोड़ा। शहर में आम चर्चा होने लगी। जो बात छिपी थी, वह दुनिया में जाहिर हो गई, जाहिर भी सूर्य की तरह हुई। उसका नया प्यार एक कलावंती वेश्या से हो गया। वह पापों की पुतली माया रूप धारण कर बैठी थी।

एक दिन अजामल को राजा ने अपने पास बुलाया और पूछा-अजामल ! 'आप राजपुरोहित हैं।'

हां, महाराज ! अजामल ने कहा।

आपके विरुद्ध एक आरोप लगा है।

'क्या आरोप है ?'

'आप कलावंती वेश्या के पास जाते हैं। मदिरा पान करके रंगरलियां मनाते हैं।'

'सत्य है महाराज, इसमें झूठ नहीं। मैं कलावंती के पास जाता हूं, क्योंकि मैं उससे प्रेम करता हूं।'

'क्या यह नहीं मालूम कि कोई भी पंडित कभी ऐसा कर्म नहीं कर सकता, जिससे राज्य में बदनामी का कारण बने और जिसका देश की प्रजा पर बुरा असर पड़े ?'

'यह भी पता है महाराज।'

'फिर कलावंती के पास क्यों जाते हो ? क्या तुम ने अपनी ही बदनामी स्वयं नहीं सुनी ?'

'सुनी है ! लेकिन मैं विवश हूं। मैं कलावंती को छोड़ नहीं सकता। उसके रूप ने मुझे मोह लिया है।'

अजामल और आगे बढ़ गया। वह 'निर्लज्ज' भी हो गया, क्योंकि जिसके पास निर्लज्जता आ जाए उसके पास कुछ भी नहीं रहता। निर्लज्जता सबसे महान दोष या पाप है।

राजा बुद्धिमान था। उसकी आयु अजामल के पिता जितनी थी।

वह जान गया कि उसका राजपुरोहित पापों का भागीदार बन गया है। पाप इसको अच्छे लग रहे हैं। उसने अजामल से कहा 'यदि आप की बात सही है कि वह आपको अपना पति स्वीकार कर चुकी है तो उसे अपने घर ले आओ, घर रहेगी तो लोगों को पता नहीं चलेगा। जितनी देर वहां रहेगी उतनी देर वेश्या है। कर्म करना भी स्थान की जांच करता है। जगह पर ही हर चीज़ की शोभा होती है। आप भी राज पुरोहित है। राज पुरोहित को शोभा नहीं देता कि वह वेश्या के बाजार में जाए।'

'मैं उसको घर नहीं ला सकता, न ही मैं उसको छोड़ सकता हूं। अजामल ने अपना फैसला दे दिया।'

'यह पक्का फैसला है ?' राजा ने पूछा।

'जी हां पक्का फैसला !'

'सोच लो !'

'जी सोच लिया है !'

'देखो अजामल ! आज तो नहीं, अभी से तुम राज पुरोहित नहीं ! खामियां यह हैं ! गुरु की आज्ञा को भंग करना, झूठ बोलना। जूठ खानी, वेश्या गमन, शराब पीनी और निर्लज्जता से मंद कर्मों से रुकने से मना करना। ऐसे दोषों के रहते हुए आप राज पुरोहित रहने के अधिकारी नही। आपको अब शहर से बाहर रहना पड़ेगा। सारी जायदाद और राज महल जो है वह अब आपकी पत्नी और उसके बच्चे को दे दिया जाएगा। आज के बाद इस शहर में मत आना। कलावंती को भी इस शहर से बाहर निकाल दिया जाता है। यह हुक्म है, कोई अपील नहीं न कोई साधन जाओ !'

राजा के हुक्म को सुन कर राज दरबारी और अहलकार सब घबरा गए, लेकिन अजामल पर कोई असर न हुआ। उस समय राजदूतों ने अजामल को धक्के मार कर बाहर निकाल दिया। उसको शहर

से बाहर निकालने का हुक्म हो गया।

अजामल की पत्नी ने जब यह हुक्म सुना तो वह बहुत दुखी हुई। पर राजा के हुक्म को टालना भी कठिन था। नगर वासी भी हैरान हुए। पर अजामल को कोई रोक न सका।

अजामल ने कलावंती को साथ लेकर शहर से बाहर झोंपड़ी बना ली। कलावंती का सारा सामान वहां गया ! गरीबों और अछूतों में रहने लगे। रात दिन भोग-विलास में लगे रहे तो चार बच्चे हो गए। उन बच्चों के लिए अन्न वस्त्र की जरूरत थी। राजा का हुक्म था कि कोई मदद न करें। सभी उसको 'अजामल--पापी' कहने लग पड़े थे और वे चिड़िया-पक्षी मार कर खाने लगे ! नंगे रहने लगे। दुर्दशा इतनी बुरी हो गई कि वह पागलों की तरह खीझ कर बात करने लग गया। शरीर रोगी हो गया। ऐसा रोगी की जीवन की उम्मीद कम हो गई। जब शरीर ऐसा हुआ उससे पहले सात पुत्र हो गए। सातवें पुत्र का नाम नारायण रखा। जैसे भाई गुरदास जी फरमाते हैं :-

पतित अजामल पाप करि जाइ कलावतनी दे रहिआ।
गुर ते बेमुख होइ कै पाप कमावै दुरमति दहिआ।
बिरथा जनमु गवाइअनु भवजल अंदर फिरदा वहिआ।
छिअ पुत जाए वेसवा पापां दे फल इछे लहिआ।
पुत उपंना सतवां नाऊं धरन नो चिति उमहिआ।
गुरु दुआरै जाइ कै गुरमुखि नाउं नराइण कहिआ।

उसने सातवें पुत्र का नाम नारायण रख लिया। दुखी होने लगा। वह पापों और दुखों का एक पुतला बन गया। वह सुबह जंगल को चला जाता और शाम को शिकार करके वापस आ जाता। कलावंती अब एक भारी गृहिणी थी। सात बच्चों की मां थी, और रूप भी अब ढल गया था। वह दुखी होने लगी।

स्त्री-पुरुष का यह स्वभाव है, जब दुःख-कष्ट तन को आए तो

भगवान या नेकी याद आती है। कलावंती को अब पछतावा होने लगा कि उसने एक उच्च ब्राह्मण का जीवन नष्ट किया और अपना भी। पापिन बनी। अगर राजा से क्षमा मांग लेती तो इतना कष्ट न पाती। झौंपड़ी के पास से कोई साधू-संतों की तरफ देखती रहती।

एक दिन देवनेत के साथ समय बन गया कि दो साधू उसकी झौंपड़ी के पास ठहर गए। वह महापुरुष बहुत सूझवान थे। भगवान रूप ! मगर कलावन्ती के पास कुछ नहीं था, जो उनको खाने को देती। वह वैष्णव साधू थे। अजामल शाम को घर आया। वह चिड़िया, बटेर और कबूतर आदि मार कर लाया तो कलावंती ने उस दिन उसको बनाने न दिए। उसने कहा-हे पति देव ! पहले ही पता नहीं किस कुकर्म के बदले यह दशा हुई है। हमें आज मांस नहीं बनाना चाहिए। साधू वैष्णव हैं। हो सकता है कि कोई अच्छा वचन कर जाएं तो हमारे जीवन में कोई सुख का समय आ जाए। सुना है साधू भगवान के भक्त होते हैं।

अजामल-'हे प्रियतमा ! बात तो आपकी ठीक है, पर हम क्या खाएं और इनको क्या दें। मेहमान हैं। घर आए अतिथि को भोजन न देना भी तो घोर पाप है।

कलावंती-यह बात तो ठीक है। इनको खाने के लिए क्या दें। हां, कुछ दाने हैं भूने हुए और गुड़ भी है। वह ही दें दे। आप भी मुट्ठी मुट्ठी चबाकर संतोष से रात बिता लें ! सुबह जो होगा देखा जाएगा।

अजामल बात ठीक है। ऐसा ही करो।

दम्पति ने भूने हुए दाने और गुड़ साधुओं को खाने के लिए दिए। अनुरोध किया, 'महाराज ! हमारे पास तो यही कुछ है। हम गरीब और पापी हैं। कृपा करो ! दया करो ! हे महाराज ! हमारे लिए भगवान से प्रार्थना करो !

भगवान रूप साधू ने वचन किया–'हे अजामल ! त्रिकाल दृष्टि द्वारा हम सब जान गए हैं। आप ब्राह्मण के पुत्र थे, वासना की अग्नि ने आप की बुद्धि सब भस्म कर दी, ठीक है पर जल्दी ही आपका कल्याण होगा। जो आपने अपने पुत्र का नाम 'नारायण' रखा है यह भगवान की प्रेरणा है। इसके साथ प्यार किया करो। नारायण ! नारायण ! पुकारो। एक दिन अवश्य नारायण आप की पुकार सुन लेंगे।'

ये वचन करके सुबह वह वहां से चले गए। अजामल ने अपने पुत्र को उठा लिया और उससे प्यार करता हुआ कहने लगा–'पुत्र नारायण ! आओ बेटा नारायण। रोटी खाओ नारायण ! दूध पिओ नारायण !' ऐसी बातें करने लगा। उसकी बातें उसके मन को शांति देने लगी।

कुछ ऐसी प्रभु की लीला हुई, वह जो शिकार मार कर लाता वही बिक जाता। जिससे उसको पैसे मिल जाते इस तरह उसे अन्न खाने को मिलने लगा। उसके दिन अब अच्छे व्यतीत होने लगे। वह झौंपड़ी में रह कर भी सुख महसूस करने लगा।

काल महाबली है। काल की मार से कोई नहीं बचता जो दिखाई देता है, सब नाशवान है सब के काम अधूरे रह जाते हैं जब काल आता है। काल का भारी हाथ सब के सिर के ऊपर रखा जाता है। अजामल का भी काल आ गया। वह बीमार पड़ गया और बीमारी भी उसको कष्ट देने वाली। वह कष्टदायक बीमारी से दुखी होने लगा। एक दिन ऐसा आया जब आंखें बन्द करते ही यमदूत भी नजर आने लगे। नरक की आग जलती हुई दिखाई देने लगी, वह बहुत भयानक रूप में थी, उसकी दशा बहुत डरावनी थी ! नरक की झांकी व अंतकाल नजदीक नज़र आया देखकर उसने बहुत ऊंची ऊंची पुकारा 'नारायण आओ, नारायण आओ !

अजामल पापी ने आवाज़ तो अपने पुत्र को दी परन्तु पुत्र शब्द का इस्तेमाल न किया ! सत्य ही उसका कल्याण हो गया जैसे ही उसने 'नारायण' कहा वैसे ही धर्मराज के यमदूत भी पीछे हट गए। अचानक रोशनी हुई। नाद शंख बजे। इधर आत्मा ने शरीर छोड़ा, उधर से फूलों की वर्षा हुई। अजामल की आत्मा स्वर्ग में चली गई। नारायण कहने से पापी का कल्याण हो गया। इस संबंध में चौथे पातशाह का वचन है:-

अजामल प्रीति पुत्र प्रति कीनी करि नाराइण बोलारे ॥
मेरे ठाकुर कै मनि भाइ भावणी जम कंकर मारि बिदारे ॥

(पत्रा ९८१)

साखी पिंगला की

अजामलु पिंगुला लुभतु कुंचरु गए हरि कै पासि ॥

(पत्रा ११२४)

उपरोक्त तुक में भक्त रविदास जी ने कथन किया है कि अजामल, पिंगला और हाथी जैसे हरि परमात्मा के पास चले गए। हरि परमात्मा सब भक्तों को शरण देता है। जो उसका नाम जपता है; उसको याद करता है प्रभु उसी को अपने चरणों में लगाता है क्योंकि आत्मा और परमात्मा में माया की जुदाई है। माया भेद कर के ही वह परमात्मा से बिछुड़ा है। जब माया का अम्बार दूर हो जाता है तो ज्ञान आ जाता है और खुद ही आत्मा परमात्मा से घुल-मिल जाती है। बाहर क्यों रहते हैं ? जुदाई क्यों पैदा होती है ? इसका उत्तर है कि उनको ज्ञान प्राप्त नहीं होता। ज्ञान क्यों नहीं होता ? क्योंकि उसने गुरु धारण नहीं किया होता। गुरु पर भरोसा न होने के कारण है।

सच्चे सतिगुरु के बिना आल जंजाल माया के चमत्त्कारों में फंसे रहते हैं। विमुख या समक्ष रहते हैं ऐसे पुरुषों का कभी कल्याण नहीं

होता वह विमुख होते हैं। उनका नेकी की ओर ध्यान नहीं होता। जब नेकी, सत्य, धर्म, कर्म, भक्ति की ओर ध्यान नहीं और वह यदि ईश्वर का भय नहीं रखते तब कैसे उनका कल्याण हो सकता है ? कभी नहीं होता चाहे कहीं घूमते रहें।

गंगा जमन गोदावरी कुलखेत सिधारे।
मथुरा माइआ अजुधिआ काशी केदारे।
गइआ पिराग सुरसवती गोतमी दुआरे।
जप तप संजम होम जगि सभ देव जुहारे।
अखीं परणै जे भवै तिहु लोइ मझारे।
मूलि न उतरै हतिआ बेमुख गुरदुआरे।

(भाई गुरदास)

जब तक आत्मा पवित्र न हो, तब तक धर्म, कर्म, पूजा पाठ और तीर्थ पर जाना लाभदायक नहीं होता। गुरु की शरण में जाएं। पिंगला की कथा आती है। वह एक वेश्या थी, रात-दिन कुकर्म करती और उसी तरह का जीवन था जिस तरह भाई गुरदास जी फरमाते हैं :-

नारि भतारहु बाहरी सुखि सेज न चड़ीऐ।
पुत न मंनै मापिआं कमजातीं वड़ीऐ।

पिंगला भरी जवानी में थी, पर एक पति के बिना वह कभी सुख की सेज नहीं सोई। उसके ग्राहक आते थे, वह भी विभिन्न स्वभाव के होते थे। कोई शराबी, कोई भंगी-नशेड़ी, पर उसने तो सब का स्वागत करना था। ऐसी दशा में धर्मप्रिय राजा जनक की नगरी में रहती थी। जब वह बाहर जाती तो गृहस्थ औरतें उसकी तरफ घूर-घूर कर देखतीं, वह सदा उनसे घृणा करती थी। उसके पास अत्यन्त धन होने के बावजूद भी समाज और धार्मिक स्थल पर सम्मान न होता। उसको एक अछूत तथा एक कोढ़ गिना जाता लेकिन मंद कर्मी पुरुष उसको आंखों पर बैठाते।

एक समय वह बाहर घूमने निकली। वह जब राजा की ओर से बनाए सरोवर के पास पहुंची तो वहां एक महात्मा नारी की महानता और पतिव्रता धर्म का उपदेश दे रहा था। सैंकड़ों स्त्री पुरुष एकाग्रचित ध्यान लगा कर उपदेश सुन रहे थे। उनका ध्यान कथा भाव के साथ जुड़ा हुआ था!

महात्मा उपदेश कर रहा था कि नारी का धर्म पति की सेवा करना है, वह भी एकाग्रचित होकर और घर गृहस्थी को चलाना क्योंकि घर गृहस्थी और नारी जगत उत्पति का मूल है। नारी की सृजना इसलिए की गई है। लेकिन यदि नारी एक पति की सेवा नहीं करती एक के भरोसे पर नहीं रहती और पराए पुरुष के पीछे भटकती फिरती है तो वह नारी एक डायन बन जाती है। इसलिए नारी को पतिव्रता रहना चाहिए।

ऐसा उपदेश जब हो रहा था तो पिंगला ने भी सुन लिया, वह कभी मन्दिर, कथा कीर्तन स्थान के पास कभी खड़ी नहीं होती थी पर उस समय उसके मन में आ गया, वह खड़ी हो गई और महात्मा का उपदेश वरदान की तरह हृदय को छू गया। वह खड़ी रही। आगे उसके पांव न चले। उसको ऐसा महसूस हुआ कि सच्ची बातों का उपदेश उसको दिया जा रहा था। वह उपदेश सुन रही थी।

महात्मा जब उपदेश करके रुके तो उसने आगे बढ़ कर महात्मा के चरणों को छू कर विनम्रता से प्रार्थना की–'महाराज ! मैं एक वेश्या हूं, हर रात तन बेचती और मूल्य लेती हूं, नाचती और गाती हूं, मदिरापान भी करती हूं ! जो भी पुरुष आता है उससे झूठ बोल कर कहती हूं, 'मैं तुम्हारी हूं। तुम्हें ही प्यार करती हूं। और किसी को प्यार नहीं करती।' होता झूठ है, झूठ के साथ जूठन भी खानी पड़ती है, बताएं ऐसे कुकर्म करने वालों का भी कभी कल्याण हो सकता है ?

महात्मा ने पिंगला की बात को ध्यान से सुना। उसकी ओर देखकर उसके चेहरे और उसकी आंखों और हृदय की बात जानने का विचार किया। उस समय उसको उत्तर दिया–'हां देवी ! तेरा भी कल्याण हो सकता है। केवल मन बदलने की जरूरत है। बुरे कामों से निकल कर स्नान करके अच्छे वस्त्र पहनने की आवश्यकता है। ऐसा कर लो तो ईश्वर प्रसन्न होगा। धन पदार्थ तो ईश्वर के हैं। यह लीला है जो होती रहती है। हर एक जीव आत्मा अमलों के कारण ही तो पवित्र है, वह जैसे वातावरण से निकलती है वैसा ही रंग ले लेती है और कोई बात नहीं।'

पिंगला– 'कीचड़ में से कैसे निकलूं, मैं तो दलदल तक फंसी हूं।'

महात्मा– 'यत्न करने की आवश्यकता है। मन पर काबू पा सको तो।

पिंगला– जैसे आप बताएंगे वैसा ही करूंगी। आपको गुरु धारण करती हूं। 'आज्ञा करें।'

यह कह कर पिंगला ने महात्मा के चरण पकड़ लिए।

महात्मा ने उसकी पसीजी आत्मा की ओर देखा और कहा–'देवी ! एक प्रण करो तो तुम्हारा कल्याण हो सकता है।'

पिंगला– 'आज्ञा करें महाराज।'

महात्मा– 'वचन का पालन करोगी ?'

पिंगला– 'महाराज ! जीवन भर आपकी आज्ञा का पालन करूंगी, मेरा मन कह रहा है।'

महात्मा– 'देख, तेरे जीवन का वातावरण ऐसा है, गृहस्थ धर्म ग्रहण करो। एक पति की पूजा करो। पति प्यार और श्रद्धा से तेरा कल्याण हो जाएगा।'

पिंगला– 'पति मेरा कोई नहीं, विवाह मेरे साथ कौन करेगा ? मैं कैसे तपस्या करूंगी ?'

महात्मा 'जो पुरुष तुम्हारे पास पहले आए, उसको पति मान ले और

उसकी सेवा करती रहना अन्य किसी के पास तन भेंट मत करना, उसी से तुम्हारी मुक्ति होगी।

पिंगला- 'आप ने मुझे ज्ञान दिया है, मेरे गुरु बने हैं, क्या मैं अपनी सारी दौलत आपको अर्पण कर सकती हूं ? सारी दौलत किस काम की।'

महात्मा- 'जो कुछ तेरे पास है, वह अपने पास ही रखो, धन-पूंजी रखो। जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा।'

इस तरह उपदेश लेकर पिंगला अपने घर आ गई। उसको ऐसा लगा जैसे उसका शरीर और दिल-दिमाग हल्का हो गया हो । घर आई तो हर वस्तु उसको पराई और नई-नई लगी। उस शाम को उसने स्नान किया। नए वस्त्र पहने और तैयार होकर बैठ गई। महात्मा की बात पर अमल करना था, जो पुरुष पहले आए, जिस के साथ मेल हो, उसको अपना पति मान ले। उसके बगैर किसी और के नजदीक न जाए।

एक पुरुष आया, वह जवान था और घर से भी अच्छा था। उसके आने पर उसने घर के दरवाजे बंद कर लिए और उसको कहा, 'देखो प्रिय ! मैंने फैसला किया है, एक पुरुष के बगैर किसी अन्य के निकट नहीं जाऊंगी, आप मेरा साथ देंगे तो मैं आपकी ही रहूंगी और आप मेरे, ऐसा ही करना होगा।'

'......यदि ऐसा हो जाए तो और क्या चाहिए, मैं तो आपका प्रेमी हूं। जान देने को तैयार हूं।' पुरुष ने उत्तर दिया।

यह बात सुन कर पिंगला खुश हो गई और उसने अपना तन और मन उस पुरुष के हवाले कर दिया। उसके बाद किसी अन्य पुरुष के पास न गई, नाचगान सब कुछ एक पुरुष के लिए हो गया। इस प्रकार कई साल बीत गए। लोग पिंगला की बैठक को भूल गए और वह एक गृहिणी बन गई, उसकी रूचि बदल गई। उसने मदिरा पान

छोड़ दिया। वह धर्म-कर्म की ओर बढ़ गई। प्यारा पति आता तो उसकी सेवा करती और उसका दिया खाती और किसी के हाथ का खाना ज़हर समझती। कहते हैं इस तरह बारह साल बीत गए। वह एक पुरुष की दासी रही। उसकी भक्ति देखकर लोग हैरान हो गए। उसके प्रेमी ने विवाह न किया और वह मर गया। फिर जो पुरुष पहले आता उसी को पति मानती......पर उसकी मूल मंशा पूरी न हुई।

एक दिन भगवान विष्णु ने उसकी परीक्षा लेकर उसका कल्याण के लिए मार्ग ढूंढा। उसका धर्म देखने और महात्मा के वचनों पर कितना चली है परीक्षा लेने आए भगवान विष्णु।

शाम हुई तो भगवान विष्णु एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके पिंगला की बैठक पर आ गए। पिंगला ने उनका स्वागत किया। चरणों को धोया। हालचाल पूछा और आदर से बिठाया। पहले उनके चरण दबाए। जब उसके मन की इच्छा पूर्ण करने का विचार आया तो वह बीमार हो गया। उसको हैजा हो गया। टट्टीयां आने लगी और दसतों का रूप धारण करके और भी हालत बिगड़ गई। पिंगला सेवा करती रही। रात भर जरा भी आराम न किया परन्तु माथे पर बल न आया। एक पतिव्रता स्त्री की तरह खिले माथे सेवा करती रही। सुबह होते ही वह ब्राह्मण मर गया। उसके मरने पर रोने लगी। बाजार वाले हैरान हुए। किसी ने कुछ कहा। पर उसने कोई बात न सुनी। उसने अपने पास से ब्राह्मण की चिता का प्रबन्ध किया। हाथ में सधौरा लेकर साथ ही सती होने के लिए तैयार हो गई। जब लोगों ने रोका तब भी न रुकी। तब भगवान विष्णु ने अपना हठ छोड़ दिया और वह उस चिता से उठ खड़े हुए। वह विष्णु रूप ब्राह्मण जीवित हो गया। लोग काफी हैरान हुए। पिंगला खुश हो गई। उस समय वह ब्राह्मण विष्णु का रूप हो गया। शंखों की धुन अपने आप प्रगट हुई। सभी लोग हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। विष्णु ने पिंगला को कहा-'धन्य

है देवी ! मांग लो जो मांगना है। तेरी भक्ति प्रवान हुई।'

पिंगला भगवान विष्णु के चरणों में झुक गई। उसने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि, 'महाराज ! कोई इच्छा नहीं। बस पापिन का कल्याण हो।'

यह सुन कर विष्णु जी बहुत खुश हुए और उन्होंने कहा, 'तथास्तु' तेरी इच्छा पूर्ण होगी। बाकी जीवन उसने भक्ति में गुजारा और अंतकाल वह स्वर्ग में गई।

इस कथा का संक्षेप भाव है कि जो भी मंद कर्मी जब किसी नेक पुरुष, गुरु पीर का उपदेश ग्रहण कर अपना जीवन बदल लेता है, उसका कल्याण होता है। जगत में यश होता है।

माता यशोदा

ईश्वर की माया का भेद किसी ने भी नहीं पाया। ऐसी कई बातें होती हैं जो मनुष्य का मन समझ नहीं सकता। जन्म-जन्म के मेल हो जाते हैं। पूर्व जन्म का रहता लेख अगले जन्म में निपटाया जाता है। पूर्व जन्म का कर्म अच्छा हो या बुरा उसका फल वैसा ही प्राप्त होता है।

पवित्र यमुना नदी के पार गोकुल नगरी में नन्द नामक ग्वाला रहता था। उसकी पत्नी यशोदा थी। वह एक मामूली ग्वाले की पत्नी थी। गऊएं चरा कर गुजारा करते थे। गऊएं होने के कारण दूध घी भरपूर होता था। इस यशोदा माता को ईश्वर ने ऐसा सुनहरी समां प्रदान किया कि उसने श्री कृष्ण जी को गोद खिलाया। पालन पोषण किया, मक्खन के पेड़े दिए और अनेक प्रकार की बाल लीला के खेल देखती रही थी। उसका जीवन सफल हुआ था।

कथा इस प्रकार है कि यशोदा का पूर्व जन्म में नाम सतरूपा था। उस जीवन में उसने जंगल में बैठ कर घोर तपस्या की और विष्णु

भगवान के दर्शनों की इच्छा धारण की थी। उसकी तपस्या जब पूर्ण हुई तो ईश्वर ने उसे दर्शन दिए। 'सतरूपा' ने प्रार्थना की कि 'हे प्रभु ! एक जन्म और मैं आपके दर्शन करना चाहती हूं। उस समय भगवान ने कहा था, अगले जन्म में कृष्ण का अवतार लेकर आपकी इच्छा पूरी करूंगा।

जब श्री कृष्ण जी का मथुरा में जन्म हुआ तो उनके पिता वासुदेव जी ने टोकरे में रख कर यमुना पार कर के रातों -रात गोकुल में पहुंचा दिया। श्री कृष्ण का मामा कंस उसको भी जन्म लेते ही मार देना चाहता था, उसने पहले वासुदेव के सात बच्चों को मरवा दिया था। कंस को ज्ञात हो गया था कि जब मरूंगा तो अपने भांजे के हाथों मरूंगा। वह पापी अपनी बहन की जो भी संतान पैदा होती उसको मार देता। भगवान ने पापी कंस को मारने के लिए जगत के कल्याण हेतु आप अवतार लिया और उनका नाम श्री कृष्ण रखा गया। वासुदेव जब भगवान कृष्ण जी को उठा कर यमुना से गुजरे तो पानी ठाठें मार रहा था लेकिन कृष्ण के चरण स्पर्श से यमुना ने आगे जाने के लिए मार्ग दे दिया। भगवान यशोदा की गोद में चले गए। यशोदा ने मां बन कर लाड–प्यार से, पालन पोषण करके जवान किया। अन्त में कृष्ण जी ने यमुना पार मथुरा जाकर अपने मामा कंस का बालों से पकड़ कर वध कर दिया। वह नरक को गया और भगवान को पालने वाली माता यशोदा भगवान के चरणों में सदा के लिए अलोप हो गई।

माता यशोदा जगत के लिए यह उपदेश और संदेश छोड़ गई कि अगर कभी किसी का बच्चा पालना पड़े तो वह अपने बच्चे की तरह लाड प्यार से पाले कभी पराया न समझे एक माता का पूरा प्यार दे तो अवश्य ही उसका कल्याण होगा और मां का जन्म सफल होगा।

साखी कुबिजा मालिन की

प्रेम भक्ति के संसार में कुबिजा का नाम बड़ा आदर- सत्कार से लिया जाता है। कुबिजा मालिन के प्यार के गीत बनाकर कविजन गुनगनाते हैं। गुरुबाणी में भी यह आता है, *'कुबजा ओधरी अंगसुट धार' (बसंतु राग)* आओ, श्रद्धालु और भक्त जनो ! आज आपको कुबिजा की कथा सुनाते हैं। श्रद्धा और प्यार से जो स्त्री-पुरुष यह कथा श्रवण करेगा, उसके हृदय और आत्मा में प्यार उमड़ आएगा।

कुबिजा एक दासी थी। वह राजा कंस के राजमहल के बगीचे में मालिन का कार्य करती थी। सारे लोग उसको कुबिजा मालिन कह कर बुलाते थे। उसकी आयु अभी अल्प थी और वह अल्पायु से ही अत्यन्त सुन्दर थी। लेकिन ईश्वर की ऐसी लीला कि वह कमर से कुबड़ी थी। वह कुबड़ी होकर चलती थी, तभी उसका नाम कुबिजा पड़ गया। उसकी बुद्धिमानी और सुन्दरता की हर कोई प्रशंसा करता था लेकिन जब उसके कुबड़ेपन को देखता तो ईश्वर को कोसता कि ऐसी सुन्दरता देकर कुब क्यों प्रदान किया। लेकिन ईश्वर की लीला को कोई भी नहीं जानता। वह खेल था जो समय के साथ होना था।

युवा होकर जब भगवान कृष्ण जी मथुरा पधारे तो एक दिन कृष्ण जी और कुबिजा का मेल हो गया। वह फूल और घिसा हुआ चंदन लेकर राजा कंस की ओर जा रही थी, उसने जैसे ही कृष्ण जी के दर्शन किए तो मानो उसके पैरों में जंजीर पड़ गई हो। उसके हृदय में मीठी-सी कंपकंपी हुई। उसके मोटे नर्गिस नयन मोहित होकर चुंधिया गए। वह उनको देखती रही। उसने एक फूल माला श्री कृष्ण जी के गले में डाल दी और साथ ही चन्दन का तिलक लगा दिया। तिलक लगाते समय यह याद न रहा कि तिलक राजा कंस को लगाना था। यदि राजा कंस को इस बारे में पता चला तो वह मौत के घाट

उतरवा देगा। कंस बड़ा दुष्ट तथा अत्याचारी राजा था। परन्तु कुबिजा ने प्रभु को चन्दन और तिलक लगा ही दिया।

भगवान श्री कृष्ण ने जब उसका यह अनुराग देखा तो आप दयालु-कृपालु हो गए। उन्होंने कुबिजा मालिन की ओर निगाह भर कर देखा। प्रभु ने दया में आकर उसके कुबड़ापन को दूर करने के लिए विचार किया। आप विष्णु अवतार महांकाल शक्तियों के स्वामी थे। मालिन के एक पैर पर अंगूठा अपने चरण का रखकर कंधे से पकड़कर ऐसा खींचा कि वह एकदम सीधी हो गई। उसका कुबड़ापन उसी पल दूर हो गया। वह तो मानो मूर्छित-सी हो गई। भगवान कृष्ण की इस कृपा का यश करती हुई गीत गाने लगी और श्री कृष्ण जी के चरणों पर गिरकर उनको चूमने लगी। उसने श्रद्धा से हाथ जोड़कर श्री कृष्ण जी से विनती की-हे प्रभु ! दासी को अपने चरणों में रखें। आप तो परमात्मा हैं, आप सृष्टि के पालक हैं।

श्री कृष्ण जी ने प्रसन्न होकर कहा-'हे मालिन ! धैर्य रखो। समय आएगा तो तुम्हारा प्रेम प्रवान होगा। अभी शीघ्र जाओ और कंस को तिलक लगाने तुम जा रही थी, सामग्री लेकर उसे तिलक लगाओ।

यह कहकर भगवान आगे चले गए। मालिन कंस के दरबार में पहुंची लेकिन उसका मन प्रभु के चरणों में ही लिवलीन था। उसको सीधी सुन्दर खड़ी देखकर हर एक ने इस बारे पूछना चाहा लेकिन उसने कुबड़ेपन को ईश्वर द्वारा दूर करने के बारे में किसी को कुछ न बताया।

जब कंस के अत्याचारों तथा पापों का अंत करके भगवान श्री कृष्ण मथुरा, गोकुल और वृंदावन के राजा बन गए तो उन्होंने कुबिजा को तारा दर्शन देकर कृतार्थ किया। यह है मालिन और भगवान श्री कृष्ण जी की कथा, जो श्रद्धा प्रेम से सुनेगा वह भवसागर से पार हो जाएगा।

ईश्वर कल्याण तथा प्रेम प्रदान करें।

भक्त विदुर

आइआ सुणिआ बिदर दे बोले दुरजोधन होइ रुखा ।
घरि असाडे छडि के गोले दे घरि जाहि कि सुखा ।
भीखम द्रोणाकरण तजि सभा सींगार भले मानुखा ।
झुग्गी जाई वलाइओनु सभनां दे जीअ अंदर धुखा ।
हस बोले भगवान जी सुणिहो राजा होई सनमुखा ।
तेरे भाउ न दिसई मेरे नाहीं अपदा दुखा ।
भाउ जिवेहा बिदर दे होरी दे चिति चाऊ न चुखा ।
गोबिंद भाउ भगति दा भुखा ।७।

(भाई गुरदास)

युगों-युगों से यह रीत चली आ रही है कि अहंकार और लालच की सदा दया, धर्म और प्यार से टक्कर रही है। अहंकारी और लालची पुरुष की सेवा, उसकी अयोग्य आज्ञा का पालन वह करता है, जिसे आवश्यकता हो 'गौं भुनावे जौं।' लेकिन जिसे कोई दुःख, लालच, अहंकार, लोभ नहीं, वह कदापि भी अहंकारी मनुष्य की परवाह नहीं करता। ऐसी ही कथा भक्त विदुर और श्री कृष्ण जी की है। श्री कृष्ण जी सदा प्रेम और श्रद्धा के प्यासे रहे हैं। उनको राज पाठ, शान-शौकत आदि की कभी आवश्यकता नहीं थी। प्रभु के पास सब कुछ अपरंपार है।

जहां वह धरती मथुरा वृंदावन के राजा थे, वहां प्रेम, श्रद्धा, भक्ति तथा दिलों के भी राजा थे।

भाई गुरदास जी ने इस बारे सुन्दर कथा बयान की है।

एक दिन मुरली मनोहर श्री कृष्ण जी दुर्योधन के राज्य में पधारे। वह दुर्योधन के शीश महलों तथा दरबारियों-सेनापतियों के शाही ठाठ-बाठ वाले महलों को छोड़कर एक दासी पुत्र विदुर की झौंपड़ी

में रात को जाकर ठहरे। उस निर्धन के पास एक चटाई ही बैठने के लिए थी और खाने के लिए केवल अलूना सरसों का साग उसने रखा हुआ था। वह भी हांडी में पक रहा था। भगवान श्री कृष्ण विदुर की कुटिया में पहुंच गए। श्री कृष्ण के चरण स्पर्श से उसकी कुटिया में उजाला हो गया। उसके भाग्य जाग गए। उसने प्रभु के चरण धोकर चरणामृत लिया और सारी रात प्रभु की खुले मन से सेवा करता रहा। प्रभु के प्रवचन सुनकर वह मुग्ध हो गया, जिसकी भक्ति करता आ रहा था, दर्शन के लिए तड़पता था, वह प्रत्यक्ष दर्शन देकर उसे आनंदित करते रहे। विदुर का साग उन्होंने बड़े चाव से खाया। ऐसे चखा जैसे छत्तीस प्रकार के भोजन खाते हैं। विदुर को भी नया ही स्वाद आया। उसका मन तृप्त हो गया। वह एक तरह से मुक्त हो गया। उसका जीवन इस भवसागर से पार हो गया। वह एक दासी पुत्र था। अहंकारी दुर्योधन तथा उसके भाई और दरबारी विदुर को अच्छा नहीं समझते थे। उनको अपने राज का अहंकार था।

भक्त विदुर के जन्म की कथा इस प्रकार है। विदुर दुर्योधन का चाचा लगता था। धृतराष्ट्र, पांडव और विदुर तीनों भाई ऋषि व्यास के पुत्र थे। उनके जन्म की कथा इस प्रकार महाभारत में वर्णन है।

रानी सत्यवती के तीन पुत्र थे। व्यास, चित्रांगाद और विचित्रवीर्य। व्यास के अलावा दोनों पुत्र शादीशुदा थे और उनकी रानियां काफी सुन्दर रूपवती थीं। लेकिन संयोग से दोनों ही शीघ्र मर गए। उनकी दोनों रानियां अम्बा और अम्बिका विधवा हो गईं। वह सुन्दर तथा रूपवती सन्तानहीन थीं। राजसिंघासन तथा वंश चलाने के लिए संतान की आवश्यकता थी।

एक दिन रानी सत्यवती ने अपनी दोनों वधुओं को बैठा कर समझाया कि हस्तिनापुर के राजसिंघासन हेतु वह उसके बड़े पुत्र व्यास

से सन्तान प्राप्त कर ले। लेकिन व्यास शक्ल सूरत से कुरुप था इसलिए दोनों रानियां उससे सन्तान प्राप्त नहीं करना चाहती थीं। लेकिन रानी सत्यवती के अधिक विवश करने पर दोनों रानियों अम्बा और अम्बिका ने एक-एक पुत्र प्राप्त किया। अम्बा का पुत्र धृतराष्ट्र था जो जन्म से ही अन्धा था और अम्बिका के गर्भ से पांडव का जन्म हुआ।

रानी अम्बिका व्यास की सूरत से घृणा करती थी। जब रानी सत्यवती ने उसे और पुत्र प्राप्त करने के लिए कहा तो अम्बिका ने बड़ी चालाकी से स्वयं जाने की जगह व्यास के पास अपनी दासी को भेज दिया।

उस दासी के पेट से जिस बच्चे ने जन्म लिया, उसका नाम विदुर रखा गया। दासी पुत्र होने के कारण विदुर का राजमहल में सत्कार कम था।

पांडव बड़ा राजपुत्र होने के कारण राजसिंघासन पर विराजमान हुआ। लेकिन तीर्थ यात्रा करने गया पांडव एक ऋषि के श्राप से शीघ्र ही स्वर्ग सिधार गया। उसकी मृत्यु के बाद जो राज विदुर को मिलना चाहिए था, दासी पुत्र होने के कारण उसे न मिल सका। राजसिंघासन पर धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर का राजा घोषित करके विराजमान किया।

इस प्रकार विदुर नगर से बाहर अपनी पत्नी के साथ एक छोटी-सी कुटिया में रहने लग गया। राज की ओर से इतनी घृणा हो गई कि वह राज राजकोष से कोई धन नहीं लेता था। अपने परिश्रम द्वारा ही निर्वाह करता और धरती पर ही सोता। उसका मन प्रभु भक्ति में सदा लिवलीन रहता, जिससे उसकी भक्ति पर प्रसन्न होकर भगवान श्री कृष्ण उसके घर रात रहे।

भाई गुरदास जी फरमाते हैं कि दुर्योधन को जब इस बारे पता लगा कि यादव वंश मथुरा के राजा श्री कृष्ण उसके महल में रात रहने

की बजाय उनके चाचा दासी पुत्र विदुर के घर में रहे हैं और स्वादिष्ट पकवानों की जगह अलूना साग खाया है तो वह भगवान कृष्ण के पास गया और उसने कहा–'हे कृष्ण ! आप हमारे राजभवन में रहने की जगह दासी पुत्र की झौंपड़ी में क्यों ठहरे हैं। यदि मेरे पास नहीं रहना था तो मेरी सभा के श्रृंगार भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य तथा कर्ण आदि के पास रुक जाते। उनके राजभवनों में जाकर निवास कर लेते। हमें यह बहुत बुरा लगा है कि आपने एक दासी पुत्र के घर कुटिया में जाकर रात बिताई। हमारे साथ क्या वैर–विरोध हुआ है ?

दुर्योधन की यह बात सुनकर भगवान कृष्ण जी हंस पड़े और उसकी तरफ देखते हुए कहने लगे–हे दुर्योधन ! विदुर की झौंपड़ी तो अति पवित्र है। विदुर राजाओं का राजा है, क्योंकि उसकी आत्मा प्रेम भक्ति के रस में डूबी हुई है। ईश्वर प्रेम देखता है लेकिन दूसरी ओर आपके महलों में प्रेम भक्ति का वास नहीं, आपके यहां अहंकार, लोभ, राज की भूख है, इसलिए मुझे विदुर का प्रेम खींच कर ले गया। यह भी बात है कि मुझे न कोई विपदा पड़ी है तथा न कोई दुःख है जो मैं आप का सहारा लूंगा। एक बे–गरज आदमी को क्या जरूरत है कि राजाओं के महलों में जाकर उनकी खुशामद करे ? जो विदुर के घर चाव, श्रद्धा तथा प्यार की भावना है वह आपके पास नहीं और मेरा हृदय प्यार का चाहवान है, क्योंकि पारब्रह्म परमेश्वर और जीव के बीच केवल एक प्यार का संबंध है।

कबीर जी के मुखारबिंद श्री कृष्ण जी ने कहा–हे राजन ! बताओ कौन आपके घर में आएगा, क्योंकि आपके घर प्रेम एवं श्रद्धा का निवास नहीं। जैसा विदुर के घर प्रेम है वह मुझे अच्छा लगता है। आप तो अपनी उच्च पदवी राजसिंघासन को देखकर भ्रम का शिकार हुए हैं और परमात्मा की महाकाल शक्ति को भुला बैठे हैं क्योंकि आपको परमेश्वर का ज्ञान नहीं। सिर्फ राज अभिमान है। इसलिए

विदुर आप से बहुत बड़ा है। आपके राजमहल का दूध एवं विदुर के घर का जल मैं एक समान समझता हूं, जो मैंने उसके घर सरसों का साग खाया है वह आपकी खीर से अच्छा है और परमेश्वर के गुण गाते हुए सारी रात अच्छी बीती। मुझे बड़ा आनंद आया। यदि आपके पास निवास करता तो राजा की निंदा और ईर्ष्या आदि सुनने थे। अब तो ठाकुर का गुण गाते हुए रात अच्छी व्यतीत हुई तथा ठाकुर के लिए छोटे-बड़े सब जीव एक समान हैं। ऐसा उपदेश वाला उत्तर भगवान कृष्ण जी ने दिया। इस संबंध में मारू राग में कबीर जी फरमाते हैं :

राजन कउनु तुमारै आवै ।। ऐसो भाउ बिदर को देखिओ ओहु गरीबु मोहि भावै ।।१।। रहाउ ।। हसती देखि भरम ते भूला स्री भगवानु न जानिआ ।। तुमरो दूध बिदर को पान्हो अंम्रितु करि मै मानिआ ।।१।। खीर समानि सागु मै पाइआ गुन गावत रैनि बिहानी ।। कबीर को ठाकुरु अनद बिनोदी जाति न काहू की मानी ।।

(मारू कबीर जी, पन्ना ११०५)

इस कथा का भावार्थ यह है कि प्रभु से प्रेम करने वाले भक्तों से प्रभु भी उतना ही अटूट प्रेम करता है और राज अभिमान की जगह प्रेम भक्ति का दर्जा श्रेष्ठ है।

साखी द्रौपदी की

द्रौपदी सम्राट द्रुपद की पुत्री थी। इसका पहला नाम कृष्णा था। इसे स्वयंवर में पांडव पुत्र अर्जुन ने जीता था। स्वयंवर की कथा इस प्रकार वर्णन है कि राजा द्रुपद की तीव्र इच्छा थी कि वह अपनी पुत्री द्रौपदी का विवाह पांडव पुत्र धनुषधारी अर्जुन से ही करे। पांडव की मृत्यु के बाद राजसिंघासन धृतराष्ट्र को मिल गया था। लेकिन धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन पांडवों से इतनी घृणा करता था और वह

उन्हें मरवाने के लिए भरसक प्रयास कर रहा था। दुर्योधन के षड्यंत्रों के फलस्वरुप पांडव पुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, नकुल तथा सहदेव ब्राह्मणों के वेष में छिप कर रह रहे थे। दुर्योधन पांडव पुत्रों को राज का कोई हिस्सा नहीं देना चाहता था। पांडव दुर्योधन की चालों को असफल करते हुए जंगल में ब्राह्मणों के रूप में कुटिया में रहने लगे।

राजा द्रुपद ने अपनी राजधानी में एक दिन द्रौपदी के विवाह हेतु स्वयंवर रचा। उस स्वयंवर में देश के बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजा, देवता और ऋषि-मुनि आए ताकि स्वयंवर के खेल को जीत कर द्रौपदी को पाया जाए। शर्त यह थी कि ऊपर बनावटी घूम रही मछली की आंख पर निशाना बांध कर तीर मारना था। निशाना धरती पर रखे तेल के कड़ाहे की ओर देख कर मछली के प्रतिबिंब से लेना था। अभिप्राय यह कि ऊपर मछली की तरफ नहीं देखना था। यह शर्त काफी कठिन थी। बड़े-बड़े पराक्रमी राजा इस शर्त को पूर्ण नहीं कर सके। पांडवों के साथ-साथ कौरव भाई दुर्योधन तथा उसके पुत्र आदि भी पधारे हुए थे। उन में से किसी को भी सफलता न मिली। उस स्वयंवर में पांचों पांडव साधुओं के वेष में बैठे हुए थे। जब किसी ने भी बाजी न जीती तो राजा द्रुपद काफी निराश हुआ कि कोई भी वीर नहीं हैं। पांडवों के ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिर ने अर्जुन की ओर इशारा किया। इशारा पाकर अर्जुन सभा में धनुषबाण लेकर उठा। सभा में बैठे हुए बड़े-बड़े महाबली योद्धा, राजा, देवता उस पर हंसने लग गए कि एक ब्राह्मण भला कैसे मछली की आंख में तीर मारेगा। जबकि किसी को भी सफलता नहीं मिली। परन्तु अर्जुन ने कोई परवाह न की। कईओं ने व्यंग्य कसा कि ब्राह्मण पुत्र जो खीर का थाल खा जाते हैं, आज धनुष लेकर आ गए हैं। अर्जुन ने तेल के कड़ाहे की ओर देखा और ऐसा निशाना मारा कि तीर मछली की आंख में ही

जाकर लगा। वह मछली चक्कर काटती हुई धरती पर आ गिरी। सारी सभा में उपस्थित राजा, देवता, ऋषि-मुनि एवं अन्य लोग हक्के बक्के रह गए। राजा द्रुपद की ओर से जै जै कार हुई कि उसकी पुत्री के लिए योग्य वर मिल गया, जो इतना बली है कि तेल द्वारा मछली की आंख में निशाना लगा सकता है और आवश्यकता पड़ने पर दुष्टों से भी लड़ सकता है। सभा में व्यंग्य कसने वाले शर्म से पानी-पानी हो गए।

द्रौपदी अथवा कृष्णा को भरी सभा में से स्वयंवर में जीतकर अर्जुन अपने पांडव भाईओं सहित वन में अपने घर आ गया। क्योंकि वे तब ब्राह्मणों के वेष में गुप्त निवास में रहते थे और जब अर्जुन ने घर के दरवाज़े के पास आकर अपनी मां कुन्ती को आवाज़ दी-मां! दरवाज़ा खोलो और आकर देखो हम तुम्हारे लिए क्या लेकर आए हैं ? माता कुन्ती का स्वभाव यह था कि जो कुछ भी उसके पुत्र लाते थे वह उनको मिल-बांटकर खाने या प्रयोग के लिए आज्ञा दिया करती थी। पांडव अपनी माता की आज्ञा का पालन किया करते थे। कुन्ती ने अपने नित्य स्वभाव अनुसार कह दिया--बेटा ! जो कुछ लेकर आए हो, बांट कर रख लो। उसे पता नहीं था कि वह जो लेकर आए हैं उसे बांटा नहीं जा सकता था। कुन्ती ने जब दरवाज़ा खोल कर देखा कि एक सुन्दर, रूपवती राज कन्या उसके,पुत्रों के साथ खड़ी है तो वह बड़ी हैरान हुई, लेकिन वचन उसके मुख से निकल चुका था। इसलिए उसने राज कन्या का नाम कृष्णा से बदल कर द्रौपदी रख दिया। वह राजकन्या पांच पांडवों की पत्नी बन कर रहने लगी।

धीरे धीरे राजा द्रुपद को इस बात का पता चल गया कि उसकी पुत्री को स्वयंवर में जीतने वाला ब्राह्मण पुत्र नहीं बल्कि वह तो पांडव पुत्र अर्जुन है जो राज पाठ छिन जाने के कारण ब्राह्मण के वेष में दिन काट रहे हैं। उसने अर्जुन, कुन्ती तथा पांडवों को अपने राज्य

में बुला कर द्रौपदी की धूमधाम से शादी की और फिर राजा द्रुपद ने दूसरे राजाओं के साथ मिलकर धृतराष्ट्र से पांडवों के लिए आधा राज दिलाया। पांडव खांडवप्रस्थ में नया सुन्दर नगर बनवा कर अपनी राजधानी (इन्द्रप्रस्थ) में राज करने लग गए।

पांचों पांडव भाई बड़े महाबली थे जिस कारण इनके राज की शोभा दूर दूर तक होने लगी। पांडवों ने चक्रवर्ती बनने के लिए राजसूय यज्ञ किया। राजसूय यज्ञ के बाद उनकी कीर्ति और भी बढ़ गई। पांडव भाईयों ने इन्द्रप्रस्थ में ऐसा महल बनवाया जो कि बड़ा अद्‌भुत था। दुर्योधन इस महल को देखने के लिए गया। कहते हैं कि उस महल में कई ऐसी वस्तुएं बनी थीं जो कि देखने में पानी जैसा ही दिखाई देती थीं। महल में जहां फर्श दिखाई दे रहा था वहां पानी विद्यमान था और जहां पानी था वह फर्श प्रतीत होता था। महल को देखते-देखते दुर्योधन ऐसे स्थान में पहुंचा जहां पानी था लेकिन फर्श दिखाई दे रहा था। दुर्योधन चलते हुए उस पानी में अपने भाईयों सहित गिर गया तो द्रौपदी ने उन्हें देखकर हंसी उड़ाई और कहा कि अंधे की औलाद आखिर अन्धी ही है।

यह बात उसे बहुत बुरी लगी। अपमान सहन करते हुए दुर्योधन ने अपने मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह द्रौपदी को एक दिन अवश्य नीचा दिखाएगा। वह अपनी राजधानी हस्तिनापुर वापिस लौट आया। उसने अपने मामा शकुनि के साथ मिलकर जुआ का षड्‌यंत्र बनाकर पांडवों को न्यौता दिया। पांडवों में बड़ा भाई युधिष्ठिर बड़ा धर्मी पुरुष था। इसलिए वह कौरवों के साथ जुआ खेलना मान गया लेकिन उनके अंदर के छल कपट को नहीं जानता था। दुर्योधन ने जुए में पांडवों से राजमहल, हाथी, घोड़े सब जीत लिए। फिर दुर्योधन ने पांचों पांडव भाईयों को भी जीतकर युधिष्ठिर से आग्रह किया कि तुम दांव में अब सिर्फ द्रौपदी को ही लगा सकते हो अगर तुम जीत

गए हम तुम्हारा सब कुछ लौटा देंगे। कौरवों ने दांव में द्रौपदी पर भी विजय प्राप्त कर ली। द्रौपदी को जीतकर दुर्योधन ने अपने छोटे भाई दुशासन को आदेश दिया कि द्रौपदी को बालों से पकड़ कर खींच कर राजसभा में लेकर आओ और भरी सभा में उसे निर्वस्त्र कर दो। दुर्योधन ने अपने मन में उस अपमान का बदला लेने के लिए ठान ली। सभा में भीष्म पितामह, आचार्य द्रोणाचार्य, राजा धृतराष्ट्र तथा सभी ऋषि-मुनियों आदि ने उसे काफी समझाया पर उसने किसी की भी बात न मानी और दुशासन को आदेश दे दिया।

क्योंकि पांचों पांडव भाई अपने आप को जुए में हार चुके थे और दास बन गए थे, इसलिए देश की मर्यादा अनुसार उनको बोलने का कोई अधिकार नहीं था। उनकी उपस्थिति में ही द्रौपदी को राजसभा में लाया गया। जिसके बारे में भाई गुरदास जी लिखते हैं-

अंदरि सभा दुहसासनै मथे वाल दरोपती आंदी।
दूतां ने फुरमाया नंगी करहु पंचाली बांदी।
पंजे पांडो वेखदे अउघट रुधी नार जिनां दी।
अखीं मीट धिआन धरि हा हा क्रिशन करे विललांदी।
कपड़ कोट उसारिओनु थके दूत न पारि वसांदी।
हथ मरोड़नि सिरु धुणनि पछोतानि करनि जाह जांदी।
घर आई ठाकुर मिले पैज रही बोले शरमांदी।
नाथ अनाथां बाणि धुरां दी।८।

(भाई गुरदास जी)

भाई गुरदास जी के कथन अनुसार दुशासन बालों से पकड़ कर द्रौपदी को राजसभा में ले आया। उसने अपने सेवकों को हुक्म दिया कि द्रौपदी को निर्वस्त्र करो, जो कि पांचों पांडवों की प्रिया थी। जब द्रौपदी के साथ इस तरह का दुर्व्यवहार होने लगा तो पांचों पांडव देखते ही रहे, क्योंकि वह स्वयं को जुए में हार कर दास बन चुके थे।

भाई गुरदास जी के कथन अनुसार द्रौपदी ने आंखें बन्द करके भगवान कृष्ण को स्मरण किया। भगवान कृष्ण से प्रार्थना करने लगी कि उसकी इस राजसभा में लाज रखें, अब वही केवल उसका एकमात्र सहारा हैं। द्रौपदी की भक्ति एवं आत्मा की पुकार सुनकर भगवान कृष्ण ने ऐसा माया जाल बुना कि जैसे-जैसे दुशासन द्रौपदी की साड़ी खींचता वैसे-वैसे ही उसकी साड़ी और बढ़ती गई। यहां तक कि चीर के ढेर लग गए, पर चीर खत्म न हुआ। चीर खींचते-खींचते दुशासन थक गया और निराश हो कर एक तरफ बैठ गया। इस अलौकिक करामात को देखकर राज सभा में बैठे सब लोग हैरान और शर्मिन्दा होने लगे कि यह भगवान की कैसी अनोखी लीला है। इस कार्य ने सबका सिर शर्म से नीचा कर दिया और कौरव तथा अन्य लोग सभा में भयभीत हो गए, हो सकता है कि दुर्योधन तथा उसके भाईयों को किसी नई दुविधा में डाले।

भाई गुरदास जी कहते हैं कि आखिर दुर्योधन ने द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का ख्याल छोड़ दिया और उसको महल में भेज दिया। जब द्रौपदी महल में आई तो आगे कृष्ण जी बैठे मुस्करा रहे थे। वह उनके चरणों में गिर गईं और प्रार्थना की कि हे नाथ ! आप अनाथों को बचाने वाले और अपने भक्तों के रक्षक हैं।

ग्रन्थों में लिखा है कि एक बार द्रौपदी अपनी सहेलियों के साथ नदी पर स्नान करने गई थी तो वहां दुरबाशा ऋषि स्नान कर रहे थे। संयोग से उनके वस्त्र दरिया में बह गए। उनके पास अन्य कोई वस्त्र नहीं था इसलिए वह पानी से बाहर नहीं निकल रहे थे। राज कन्या द्रौपदी को देखकर उन्होंने अपनी समस्या बताई तो द्रौपदी ने अपना वस्त्र फाड़ कर दुरबाशा ऋषि की ओर फैंका। इससे प्रसन्न हो कर दुरबाशा ऋषि ने वर दिया कि तुम्हारा दान किया हुआ यह चीर किसी दिन तुम्हारी लाज रखेगा, तो उस अनुसार ही उसकी भक्ति पूरी हुई

तथा द्रौपदी की लाज रही।

द्रौपदी की कथा का भावार्थ यह है कि यदि कोई प्रभु की भक्ति करता है तो प्रभु मुश्किल के समय उसकी सहायता करते हैं। द्रौपदी ने प्रभु भक्ति का पालन किया। इसलिए संकट के समय दुष्ट दुर्योधन अपनी इच्छा पूरी न कर सका।

राजा हरिचन्द

सुख राजे हरी चंद घर नार सु तारा लोचन रानी।
साध संगति मिलि गांवदे रातीं जाइ सुणै गुरबाणी।
पिछों राजा जागिआ अधी रात निखंड विहाणी।
राणी दिस न आवई मन विच वरत गई हैरानी।
होरतु राती उठ कै चलिआ पिछै तरल जुआणी।
रानी पाहुती संगतीं राजे खड़ी खड़ाऊं निसाणी।
साध संगति आराधिआ जोड़ी जुड़ी खड़ाऊं पुराणी।
राजे डिठा चलित इहु एह खड़ाव है चोज विडाणी।
साध संगति विटहु कुरबाणी।९।

(भाई गुरदास जी)

एक हरिचन्द नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम तारा रानी था। रानी को बचपन से ही सद् पुरुषों के वचन सुनने की लगन थी। छोटे-से राज्य की धार्मिक विचारों वाली रानी विवाह के पश्चात भी पूजा पाठ में लगी रहती थी। एक दिन राज भवन के निकट एक भजन मण्डली आ गई, वह हरि कीर्तन करने लगी। सारी रात ही कीर्तन होता रहता। रानी को जब पता चला तो वह भी उस कीर्तन में जाने लगी। अब यह उसका नित्य नियम था। परमात्मा का नाम ही उसके जीवन का आसरा था। वह बिना किसी भय के इस नेक रास्ते पर जाया करती थी।

भाई गुरदास जी के कथन अनुसार एक दिन तारा रानी जब कीर्तन सुनने गई तो बाद में राजा जाग गया। राजा धर्मी नहीं था इसलिए रानी का भी उसे कीर्तन में जाना अच्छा नहीं लगता था। वह सदा अपने राज कार्य में जुटा रहता तथा धर्म-कर्म की ओर ध्यान देने के स्थान पर रंगरलियां मनाने में लगा रहता। ऐसे पुरुष प्रायः शकी स्वभाव के होते हैं। राजा हमेशा अपनी रानी पर शक करता रहता था। रानी जितनी नेक थी उतनी ही रूपवंती भी थी। परमात्मा ने उसे सभी सुख दिए थे, वह शांति से दिन काट रही थी।

जब राजा जागा तो उसने देखा कि रानी की सेज खाली है। वह कहां गई ? राजा के मन में हैरानी हुई। उसने उठ कर देखा पर रानी उसे कहीं भी न मिली। राज भवन के पहरेदारों से पूछा तो उन्होंने भी कुछ न बताया, क्योंकि जब रानी जाती थी तो उस समय पहरेदारों को नींद आ जाया करती थी। वह रानी को जाते हुए नहीं देख पाते थे। यह सब भगवान की ही लीला थी।

जब रानी वापिस आ गई तो राजा चुप ही रहा। उसने रानी को कुछ न पूछा। पर अगली रात को उसे नींद न आई। वह जागता रहा और उसने नजर रखी कि कब रानी उठ कर जाती है लेकिन रानी अपने नित्य नियम अनुसार सो गई। जब अमृत के समय कीर्तन का समय आया, आधी रात बीत गई तो रानी उठी। स्नान किया, साधारण भक्ति भाव वाले वस्त्र पहने और कीर्तन में चल पड़ी।

राजा वास्तव में सोया नहीं था। वह तो ऐसे ही आंखें बंद करके लेटा था। जब तारा रानी चली तो राजा ने उसका पीछा किया। रानी कीर्तन में जा बैठी, वहां पर हरि कीर्तन हो रहा था। वहां पर सब भक्त कीर्तन में अन्तर्ध्यान हुए विराजमान थे। परम शांति और प्यार का वातावरण था।

राजा रानी का पीछा करते-करते कीर्तन में पहुंच गया। वह वहां

पर खड़ा पहले तो कुछ देर सोचता रहा, फिर रानी की एक खड़ाऊं उठा कर अपने राज भवन में आ गया। राज भवन आकर आराम से अपनी सेज पर सो गया। उसको दीन दुनिया का कोई ख्याल नहीं था, वह तो राज-काज, रंग-राग और माया का पुतला था। उस दिन वह सोते हुए कई स्वप्न देखता रहा।

कीर्तन समाप्त हुआ तथा भोग पड़ गया। जब रानी बाहर आ कर अपनी खड़ाऊं पहनने लगी तो एक खड़ाऊं गायब थी। एक खड़ाऊं को देखकर रानी कुछ हैरान हुई कि यह कैसे हो गया ? एक खड़ाऊं किसने चुरा ली है। उस समय सत्संगियों को भी पता चल गया। संगत ने अरदास की कि हे पारब्रह्म ! तुम्हारा यश गान करते हुए रानी की खड़ाऊं का चले जाना भय का कारण है। तुम्हारा यश किस तरह प्रगट होगा ? कोई चमत्कार दिखाओ, रानी ने राज भवन जाना है।

संगत ने ऐसी अरदास की कि उसी समय खड़ाऊं के साथ वही जो पुरानी खडाऊं थी, आ कर जुड़ गई। रानी तारा ने खड़ाऊं की जोड़ी पहनी और राज भवन में आ गई। जब वह अपने कक्ष में गई तो राजा ने पूछा, 'रानी ! आप की खड़ाऊं कहां है ?'

हे नाथ ! मेरी खड़ाऊं मेरे पैरों में है। क्या बात है जो आज आप ने यह पूछने का कष्ट किया।' तारा रानी ने उत्तर दिया।

'कहां है ? राजा ने फिर पूछा।'

'दासी के पैरों में।'

राजा हरिचन्द ने देखा दोनों खड़ाऊं रानी के पैरों में थी एक जैसी थी, एक जैसी ही घिसी हुई। राजा को हैरानी हुई और उसने जल्दी से उठा कर लाई हुई खड़ाऊं देखनी चाही, पर वह खड़ाऊं वहां नहीं थी। इस तरह के चमत्कार से राजा बड़ा हैरान हुआ। रानी सारी बात समझ गई कि राजा बाद में जाग गया होगा और शक पड़ने पर मेरे पीछे लग गया होगा। पर सत्संग के कारण मेरी लाज रह गई। पारब्रह्म

परमेश्वर बड़ा दयालु और लीला करने वाला है। कोई भी उसका पारावार नहीं ले सकता। तब रानी ने स्पष्ट तौर पर राजा से पूछा, हे नाथ ! अब तो आपको विश्वास हो गया कि मैं आधी राज को उठ कर कहां जाती हूं। मैं परमात्मा की भक्ति करती हूं। भक्ति ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। इस मायावादी जगत में और है भी क्या ? कितना अच्छा हो अगर आप भी वहां सत्संग में जाया करें। सत्संग में बैठ कर थोड़ा सा तन मन को शांत कर लिया करो, राज काज तो होते ही रहते हैं।

राजा हरीचन्द ने तारा रानी से क्षमा मांगी तथा उसे कीर्तन में जाने की आज्ञा दे दी। वह स्वयं भी भक्ति मार्ग पर चल पड़ा।

सत्यवादी राजा हरीशचन्द्र जी

तिनि हरी चंदि प्रिथमी पति राजै कागदि कीम न पाई ॥
अउगणु जानै त पुंन करे किउ किउ नेखासि बिकाई ॥२॥

(पन्ना १३४४)

राजा हरीशचन्द्र को सत्यवादी राजा कहा जाता है। वह बहुत ही दानी पुरुष था। पौराणिक ग्रन्थों में भी उसकी कथा आती है। उन में लिखा है कि वह त्रिशंकु का पुत्र था। जो भी वचन करता था उस का पालन किया करता था। सत्य, दान, कर्म तथा स्नान का पाबंद था। उसकी भूल को देवता भी ढूंढ नहीं सकते थे। एक दिन उनके पास नारद मुनि आ गए। राजा ने उनकी बहुत सेवा की। देवर्षि नारद राजा की सारी नगरी में घूमे। नारद ने देखा कि राजधानी में सभी स्त्री-पुरुष राजा का यश तथा गुणगान करते हैं। कहीं भी राजा की निंदा सुनने में न आई।

राजा हरीशचन्द्र के राज भवन से निकलकर प्रभु के गुण गाते हुए नारद इन्द्र लोक में जा पहुंचे। तीनों लोकों में नारद मुनि का आदर

होता था। वह त्रिकालदर्शी थे। पर यदि मन में आए तो कोई न कोई खेल रचने में भी गुरु थे। किसी से कोई ऐसी बात कहनी कि जिससे उसको भ्रम हो जाए तथा जब तक वह दूसरे से निपट न ले, उतनी देर आराम से न बैठे। ऐसा ही उनका आचरण था।

इन्द्र हे मुनि वर ! जरा यह तो बताओ कि मृत्यु-लोक में कैसा हाल है जीवों का, स्त्री पुरुष कैसे रहते हैं ?

नारद मुनि मृत्यु-लोक पर धर्म-कर्म का प्रभाव पड़ रहा है। पुण्य, दान, होम यज्ञ होते हैं। स्त्री-पुरुष खुशी से रहते हैं। कोई किसी को तंग नहीं करता। अन्न, जल, दूध, घी बेअंत है। वासना का भी बहुत प्रभाव है। गायों की पालना होती है। घास बहुत होता है, वनस्पति झूमती है। ब्राह्मण सुख का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

इन्द्र-हे मुनि देव ! ऐसे भला कैसे हो सकता है ? ऐसा तो हो ही नहीं सकता। ऐसा तभी हो सकता है यदि कोई राजा भला हो, राजा के कर्मचारी भले हो। पर मृत्यु-लोक के राजा भले नहीं हो सकते, कोई न कोई कमी जरूर होती है।

नारद मुनि-ठीक है ! मृत्यु-लोक पर राजा हरीशचंद्र है। वह चक्रवर्ती राजा बन गया है। वह दान-पुण्य करता है, ब्राह्मणों को गाय देता है तथा अगर कोई जरूरत मंद आए तो उसकी जरूरत पूरी करता है, सत्यवादी राजा है। वह कभी झूठ नहीं बोलता। होम यज्ञ होते रहते हैं। राजा नेक और धर्मी होने के कारण प्रजा भी ऐसी ही है। हे इन्द्र ! एक बार उसकी नगरी में जाने पर स्वर्ग का भ्रम होता है। वापिस आने को जी नहीं चाहता, सर्वकला सम्पूर्ण है। रिद्धियां-सिद्धियां उसके चरणों में हैं।

इस तरह नारद मुनि ने राजा हरीशचन्द्र की स्तुति की तो इन्द्र पहले तो हैरान हुआ तथा फिर उसके अन्दर ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उसे सदा यही चिंता रहती थी कि कोई दूसरा उससे ज्यादा बली न हो। इन्द्र

से बली नहीं हो सकता था जो बहुत ज्यादा तपस्या तथा धर्म कर्म करता था। ऐसा करने वाला कोई एक ही होता था। इन्द्र के पास दैवी शक्तियां थीं। वह मृत्यु-लोक के भक्तों तथा धर्मी पुरुषों की भक्ति में विघ्न डालने का प्रयत्न करता। उसने अपने मन में यह फैसला कर लिया कि वह राजा की जरूर परीक्षा लेगा, क्योंकि ऐसा हो ही नहीं सकता कि कोई इतना सत्यवादी बन जाए।

नारद मुनि इन्द्र लोक से चले गए। इन्द्र चिंता में डूब गया। अभी वह सोच ही रहा था कि उसके महल में विश्वामित्र आ गया। विश्वामित्र ने कई हजार साल तपस्या की थी तब वह मृत्यु-लोक से स्वर्ग-लोक में पहुंचा था। वह बहुत प्रभावशाली था। उसने जब इन्द्र की तरफ देखा तो चेहरे से ही उसके मन की दशा को समझ गया।

उसने पूछा-देवताओं के महांदेव ! महाराज इन्द्र के चेहरे पर काला प्रकाश क्यों ? चिंता के चिन्ह प्रगट हो रहे हैं, ऐसी क्या बात है जो आपके दुःख का कारण है ? कौन है जो महाराज के तख्त को हिला रहा है ?

विश्वामित्र की यह बात सुन कर इन्द्र ने कहा-'हे मुनि जन ! अभी-अभी नारद मुनि जी यहां आए थे। वह मृत्यु-लोक से भ्रमण करके आए थे। उन्होंने बताया है कि पृथ्वी पर राजा हरीशचन्द्र ऐसा है जिसे लोग सत्यवादी कहते हैं। वह पुण्य दान और धर्म-कर्म करके बहुत आगे चला गया है।'

यह सुन कर विश्वामित्र मुस्कराया और उसने कहा कि इस छोटी सी बात से क्यों घबरा रहे हो। जैसा चाहोगे हो जाएगा। आप के पास तो लाखों उपाय हैं। महाराज ! आप की शक्ति तक किस की मजाल है कि पहुंच जाए। आप आज्ञा कीजिए, जैसे कहो हो सकता है, आप चिंता छोड़ें।

इन्द्र की चिंता दूर करने के लिए विश्वामित्र ने राजा हरीशचन्द्र की परीक्षा लेने का फैसला कर लिया तथा इन्द्र से आज्ञा ले कर पृथ्वी-लोक में पहुंच गया। साधारण ब्राह्मण के वेष में विश्वामित्र राजा हरीश चन्द्र की नगरी में गया। राज भवन के 'सिंघ पौड़' पर पहुंच कर उस ने द्वारपाल को कहा-राजा हरीश चन्द्र से कहो कि एक ब्राह्मण आपको मिलने आया है।

द्वारपाल अंदर गया। उसने राजा हरीश चन्द्र को खबर दी तो वह सिंघासन से उठा और ब्राह्मण का आदर करने के लिए बाहर आ गया। बड़े आदर से स्वागत करके उसको ऊंचे स्थान पर बिठा कर उसके चरण धो कर चरणामृत लिया और दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना की-

हे मुनि जन ! आप इस निर्धन के घर आए हो, आज्ञा करें कि सेवक आपकी क्या सेवा करे ? किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो दास हाजिर है बस आज्ञा करने की देर है।

'हे राजन ! मैं एक ब्राह्मण हूं। मेरे मन में एक इच्छा है कि मैं चार महीने राज करूं। आप सत्यवादी हैं, आप का यश त्रिलोक में हो रहा है। क्या इस ब्राह्मण की यह इच्छा पूरी हो सकती है।' ब्राह्मण ने कहा।

सत्यवादी राजा हरीश चन्द्र ने जब यह सुना तो उसको चाव चढ़ गया। उसका रोम-रोम झूमने लगा और उसने दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना की-'जैसे आप की इच्छा है, वैसे ही होगा। अपना राज मैं चार महीने के लिए दान करता हूं।'

यह सुन कर विश्वामित्र का हृदय कांप गया। उसको यह आशा नहीं थी कि कोई राज भी दान कर सकता है। राज दान करने का भाव है कि जीवन के सारे सुखों का त्याग करना था। उसने राजा की तरफ देखा, पर इन्द्र की इच्छा पूरी करने के लिए वह साहसी होकर बोला-

चलो ठीक है। आपने राज तो सारा दान कर दिया, पर बड़ी जल्दबाजी की है। मैं ब्राह्मण हूं, ब्राह्मण को दक्षिणा देना तो आवश्यक होता है, मर्यादा है।

राजा हरीश चन्द्र-सत्य है महाराज ! दक्षिणा देनी चाहिए। मैं अभी खजाने में से मोहरें ला कर आपको दक्षिणा देता हूं।'

विश्वामित्र-'खजाना तो आप दान कर बैठे हो, उस पर आपका अब कोई अधिकार नहीं है। राज की सब वस्तुएं अब आपकी नहीं रही। यहां तक कि आपके वस्त्र, आभूषण, हीरे लाल आदि सब राज के हैं। इन पर अब आपका कोई अधिकार नहीं।

राजा हरीश चन्द्र-'ठीक है। दास भूल गया था। आप के दर्शनों की खुशी में कुछ याद नहीं रहा, मुझे कुछ समय दीजिए।'

विश्वामित्र-'कितना समय ?'

राजा हरीश चन्द्र 'सिर्फ एक महीना। एक महीने में मैं आपकी दक्षिणा दे दूंगा।'

विश्वामित्र-'चलो ठीक है। एक महीने तक मेरी दक्षिणा दे दी जाए। नहीं तो बदनामी होगी कि राजा हरीश चन्द्र सत्यवादी नहीं है। यह भी आज्ञा है कि सुबह होने से पहले मेरे राज्य की सीमा से बाहर चले जाओ। आप महल में नहीं रह सकते। ऐसा करना होगा यह जरूरी है।

राजा हरीशचन्द्र ने शाही वस्त्र उतार दिए। बिल्कुल साधारण वस्त्र पहन कर पुत्र एवं रानी को साथ लेकर राज्य की सीमा से बाहर चला गया। प्रजा रोती कुरलाती रह गई लेकिन राजा हरीशचन्द्र के माथे पर बिल्कुल भी शिकन तक न पड़ी, न ही चिंता के चिन्ह प्रगट हुए। वह अपने वचन पर अडिग रहा। साधुओं की तरह तीनों राज्य की सीमा से बाहर बनारस कांशी नगरी की ओर चल दिए। मार्ग में भूख ने सताया तो कंदमूल खाकर निर्वाह किया। राजा तो न डोला लेकिन

रानी और पुत्र घबरा गए। उनको मूल बात का पता नहीं था।

चलते-चलते राजा-रानी कांशी नगरी में पहुंच गए। मार्ग में उनको बहुत कष्ट झेलने पड़े। पांवों में फफोले पड़ गए। वह दुखी होकर पहुंचे पर दुःख अनुभव न किया।

राजा हरीश चन्द्र चूने की भट्ठी पर मजदूरी करने लग गया। उसने अपने शरीर की चिंता न की। उसने कठिन परिश्रम करके भोजन खाना पसंद किया। क्योंकि अपने हाथ से परिश्रम करना धर्म है और मांग कर खाना पाप है। ऐसा वही मनुष्य करता है जो मेहनत पर भरोसा रखता है। राजा परिश्रम करके जो भी लाता उससे खाने का सहारा हो जाता। लेकिन ब्राह्मण की दक्षिणा के लिए पैसे इकट्ठे न कर पाता। इस प्रकार 25 दिन बीत गए। राजा के लिए अति कष्ट के दिन आ गए, क्योंकि विश्वामित्र और देवराज इन्द्र राजा हरीशचन्द्र को नीचा दिखाना चाहते थे। उन्होंने राजा के सत्यवादी अटल भरोसे को गिराना था।

ब्राह्मण के रूप में विश्वामित्र आ गए और क्रोधित होकर राजा हरीशचन्द्र से बोले- 'हे हरीशचन्द्र ! आप तो सत्यवादी हैं। आप का यह धर्म नहीं कि आप धर्म की मर्यादा पूरी न करो, मेरी दक्षिणा दीजिए !'

राजा हरीशचन्द्र ने विश्वामित्र से क्षमा मांगी। क्षमा मांगने के बाद राजा ने फैसला किया कि वह स्वयं को तथा अपनी रानी को बेच देगा तथा जो मिलेगा वह ब्राह्मण को दे दूंगा, पर यह बात कतई नहीं सुनूंगा कि राजा हरीशचन्द्र झूठे हैं। वह सत्यवादी था। यह सोच कर उसने कांशी की गलियों में आवाज़ दी-'कोई खरीद लें', 'कोई खरीद लें', 'हम बिकाऊ हैं।' इस तरह ही आवाज़ देते रहे। सुनने वाले लोग हैरान थे और मंदबुद्धि वाले उनकी हंसी उड़ा रहे थे।

बाजार में कई लोगों ने उनकी सहायता करनी चाही, पर राजा ने

दान या सहायता लेना स्वीकार न किया। अन्त में एक ब्राह्मण ने अपनी ब्राह्मणी के लिए दासी के तौर में रानी को खरीद लिया और राजा को पैसे दे दिए। रानी ने ब्राह्मणी के आगे दो शर्तें रखीं। एक तो पराए मर्द से न बोलना, दूसरा किसी मर्द की जूठन न खाना। ब्राह्मणी ने स्वीकार कर लिया तथा रानी अपने पुत्र को लेकर ब्राह्मण के घर चली गई।

रानी के बिक जाने के बाद राजा को शहर की श्मशान घाट के रक्षक चण्डाल ने खरीद लिया। राजा को यह कार्य सौंपा गया कि वह श्मशान घाट में रुपए लिए बिना कोई मुर्दा न जलने दे और रखवाली करे। राजा रात–दिन वहां रहने को तैयार हो गया और फिर ब्राह्मण को पूरी दक्षिणा दे दी। विश्वामित्र और इन्द्र का यह साहस न हुआ कि वह राजा हरीशचन्द्र को यह कह सके कि वह झूठा है या अपने वचन से फिर जाता है।

विश्वामित्र और इन्द्र जब हार गए तो उन्होंने अपनी हार मानने से पहले राजा और रानी की एक और कड़ी परीक्षा लेनी चाहिए। इसके लिए उन्होंने अपनी दैवी शक्ति का प्रयोग करके राजा की परीक्षा ली।

राजा और रानी के पुत्र का नाम रोहतास था। वह खेलता रहता और कभी-कभी अपनी माता के काम में हाथ भी बंटाता। विश्वामित्र और इन्द्र ने अपनी दैवी शक्ति से राजा और रानी के पुत्र को सांप से डंसवाया। बच्चा उसी क्षण प्राण त्याग गया। अपने पुत्र की मृत्यु को देख कर रानी व्याकुल हो उठी। उसका रोना धरती और आकाश में गूंजने लगा। रानी ने मिन्नतें करके अपने पुत्र के कफन और उसके संस्कार के लिए ब्राह्मण से सहायता मांगी, पर इन्द्र और विश्वामित्र ने उसके मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि उन्होंने न दो गज कपड़ा दिया और न ही कोई पैसा दिया। रानी ने अपनी धोती का आधा चीर फाड़

कर पुत्र को लपेट लिया और श्मशान घाट की ओर ले गई।

लेकिन राजा हरीशचन्द्र ने रुपए लिए बिना रानी को श्मशान घाट में दाखिल न होने दिया और न ही अपने पुत्र का संस्कार किया। उसने अपने मालिक के साथ धोखा न किया। रानी रोती रही। वह बैठी-बैठी ऐसी बेहोश हुई कि उसको होश न रही।

संयोग से एक और घटना घटी। वह यह कि चोरों ने कांशी के राजा के महल में से चोरी की। उन्होंने यह कामना की थी अगर माल मिलेगा तो श्मशान घाट के किसी मुर्दे को चढ़ावा देंगे। वे चोर जब श्मशान घाट पहुंचे तो आगे रानी बैठी थी। उसके पास मुर्दा देखकर वे रानी के गले में सोने का हार डाल कर चले गए।

चोरी की जांच पड़ताल करते हुए सिपाही जब आगे आए तो श्मशान घाट में उन्होंने रानी के गले में सोने का शाही हार पड़ा देखा। उन्होंने रानी को उसी समय पकड़ लिया। रानी ने रो-रो कर बहुत कहा कि वह निर्दोष है, पर किसी ने एक न सुनी। उसके पुत्र रोहतास को वहीं पर छोड़ कर सिपाही रानी को कांशी के राजा के पास ले गए। राजा ने उसे चोरी के अपराध में मृत्यु दण्ड का हुक्म दे दिया। मरने के लिए रानी फिर श्मशान घाट पहुंच गई। उसका कत्ल भी राजा हरीशचन्द्र ने करना था, जो चण्डाल का सेवक था।

विश्वामित्र ने भयानक ही खेल रचा था। पुत्र रोहतास को मार दिया, रानी पर चोरी का दोष लगा कर उसका कत्ल करवाने के लिए कत्लगाह में ले आया। कत्ल करने वाला भी राजा हरीशचन्द्र था, जिसने अपने राज्य में एक चींटी को भी नहीं मारा था। ऐसी लीला और भयानकता देख कर विष्णु और पारब्रह्म जैसे महाकाल देवता भी घबरा गए, पर राजा हरीशचन्द्र अडिग रहा। वह अपने फर्ज पर खरा उतरा। उसने अपनी रानी को मरने के लिए तैयार होने को कहा, ताकि वह उसे मार कर राजा के हुक्म की पालना कर सके। उस

समय कत्लगाह और श्मशान घाट में वह स्वयं था और साथ में उसकी प्यारी रानी और मृत पुत्र। बाकी सन्नाटा और अकेलापन था।

'तैयार हो जाओ' ! यह कह कर राजा हरीशचन्द्र ने तलवार वाला हाथ रानी को मारने के लिए ऊपर उठाया। हाथ को ऊंचा करके जब वार करने लगा तो उस समय अद्‌भुत ही चमत्कार हुआ। उसी समय किसी अनदेखी शक्ति ने उसके हाथ पकड़ लिए और कहा-"धन्य हो तुम राजा हरीशचन्द्र सत्यवादी !" इस आवाज़ के साथ ही उसके हाथ से तलवार नीचे गिर गई, उसने आश्चर्य से देखा कि वह एक श्मशान घाट में नहीं बल्कि एक बाग में खड़ा है, जहां विभिन्न प्रकार के फूल खिले हैं। उसके वस्त्र भी चण्डालों वाले नहीं थे, उसने अपनी आंखें मल कर देखा तो सामने भगवान खड़े थे। विश्वामित्र और इन्द्र भी निकट खड़े थे। पर वह ब्राह्मण कहीं भी नजर नहीं आ रहा था।

राजा हरीशचन्द्र उसी पल भगवान के चरणों में झुक गया। रानी ने भी आगे होकर सब को प्रणाम किया। उस समय भगवान ने वचन किया 'राजा हरीशचन्द्र ! सत्य ही सत्यवादी है। मांग, जो कुछ भी मांगोगे वही मिलेगा।

इसके साथ ही विश्वामित्र ने सारी कथा सुना दी तथा राजा रानी के पुत्र रोहतास को हंसते मुस्कराते हुए दोनों के पास पेश किया। सारी कथा सुन कर राजा हरीशचन्द्र ने भगवान, इन्द्र तथा विश्वामित्र को प्रणाम किया और कहा-'अपनी लीला को तो आप ही जाने महाराज !'

जब भगवान ने बहुत जोर दिया तो राजा हरीशचन्द्र ने यह वर मांगा- 'प्रभु ! मेरी यही इच्छा है कि मैं सारी नगरी सहित स्वर्गपुरी को जाऊं।'

'तथास्तु' कह कर सभी देवता लुप्त हो गए। राजा, रानी अपने पुत्र सहित अपनी नगरी में आ गए। सारी प्रजा ने खुशी मनाई।

कहते हैं राजा कुछ समय राज करता रहा तथा एक समय ऐसा

आया जब सारी नगरी सहित राजा स्वर्गलोक को चल पड़ा। जब वह बैकुण्ठ धाम को जा रहा था तो जानवर, पक्षी तथा पशु आदि साथ थे। यह देखकर राजा को अभिमान हो गया। गधा होगा-राजा ही है, जिसकी नगरी भी स्वर्ग को जा रही है। उसी समय नगरी जाती-जाती धरती व स्वर्ग के बीच ब्रह्मांड में रुक गई। उसका नाम हरीचंद उरी है। गुरुबाणी में आता है-

हरिचंद उरी चित भ्रमु सखीए म्रिग त्रिसना द्रुम छाइआ ।।
चंचलि संगि न चालती सखीए अंति तजि जावत माइआ ।।

(पन्ना ८०३)

इस कथा का परमार्थ यह है कि किसी क्षण भी सत्य को हाथ से नहीं छोड़ना चाहिए तथा न ही अभिमान करना चाहिए। जो सत्यवादी बने रहते है, उनकी नैया पार होती है।

राजा उग्रसैन

इस धरती पर अनेकों धर्मी राजा हुए हैं जिनका नाम आज तक बड़े आदर से लिया जाता है। उनका धर्म उजागर है। ऐसे राजाओं में यदुवंशी राजा उग्रसैन भी हुआ है। उसका धर्म-कर्म बहुत ही प्रसिद्ध था। वह मथुरा पुरी पर राज करता था। यमुना के दोनों किनारों पर उसी का राज था।

ऐसे नेक और धर्मी राजा के घर संतान की कमी थी। बस एक ही पुत्र था, जिसका नाम कंस था। वह उसी का पालन-पोषण करता था। उसके घर कोई कन्या पैदा न हुई। इसके विपरीत उसके छोटे भाई देवक के घर सात कन्याओं ने जन्म लिया। पर देवक के घर कोई पुत्र पैदा न हुआ। कन्यादान करने के लिए उग्रसैन ने अपने भाई की बड़ी कन्या देवकी को गोद लेकर अपनी पुत्री बना लिया। उसका पालन-पोषण करके उसे बड़ा किया। आमतौर पर सब यही समझते

थे कि राजा उग्रसैन की दो सन्तानें कंस और देवकी हैं। समय बीतने के साथ-साथ देवकी और कंस जवान हुए। राजा उग्रसैन को उनका विवाह करने का ख्याल आया।

राजा उग्रसैन ने देवकी का विवाह वासुदेव से कर दिया। साथ ही देवकी की छोटी बहनों का भी वासुदेव से ही विवाह हो गया। वासुदेव नेक और धर्मात्मा था। उसका जीवन बड़ा ही शुभ था।

कंस का विवाह राजा जरासंध की लड़की से हुआ। जरासंध अच्छा पुरुष नहीं था। उसमें बहुत-सी कमियां थीं। वह अधर्मी और कुकर्मी था, प्रायः सबसे लड़ता रहता था। जैसा बाप वैसी ही उसकी कन्या थी। वह बहुत अभिमानी और उपद्रव करने वाली थी। उसने कंस को भी नेक न रहने दिया। धर्मी राजा उग्रसैन की संतान में विघ्न पड़ गए तथा अपशगुन होने लगे।

ग्रन्थों में लिखा है कि जब देवकी का विवाह वासुदेव के साथ हुआ तो डोली चलने के समय जब भाई-बहन मिलने लगे तो आकाश में एक भयानक बिजली की गड़गड़ाहट हुई। बिजली की चमक से सब हैरान और भयभीत हुए। उसी समय कंस के कानों में आकाशवाणी पड़ी-'पापी कंस ! तेरे पापों से पृथ्वी कांप उठी है, धर्मी राजा उग्रसैन के राज में तेरे पापों की कथा है......तुझे मारने के लिए देवकी के गर्भ से जो आठवां बालक जन्म लेगा वह तेरा वध करेगा। तुम्हारे बाद फिर तुम्हारा पिता उग्रसैन राज करेगा।'

इस आकाशवाणी को सुनकर कंस ने डोली को चलने से रोक दिया और क्रोध से पागल हो कर म्यान से तलवार निकाल ली। उसने देवकी को मारने का फैसला कर लिया। सब ने उसे ऐसा करने से रोका, पर मंदबुद्धि एवं दुष्ट कंस ने किसी की न सुनी। वह सदा मनमर्जी करता रहता था। उसी समय वासुदेव आगे आए और कहा, देवकी को मार कर अपने सिर पाप लेने का तुम्हें कोई फायदा नहीं

है, तुम इसे छोड़ दो। देवकी के गर्भ से जो भी बच्चा जन्म लिया करेगा, वह आपके पास सौंप दिया करेंगे, आप जैसा चाहे उस बच्चे को मरवा दिया करें।

ऐसा वचन सुन कर मूर्ख और पापी आत्मा कंस ने तलवार को म्यान में डाल लिया तथा देवकी और वासुदेव को हुक्म दिया कि वह उसी के महल में रहें, अपने घर न जाएं। ऐसा दोनों को करना ही पड़ा क्योंकि वह दोनों ही मजबूर थे, राजा कंस के साथ मुकाबला करना उनके लिए कठिन था। वह दोनों बंदियों की तरह रहने लगे। कंस ने उन्हें कारावास में डाल दिया।

इस दुर्घटना का असर राजा उग्रसैन के हृदय पर बहुत पड़ा। उसने पिता होने के कारण अपने पुत्र कंस को बहुत बार समझाया, मगर उसने एक न सुनी। इसके विपरीत अपने पिता को बंदी बना कर उसने कहा–'बंदी खाने के अंधेरे में पड़े रहो! तुम अपने पुत्र के दुश्मन हो। जाओ तुम्हारा कभी भी छुटकारा नहीं होगा, बस बैठे रहो।'

धर्मी राजा उग्रसैन की प्रजा ने जब सुना तो हाहाकार मच गई। प्रजा ने बहुत विलाप किया और शोक रखा। पर दुष्ट कंस ने उनको तंग करना शुरू कर दिया।

उधर देवकी बहुत दुखी हुई। उसका जो भी बालक जन्म लेता वही मार दिया जाता। वासुदेव को भी बहुत दुःख होता। इस तरह एक–एक करके सात बच्चे मार दिए गए, जिनका दुःख देवकी और वासुदेव के लिए असहनीय था।

आठवां बच्चा देवकी के गर्भ से भगवान का अवतार ले कर पैदा हुआ। पारब्रह्म की लीला बड़ी अद्‌भुत है जिसे कोई नहीं जान सकता, भगवान श्री कृष्ण ने जब अवतार लिया तो बड़ी मूसलाधार वर्षा हो रही थी। काल कोठड़ी के सारे पहरेदारों को गहरी नींद आ गई।

भगवान ने वासुदेव को हिम्मत और साहस दिया। वासुदेव शिशु रूपी भगवान श्री कृष्ण जी को उठा कर भगवान की इच्छानुसार अपने मित्र नंद लाल के घर पहुंचाने के लिए चल पड़े। यमुना नदी के किनारे पहुंच गए। वर्षा के कारण यमुना में पानी बहुत भर गया था, वह जोर-जोर से छलांगें मार रहा था।

वासुदेव यमुना को देख कर कुछ समय के लिए भयभीत हो गए। वह सोचने लगे कि कहीं वह यमुना में ही न बह जाएं। उसी समय आकाशवाणी हुई-'हे वासुदेव ! चलो, यमुना मैया तुम्हें मार्ग देगी। तुम्हारे सिर पर तो भगवान हैं जो स्वयं महांकाल के भी मालिक हैं। चलो !

यह सुन कर वासुदेव आगे बढ़े। यमुना के जल ने श्री कृष्ण जी के चरणों को स्पर्श किया और सत्य ही वासुदेव को जाने का रास्ता दे दिया। वासुदेव यमुना पार करके गोकुल नगरी में आ गए। यशोदा माता उस समय सोई हुई थी। अपना लड़का नंद लाल को दे दिया तथा उसकी कन्या को लेकर वापिस चल पड़े। यमुना ने फिर उसी तरह मार्ग दे दिया। वासुदेव वापिस काल कोठड़ी में आ गए, किसी को कुछ भी पता न चला। भगवान ने अपने भक्त की लाज रखी। रातों-रात ही सभी कार्य हो गए।

सुबह हुई तो वासुदेव ने अपने साले दुष्ट कंस को बताया कि उसके घर आठवीं संतान के रूप में कन्या ने जन्म लिया है। आकाशवाणी असत्य निकली। आप इसे मत मारो, क्योंकि कन्या तो आपका वध नहीं कर सकती। यह सुन कर कंस क्रोध से बोला-क्यों नहीं ? कन्या भी तो एक दिन किसी की मौत का कारण बन सकती है। लाओ ! कंस ने वासुदेव के हाथ से कन्या को छीन लिया।

यह कन्या वास्तव में माया का रूप थी। जब कंस उसका वध

करने लगा तो उसी समय वह बिजली का रूप धारण करके आकाश में चली गई और हंस कर बोली हे पापी कंस ! तुम्हारी मृत्यु अवश्य होगी, तुम्हें मारने वाला जन्म ले चुका है, उसका पालन हो रहा है और जवान होकर तुम्हारा अंत करेगा।' यह कह कर कन्या आकाश में लुप्त हो गई।

पापी कंस ने भरसक प्रयास किए कि देवकी सुत श्री कृष्ण को ढूंढ कर खत्म कर दिया जाए, पर उसे कहीं से भी कोई सफलता न मिली। जवान होकर श्री कृष्ण ने कंस से युद्ध किया तथा उस का वध करके धर्मी राजा उग्रसैन को बंदीखाने से मुक्त किया। उसे राज तख्त पर बिठाया। *'उग्रसैन कउ राज अभै भगतह जन दीओ।'*

उग्रसैन को राज उसकी भक्ति के कारण मिला। कंस के ससुर जरासंघ ने भी कई बार मथुरा पर हमला किया पर राजा उग्रसैन को पराजित न कर सका। राजा उग्रसैन के बाद श्री कृष्ण जी मथुरा के राजा बने। यह कथा राजा उग्रसैन की है, वह भक्तों में गिने जाते हैं।

साखी ऊधो की

ऊधउ अकरूर बिदर गुण गावै ॥

ऊधो-मथुरा और गोकुल धरती पर जन्म लेने वाला श्री कृष्ण जी का बाल सखा था। श्री कृष्ण जी और ऊधो इकट्ठे ही पले बढ़े, खेले और जवान हुए। श्री कृष्ण जी को राज मिलने पर ऊधो उनके साथ न गया। वह विदुर की तरह भक्त बन गया। ऊधो ने श्री कृष्ण जी से भागवत पुराण की कथा सुनी और फिर विदुर जी को सुनाते रहे। जब कभी भी श्री कृष्ण जी और गोपियों के बीच झगड़ा होता रहा तो ऊधो जी ही झगड़े को समेटते रहे। ऊधो श्री कृष्ण जी को अवतार मानते थे। वह श्री कृष्ण जी के अनन्य भक्त थे। उनके विश्वास तथा निर्मल आत्मा के कारण ही उन्हें भक्त माना जाता है तथा कलयुग

में भी उनका नाम आदर से लिया जाता है तथा उन्हें याद किया जाता है।

साखी अक्रूर जी की

अक्रूर राजा कंस का चाचा था। कंस बेशक दुष्ट और पापी था परन्तु उसका पिता और चाचा नेक तथा धर्मी पुरुष थे। अक्रूर का स्वभाव कंस के विपरीत सदाचारी और नेक था। वह प्रभु भक्त था। प्रभु की ऐसी इच्छा हुई कि उसे कंस के दरबार में ही अपने निर्वाह के लिए कार्य करना पड़ा। वह हर रोज देखता कि कंस कुमार्ग पर चलता है। उसकी मनमर्जी और पापों के कारण हाहाकार मची हुई थी, कोई भी भद्र पुरुष कंस को अच्छा नहीं कहता था, पर अक्रूर क्योंकि धर्मी, नेक और तपस्वी था, इसलिए उसको पाप नहीं लगता था। अक्रूर तो खुद ही सद्पुरुषों में गिना जाता था। अक्रूर कभी कभी अहंकारी कंस को समझाता, पर उसको समझाने का इतना ही फल होता जितना कि पत्थर पर पानी डालने से पत्थर पर होता है।

उधर कंस ने अपने जासूसों और लालची व्यक्तियों द्वारा यह पता करा लिया कि देवकी का पुत्र कृष्ण जीवित है। वह पल बढ़ कर जवान हो गया है। कंस भयभीत था कि अब वह मारा जाएगा। इसलिए उसने विचार किया कि क्यों न किसी बहाने से देवकी के पुत्र को बुलवा कर मरवा दिया जाए। कंस को श्री कृष्ण जी के प्रभु का अवतार होने का बिल्कुल भी ज्ञान नहीं था, वह तो श्री कृष्ण जी को एक साधारण पुरुष ही समझता था। कंस ने एक दिन धनुष यज्ञ रखा। अक्रूर से कहा–हमने सुना है कि गोकुल में कृष्ण नाम का एक ग्वाला रहता है, वह बहुत शूरवीर है। धनुष–यज्ञ में उसको भी बुला कर लाओ। वहां पर मल्ल भी एकत्रित होंगे। ग्वाले सूरमा भी आएं और खेलों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लें।

कंस की यह बात सुनकर अक्रूर बहुत ही प्रसन्न हुआ कि उसे

भगवान श्री कृष्ण के दर्शन प्राप्त हो रहे हैं, पर वह कुछ भय प्रगट करते हुए तथा उस मूर्ख कंस को और अहंकारी बनाने के लिए उसकी प्रशंसा करते हुए बोला-'हे राजन ! आपका मुकाबला करने वाला इस धरती पर कोई नहीं है, ग्वाले लड़के भला किस प्रकार आपका मुकाबला करेंगे ? हां, यह हो सकता है कि उनको बुला कर थोड़ी देर के लिए दिल बहला लो, जीतना तो आपने ही है।

'मेरे मुकाबले का कोई नहीं, चलो थोड़ी देर के लिए रंग-तमाशा ही देखेंगे, तुम जरूर जाओ और कृष्ण को अवश्य लेकर आना। सुना है कि वह अपने सामने किसी को ठहरने नहीं देता। ग्वालों की लड़कियां भी उस पर जान न्यौछावर करती हैं। जरा हमें भी पता लग जाएगा।' कंस ने जरा चंचलता के साथ कहा और अक्रूर को खास तौर पर गोकुल भेजा।

अक्रूर ने सुना था कि श्री कृष्ण जी विष्णु के अवतार हैं। वह स्वयं प्रभु रूप हैं। हाथी, नाग और कईयों के जीवन बंधन काट कर मुक्ति दे चुके हैं। जो उनके दर्शन कर लेता है वह आनंदित हो उठता है। अक्रूर मन ही मन इस तरह विचार करता चल पड़ा। मार्ग में मन ही मन सोचता रहा कि-वहां जाकर क्या करुंगा, कैसे नमस्कार करके बात शुरू करुंगा, चरणों की धूल को माथे से लगाएगा। वह तो अन्तर्यामी हैं, क्या पता सारे भेद को जानकर मुझसे नाराज हो जाएं कि मैं कंस से सांठ-गांठ करके आया हूं, पर क्योंकि उसे भगवान पर श्रद्धा थी इसलिए चुपचाप चल पड़ा।

अक्रूर की आत्मा जागी और जागी हुई आत्मा ने नेत्रों में ऐसी तेज रोशनी कर दी जो अणु-परमाणु को भी देख सकती थी। अक्रूर को वृंदावन की पवित्र धरती पर लगे कृष्ण के पद चिन्ह नजर आए। उसने झुककर प्रणाम किया और आगे बढ़ता गया। चलते-चलते वह नंद के घर पहुंच गया। घर में बलराम तथा कृष्ण दोनों बैठे

बातें कर रहे थे। उसने अंदर जाकर भगवान श्री कृष्ण को नमस्कार किया तथा चरणों में गिर गया। प्रभु ने उसे उठाया और पूछा- सुनाओ। पिता जी, कैसे आना हुआ ? हमारे बड़े भाग्य हैं जो आप आए। भगवान श्री कृष्ण ने अपनी आत्मिक शक्ति से सब कुछ जान लिया था।

अक्रूर-'हे प्रभु ! आप तो अन्तर्यामी हैं। आप से क्या छिपा है। कंस ने धनुष यज्ञ रखा है, कुश्ती भी होगी। उसने वृंदावन के शूरवीर भी आम्रत्रित किए हैं। मैं आपको निमंत्रण देने आया हूं।

भगवान कृष्ण-'बड़ी खुशी की बात है। राजा कंस के आमत्रंण पर तो जरूर जाना चाहिए। हम तैयार हैं, आपके साथ ही चलते हैं। यह वचन करके श्री कृष्ण ने युगल तथा बलराम को साथ लेकर मथुरा जाने की तैयारी की। बहुत सारे ग्वाले भी उनके साथ जाने को तैयार हो गए। सब इकट्ठे हो कर काफिले के रूप में यमुना किनारे आ गए। यमुना ने जैसे ही भगवान कृष्ण जी के चरण स्पर्श किए तो वह सिकुड़ गई। वह इतनी छोटी हो गई कि सभी ने उसे आसानी से पार कर लिया।

जब प्रभु यमुना पार हो गए तो अक्रूर मन में पश्चाताप करने लगा कि उसने अच्छा नहीं किया। कंस और ग्वालों की आपस में शत्रुता है। कहीं पापी कंस श्री कृष्ण और उनके भाईयों को न मरवा दे। ऐसा सोच ही रहा था कि भगवान कृष्ण ने उसके मन की बात जान कर उस की सारी शंका निवृत कर दी।

जब श्री कृष्ण अपने भाईयों तथा मित्रों सहित मथुरा पहुंच गए तो वहां पर श्री कृष्ण और कंस का दंगल हुआ। इस दंगल में पापी कंस मारा गया। श्री कृष्ण ने कंस के पिता उग्रसैन को बंदीखाने से बाहर निकाला और राज सिंघासन पर बिठाया। मथुरा नगरी में पता चल गया कि यहीं भगवान श्री कृष्ण देवकी सुत हैं। जिनके हाथों कंस की मृत्यु लिखी थी और वह मारा गया। उग्रसैन ने श्री कृष्ण

को अपने पास ही रख लिया और सारे राज पाठ का दायित्व सौंप दिया और स्वयं भक्ति करने लगा। उसी समय भगवान श्री कृष्ण जी ने अक्रूर को कृतार्थ किया। उसके जन्म मरण के बन्धन को काट दिया, वह भक्तों में जाना जाने लगा।

मगर जो कंस के पक्षपाती थे, जिन्हें कंस की रानी ने भड़काया था, वह अक्रूर पर दोष लगाने लगे कि कंस को मरवाने वाला अक्रूर है। वह अक्रूर की निंदा करने लगे। निंदा इतनी बढ़ गई कि अक्रूर दुखी हो कर मथुरा छोड़ कर चला गया। जैसे ही उसने मथुरा को छोड़ा, वैसे ही मथुरा में उपद्रव होने लग गया। स्थान-स्थान पर दंगा-फसाद होने लगे। अकाल पड़ गया और लोग बहुत दुखी होने लगे। अक्रूर की निंदा करने वालों का कुछ भी नहीं रहा, वह तमाम बर्बाद हो गए।

मथुरा में नुक्सान होने का कारण यह बताते हैं कि अक्रूर के पास एक ऐसी मणि थी, जिस नगर में वह रहे वहां अमन और शांति रहती थी, मगर मणि जिसके पास रहती थी, वह जल्दी मर जाता था। अक्रूर के पास जब वह मणि आई तो उसने घोर तपस्या और भक्ति के प्रताप से मृत्यु पर काबू पा लिया था। वह श्वास-श्वास प्रभु सिमरन करता रहता था, इसलिए काल को समय ही नहीं मिलता था कि वह अक्रूर की जान लेता। अक्रूर ने एक टांग पर खड़े हो कर प्रभु की भक्ति की थी, वह मृत्यु का मालिक बन गया था।

जब लोग बहुत दुखी हो गए तो वह श्री कृष्ण जी के पास गए। श्री कृष्ण जी ने कहा-'यदि भला चाहते हो तो अक्रूर की स्तुति करो और उनको वापिस ले आओ। उनके आने से ही आपके सभी कष्ट दूर हो जाएंगे।

भगवान श्री कृष्ण की यह बात सुन कर कुछ सूझवान पुरुष कांशी गए और भक्त अक्रूर को मथुरा वापिस ले आए। नगर में अमन और सुख शांति हो गई। ऐसा हुआ भक्त अक्रूर के आने से। जो भी प्रभु

का सिमरन करता है, मन को साफ रखता है, झूठ, निंदा और चुगली से बचता है, वह भव सागर से पार हो जाता है। ऐसी ही प्रभु की लीला है। जीवन में प्रत्येक नर-नारी का लक्ष्य प्रभु भक्ति ही है।

गजिन्द्र हाथी

ऐक निमख मन माहि अराधिओ गजपति पारि उतारे ॥

(पन्ना ९९९)

सतिगुरु अर्जुन देव जी महाराज बाणी में फरमाते हैं कि हाथी ने एक पल प्रभु का सिमरन किया तो उसकी जान बच गई। परमेश्वर के नाम की ऐसी महिमा है। पशु-पक्षी जो भी नाम सिमरन करता है उसका जीवन सफल हो जाता है। गजपति (हाथी) दु:ख-पीड़ा से व्याकुल था। उसकी चिल्लाहट ने जब कुछ भी न संवारा तो उसने भक्ति और परमात्मा की तरफ ध्यान किया। उसी समय परमात्मा अपनी शक्ति के साथ उसकी सहायता हेतु आ गए। उस हाथी को तेंदुए ने पकड़ रखा था और उसे पानी से बाहर नहीं आने दे रहा था।

हे जिज्ञासु जनो ! एकाग्रचित्त होकर कथा सुनो कि किस तरह हाथी के बंधन मुक्त हो गए। महाभारत के अनुसार कथा इस प्रकार है-

होता एवं ब्रह्मा दो भाई हुए हैं। वह दोनों परमात्मा का सिमरन किया करते थे और इकट्ठे ही रहते थे। एक दिन दोनों सलाह-मशविरा करके एक राजा के पास दक्षिणा लेने गए।

यह मालूम नहीं, क्यों ?

किसी कारण या स्वाभाविक ही भाई होता को दक्षिणा ज्यादा मिली तथा ब्रह्मा को कम। ब्रह्मा ने सोचा कि मुझे कम दक्षिणा मिली है तो भाई को ज्यादा, बराबर-बराबर करनी चाहिए। उसने शीघ्र ही सारी दक्षिणा मिला कर एक समान कर दी। उसके दो हिस्से करके भाई

को कहने लगा–'उठा ले एक हिस्सा।'

होता 'नहीं ! यह नहीं हो सकता, मैं तो उतना हिस्सा लूंगा जितना मुझे मिला है। दक्षिणा इकट्ठी क्यों की ?'

ब्रह्मा 'ईर्ष्या क्यों करते हो ?'

होता ·ईर्ष्या एवं लालच आप करते हो, जब आप को दक्षिणा कम मिली तो आप ने एक जैसी कर दी। कितनी बुरी बात है, मेरा पूरा हिस्सा दो, लालची !

ब्रह्मा–'मैं लालची हूं तो तुम तेंदुए की तरह हो। जाओ, मैं तुम्हें श्राप देता हूं तुम गंडकी नदी में तेंदुए बन कर रहोगे लालची।'

होता भी कम नहीं था उसने भी भगवत भक्ति की थी और उसने भी आगे से श्राप दे दिया–'यदि मैं तेंदुआ बनूंगा तो याद रखो तुम भी मस्त हाथी बनोगे तथा उसी नदी में जब पानी पीने आओगे तो तुम्हें पकड़ कर गोते देकर मारूंगा, फिर याद करोगे, ऐसे लालच को। तुमने सर्वनाश करने की जिम्मेदारी उठाई है, नीच ज़माने के।

यह कहता हुआ होता अपना हिस्सा भी छोड़ गया तथा घर को आ गया। कुछ समय पश्चात दोनों भाई मर गए और अगला जन्म धारण किया। होता तेंदुआ बना तथा ब्रह्मा हाथी। दोनों गंडकी नदी के पास चले गए। वह नदी बहुत गहरी थी।

हे भक्त जनो ! ध्यान दीजिए लालच कितनी बुरी भला है। भाई–भाई का आपस में झगड़ा करा दिया। इतना मूर्ख बनाया कि दोनों का कुल नाश हो गया। वास्तव में अहंकार और लालच बुद्धि को भ्रष्ट कर देता है। लालच में बंधे हुए लोग दुखी होते हैं। ऐसे ही लालच की अपरंपार महिमा है। लालच कभी नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मा एक बहुत बड़ा हाथी बना जैसे कि सब हाथियों का सरदार था, कोई हाथी उसके सामने नहीं ठहरता था। वह सब हाथिनों के झुण्ड साथ लेकर इधर उधर घूमता रहता। वह जंगल का राजा था।

ब्रह्मा को जो श्राप मिला था, उसे तो पूरा होना ही था। भगवान की माया अनुसार वह हाथी एक दिन उस गंडकी नदी के पास चला गया। पानी पीया। पानी बहुत ठण्डा था और सारे हाथी प्यासे थे। सबसे आगे वही हाथी था जो पूर्व जन्म में ब्रह्मा था। जब वह पानी पीने के लिए आगे बढ़ा तो आगे उसका भाई तेंदुए का रूप धारण करके बैठा था। उसने ब्रह्मा की टांगें पकड़ कर उसको गहरे पानी में खींचना शुरू कर दिया। वह आगे- आगे गया। जब हाथी डूबने लगा तो उसने चिल्लाना शुरू कर दिया। वह पानी के बीच बिना डूबे खड़ा हो गया। बस सिर और सूंड ही नंगी थी। ऐसा देख कर बाकी हाथी बहुत हैरान हुए, हाथिनें चिल्लाने लगीं, पर हाथी को बाहर निकालने की किसी में समर्था नहीं थी।

तेंदुए ने ब्रह्मा से बदला लेना था। इसलिए वह ज़ोर से उस हाथी को पकड़ कर बैठा रहा। हाथी बल वाला था, उसको भी ज्ञान हो गया कि पिछले जन्म का हिसाब बाकी है। वह अपने आप को बचाने का यत्न करने लगा। वह पानी में सिर न डूबने देता। तेंदुआ भी उस हाथी को डुबोने का यत्न करता।

तेंदुए तथा हाथी को लड़ते हुए कई हजार साल बीत गए। हाथी भूखा रहा, पानी में से वह क्या खाए। तेंदुए का भोजन तो पानी में ही था। हाथी बिना कुछ खाए-पीए कमज़ोर हो गया वह पानी में डूबने लगा तो उसी समय उसने अपनी सूंड ऊपर उठा कर आकाश की तरफ देख कर भगवान को याद किया। उसने प्रार्थना की-हे प्रभु! मैं हाथी की योनि में पड़ा हूं, दया करें कि मैं पानी में न डूबूं। यदि यहां मरा तो जरूर किसी बुरी योनि में जाऊंगा। मेरी प्रार्थना सुनो प्रभु !"

ब्रह्मा (हाथी) ने शुद्ध हृदय से पुकार की, उसी समय परमात्मा ने उसकी प्रार्थना सुनी और स्वयं नदी किनारे आए। सुदर्शन चक्र

से तेंदुए की तारें काटी और हाथी को डूबने से बचाया। उसकी हाथी की योनि से मुक्त करवाया, फिर भक्त रूप में प्रगट किया। वह प्रभु का यश करने लगा। तेंदुए का जन्म भी बदल गया।

भक्त सुदामा

प्रभु के भक्तों की अनेक कथाएं हैं, सुनते-सुनते आयु बीत जाती है पर कथाएं समाप्त नहीं होतीं। सुदामा श्री कृष्ण जी के बालसखा हुए हैं। उनके बाबत भाई गुरदास जी ने एक पउड़ी उच्चारण की है–

बिप सुदामा दालदी बाल सखाई मित्र सदाए।
लागू होई बाहमणी मिल जगदीस दलिद्र गवाए।
चलिया गिणदा गट्टीयां क्यों कर जाईये कौण मिलाए।
पहुता नगर दुआरका सिंघ दुआर खोलता जाए।
दूरहुं देख डंडउत कर छड सिंघासन हरि जी आए।
पहिले दे परदखना पैरीं पै के लै गल लाए।
चरणोदक लै पैर धोइ सिंघासन ऊपर बैठाए।
पुछे कुसल पिआर कर गुर सेवा की कथा सुनाए।
लै के तंदुल चबिओने विदा करै आगे पहुंचाए।
चार पदारथ सकुच पठाए ।१।१०।

भाई गुरदास जी के कथन अनुसार सुदामा गोकुल नगरी का एक ब्राह्मण था। वह बड़ा निर्धन था। वह श्री कृष्ण जी के साथ एक ही पाठशाला में पढ़ा करता था। उस समय वह बच्चे थे। बचपन में कई बच्चों का आपस में बहुत प्यार हो जाता है, वे बच्चे चाहे गरीब हो या अमीर, अमीरी और गरीबी का फासला बचपन में कम होता है। सभी बच्चे या विद्यार्थी शुद्ध हृदय के साथ मित्र और भाई बने रहते हैं।

सुदामा और कृष्ण जी का आपस में अत्यन्त प्रेम था, वह सदा

ही इकट्ठे रहते। जिस समय उनका गुरु उनको किसी कार्य के लिए भेजता तो वे इकट्ठे चले जाते, बेशक नगर में जाना हो या किसी जंगल में लकड़ी लेने। दोनों के प्रेम की बहुत चर्चा थी।

सुदामा जब पढ़ने के लिए जाता था तो उनकी माता उनके वस्त्र के पलड़े में थोड़े-से भुने हुए चने बांध दिया करती थी। सुदामा उनको खा लेता था, ऐसा ही होता रहा।

एक दिन गुरु जी ने श्री कृष्ण और सुदामा दोनों को जंगल की तरफ लकड़ियां लेने भेजा। जंगल में गए तो वर्षा शुरू हो गई। वे एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। बैठे-बैठे सुदामा को याद आया कि उसके पास तो भुने हुए चने हैं, वह ही खा लिए जाए। वह श्री कृष्ण से छिपा कर चने खाने लगा। उसे इस तरह देख कर श्री कृष्ण जी ने पूछा-मित्र ! क्या खा रहे हो ?

सुदामा से उस समय झूठ बोला गया। उसने कहा-सर्दी के कारण दांत बज रहे हैं, खा तो कुछ नहीं रहा, मित्र !

उस समय सहज स्वभाव ही श्री कृष्ण जी के मुख से यह शब्द निकल गया-'सुदामा ! तुम तो बड़े कंगाल हो, चनों के लिए अपने मित्र से झूठ बोल दिया।'

यह कहने की देर थी कि सुदामा के गले दरिद्र और कंगाली पड़ गई, कंगाल तो वह पहले ही था। मगर अब तो श्री कृष्ण ने वचन कर दिया था। यह वचन जानबूझ कर नहीं सहज स्वभाव ही श्री कृष्ण के मुख से निकल गया, पर सत्य हुआ। सुदामा और अधिक कंगाल हो गया।

पाठशाला का समय खत्म हो गया और सुदामा अपने घर चला गया। विवाह हुआ, बच्चे हुए तथा उसके पश्चात माता-पिता का देहांत हो गया। कंगाली दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थी, कोई फर्क न पड़ा। दिन बीतने लगे। श्री कृष्ण जी राजा बन गए, उनकी महिमा बढ़ गई। वह

भगवान रूप में पूजे जाने लगे तो सुदामा बड़ा खुश हो कर अपनी पत्नी को बताया करता कि हम दोनों का परस्पर अटूट प्रेम होता था।

उसकी पत्नी कहने लगी–'यदि आपके ऐसे मित्र हैं और आप में इतना प्रेम था तो आप उनके पास जाओ और अपना हाल बताओ। हो सकता है कि कृपा तथा दया करके हमारी कंगाली दूर कर दें।'

अपनी पत्नी की यह बात सुन कर सुदामा ने कहा–'जाने के लिए तो सोचता हूं, पर जाऊं कैसे, श्री कृष्ण के पास जाने के लिए भी तो कुछ न कुछ चाहिए, आखिर हम बचपन के मित्र हैं।'

आखिर उसकी पत्नी ने बहुत ज़ोर दिया तो एक दिन सुदामा अपने मित्र श्री कृष्ण की ओर चल पड़ा। उसकी पत्नी ने कुछ चावल, तरचौली उसको एक पोटली में बांध दिए। सुदामा मन में विचार करता कि मित्र को कैसे मिलेगा ? क्या कहेगा ? द्वारिका नगरी में पहुंच कर वह श्री कृष्ण के महल के मुख्य दरवाज़े के आगे जा खड़ा हुआ जहां श्री कृष्ण जी का दरबार लगता था। प्रभु वहां इंसाफ और न्याय करते थे। सुदामा ने डरते और कांपते हुए द्वारपाल को कहा–'मैंने राजा जी को मिलना है।'

द्वारपाल–'क्या नाम बताऊं जा कर ?'

सुदामा–उनको कहना सुदामा ब्राह्मण आया है, आपके बचपन का मित्र। द्वारपाल यह संदेश ले कर अंदर चला गया। जब उसने श्री कृष्ण जी को संदेश दिया तो वह उसी पल सिंघासन से उठ कर नंगे पांव बाहर को भागे तथा बाहर आ कर सुदामा को गले लगा लिया। कुशलता पूछी तथा बड़े आदर और प्रेम से उसे अपने सिंघासन पर बिठाया और उसके पैर धोए। पास बिठा कर व्यंग्य के लहजे में कहा–लाओ मेरी भाभी ने मेरे लिए क्या भेजा है ?

यह कह कर श्री कृष्ण ने सुदामा के वस्त्रों से बंधी हुई पोटली खोल ली और फक्के मार कर चबाने लगे। चबाते हुए वर देते गए तथा कहते

रहे, "वाह ! कितनी स्वादिष्ट है तरचौली ! कितनी अच्छी है भाभी !"

सुदामा प्रसन्न हो गया। श्री कृष्ण ने मित्र को अपने पास रखा तथा खूब सेवा की गई। बड़े आदर से उसको भेजा। विदा होते समय न तो सुदामा ने श्री कृष्ण से अपनी निर्धनता बताते हुए कुछ मांगा तथा न ही मुरली मनोहर ने उसे कुछ दिया। सुदामा जिस तरह खाली हाथ दरबार की तरफ गया था, वैसे ही खाली हाथ वापिस घर को चल पड़ा। मार्ग में सोचता रहा कि घर जाकर अपनी पत्नी को क्या बताऊंगा ? मित्र से क्या मांग कर लाया हूं।

सुदामा गोकुल पहुंचा। जब वह अपने मुहल्ले में पहुंचा तो उसे अपना घर ही न मिला। वह बड़ा हैरान हुआ। उसका कच्चा घर जो झौंपड़ी के बराबर घास फूस से बना गाय बांधने योग्य था, कहीं दिखाई न दिया। वह वहां खड़ा हो कर पूछना ही चाहता था कि इतने में उसका लड़का आ गया। उसने नए वस्त्र पहने हुए थे। 'पिता जी ! आप बहुत समय लगा कर आए हो। ...द्वारिका से आए जिन आदमियों को आप ने भेजा था, वह यह महल बना गए हैं, सामान भी छोड़ गए हैं तथा बहुत सारे रुपये दे गए हैं। माता जी आपका ही इंतजार कर रहे हैं। आप आकर देखें कितना सुंदर महल बना है।'

अपने पुत्र से यह बात सुन कर तथा कच्चे घर की जगह सुन्दर महल देख कर वह समझ गया कि यह सब भगवान श्री कृष्ण की लीला है। श्री कृष्ण ने मुझे वहां अपने पास द्वारिका में रखा और मेरे पीछे से यहां पर यह लीला रचते रहे तथा मुझे बिल्कुल भी मालूम नहीं पड़ने दिया। महल इतना सुन्दर था कि, उस जैसा किसी दूसरे का शायद ही हो। शायद महल बनाने के लिए विश्वकर्मा जी स्वयं आए थे, तभी तो इतना सुन्दर महल बना। भगवान श्री कृष्ण की लीला देख कर सुदामा बहुत ही प्रसन्न था। उसके बिना कुछ बताए ही श्री कृष्ण जी सब कुछ समझ गए थे।

उस दिन के बाद सुदामा श्री कृष्ण की भक्ति में लग गया और भक्तों में गिने जाने लगा।

राजा बली

सद्पुरुष कहते हैं, पुरुष को तपस्या करने से राज मिलता है, पर राज प्राप्ति के बाद उसको नरक भोगना पड़ता है, 'तपो राज तथा राजो नरक' इसका मूल भावार्थ यह है कि राज प्राप्ति के पश्चात मनुष्य अहंकारी हो जाता है। अहंकार के साथ कुछ लालच भी आता है। इसलिए फिर कुछ बात नहीं सूझती। उसके कर्म ऐसे हो जाते हैं कि प्रभु उसको फिर सत्य मार्ग पर लगाने के लिए कोई कौतुक रचता है। ऐसा युगों से होता आया है जैसे कि राजा बली की कथा है। भाई गुरदास जी ने भी लिखा है :-

बलि राजा घरि आपणे अंदरि बैठा जग करावै।
बावन रूपी आइआ चारि बेद मुखि पाठ सुणावै।
राजे अंदरि सदिया मंग सुआमी जो तुधु भावै।
अछल छलनि तुधु आइआ सुक्र प्रोहत कहि समझावै।
करों अढाई धरति मंगि पिछहुं दे त्रिहु लोअ न भावै।
दुइ करवा करि तिन लोअ बलि राजा लै मगर मिणावै।
बलि छलि आपु छलाईअनु होइ दिआलु मिलै गल लावै।
दिता राजु पताल दा होइ अधीन भगति जस गावै।
होइ दरवान महां सुखु पावै ।३।

बली नाम का एक प्रतापी राजा था। उसके दादा प्रहलाद ने तपस्या की और अमर राज प्राप्त किया। बली का पिता विरोचन भी नेक पुरुष था। बली बड़ा दानी था, कोई भी उसके पास आता तो वह उसे खाली न जाने देता। स्वयं को राजा जनक या हरीशचन्द्र कहलाता। उसने अपने राज में यज्ञ किये तथा अत्यंत दान दिया,

उसे अहंकार हो गया कि मेरे जैसा कौन दानी होगा ? ब्राह्मणों को दान देकर संतुष्ट कर दिया है।

परमात्मा ने देखा कि एक अच्छे भले आदमी को अहंकार हो गया है, इसका अहंकार अवश्य चकनाचूर करना चाहिए। यह विचार करके भगवान विष्णु ने एक ब्राह्मण का रूप धारण किया और राजा बली के दरबार में पहुंच गया। राजा ने आदर से कहा-हे स्वामी ! आज्ञा दीजिए, मैं आपकी इस समय क्या सेवा करूं।

बावन (छोटा ब्राह्मण रूप) भगवान बोले-हे राजन ! मैं तो एक निर्धन ब्राह्मण हूं। मेरा कोई घर नहीं है। केवल एक इच्छा है कि आप कृपा करके मुझे सिर्फ ढ़ाई कदम धरती दे दें ताकि मैं वहां बैठ कर प्रभु का जाप कर लिया करूं आप से और क्या मांगना है। मुझे बस यही चाहिए, आपके द्वार पर बैठा रहूंगा।

यह सुन कर राजा बली हंसा तथा सम्बोधन करके कहने लगा हे ब्राह्मण ! तुम्हारा कद तो छोटा है, पर बली राजा को मजाक बहुत बड़ा करने आ गए हो। राज्य में खुले वन पड़े हैं, अनगिनत धरती पर लोगों ने आश्रम बनाए हैं, क्या तुम्हें किसी ने बैठने नहीं दिया। मेरे राज में मेरी धरती पर तो हर एक को छूट है, वह आश्रम बनाए धरती को जोते, मैं तो कुछ नहीं कहता। यदि मांगना था तो गाय, अनाज, वस्त्र, हीरे-मोती मांगते। यह क्या मांगा है ? तुम ब्राह्मण हो यदि कोई और होता तो मरवा देता।

बावन चुप रहा, वह खड़ा मुस्कराता ही रहा। राजा बली बातें करता रहा।

राजा बली का मंत्री बहुत सूझवान था। वह समझ गया कि यह कोई खेल है। प्रभु स्वयं ही कोई परीक्षा लेने आए हैं। उसने राजा से कहा-राजन ! यह बावन ब्राह्मण जिसने थोड़ी सी ढाई कदम भूमि की मांग की है, वास्तव में कोई विष्णु अवतार लगता है।

'आपको छलने के लिए आया है। कोई अद्भुत खेल न करें। जरा सावधानी से रहना चाहिए। इसकी यह बात नहीं माननी चाहिए। क्षमा मांग लेना ठीक है।'

पर राजा बली को अहंकार ने घेरा हुआ था, उसने एक न सुनी तथा कहा "जाओ ढाई कदम भूमि जहां से लेनी है, अधिकार कर लो। फिर कभी मजाक करने न आना।"

राजा बली की यह बात सुन कर बावन अवतार दरबार से बाहर आया तथा अपना शरीर इतना बढ़ा लिया कि दो कदमों में उसने बली राजा की सारी धरती सहित ब्रह्मांड माप लिया तथा आधी पूरी करने के लिए उसके सिर पर पैर आ रखा। बली राजा को होश आया, पर समय निकल गया था। बली को बावन ने पैर से धकेल कर पाताल में भेज दिया तथा कहा, 'यहां राज करो। यह कह कर जब भगवान रूप बावन चला तो बली ने कहा, 'मैं तो यहां राज करूंगा पर आप ने भी तो वचन दिया है कि द्वार के आगे रहोगे। अब वचन से न फिरो और बैठो।' इस बात में भगवान भी छले गए। बावन रूप धारण कर बली के द्वार के आगे बैठ गया। बली पातालपुरी में भक्ति करने लगा।

साखी राजा भक्तों की

1. राजा परीक्षित–राजा परीक्षित अर्जुन (पांडव) का पौत्रा और अभिमन्यु का पुत्र था। महाभारत के युद्ध के बाद यह राजा बना। कलयुग में इसकी चर्चा हुई। पांडवों की संतान का यह एक महान पुरुष था, इसको हस्तिनापुर के सिंघासन पर बिठा कर पांचों पांडव द्रौपदी सहित हिमालय पर्वत को चले गए। यह कई साल राज करता रहा। इस बीच प्रजा को बहुत दुःख हुआ। यह कलयुग का मुख्य राजा था।

2. परूरवा *"दूरबा परूरउ अंगरै गुर नानक जसु गाईओ ॥'*

परूरवा एक राजा हुआ था। वह उर्वशी अप्सरा पर मुग्ध हो गया। परूरवा 'ऐल' का पुत्र था। उर्वशी के वियोग में ही तड़पता रहा तथा इधर-उधर भटकता रहा। इसने प्रभु की भक्ति भी की है। इनके वीर्य से उर्वशी ने इन राजकुमारों को जन्म दिया था-आयु, अमावस, विश्वास, सलायु, द्रिढ़ायु। राजा परूरवा बहुत बड़े महाबली हुए थे और उर्वशी का नाटक कालिदास ने लिखा था।

3. भगीरथ-भगीरथ राजा दलीप का पुत्र तथा राजा अंशमान का पौत्रा था। राजा अंशमान तथा राजा दलीप ने स्वर्ग से गंगा को धरती पर लाने के लिए घोर तपस्या की थी पर वह बीच में ही मर गए तथा उनकी इच्छा पूरी न हो सकी। भगीरथ घोर तपस्या करके गंगा को स्वर्ग से धरती पर लेकर आए, भगवान शिव जी की जटाओं का सहारा लेकर गंगा धरती पर आई। गंगा ने जहानुव ऋषि का आश्रम तथा पूजा की सामग्री बहा दी थी। इस पर जाहनुव ऋषि ने क्रोधित हो कर गंगा को पी लिया था। भगवान शिव जी तथा भगीरथ ने फिर जाहनुव ऋषि को मनाया, उसके पास से गंगा को मुक्त करवा कर धरती पर चलाया तथा भगीरथ ने अपने पूर्वज-पित्रों को जल दिया, जिससे उनका कल्याण हुआ।

4. मानधाता-मानधाता सूर्यवंशी राजा युवनाशु का पुत्र था। पर इसने मां के पेट से जन्म नहीं लिया, बल्कि राजा के पेट में से (पुरुष के पेट में से) जन्म लिया। यह कथा संक्षेप रूप में इस तरह है- राजा युवनाशु का कोई पुत्र-पुत्री नहीं था। उसने ऋषि-मुनि आमंत्रित करके एक ऋषि के आश्रम में महायज्ञ करवाया। यज्ञ के पश्चात महर्षियों ने पानी का घड़ा मंत्र पढ़ कर रखा। जिसका जल युवनाशु की रानी को पीने के लिए दिया जाना था। रात हुई तो सभी सो गए, ऋषि-मुनि भी सो गए। राजा युवनाशु को प्यास लगी, तो उसने उस

मंत्र किए हुए घड़े में से पानी पी लिया। उस जल के कारण राजा के पेट में बच्चा बन गया। पेट चीर कर बच्चे को बाहर निकाला गया। उस बच्चे का नाम मानधाता था। मानधाता ने बिंदरासती से विवाह किया, उसके तीन पुत्र तथा पचास कन्याएं पैदा हुईं। पूर्व जन्म में प्रभु की अटूट भक्ति की थी जिस कारण इसकी बहुत शोभा हुई, यह भक्तों में गिना गया।

5. रुकमांगद रुकमांगद करतूति राम जंपहु नित भाई

(पत्रा १३९४)

रुकमांगद राजा एकादशी का व्रत रखता था, कहते हैं कि वह ब्रह्मचारी था। यह कभी सपने में भी पराई स्त्री के निकट नहीं जाता था। अपनी स्त्री से बहुत ज्यादा प्यार करता था। एक बार एक अप्सरा उस पर मोहित हो गई, पर इस धर्मी राजा ने उसके प्यार और उसकी सुन्दरता को ठुकरा दिया। एकादशी के व्रत का उसे महत्व बता कर वापिस स्वर्ग लोक भेज दिया। उस दिन से एकादशी का व्रत आरम्भ हो गया। राजा आयु भर एकादशी का व्रत रखता रहा। उसका नाम भक्तों में बड़े आदर से लिया जाता है।

6. रावण–इक लखु पूत सवा लखु नाती ॥

तिह रावण घर दीआ न बाती ॥ (पत्रा ४८१)

रावण लंका का दैत्य राजा था। इसकी माता का नाम कोक तथा पिता का नाम पुलसत्य था। यह तीन भाई थे, दूसरे दो भाईयों के नाम कुम्भकर्ण और विभीषण थे। रावण सीता को उठा कर लंका ले गया। श्री राम चन्द्र जी ने चढ़ाई की, युद्ध हुआ तथा रावण मारा गया। रावण के दस सिर थे, वह बली तथा विद्वान था। इसने चार वेदों की व्याख्या की इसके एक लाख पुत्र तथा सवा लाख पुत्रियां थीं, पर अन्याय एवं जुल्म करने के कारण उसकी सोने की लंका, स्वयं तथा पुत्र पुत्रियां सब खत्म हो गए। सीता का हरण कर के

लंका लेकर आना उसका महापाप था।

7. राजा अजय–अजै सु रोवै भीखिआ खाइ ॥

ऐसी दरगह मिलै सजाइ ॥ (पन्ना ९५३)

राजा अजय, दशरथ के पिता तथा श्री राम चन्द्र जी के दादा थे। इसने एक साधू को घोड़ों की लीद अंजली भर कर दान कर दी थी। क्योंकि साधू ने उस समय भिक्षा मांगी जब राजा घोड़ों के पास था तथा लीद ही वहां थी। गुस्से में आकर उसने लीद दान में दे दी। साधू ने श्राप दिया तथा लीद कई गुणा रोज़ बढ़ती गई। कहते हैं कि वह लीद का दिया हुआ दान उसको खाना पड़ा, जब वह लीद खाता था तो रोया करता था तथा कहता था कि किसी संत महात्मा के साथ नाराज होना ठीक नहीं, दिया हुआ दान आगे प्रभु के दरबार में मिलता है।

8. बाबा आदम–भक्त कबीर जी ने भैरऊ राग में बाबा आदम जी का जिक्र किया है।

"बाबा आदम कउ किछु नदरि दिखाई ॥

उनि भी भिसति घनेरी पाई ॥"

ईसाई धर्म की पुरानी पुस्तक 'अंजील' के मुख्य पात्र बाबा आदम जी हैं। 'अंजील' के अनुसार बाबा आदम जी की कथा इस प्रकार है–खुदा ने पहले मनुष्य बनाया था। खुदा पहले शैतान को भी बना बैठा था। मनुष्य बना कर खुदा ने सभी फरिश्तों (देवताओं) को कहा कि आदम को सलाम करो। सबने सलाम किया, पर शैतान ने सलाम न किया। अदन में स्वर्ग बना कर आदम ने जीवन साथी पहली स्त्री माई हवा को अदन के स्वर्ग बाग में भेज दिया। खुदा ने ज्ञान फल (गेहूं) खाने से आदम और हवा को रोका पर शैतान ने एक दिन आदम की अनुपस्थिति में अकेली हवा को उकसाया। अपनी हेराफेरी का शिकार बना कर कहा कि खुदा ने जो काम की

चीज खाने वाली है उसे तो खाने से रोक दिया है, ज्ञान फल खा कर देखो, चारों कुण्ट का ज्ञान हो जायेगा, तुम जरूर आदम को कहना और ज्ञान फल खाने के लिए प्रेरित करना, यह कह कर शैतान अलोप हो गया। हवा के दिल में ज्ञान फल खाने की तीव्र इच्छा पैदा हो गई। जब आदम मिला तो हवा ने उसे ज्ञान फल खाने के लिए मना लिया। आदम और हवा ने जब ज्ञान फल खा लिया तो उन्हें स्त्री-पुरुष, काम, मोह, लालच और शर्म आदि का ज्ञान हो गया। उनको अपने नग्न तन के बारे में ज्ञान हुआ तो एक दूसरे से दूर हो कर छिप गए। इस बात का खुदा को पता लग गया। खुदा स्वयं आया और दोनों को एक-दूसरे के निकट करके समझाया शैतान का कहना मान कर आपने भारी भूल की है, जाओ अब स्वर्ग में नहीं रह सकते। स्त्री-पुरुष बन कर रहो और संतान पैदा करो। खुदा ने शैतान को सर्प योनि का श्राप दे दिया। आदम और हवा के हजारों पुत्र हुए जिन से संसार की जन संख्या बढ़ी। खुदा का कहना न मानने के कारण आदम गुनाहगार था, इसलिए उसकी औलाद भी गुनाहगार है। उसका उद्धार सत्य तथा सिमरन के सहारे है।

9. अरुण पिंगला-अरुण पिंगला बल वाला पक्षी और भगवान गरुड़ का भाई है। सूर्य का रथवान बना हुआ है। पर यह पिंगला है, पिंगला होने के कारण इसके जीवन में अधूरापन है। बिनता के दो अण्डे हुए। बिनता के पति ने कहा कि हर अण्डा हजार साल से पहले न तोड़ना, पर बिनता ने एक अण्डा पांच सौ साल बाद तोड़ दिया। इसलिए अरुण का शरीर पूरा नहीं बना था। पर गरुड़ का अण्डा हजार साल बाद अपने आप टूटा था, वह पूर्ण पक्षी बना। पूर्व जन्म के श्राप के कारण सूर्य और गरुड़ उसकी कोई सहायता नहीं करते थे।

10. इन्द्र रो पड़ा-संहसर दान दे इन्द्र रोआइआ ॥ (पन्ना ९५३)

इन्द्र देवताओं का बड़ा राजा था, पर अहल्या के साथ दुष्कर्म करने

के कारण शरीर पर हजार भग हो गई थी। इस कष्ट के कारण रोता रहा था। हजार भग का श्राप उसको अहल्या के पति ऋषि गौतम ने दिया था। जैसा कि पीछे गौतम तथा अहल्या की कथा में बताया गया है। इससे शिक्षा मिलती है कि पर-नारी की ओर ध्यान नहीं करना चाहिए।

साखी ब्रह्मा और सरस्वती की

चारे वेद वखाणदा चतुर मुखी होई खरा सिआणा।
लोका नो समझाइदा वेख सुरसवती रूप लुभाना।

भाई गुरदास जी के कथन अनुसार चार वेदों को उच्चारने वाला (ब्रह्मा) बहुत सूझवान था, लोगों को उपदेश देता था, पर अपनी पुत्री की जवानी और सुन्दरता को देख कर मोहित हो गया था। जिस कारण उसे दुख उठाना पड़ा था।

सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री थी। वह बहुत ही सुन्दर और जवान थी। एक दिन सुबह सरस्वती नदी से स्नान करके आई। सूर्य की सुनहरी किरणों ने उसके कुंआरे गुलाबी चेहरे को और चमकाया हुआ था। अचानक ब्रह्मा जी खड़े खड़े उसकी ही तरफ देखने लग गए, उनका दिल बदल गया। उनके मन की इस दशा को जान कर सूझवान सरस्वती ने अपना मुख दूसरी तरफ कर लिया। ब्रह्मा भी उस तरफ देखने लग गए। इस तरह सरस्वती चारों तरफ घूमी। ब्रह्मा के चार मुंह हो गए। सरस्वती ऊपर उड़ गई तो ब्रह्मा ने योग बल से तालू में आंखें लगा लीं। वह किसी कीमत पर भी सरस्वती को आंखों से ओझल नहीं होने देना चाहता था। यह देख कर भगवान शिव जी बहुत दुखी हुए, उन्होंने आगे बढ़ कर ब्रह्मा का पांचवां सिर (जो तालू के साथ था) धड़ से उतार कर फैंक दिया तथा ब्रह्मा को पुत्री भोग के पाप से बचा लिया।

कर्ण की कथा–कर्ण वास्तव में पांच पांडवों की माता कुंती का ही पुत्र था। पर माया के चक्र और कुंती की तपस्या के कारण पांडवों को इसका ज्ञान न था, क्योंकि जब कर्ण का जन्म हुआ था तब कुंती अभी कुंआरी थी। कर्ण के जन्म की कथा इस प्रकार बताई जाती है–कुंती जब माता–पिता के घर थी तो इसने दुरबाशा ऋषि की खूब सेवा की। ऋषि ने इसको कुछ मंत्र (अवाहन) बताए और कहा कि कोई मंत्र पढ़ कर जिस चीज की इच्छा की पूर्ति की कामना करोगी, वह पूर्ण होगी। एक दिन कुंती सूर्य देवता के दर्शन करने के लिए ऊपर राजमहल की छत पर गई। सूर्य की सुनहरी किरणों और उसके बल प्रताप को देख कर उसके मन में आया कि सूर्य देवता यदि मेरे पास मानव रूप में आएं तो देखूं वह कितने बलवान और सुन्दर हैं। यह विचार कर उसने दुरबाशा ऋषि के बताए हुए मंत्रों में से एक मंत्र को पढ़ा। सूर्य एक सुन्दर युवक के रूप में कुंती के पास आ खड़ा हुआ। यह देख कर कुंती सहम गई। भयभीत होकर प्रार्थना की कि सूर्य देवता आप वापिस चले जाएं। पर सूर्य वापिस न गया। उसने कुंती के साथ भोग किया। कुंती कुंआरी ही गर्भवती हो गई, पर दूसरे मंत्र पढ़ने के योग से उसका गर्भ प्रगट न हुआ। जब बालक ने जन्म लिया तो उस बालक को कुंती ने नदी में बहा दिया। बहता हुआ बालक कौरवों के रथवान के हाथ आ गया। उसने बालक का पालन-पोषण करके जवान किया, जो कर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महाभारत में इसने कौरवों का साथ दिया। अन्त में अपने भाई अर्जुन के हाथों वीरगति प्राप्त की। तब कुंती ने पांडवों को बताया कि कर्ण तुम्हारा भाई है।

समुद्र खारा होना

यह आम सवाल है कि जिस समुद्र में से अमृत, कामधेनु, लक्ष्मी,

कल्प वृक्ष, धन्वंतरी वैद्य आदि कई तरह के बहुमूल्य पदार्थ निकले वह क्षार क्यों है ? कहते हैं कि अगस्त मुनि ने क्रोधित हो कर एक बार सारे सागर के पानी को ढाई चुल्लियों में पी लिया था। जब जल पी लिया गया तो जितने जल-जीव थे, वह तड़पने और पुकारने लगे कि क्या हो गया ? वह किसके सहारे जीवित रहेंगे ? प्रभु ने तब अगस्त को प्रेरणा की कि पेट में कैद किए सागर को पहले की तरह स्वतन्त्र कर दो। भगवान के कहने पर अगस्त ने पेशाब किया, इसी कारण सागर का जल क्षार है।

कैसी दैत्य :-कैसी कंस मथनु जिनी कीआ ॥

(पन्ना ८७४)

कैसी दैत्य राजा कंस के वश में था। पापी कंस ने जहां श्री कृष्ण जी को मारने के अनेकों उपाय किए, वहीं कैसी दैत्य को भी घोड़ा बना कर गोकुल भेजा। पर श्री कृष्ण ने अपने योग बल द्वारा कैसी दैत्य को मार दिया। यहां भक्त नामदेव जी ईशारा करते हैं कि श्री कृष्ण जी हरि रूप थे जिन्होंने कैसी तथा कंस को (मक्खन) रिड़क-रिड़क अथवा कोह-कोह कर मारा था।

काली सर्प :- गोकुल के नजदीक ही यमुना में एक गहरा कुण्ड था। उस कुण्ड में एक सौ फन वाला सर्प रहता था। उसको 'काली' नाग भी कहा जाता था। गरुड़ भगवान से डरता हुआ वह उस कुण्ड में आ छिपा था, वह बहुत जहरीला था। जब वह फुंकारा मारता या सांस लेता था तो कुण्ड का पानी उबलने लग पड़ता था। इसी कारण उस कुण्ड का नाम 'काली कुण्ड' पड़ गया था। उसका जल दूषित हो गया था। श्री कृष्ण ने एक दिन गेंद लेने के बहाने काली कुण्ड में छलांग लगा दी। श्री कृष्ण की नाग से लड़ाई हुई। उसके सौ फनों को श्री कृष्ण ने पैरों से कुचल दिया। काली सांप बेहोश हो कर हार गया। श्री कृष्ण ने उसको कहा, "यमुना कुण्ड छोड़ कर कहीं अन्य

जगह चले जाओ।" काली सांप कुण्ड को छोड़ कर चला गया।

दुरबाशा ऋषि :- दुरबाशा ऋषि अत्तरे मुनि के पुत्र थे। इनको शिव का अवतार माना जाता है। जब युवा हुए तो औरव मुनि की सपुत्री कंदली से दुरबाशा का विवाह हो गया। इनमें तमो गुण विद्यमान थे। इस कारण बहुत क्रोधवान थे। इन्होंने अनेकों को वर और हजारों को श्राप दिए। शकुंतला को इन्होंने ही श्राप दिया था कि दुष्यंत तुम्हें भूल जाए। द्रौपदी को वर दिया था कि तुम्हारे पर्दे ढके रहें। अन्य भी कथा-कहानियां हैं।

दुरबाशा ने जब विवाह किया था तो प्रतिज्ञा की थी कि अपनी पत्नी की सौ भूलें बख्श देंगे। जब सौ से ऊपर भूल हुई तो क्रोधित होकर कंदली को भस्म कर दिया। औरव मुनि ने श्राप दे दिया। एक बार पिंडारक तीर्थ पर तप करने के लिए गए तो वहां यादव बालक खेलने आया करते थे। वह बहुत मजाकीये थे। उन्होंने एक दिन दुरबाशा को मजाक किया। वह मजाक इस तरह था कि जमवंती के पुत्र सांब के पेट पर लोहे की बाटी बांध दी। स्त्रियों जैसे वस्त्र पहना कर घूंघट निकलवाया तथा दुरबाशा के पास ले गए और पूछने लगे, 'हे ऋषि जी ! बताओ लड़की होगी या लड़का ?

दुरबाशा समझ गया कि यह मेरे साथ मजाक कर रहे हैं, उसने सहज स्वभाव ही उत्तर दिया-'लोहे का मूसल पैदा होगा जो यादवों की कुल नाश करेगा।' यादवों को श्राप दे दिया, उस ओर ईशारा है :-

दुरबाशा के श्राप से "यादव इह फल पाए ॥"

इस तरह दुरबाशा के श्राप से यादवों की कुल नष्ट हो गई थी।

अठारह पुराण

गुरुबाणी तथा गुरमति साहित्य में 'आठ दस' या अठारह पुराणों का नाम बहुत बार आता है। जिज्ञासुओं के ज्ञान के लिए अठारह

पुराणों की सूची आगे दी जाती है :-

1. ब्रह्म पुराण। 2. विष्णु पुराण। 3. वायु पुराण। 4. लिंग पुराण। 5. पदम पुराण। 6. सकंध पुराण। 7. बावन पुराण। 8. मस्ताना। 9. बराह पुराण। 10. अग्नि पुराण। 11. भूरम पुराण। 12. गरुड़ पुराण। 13. नारदीय। 14. भविष्यत पुराण। 15. ब्राह्मण वेवरत पुराण। 16. मारकंडे पुराण। 17. ब्रह्मांड पुराण। 18. श्रीमद् भागवत पुराण।

सहसबाहु-सहसबाहु का वास्तविक नाम कांहत वीर्यारजन था। यह कृतवीर्य का पुत्र था। इसकी हजार भुजाएं थीं। इसलिए सहसबाहु कहा जाता था। गुरु नानक जी फरमाते हैं :-

सहस बाहु मधु कीट महिखासा ॥
हरणाखसु ले नखहु बिधासा ॥
दैत संघारे बिनु भगति अभिआसा ॥ (पन्ना २२४)

सहसबाहु का राज नर्मदा नदी के दोनों तरफ था। एक दिन कहते हैं कि सहसबाहु नदी में स्नान कर रहा था कि हजार भुजाएं फैला कर इस नदी के जल को रोक लिया। जल इकट्ठा होकर ऊंचा होने लगा। पानी ऊंचा होकर नदी किनारे खेतों तथा जंगलों में फैलने लगा। एक वन में रावण भक्ति कर रहा था, पानी उसके नीचे चला गया। वह क्रोधित होकर उठा और सहसबाहु से युद्ध करने लग गया। सहसबाहु ने उसको जकड़ कर बंदी बना लिया। इसी सहसबाहु ने जमदग्नि को मारा था।

रक्त बीज

रक्त बीज एक ऐसा दैत्य था कि इसके रक्त की जितनी बूंदें धरती पर गिरती उतने ही दैत्य उत्पन्न हो जाते थे। कहते हैं कि राजा निसुंभ की लड़ाई देवी माता दुर्गा से हुई तो रक्त बीज उस समय सुंभ निसुंभ

की तरफ से सेनापति था। काली मां ने इसके रक्त को पीकर इसका संहार किया था।

मधु कीटब

यह दो दैत्य थे। भगवान विष्णु ने इनको अपने कानों की मैल से उत्पन्न किया था। युवा होकर दोनों दैत्य ब्रह्मा जी को खाने लगे। ब्रह्मा जी ने अपने प्राण बचाने के लिए भगवान विष्णु की उस्तति की और उन्हें सोते हुए जगाया। भगवान विष्णु कई हजार वर्षों से सोए हुए थे। ब्रह्मा जी के ध्यान करने पर वह अपनी निद्रा से जाग उठे। दैत्य मधु और कीटब से भगवान विष्णु का पांच हजार वर्ष घोर युद्ध होता रहा लेकिन इस युद्ध में न ही विष्णु जी हारे और न ही मधु कीटब ने दम छोड़ा। अंत में महा माया ने हस्तक्षेप किया। मोहिनी रूप होकर उसने मधु और कीटब को भ्रम में डाल दिया। दोनों दैत्य शांत हो गए। उन्होंने भगवान विष्णु से लड़ना छोड़ दिया। दोनों राक्षसों ने विष्णु से कहा, 'आप हमारे साथ बहादुरी से लड़ते रहे हो, इसलिए जो चाहे वर मांग लीजिए।'

"मुझे अपने सिर दे दें।" यह मांग भगवान विष्णु ने मधु और कीटब राक्षसों से की। वचन के अनुसार दैत्यों को अपने सिर भगवान विष्णु को अर्पण करने पड़े। भगवान विष्णु ने अपनी जांघ पर दोनों दैत्यों के सिर धड़ से जुदा कर दिए। दैत्यों के सिर काटने पर उनका जो रक्त उससे निकला, वह समुद्र के पानी में जम कर धरती बन गई। यह धरती की भी जन्म कथा है।'

महादेव ने अपने पुत्र का वध करना

पांडे तुमरा महादेऊ धउले बलद चढ़िया आवतु देखिआ था ॥
मोदी के घर खाना पाका वा का लड़का मारिआ था ॥ (पन्ना ८७४)

नामदेव जी पंडित को मजाक करते थे कि हे पांडे ! तुम्हारा महादेव भी देखा है, वह सफेद बैल पर सवार था। उस महादेव ने अपने लड़के का ही वध कर दिया था। वार्ता इस प्रकार है। एक दिन देवी पार्वती भगवान शिव की पत्नी अपने घर स्नान करने लगी तो उसने अपने पुत्र को कहा कि बेटा द्वार पर बैठे रहो, मैं स्नान कर लूं, कोई भीतर न आ पाए। पुत्र अपनी माता की यह आज्ञा सुनकर बाहर द्वार पर बैठ गया। देवी पार्वती स्नान करने लग गई। अभी उसने स्नान पूरा भी नहीं किया था कि शिव जी महाराज बाहर से आ गए, उस दिन उन्होंने भांग एवं धतूरे का अधिक ही नशा किया हुआ था। अपने आप की उन्हें होश नहीं थी। जब वह अन्दर जाने लगे तो लड़के ने उन्हें अन्दर जाने से रोक लिया। उसने कहा–माता जी स्नान कर रहे हैं, इसलिए अभी आप भीतर मत जाएं। लेकिन भगवान शिव रुके नहीं। नशे में चूर होकर उन्हें यह ध्यान न रहा कि यह उनका पुत्र है इसलिए क्रोधित होकर अपने त्रिशूल से उस लड़के का सिर धड़ से अलग कर दिया। लड़के का सिर भगवान शिव की रुंड माला में पिरोया गया और धड़ धरती पर गिर गया। शिवजी महाराज अंदर प्रवेश कर गए। आगे अभी पार्वती ने स्नान नहीं किया था। वह शीघ्र ही उठकर वस्त्र पहनने लग गई। वस्त्र पहनते हुए ही भगवान शिव से पूछा कि महाराज आपको किसी ने रोका नहीं ?

"मुझे किसने रोकना था ? शिव को कोई रोकने वाला है ? एक लड़के ने हमें अवश्य अंदर जाने से रोका था लेकिन हमने उसका सिर धड़ से जुदा कर दिया है।" भांग के नशे में चूर होकर बड़े अहंकार से शिवजी ने पार्वती को उत्तर दिया।

'पाप! महापाप!! वह तो अपना ही पुत्र था। हाय! मेरा प्यारा पुत्र! यह कहती हुई पार्वती रोने लग गई। पार्वती का रोना सुनकर

भगवान शिव का नशा उतर गया। भगवान शिव देवी पार्वती से अटूट प्रेम करते थे। पार्वती ने कहा जैसा भी हो मेरा पुत्र जीवित होना चाहिए, नहीं तो मैं भी पुत्र वियोग में अपने प्राण त्याग दूंगी। यह सुनकर भगवान शिव त्रिशूल पकड़ कर भूखे पेट ही घर से बाहर निकल गए। वह दूर पर्वतों में घूमते रहे और किसी मनुष्य की तलाश करते रहे कि उसका सिर काट कर लड़के को जीवित करें, क्योंकि जो सिर भगवान शिव की रुंड माला में पहुंच जाता था। वह दोबारा धड़ से न जुड़ता था। ढूंढते-ढूंढते भगवान शिव को एक हाथी का बच्चा वहां पर मिल गया। शिव जी उसका सिर काटकर घर ले आए। घर जाकर लड़के के धड़ से उस सिर को जोड़कर उसे जीवित कर दिया। तब लड़के का नाम 'गणेश' (गुण-ऐश) गुणों का राजा रखा गया। भक्त जी पंडित को इस कथा की ओर इशारा करके समझाते हैं कि जो शिव जी भंग और धतूरा पी कर अपने लड़के को मार सकता है तथा हाथी का मुंह देकर शक्ल से बेशक्ल कर सकता है, वह तेरा क्या भला करेगा। कहीं तुम्हें भी मार देगा, इसलिए उसकी पूजा न कर, बल्कि सत्य करतार का सिमरन कर।

वृंदावन-वृंदावन यमुना के किनारे एक सुन्दर नगर है, जो कभी हरा भरा था और बड़े भाग्य वाला जंगल था, यहां श्री कृष्ण जी ने गाए चराई तथा गोपियों से अनेक प्रकार के प्रीत-खेल किए। इस वन का नाम वृंदावन क्यों था ? यह वार्ता इस प्रकार है कि वृंदा नाम की एक राजकन्या थी, कुंआरी आयु में उसने इस वन में घोर तपस्या की। उसकी घोर तपस्या को देख कर भगवान बहुत प्रसन्न हुए तथा उसे साक्षात् दर्शन दिए, भगवान ने पूछा-'देवी! किस इच्छा के लिए तप हो रहा है ? कोई वर मांगो !' वृंदा ने यह सुन कर कहा, 'मेरी यही इच्छा है, प्रभु मेरे पति बने, मैं उनकी चरण दासी बन कर सेवा करती रहूं।' भगवान ने ऐसा ही किया। वृंदा को अपने साथ ही स्वर्ग

में ले गए। उस दिन से इस वन का नाम वृंदावन पड़ गया।

पारजात

पारजात गोपी लै आया ॥

पारजात का अर्थ है कल्प वृक्ष, जो स्वर्ग लोक में होता है। इन्द्र के बागों में यह वृक्ष बहुत थे। रुकमणी के कहने पर कि कल्प वृक्ष उनके महल के राज बाग में होना चाहिए। श्री कृष्ण जी ने यह वृक्ष इन्द्र से घोर युद्ध करके इन्द्र लोक से उखाड़ कर द्वारिका नगरी में अपनी प्यारी रुकमणी के बाग में लगाया।

ब्रह्मा जी

नाभि कमल ते ब्रहमा उपजे बेद पड़हि मुखि कंठि सवारि ॥
ता को अंतु न जाइ लखणा आवत जात रहै गुबारि ॥

(पत्रा ४८९)

भारत की पौराणिक कथा अनुसार एक समय था जब सृष्टि पर पूर्ण धुंधकार था, कोई जीव-जन्तु नहीं था। सागर जोर-शोर से लहरें मारता था। सागर के सीने पर भगवान नारायण माया 'कमला' के साथ विराजमान रहते थे। कमला उनके चरण दबाया करती थी।

एक दिन भगवान को ऐसा विचार आया कि सागर पर सृष्टि (धरती) होनी चाहिए तथा धरती पर जीव। अकेलेपन और खालीपन की समाप्ति होनी चाहिए, ऐसा करना ठीक है। उसी समय भगवान विष्णु की नाभि में से कमल का फूल पैदा हुआ। उस कमल के फूल पर ब्रह्मा ने जन्म लिया। जब ब्रह्मा ने जन्म लिया तो अपने चारों तरफ जल ही जल देख कर हैरान हुआ। उसको ऐसा ज्ञान हुआ कि वह सोचने लग गया, 'उसका पिता कौन है ? वह कैसे आया ?'

भगवान नारायण सुनते जा रहे थे, पर माया के बल के कारण ब्रह्मा

को कुछ दिखाई नहीं देता था। वह हैरान हो रहा था। पानी के ऊपर चलता हुआ इधर उधर गया, पर कुछ पता न लगा कि वह किसको पूछे, वह क्यों आया ? क्या करेगा ? किसने यहां भेजा है ? वह फिर कमल के फूल पर जा बैठा। वह सोचने लगा शायद इसी में से मैं ऊपर आया हूं और मेरे मूल का पता लग सकता है तो यहीं से क्यों न आगे जाऊं और पता लगाऊं। उसके हृदय में ऐसा ख्याल आते ही कमल में उसे थोड़ी सी जगह नज़र आई। वह कमल की नाली में से नीचे ही नीचे चलता गया। कुछ भी हाथ न आया। कुछ भी पता न लगा। वह कई युगों तक घबराया हुआ भटकता रहा।

इस प्रकार जब उसे नीचे भी कुछ पता न लगा तो एक आवाज़ उसके कानों में पड़ी, ब्रह्मा ! ऊपर चले आओ। अपने अस्तित्व के बारे में जानने का यत्न करो।'

पर यह आवाज़ कहां से आई, उसकी उत्सुकता और बढ़ गई। वह यह समझ गया कि कोई ज़रूर है, पर कहां है, वह न ही दिखाई देता है और न ही मिल रहा है। वह कमल की नाल के सहारे ऊपर आ गया और फूल पर पदम-आसन लगा कर तपस्या करता रहा। तपस्या करते हुए उसे कई युग बीत गए तब जा कर कहीं ज्ञान प्राप्त हुआ। फिर उसके लिए नारायण ने सृष्टि की रचना की तथा ब्रह्मा ने चार वेद कंठस्थ किए। इस प्रकार ही ब्रह्मा की जन्म कथा है।

साखी चंद्रहांस की

हे जिज्ञासु जनो प्रभु के प्यारे भक्तो ! अब, आप चंद्रहांस की कथा श्रवण करो। चंद्रहांस की कथा में नेकी और बदी का युद्ध है। किसी को मारने वाले को परमात्मा मारता है। सतिगुरु जी का हुक्म है:

सभु है ब्रहमु ब्रहमु है पसरिआ मनि बीजिआ खावारे ॥

जिउ जन चंद्रहांस दुखिआ ध्रिसटबुधी अपुना घरु लूकी जारे ॥६॥

(नट मः ४, पन्ना ९८२)

चंद्रहांस दक्षिण देश, सागर के किनारे बसने वाली धरती के राजा मेधवी का इकलौता पुत्र था। कहते हैं उस समय द्वापर युग था। उस युग में भी कई राजा आपस में लड़ते थे। राजा मेधवी के राज पर दूसरे राजा ने चढ़ाई कर दी। बहुत घमासान युद्ध हुआ। उस युद्ध में मेधवी मारा गया। चंद्रहांस की माता अपने पति के साथ सती हो गई। वह एक नेक पतिव्रता स्त्री थी। लोग उस का यश करते थे, पर चंद्रहांस बेचारा अनाथ रह गया।

मेधवी राजा का वजीर दुश्मन के साथ मिल गया। उसने मेधवी राजा के पुत्र चंद्रहांस को मरवाने की सलाह की पर चंद्रहांस का पालन पोषण करने वाली दाई बहुत बुद्धिमान, नेक और वफादार थी। उसको सारे षड्यंत्र का पता चल गया। वह चंद्रहांस को उठा कर कुन्तलपुर राज में चली गई। उसने राजकुमार चंद्रहांस की जान बचा ली। उसके पास खाने को कुछ भी नहीं था। मेहनत मजदूरी करके दिन कटते थे। चंद्रहांस एक अनाथ और बेसहारा बालक बन गया।

चंद्रहांस को भक्ति की लगन

चंद्रहांस अपनी सेविका के साथ एक ठाकुर द्वारे में रहने लगा। धीरे-धीरे वह पल कर बलवान होता गया। यहां तक कि चलने-फिरने लगा और बातें करता। आए गए के साथ खेलता रहता। दाई ठाकुर द्वारे में सेवा करती तथा वहां से उनको खाने के लिए अन्न और पहनने के लिए वस्त्र मिल जाता।

इस तरह कुछ साल बीत गए। चंद्रहांस कुछ समझदार बालक बना। जब वह पांच छः साल का हुआ तो ठाकुर पूजा करने लगा। दाई मां के साथ मन्दिर में पूजा करता तथा 'हरे कृष्ण ! राधे श्याम !'

का जाप करता।

एक दिन मंदिर में बहुत सारे साधू आए। वे कुछ दिन वहां पर रहे और उन्होंने देखा कि चंद्रहांस बहुत लगन वाला था। उन्होंने उसे एक कृष्ण की मूर्ति दी और थैले में डाल कर उसके साथ लटका दी। वह दिन में कई-कई बार पूजा करता रहता। वह शुद्ध आत्मा से उस मूर्ति की पूजा किया करता। ऐसा करने पर भगवान कृष्ण जी इतना खुश हुए कि उसको दर्शन देने लगे। उसकी आयु समान बाल रूप धारण करके उसके साथ हर रोज खेलने लगे। बांसुरी बजाते और बहुत-सी बातें करते। भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन करके चंद्रहांस खुश हो जाता। वह और अधिक हरि यश करता। उसकी हरि भक्ति की लगन दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई।

साखी धृष्टबुद्धि मंत्री की

कुन्तलपुर नाम का छोटा-सा राज्य था। उसका राजा बड़ा नेक और धर्मात्मा था। उसकी एक ही कन्या थी, जिसका अभी विवाह नहीं हुआ था। उसका एक गुरु था ऋषि गालव। वह अपने गुरु ऋषि गालव के पास अधिकतर रहता। भजन करता तथा नीति के वचन सुनता हुआ दिन व्यतीत करता। राज-काज कम ही किया करता था। उसने राज-प्रबंध अपने वजीर धृष्टबुद्धि को सौंपा हुआ था। वास्तव में धृष्टबुद्धि ही राजा था। धृष्टबुद्धि के दो पुत्र थे मदन तथा अमल और एक कन्या 'बिख्या' थी। मदन तथा अमल युवा हो चुके थे। राज-प्रबंध में अपने पिता का हाथ बंटाते। अमल खाने-पीने वाला तथा स्त्री-प्रेमी था। वह तो राग-रंग और नृत्य में मस्त रहता, पर मदन भक्ति भाव वाला था। जहां राज महल में बुराई का प्रवाह चलता था, वहीं कभी-कभी संत समागम भी हुआ करते थे। पर धृष्टबुद्धि का स्वभाव बिल्कुल अलग था। वह धन इकट्ठा करने में व्यस्त रहता।

उसकी एक ही इच्छा थी, 'ताज का मालिक' बनने की, बेशक उसके पास बहुत धन दौलत और जागीर थी, फिर भी उसकी भूख नहीं मिटती थी वह राज करने के स्वप्न लेता रहता।

मदन के यत्न से वजीर के घर एक दिन ब्रह्म भोज का प्रबन्ध किया गया। ब्राह्मणों तथा अन्य संतों के साथ वह संत मंडली भी भोजन करने के लिए आई जिसमें चंद्रहांस था। संत मंडली के मुख्य संत के पास बैठा चंद्रहांस भोजन कर रहा था, अचानक धृष्टबुद्धि उधर आ गया। उसने संतों को पूछा, 'और कोई सेवा' कुछ आए मुनि जी ? आगे से संतों ने उत्तर तो कोई न दिया पर मुस्करा दिए। उन्हें हंसता देख कर धृष्टबुद्धि ने हंसने का कारण पूछा–हे मुनिवर जी ! आप हंसे क्यों ?

संत जी ने कहा, 'मैं इसलिए हंसा हूं कि यह मेरे निकट जो अनाथ लड़का चंद्रहांस बैठा है। कुदरत के रंग देखो यह इस राज का मालिक तथा दामाद बनेगा। परमात्मा की बेअंत लीला पर मुझे हंसी आई है कि जिसने राजा बनना है, वह भगवान का भक्त है।

संतों का यह वचन सुनकर धृष्टबुद्धि वहां से चला गया। पर यह बात उसके दिल को खा गई, क्योंकि वह तो कुन्तलपुर और उसके अधीन राजा को अपने कब्जे में करना चाहता था। वह आशा लगाए बैठा था कि राजा का कोई पुत्र नहीं है। लड़की को मौका देख कर मार देगा और राजा–रानी वैसे ही मौत के किनारे हैं। तब अपने पुत्रों को राज तख्त पर बिठा दूंगा। संतों के इन वचनों ने उसके मन में बेचैनी लगा दी। वह सोचने लगा–संतों का कहा व्यर्थ नहीं जाता। शायद यह वचन सत्य ही हो जाएं। इस लड़के को अभी खत्म करवा देना चाहिए। इस प्रकार अपने मन में यह फैसला करके धृष्टबुद्धि उस संत मंडली से चला गया। उसने जाकर राजदूतों और जल्लादों को बुलाकर सारी बात समझाई और लालच देना चाहा और जल्लादों

को संत मंडली के नजदीक लाकर चंद्रहांस को दिखा दिया तथा कहा कि यह सारा कार्य गुप्त रूप में ही होना चाहिए। चंद्रहांस को मार कर यदि उसका एक अंग लाकर दिखा दोगे तो मुंह मांगा ईनाम दिया जाएगा, पर उसे जान से अवश्य मारना है। जल्लाद मान गए, चंद्रहांस को देख लिया। यह धृष्टबुद्धि का पाप कर्म था। वास्तव में मायाधारी अंधा-बहरा होता है। वह दौलत और राज को लेने के लिए जीव हत्या करने से परहेज नहीं करता, चाहे उसकी जान चली जाए। इसलिए जगत में संत महात्मा माया को पापों का मूल कारण कहते हैं।

जल्लादों का चंद्रहांस को जंगल में ले जाना

चारों ओर सांय-सांय करता एक जंगल था। उस जंगल में अन्य वृक्षों के अलावा चन्दन के पेड़ भी थे। चारों तरफ सुगन्ध की लपटें आ रही थीं। वहां पर भयानक तथा मानव प्रेमी जानवरों की कोई कमी नहीं थी। पक्षी भांति-भांति की बोली बोल रहे थे। वहां पर एक छोटी-सी नदिया भी बह रही थी। जिसका शीतल एवं निर्मल जल पक्षियों एवं जानवरों के लिए मीठे दूध की धारा थी। उस जंगल में प्रकृति खुशी से झूम एवं नाच रही थी यहां पर खुशहाली ही खुशहाली थी। उस परमात्मा के दर पर जल्लाद चंद्रहांस को उठाकर ले गए। संतों के डेरे से रात को उठा कर। उन निर्दयी-पापियों ने उसका मुंह बंद कर दिया। उसकी आवाज़ तक न निकलने दी। उठाकर जंगल में ले गए। उनका विचार था कि इसका वध करके नदी में फैंक देंगे। नहीं तो इसके रक्त से अपने हाथ धो लेंगे। पापी और लालची पाप करने से कभी नहीं झिझकते। उनको मासूम बालक पर कोई दया न आई और निर्दोष को मारने लगे। निर्दोष बालक की हत्या करवा रहा धृष्टबुद्धि इस बात से अनभिज्ञ था कि उसे कौन-सा सुख प्राप्त होगा।

चंद्रहांस को पता चल गया कि जल्लाद उसको अब मारने के प्रयास में है। उस मासूम बालक ने पूछा, 'यह तो बताओ कि मुझे आप क्यों मार रहे हो।' मैंने कौन-सा बुरा कर्म किया है। जान से तो उसको मारा जाता है जिसने चोरी या हत्या की हो।

जल्लाद-बालक हमारी तुमसे कोई दुश्मनी नहीं बल्कि धृष्टबुद्धि मंत्री मरवा रहा है, उसने हमें भेजा, इसलिए हम आए हैं। अपने स्वामी का नमक खाते हैं, उसको हलाल करना है। हम तो उनकी आज्ञा का पालन कर रहे हैं।'

चंद्रहांस-'वह मुझे क्यों मरवा रहा है ? मैंने उसका क्या बुरा किया है?'

जल्लाद-'उसको किसी ने यह संदेह डाल दिया है कि तुम कुन्तलपुर राजा के दामाद एवं राजा बनोगे, इसलिए वह तुम्हें मरवा रहा है, क्योंकि धृष्टबुद्धि कुन्तलपुर के राज को आप संभालना चाहता है। हमने अब तुम्हारा वध कर देना है और हमारे पास बातों का समय नहीं है।'

चंद्रहांस-(विनम्रता से) 'मुझे मार दें ! मैं आपके हाथ नहीं पकड़ सकता लेकिन एक विनती करता हूं कि मरने से पहले मुझे ठाकुर जी की आराधना करने का अवसर प्रदान करें। इससे तो आपको एतराज नहीं, शायद मेरा भला हो जाए। भगवान मेरा कल्याण करेगा।'

चंद्रहांस की यह बात जल्लादों ने मान ली। चंद्रहांस ने गले वाले पहनावे में से ठाकुर जी को निकाला और जंगल के फूल-पत्ते तोड़कर पूजा करने लग गया। पूजा करता हुआ वैराग में आ गया। उसकी मासूम आत्मा इस प्रकार प्रभु के आगे विनती कर रही थी कि शायद उसकी मनोभावना समझ सके।

हे प्रभु ! दया कर के मुझे बचा लें, जैसे द्रौपदी को पापी दुशासन

बालों से पकड़कर दुष्ट दुर्योधन की सभा में ले आया था और आप जी ने द्रौपदी की लाज बचाई थी, उसी प्रकार मेरी भी रक्षा करें।

हे दीन दयालु और सत्य स्वरूप ईश्वर ! मैं आप से दान मांगता हूं। मुझ पर दया करें। मेरा तन मन आप जी के चरणों पर अर्पित है। आप मेरे स्वामी हैं। प्रभु ! भक्त पर कृपा करें।

चंद्रहांस ने यह भजन गाया-

हे प्रभु हे दीन दिआल। मैं निरदोशां पकड़ बैठाइया है जंगल वैशाल। प्रभु दस देह खां मैनूं, क्यों आइया मेरा काल ।। किस जन्म दा पाप इह लगड़ा, मैं मासूम हां बाल। हे प्रभु दीन दिआल। तेरे बिनां नहीं कोई है, मेरा तूं पिता प्रतिपाल। हाथी दे तूं बंधन कटे, ओह गोकल क्रिशन गोपाल। अजामल पापी तारन वाले, मेरा वी कर खिआल। हे प्रभु हे दीन दिआल ।।

चंद्रहांस ने ईश्वर के आगे यह प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना ईश्वर के दर पर स्वीकार हुई। प्रभु ने जालिमों के हृदय को टटोला। उनके अंदर दया ने प्रवेश किया। उन्होंने आपस में ही फैसला किया कि इस बालक को मारना नहीं चाहिए, मुक्त कर देना ही अच्छा है निर्दोष तथा मासूम बालक को मारने का बहुत बड़ा पाप लगेगा। हम इस पाप के भागीदार क्यों बनें। उन्होंने चंद्रहांस के पैरों की ओर देखा। एक पैर की छः उंगलियां थीं। छः उंगलियां बुरी होती हैं। उन्होंने छठी उंगली काट दी और वापिस चले गए, वहीं उंगली धृष्टबुद्धि को दिखाने की योजना ही सोची।

जल्लाद चले गए। उस विशाल जंगल में चंद्रहांस अकेला बैठा रहा। उंगली कट जाने से रक्त बहता और उसे काफी पीड़ा अनुभव हो रही थी। फिर भी उसने प्रभु की आराधना न छोड़ी। अचानक ही पीड़ा हट गई तथा रक्त सूख गया। चंद्रहांस बैठा प्रभु का गुणगान करता रहा। जंगल के पक्षी भी उसके साथ प्रभु के गुण गा रहे थे।

राजा कुलिन्द से चंद्रहांस का मेल

साध पठाए आपि हरि हम तुम ते नाही दूरि ॥
नानक भ्रम भै मिटि गए रमण राम भरपूरि ॥

(पत्रा १२१)

धृष्टबुद्धि ने अहंकार, लालच और ईर्ष्या की। यह तीनों रोग बहुत बुरे होते हैं। प्रभु ने उसके इन रोगों का खंडन करना था और मासूम चंद्रहांस को प्रतापी राजा बनाना था। प्रभु ने दया करके राजा कुलिन्द्र को उधर ले आने का खेल रचा। राजा कुलिन्द्र चन्दनपुर का राजा था। वह बड़ा नेक और न्यायप्रिय था। राजा के घर कोई पुत्र न था। वह प्रतिदिन शिकार खेलने जाता था। शिकार खेलता-खेलता वह जंगल के उस हिस्से पर पहुंच गया, जहां चंद्रहांस प्रभु के गुण गा रहा था। हरि कीर्तन की धुन सुनकर राजा ऐसा आकर्षित हुआ निकट आया जैसे राग की मधुर सुर में मस्त होकर मृग आता है। राजा घोड़े से नीचे उतरा और दोनों हाथ जोड़कर उसने जाना शायद स्वयं ईश्वर ही मन की मौज में बैठे हों। राजा को देखकर चंद्रहांस ने कीर्तन करना बंद कर दिया और राजा की तरफ नजर उठाकर देखा। वह देखना ही जन्म-जन्मांतर की प्रीत का जागना था। राजा ने उसे हृदय से लगा लिया। "पुत्र तुम यहां क्यों बैठे हो ? घर चलो !" अचानक ही राजा के मुख से निकल गया। बालक का सुन्दर चेहरा उसके हृदय में बस गया। राजा ने उसका नाम, पता और उसके माता-पिता के बारे में कुछ न पूछा। और घोड़े पर बिठा कर उसे घर ले गया। उसकी रानी मनमोहना बालक देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसने गोद में लेकर उसे पुत्र बना लिया। अगले दिन सारे शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया गया कि राजा कुलिन्द्र एक लड़के को पुत्रवत बना रहा है।

शाही दरबार में लाकर चंद्रहांस को पुत्रवत बनाने की रस्म को

पूरा किया गया। सारे शहर में खुशियां मनाई गईं और दीपमाला हुई। राजा कुलिन्द्र ने इस खुशी में भूखे निर्धनों को बहुत सारा दान दिया तथा अन्न के खुले भण्डार खोले गए। बेसहारा और अनाथ चंद्रहांस प्रभु की कृपा से फिर चन्दनपुर का प्रतापी युवराज बन गया।

धृष्टबुद्धि का चन्दनपुर में आना और चंद्रहांस को पहचानना

राजा कुलिन्द्र ने चंद्रहांस की शिक्षा-दीक्षा का योग्य प्रबंध किया। कुछ ही सालों में विद्या ग्रहण करके वह विद्वान बन गया। साथ ही बढ़िया खुराक और बे-फिक्री के कारण तगड़ा सुन्दर नवयुवक बन गया। वह चन्दनपुर का युवराज था। पहले भी राजा का पुत्र था। इसलिए बाजुओं में बाहुबल और हृदय में अनख थी। उसने सेना लेकर छोटे-छोटे रजवाड़ों को जीत कर चन्दनपुर के राज को बढ़ाना शुरू कर दिया। थोड़े ही सालों में चन्दनपुर का दुगुना राज बढ़ गया। पापी आत्मा धृष्टबुद्धि को भी इस बारे पता चला कि चन्दनपुर के राजा ने जंगल में से एक लड़का लाकर उसे गोद लिया था। उस पुत्रवत ने अपने राज को काफी बढ़ा लिया है। वह बहुत सुन्दर और बली युवराज है। इस बहाने से वह चन्दनपुर आ गया। चन्दनपुर की रियासत क्योंकि कुन्तलपुर के अधीन थी और कुन्तलपुर को 'कर' दिया जाता था इसलिए राजा कुलिन्द्र ने धृष्टबुद्धि का काफी आदर-सत्कार किया।

जिस समय चंद्रहांस धृष्टबुद्धि के सामने आया तो उसने हैरान होकर गौर से उसे पहचानने का यत्न किया। चुपके से पास बुलवा कर पूछ लिया कि क्या तुम कभी कुन्तलपुर गए थे। दिल के भोले चंद्रहांस ने सत्य बता दिया कि वह साधू संतों की मंडली के पास वहां रहा करता था। यह सुनकर धृष्टबुद्धि का पापी मन कांप उठा। वह मन ही मन सोचने लगा कि 'उफ! यह दुष्ट बालक जल्लादों से कैसे

बच गया। मैं इसे अब अवश्य मरवा दूंगा। यह जीवित नहीं रहना चाहिए।'

इसके पश्चात धृष्टबुद्धि राजा कुलिन्द्र के पास पहुंचा। उसको एकांत में ले जाकर कहने लगा–हे राजन ! आपने बहुत बड़ा अनर्थ किया है। पाप करते समय कुन्तलपुर के राजा को सूचित न किया। वह पाप या दोष यह है कि आवारा लड़का जंगल से पकड़कर पुत्रवत बना लिया, यह भी पता नहीं वह किस नीच जाति का बालक था। अब यह राज का मालिक बनेगा। राजा कुन्तलपुर ने दरअसल मुझे गुप्त रूप से इस जांच–पड़ताल के लिए ही भेजा है लेकिन मैं आपका हितैषी हूं। मैं नहीं चाहता मेरे जरिए आपका दिल दुखी हो, मैं इस भेद को गुप्त ही रखता हूं। आप इस युवराज को कुन्तलपुर अवश्य भेजें। इसकी आकृति अच्छी है। यह देख कर राजा को भरोसा हो जाएगा कि शायद यह लड़का कोई राजकुमार ही था, साथ ही युवराज बुद्धिमान है। स्वयं ही समझा देगा। इसमें कोई हर्ज नहीं।

कुलिन्द्र–"अवश्य कुन्तलपुर भेज दूंगा। मैंने तो अपनी ओर से जो कुछ किया सोच–समझ कर राज और प्रजा के लाभ हित में किया है। मेरी कोई कामना नहीं। युवराज तो लगता ही राजकुमार है।"

धृष्टबुद्धि ने राजा कुलिन्द्र से पूछकर चंद्रहांस को कुन्तलपुर जाने के लिए तैयार कर लिया। युवा निडर होते हैं, वह भय तथा चिंता हृदय में नहीं रखते। चंद्रहांस ने निडरता से धृष्टबुद्धि को उत्तर दिया। पिता जी ! जहां भेजें जाने को तैयार हूं। मेरा ठाकुर मेरे साथ है, मुझे कोई चिन्ता नहीं !'

कुटिल आत्मा धृष्टबुद्धि बोला–'बेटा ! आपने कुन्तलपुर के राजा से मिलना है लेकिन पहले मेरे पुत्र मदन से मिलने के बाद। मदन फिर तुम्हें महाराज के पास ले जाएगा। राजा जो कुछ भी पूछेंगे उनका

योग्य उत्तर देकर आ जाना। राजा की आपसे मिलने की बड़ी इच्छा है। यह कह कर धृष्टबुद्धि ने एक पत्रिका लिख कर दी। साथ ही चंद्रहांस को बताया कि वह मार्ग में इस पत्रिका को खोलकर न पढ़े। पराई चिट्ठी को पढ़ना पाप है। युवराज चंद्रहांस पत्रिका लेकर घोड़े पर सवार होकर वहां से चल दिया।

बिख्या से मेल और विवाह

मनुष्य जो कुछ करना सोचता है वह कुछ भी नहीं होता। लालची मनुष्य तो एक रात में ही सारा नगर लूटकर वहां की धन सम्पत्ति हड़प करना चाहता है लेकिन इस प्रकार होता नहीं, क्योंकि प्रभु की इच्छा कुछ और ही होती है। होता वहीं है जो परमेश्वर को स्वीकार हो। यदि मनुष्य के वश में यह खेल हो तो बन्दर की तरह पता नहीं कितने घर उजाड़ दे। धृष्टबुद्धि चंद्रहांस को हर कीमत पर खत्म करना चाहता था। वह मुख का मीठा तथा आत्मा का कड़वा एवं पापी था। उसने गुप्त ढंग से अपने पुत्र मदन को चिट्ठी लिखी कि इस युवराज को (बिख) जहर दे दो तो मेरे हृदय को ठंडक मिलेगी। जवानी के जोश से भरपूर चंद्रहांस ने चिट्ठी नहीं पढ़ी और न ही उसे खोला। घोड़े को दौड़ाकर चंद्रहांस ने कुन्तलपुर के मार्ग की दूरी समाप्त की। अभी थोड़ा-सा दिन शेष रहता था कि वह कुन्तलपुर के शाही बाग में पहुंच गया। सरोवर के किनारे उसने घोड़े को बांध दिया। थकावट उतारने के लिए चंद्रहांस संगमरमर की शिला पर लेट गया। मार्ग की थकावट के कारण लेटे-लेटे उसे गहरी नींद आ गई।

उधर राजा की लड़की चंपक मालिनी और वजीर धृष्टबुद्धि की लड़की बिख्या सखियों सहित शाम को बाग की सैर करने आ निकलीं। चंचल मन सुन्दर राजकुमारियां हंसती खेलती सरोवर के किनारे पहुंच गईं। उन्होंने चंद्रहांस को वहां पर सोए देखा और मन

ही मन कुछ न कुछ सोचती हुई युवराज की ओर आकर्षित होकर देखती रहीं। उनका मन सोते हुए को जगाने का भी नहीं कर रहा था। राजकन्या तो आगे निकल गई पर बिख्या के पैर वहां से न हिले। वह चंद्रहांस को देखकर आंखों द्वारा उसकी सूरत का जाम पीती रही। युवराज के आधे मिटे हुए नयन उसे बड़े अच्छे लग रहे थे। देखते-देखते उसकी निगाह युवराज की पगड़ी में लगी चिट्ठी की ओर गई। चंचल मन बिख्या ने धीरे से उसे निकाल लिया। उस चिट्ठी को बिख्या पढ़कर बड़ी हैरान हुई। वह चिट्ठी उसके पिता धृष्टबुद्धि की लिखित एवं उसके भाई मदन को संबोधन की हुई थी लेकिन जो कुछ लिखा गया था, वह बहुत ही बुरा था। बिख्या ने चिट्ठी को कई बार पढ़ा। चिट्ठी में लिखा था कि मदन ! इसे बिख (जहर) दे देना। मेरी आत्मा को शांति प्राप्त होगी। तुम्हारा पिता धृष्टबुद्धि।

बिख्या सोचने लग गई कि मेरे पिता का इस सुन्दर युवराज से क्या वैर है ? जो इसे मरवाना चाहता है। 'नहीं, मैं इसे मरने नहीं दूंगी, यह मेरा पति बनने योग्य है। मैं इससे विवाह करवाऊंगी।' यह कहकर बिख्या ने आंखों में पड़ा काजल निकाल कर चिट्ठी का सुधार कर दिया। जहां 'बिख' लिखा था उसे 'बिखया' कर दिया। जहां चंद्रहांस सोया हुआ था पगड़ी में वह चिट्ठी लगा दी। अभी वह जाने ही लगी थी कि युवराज चंद्रहांस की आंखें खुल गईं। उसने बिख्या को देख लिया। देखते ही वह उठ कर बैठ गया। उसने बिख्या को निगाह भर कर देखा। वह देखना ऐसा था कि सच्चे प्यार की गठरी थी, जो सख्त हो गई।

"मैं पूछ सकती हूं कि राजकुमार कहां से आए हैं ? बिख्या ने मुस्करा कर शरमाते हुए नयनों तथा थरथराते होठों को दबाते हुए पूछा।"

"चन्दनपुर से आया हूं। यहां के वजीर के पुत्र मदन से मिलना

है। चन्दनपुर राज का युवराज हूं और आप ?" चंद्रहांस ने उत्तर दिया और सवाल भी किया।

"मदन की बहन बिख्या !" यह कह कर बिख्या शर्माती हुई वहां से दौड़ गई। चंद्रहांस देखता ही रह गया।

चंद्रहांस उस शाही बाग से उठा तथा घोड़े पर सवार होकर राजमहल में पहुंच कर मदन से मिला। मदन को जब चंद्रहांस ने वह चिट्ठी दी तो उसे पढ़कर मदन खुशी से झूम उठा। उसने अपनी बहन बिख्या के विवाह की तैयारियां उसी समय आरम्भ कर दीं। रातो-रात ही विवाह का सारा प्रबंध हो गया। अगले दिन ही चंद्रहांस तथा बिख्या का विवाह हो गया। इस अवसर पर राजमहल में धूमधाम से खुशियां मनाई गईं। होनी ने कुछ और ही कर दिया था। मरने आए चंद्रहांस का विवाह धृष्टबुद्धि की पुत्री बिख्या से हो गया।

चंद्रहांस की जगह मदन की मृत्यु

तीसरे दिन बाद धृष्टबुद्धि कुन्तलपुर आ गया। अभी वह नगर से बाहर ही था कि लोगों ने मुबारकबाद देनी शुरू कर दी कि आपकी सुपुत्री का विवाह हो गया है, पर आप न पहुंचे। वर भी बहुत अच्छा है। जब घर पहुंचा तो चंद्रहांस को घर का मालिक बना देखकर उसके पांवों तले जमीन खिसक गई। चंद्रहांस रंगीले पलंग पर मखमली बिस्तर पर बैठा बिख्या से हंसी-मजाक प्रेम कर रहा था। चंद्रहांस ने धृष्टबुद्धि को ससुर समझ कर प्रणाम किया। पापी आत्मा धृष्टबुद्धि ने दिल की बात प्रगट न होने दी, घर के किसी भी आदमी को बुरा-भला न कहा, पर चंद्रहांस को मारने की योजना जरूर सोची। उसने यह न सोचा कि उसकी लड़की विधवा हो जाएगी, उस पर तो राजा बनने का भूत सवार था। संतों के वचन उसके कानों में गूंज रहे थे। उसका दामाद तो वह बन गया। अब तो केवल राजतिलक की देरी थी।

धृष्टबुद्धि जल्लादों के पास गया। उनको कहा कि एक हजार मोहरें मिलेगी अगर एक आदमी को मार दो। वह आदमी मां भवानी के मंदिर में शाम को पूजा की सामग्री लेकर आएगा, बिना कुछ पूछे ही उसे मार देना और आकर अपना ईनाम ले लेना। जल्लादों ने पांच सौ मोहरें पहले वसूल कर लीं तथा मां भवानी के मंदिर में पहुंच कर चंद्रहांस का इंतजार करने लगे।

दूसरी ओर धृष्टबुद्धि चंद्रहांस को कहने लगा, 'पुत्र हमारे कुल की मर्यादा है कि हमारा दामाद अकेले शाम को मां भवानी की पूजा करने के लिए उसके मंदिर जाता है। पहाड़ी और जंगल के बीच मंदिर है। आज सामग्री ले कर तुम मंदिर हो आओ, चंद्रहांस को उसकी चाल पर तनिक भी शक न हुआ। उसने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया, 'सत्य वचन जी, मैं शाम को मंदिर हो आऊंगा।'

चंद्रहांस ने धृष्टबुद्धि के वचनों को बिख्या के समक्ष भी प्रगट नहीं किया। सामग्री मंगवा कर मां भवानी के मंदिर को जाने की तैयारी की। शाम होने में थोड़ा-सा समय था कि राजमहल से चल पड़ा। अभी थोड़ी दूर ही गया था कि मार्ग में उसका साला मदन उसको मिल गया। मदन ने निकट आ कर कहा- 'जीजा जी ! यह सामग्री मुझे दे दीजिए। मैं भवानी के मंदिर हो आता हूं। आप को राजा साहिब ने बुलाया है, इसी समय उनके पास पहुंच जाओ। वह आपका इंतजार कर रहे हैं, कोई जरूरी काम है।' यह कह कर मदन ने चंद्रहांस से पूजा की सामग्री ले ली और चंद्रहांस को राजमहल की तरफ भेज दिया। मदन मां भवानी के मंदिर में पहुंच गया। देवी के मंदिर में सामग्री चढ़ाने लगा तो छिपे हुए जल्लादों ने बाहर निकल कर शीघ्र ही उसका सिर काट दिया। धड़ के चार टुकड़े कर दिए। टुकड़ों को मंदिर से बाहर फैंक कर जल्लाद नगर को चले गए। उन को खुशी हो रही थी कि धृष्टबुद्धि के पास जा कर पांच सौ मोहरे

ईनाम की और वसूल करेंगे।

चंद्रहांस का दूसरा विवाह और धृष्टबुद्धि की मृत्यु

आगे के खेल में वजीर जैसे-जैसे चंद्रहांस के साथ गुप्त ढंग से दुश्मनी किए जा रहा था, वैसे-वैसे ही चंद्रहांस की किस्मत का सितारा चमक रहा था। चंद्रहांस राजा के पास पहुंचा। राजा ने प्यार करके नम्रता से कहा, पुत्र चंद्रहांस ! मुझे बहुत खुशी है कि भगवान ने तुम्हें अपने आप ही हमारे नगर में भेज दिया है, मेरी पुत्री जवान है। मुझे रात-दिन उसकी चिन्ता रहती थी कि इसके लिए कोई सुयोग्य वर मिले। प्रभु की कृपा से आप इस रियासत में आ गए। मैंने पंडित को संदेश भेजा है। वजीर साहिब भी आ रहे हैं, राजकुमारी से आपका विवाह किया जाता है। मैं क्योंकि बूढ़ा हूं इसलिए राज-काज का काम अब मुझसे नहीं होता। दूसरा, मैं संन्यास धारण करना चाहता हूं। इसलिए राज तिलक भी आपको ही सौंप दिया जाएगा। कल से आप इस राज के मालिक होंगे।

अभी राजा यह कह ही रहा था कि राजा का गुरु आ गया। गुरु जी के पीछे वजीर धृष्टबुद्धि जी भी झूलते हुए आ पहुंचे। चंद्रहांस को राजा के पास बैठा देखकर स्तब्ध हो गए। उनके पैरों के नीचे से जमीन निकल गई कि यह क्या हुआ ? मैंने तो इसको मां भवानी के मंदिर भेजा था। पर यह यहां पर कैसे है ? जब उसने मदन को दरबार में न देखा तो उसके पापी मन को कुछ शंका हुई। उसने चंद्रहांस से पूछा, 'पुत्र मदन कहां है ?'

'जी ! मदन तो मां भवानी के मंदिर गया है, पूजा की सामग्री लेकर उसने मुझे यहां भेज दिया और स्वयं मंदिर चला गया।' चंद्रहांस ने उत्तर दिया।

क्या ! मां भवानी के मंदिर में मदन चला गया ! वजीर पूरी बात

भी न कर सका। वह उसी समय राजा के महल से निकल गया। यह देखकर वहां सब लोग हैरान हो गए। प्रभु की माया। खैर ! उसकी अनुपस्थिति को किसी ने अनुभव न किया। चंद्रहांस और चंपक मालिनी का विवाह वैदिक रीति से करके राजा के गुरु ने चंद्रहांस को राजतिलक लगा दिया। खुशियों के बाजे बजाए गए।

सुबह हुई तो नगर और राज्य में ढिंढोरा फिरा दिया गया कि आज से कुन्तलपुर तथा उसकी समस्त रियासतों का राजा चंद्रहांस है। राजा ने उसको राजतिलक दे दिया है। अपनी पुत्री चंपक मालिनी का विवाह भी चंद्रहांस से कर दिया है। बड़े महाराज आज से प्रभु भक्ति के लिए संन्यास ले कर वनों को जा रहे हैं।

चंद्रहांस के राजा बनने का ढिंढोरा अभी नगर में बज ही रहा था कि राजा को खबर मिली कि मदन और धृष्टबुद्धि मां भवानी के मंदिर में कत्ल हुए पड़े हैं। यह सुनते ही चंद्रहांस बिख्या और चंपक मालिनी के साथ मां भवानी के मंदिर पहुंचा। वहां पर वे दोनों सचमुच ही मृत पड़े थे।

मदन को तो जल्लादों ने मार दिया था लेकिन धृष्टबुद्धि ने आत्महत्या कर ली थी। उन दोनों की मृत्यु को देख कर भक्त चंद्रहांस उदास हो गया। वह मन में सोचने लगा कि यह सब मेरे ही कारण हुआ है। इस पाप का भागी मैं हूं। मेरा जीना व्यर्थ है, इसलिए मरना ही बेहतर है। यह सोच कर उसने कटार म्यान से निकाली और अपने हृदय में मारने लगा तो देवी ने साक्षात् दर्शन दे कर उसके हाथ पकड़ लिए। यह चमत्कार देख कर बिख्या और चंपक मालिनी हैरान हो गई और डर गई। देवी ने चंद्रहांस को गोद में लेकर मीठे शब्दों में कहा–'पुत्र! आत्महत्या करना उचित नहीं, यह पापी तुम्हें मारना चाहता था, पर इसका अपना ही पुत्र मर गया, जिसका दुःख यह सहन न कर सका और आत्महत्या कर ली। तुम जाओ और शांति से राज

करो। चन्दनपुर, कुन्तलपुर राज तुम्हें दिए। तुम मेरे भक्त हो, जो कुछ मांगना चाहते हो, मांग लो।

जगदम्बा देवी के यह वचन सुन कर चंद्रहांस प्रसन्न हो गया और उसने सोचकर दो वर मांगे 1. हे माता! मुझे पहला वर यह दीजिए कि मैं तुम्हारा सदा भक्त रहूं। राज पाठ पाकर मुझ में अहंकार न आए। मनुष्य मात्र की सेवा करूं, प्रभु की भक्ति तथा तुम्हारे भजन गाता रहूं। 2. हे माता! मेरे ससुर और साले को ज्यों का त्यों जीवित कर दें, इनकी गुप्त ईर्ष्या से मुझे कोई गिला शिकवा नहीं। फिर भी यह मेरे पूजनीय संबंधी है, मेरे पिता और भाई समान हैं। इन दोनों का वियोग मैं सहन नहीं कर सकता। उन्हें सजीव कर आप मुझ पर दया करो। हे माता! बालक आप से यहीं वर मांगता है।

अच्छा, पुत्र! ऐसा ही हो जाएगा। जाओ तुम्हारी मुराद पूरी हुई। यह कह कर जगदम्बा देवी अलोप हो गई। मदन के शरीर के टुकड़े अपने आप ही जुड़ गए। मदन और धृष्टबुद्धि फिर जीवित हो गए। जीवित होते ही उन्होंने चंद्रहांस, बिख्या तथा चंपक मालिनी को देखा तो उनके आनंद की कोई सीमा न रही। सब को बारी-बारी गले से लगाया। धृष्टबुद्धि ने चंद्रहांस से क्षमा मांगी, फिर वह राज करने लगा।

महांबली अर्जुन

महाभारत की कथा में अर्जुन का नाम प्रसिद्ध है। अर्जुन जैसा बली कोई नहीं हुआ। जहां वह एक बलशाली था वहां प्रभु भक्त भी था। उसने घोर तपस्या करके वर प्राप्त किए थे। अर्जुन की कथा सुनने वाले को भय नहीं सताता और वह निर्भय हो जाता है। इसलिए हे भक्त जनो ! श्रद्धा से अर्जुन भक्त की कथा श्रवण करो। बोलो महांबली अर्जुन की जै !

अर्जुन राजा पांडव का पुत्र था। यह पांच भाई थे। इनको पांच

पांडव कहा जाता है। युधिष्ठिर इनका बड़ा भाई और धर्मनिष्ठ राजा था। इनकी माता का नाम कुन्ती था। पांचों पांडव जो भी वस्तु ले कर आते, कुन्ती उन्हें मिल बांट कर लेने के लिए कहती। जब अर्जुन ने द्रौपदी को जीता तथा घर लेकर आए तो उनकी माता ने बिना देखे यह वचन कर दिया-पुत्र ? जो कुछ लाए हो बांट लो।' वह समझी कि कोई खाने वाली वस्तु लाएं होंगे। उन दिनों पांडव ब्राह्मणों के भेष में रहते थे। क्योंकि पिता की मृत्यु के पश्चात उन्हें राज-पाठ प्राप्त नहीं हुआ था। जब माता कुंती ने पांडवों को देखा तो वह बहुत हैरान हुई और उसको पछतावा हुआ कि उसे ऐसे वचन नहीं करने चाहिए थे, पर जो वचन हो गया, वह वापिस कैसे हो सकता था।

अब पांचों भाईयों को यह चिंता लगी कि वह द्रौपदी को कैसे रखें, वास्तव में अधिकार तो अर्जुन का था, जो उसको जीत कर लाया था। उन्होंने निर्णय किया कि दो महीने बारह दिन द्रौपदी एक भाई के पास रहेगी, जब एक के पास होगी, दूसरा उसके पास नहीं जाएगा। न उसको बुलाएगा। अगर कोई इस मर्यादा को भंग करेगा उसको बारह साल बनवास काटना पड़ेगा। यह सब इसलिए किया गया कि पांचों भाई कहीं झगड़कर एक स्त्री से अपनी कुल नष्ट न कर लें।

पांडवों को राज-पाठ मिल गया, युधिष्ठिर राजा बना तथा वे सब खांडवप्रस्थ आ कर वहां रहने लगे। शानदार महल बन गया और शाही ठाठ-बाठ हो गया। पर जो मर्यादा उन्होंने द्रौपदी को लेकर बनाई थी वह उसी प्रकार कायम रही।

एक दिन अर्जुन से यह मर्यादा भंग हो गई। मर्यादा के भंग होने का कारण इस प्रकार है-एक ब्राह्मण की गायों को किसी ने छीन लिया, वह ब्राह्मण स्वयं मुकाबला न कर सका और अर्जुन के पास चला गया। उस समय अर्जुन के आराम का समय था तथा द्रौपदी

दो महीने बारह दिन के लिए उसके बड़े भाई युधिष्ठिर के पास थी। जहां द्रौपदी और युधिष्ठिर बैठे थे, वहां से निकल कर अगले कमरे में अर्जुन के शस्त्र थे। उस क्षण अर्जुन बहुत बड़ी दुविधा में फंस गया। एक तरफ बड़े भाई और द्रौपदी का सवाल था तथा दूसरी तरफ प्रजा की रक्षा और ब्राह्मण की चोरी की समस्या। वह राजा थे अगर न जाता तो उसका अपमान होता, अगर अंदर जाता था तो मर्यादा भंग होती थी। आखिर प्रजा की भलाई को सम्मुख रख कर अर्जुन ने कोई परवाह न की। वह अंदर चला गया और शस्त्र उठा कर ब्राह्मण के साथ चल पड़ा। अर्जुन ने ब्राह्मण की गाएं वापिस दिला कर चोरों को योग्य दण्ड दिया।

वहां से वापिस आ कर अर्जुन ने अपने बड़े भाई युधिष्ठिर को हाथ जोड़ कर प्रार्थना की–'मैंने मर्यादा की उल्लंघना की है, मुझे बारह वर्ष का बनवास दिया जाए।'

युधिष्ठिर–'हे अर्जुन ! तुम से कोई मर्यादा भंग नहीं हुई। जब तुम हमारे पास से गुजरे थे तब तक हम प्रेम–क्रीड़ा करके यूं ही अनजाने में बैठे थे। तुम आगे निकल गए, तुमने अपनी आंखे नीची रखीं, दूसरा द्रौपदी दो महीने बारह दिन के लिए तुम्हारी बड़ी भाभी है। बड़ी भाभी होने के कारण भी दोष नहीं लगता। तुम हमें बहुत प्रिय हो, बनवास मत जाओ और न ही हम तुम्हें भेजेंगे।'

अर्जुन–'नहीं महाराज ! धर्म का राज है, मैं पांडव पुत्र हूं। अगर हम ही मर्यादा की उल्लंघना करके बनवास न जाएं और भूल जाएं और पक्षपात करें तो कल को मर्यादा भंग करने की रीति ही प्रचलित हो जायेगी, फिर क्या होगा, आपको मुझे बनवास भेजना ही होगा।

युधिष्ठिर–हे अनुज ! तुम्हारे मन में पाप नहीं था। तुम ने परोपकार के लिए मर्यादा को भंग किया, वह भी विवशता में, अब सोचना छोड़ दो। द्रौपदी की भी इच्छा नहीं है कि तुम बनवास जाओ।

इस प्रकार बहुत बहस होती रही, अंत में पांडव पुत्रों ने अर्जुन को बनवास के लिए विदा किया। बारह साल के लिए उसने शाही वस्त्र उतार कर संन्यास के वस्त्र पहन लिए तथा अपनी राजधानी से हिमालय पर्वत की तरफ चल पड़ा। वह चलता-चलता इन्द्र लोक की तरफ बढ़ा, पर मार्ग में महादेव बैठा था, उसने अर्जुन के बल की परीक्षा लेनी चाही। उसने कहा -'अर्जुन मैं तुमसे युद्ध करना चाहता हूं।'

अर्जुन-क्यों करना है ?

महादेव-'मुझ से युद्ध किए बिना तुम इन्द्र लोक की तरफ नहीं जा सकते। तुम्हारे बल की परीक्षा होगी।'

अर्जुन-'पर मैं युद्ध क्यों करूं, न कोई दुश्मनी न कोई झगड़ा। दूसरा इस युद्ध को देखेगा कौन ? कौन साक्षी होगा ? आप अकेले लड़ते रहे। यह तो सुनसान स्थान है।

महादेव-'वरूण तथा सूर्य देखेंगे।'

अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहता था। महादेव ने जब हठ न छोड़ा तो दोनों का युद्ध शुरू हो गया। उस समय वरूण और सूर्य देवता देखने लगे। वे दोनों दस दिन और दस रातें युद्ध करते रहे। जीत-हार का फैसला न हो सका। अर्जुन भी 'नर-अवतार' था। अंत में महांदेव ने युद्ध करना छोड़ दिया, उसने कहा-'हे अर्जुन ! तुम महांबली हो, सृष्टि पर तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं कर सकेगा। और जो वर मांगना है मांग लो।'

महादेव की बात सुन कर अर्जुन खुश हो गया। उसको चाव चढ़ गया कि उसको कुछ मांगने का अवसर मिला है। तब अर्जुन ने निवेदन किया-'महाराज ! शस्त्रों-अस्त्रों के प्रयोग का ज्ञान चाहिए। ऐसा करने से कुछ कार्य सम्पूर्ण हो जाएंगे।'

महादेव ने यह बात मान ली तथा 'अमोघ पशुपत' अस्त्र को धारण करने, खोलने तथा नष्ट करने की कला महादेव ने अर्जुन को प्रदान

की। अर्जुन पहले ही बलशाली था फिर से वह निर्भय हो गया। वह महांदेव के साथ ही देव लोक को चल पड़ा।

देव लोक के मार्ग में अन्य भी कई बड़े देवता थे जैसे यम, कुबेर, वरूण, गणपति आदि। सब देवता अर्जुन से खुशी-खुशी मिले और अपनी अपनी समर्था के अनुसार कोई न कोई शक्ति अर्जुन को दी। अर्जुन शक्तियों का भंडार बनता गया, सबके बाद देवराज इन्द्र को मिलना था। इन्द्र पहले ही जान गया था कि अर्जुन आ रहा है। उसने अपना रथ भेजा तथा अपने दरबार में अर्जुन को बड़े आदर से बिठा लिया। अर्जुन पांच साल देव लोक में रहा, सब देवताओं ने अर्जुन का आदर किया।

अर्जुन जब देव लोक में था, तो इन्द्र ने उसी तरह का खेल अर्जुन से खेलना शुरू किया, जो वह हर बड़े भक्त या तपस्वी से खेलता है। वह अपनी रखी हुई अप्सराओं से लाभ उठाता था, उस ने अर्जुन के बल को घटाने के लिए अप्सरा उर्वशी को हुक्म दिया कि वह अर्जुन की परीक्षा ले। उसका अपने रूप रंग से मन मोहित करो, क्योंकि वह बारह साल के लिए ब्रह्मचार्य धारण करके देव लोक में भ्रमण कर रहा था।

इन्द्र ने अप्सरा उर्वशी को कहा-'हे देव लोक की सुन्दरी ! तुम्हारे पास रूप है तथा काम देवता की शक्तियां है, अर्जुन ब्रह्मचारी है, वह पराई नारी की तरफ नहीं देखता। इसका अभिमान तोड़ो। जैसे संभव हो वैसे करो।

उर्वशी-जैसे देवराज का हुक्म वैसे हो जायेगा। कोई चिंता वाली बात नहीं, आप के हुक्म का इंतजार था, मन तो मेरा भी विचलित हो गया था। आपसे डरती थी। अर्जुन महांबली है महांदेव के साथ दस दिन लगातार युद्ध करता रहा है।

इन्द्र ने पहले तो माया का बल इस्तेमाल किया।

चांद-चांदनी रात की ऋतु सुहावनी बनाई। अर्जुन के मन पर ऋतु और जलवायु का असर डालने का यत्न किया। इतने में उर्वशी वहां पहुंच गई। वह देवलोक की अनुपम सुन्दरी थी, जो भी उसे देखता था, उसका धर्म हिल जाता था वहीं उसका सेवक बन जाता था।

लेकिन अर्जुन महाबली योद्धा था उसने अपनी दसों इंद्रियों को वश में किया हुआ था। उर्वशी ने बहुत सारे हार शृंगार किए। ठुमक-ठुमक कर हाथी की चाल चलती हुई अपना यौवन निखार कर जब अर्जुन के पास उपस्थित हुई तो वह तबक कर अपने सुख-आराम की सेज से उठ खड़ा हुआ। उसने अपनी इंद्रियों को वश में कर लिया। अर्जुन ने उर्वशी की ओर देखा। अपने मन एवं शरीर में कामदेव को स्थान न दिया। उसको जगाने का कोई अवसर न दिया।

अर्जुन जान गया था कि वह यहां क्यों आई है। उसने विनम्रता से कहा-माता ! आपने किस उद्देश्यहेतु दर्शन दिए हैं ? 'माता' का शब्द जब अर्जुन की जुबान से सुना तो उर्वशी सिर से पांव तक कांप उठी। उसका कोमल हृदय धड़कने लग गया। कुटिल नीति और मंद वासना की तीव्र लालसा ठंडी हो गई। फिर भी हठ न छोड़ कर उर्वशी ने हंस कर कहा-इन्द्र महाराज की आज्ञा से आप की ही सेवा करने आई हूं। मेरा अंग-अंग अंगड़ाई ले रहा है। हृदय तड़प रहा है। यह सुहावनी रात शीतल चांद की चांदनी, जरा नयन उठा कर मेरी तरफ देखो, मेरा यौवन !

'माता' मुझे पाप की ओर प्रेरित मत करें। कभी आप राजा परूरवा की धर्मपत्नी तथा भरत की माता रही हो। मैं आपको माता समझने के अलावा और कुछ समझने की समर्था नहीं रखता। केवल मैं यहीं चाहता हूं कि आप यहां से जल्द से जल्द चली जाएं नहीं तो...।' यह कहता हुआ अर्जुन क्रोधित होकर पलंग से उठ खड़ा हुआ। उसकी आंखों की लाली देखकर उर्वशी भयभीत हो गई। वह जो सबक

पढ़कर आई थी, वह भूल गया। अर्जुन फिर शेर की तरह गर्ज कर बोला–'माता ! चली जाओ, मेरी आंखों से दूर हो जाएं। बस मेरा यह कहना अंतिम कहना है।'

उर्वशी भांप गई कि अब अर्जुन उसको या तो श्राप दे देगा या अपने बल से मारने का यत्न करेगा। वह पीछे हट गई और पीछे हटते हुए उसने श्राप दे दिया कि 'अर्जुन ! एक दिन ऐसा आएगा जब तुम स्त्री की तरह किसी राज दरबार में नृत्य करोगे, गीत गाओगे और नपुंसक हो जाओगे।' यह श्राप देकर उर्वशी अर्जुन के महल में से चली गई।

बलशाली अर्जुन ने श्राप ले लिया लेकिन अपने धर्म पर अटल रहा। पांच साल स्वर्ग में रहकर वापिस अपने राज की ओर चल पड़ा, क्योंकि बनवास के 12 वर्ष खत्म होने को आए थे। उर्वशी का दिया हुआ श्राप उस समय पूरा हुआ जब दूसरे बनवास के समय पांचों पांडव भाईयों और द्रौपदी को बनवास का 13 वां साल गुप्त रूप में बिताना पड़ा था। उस समय एक राजा की सभा में अर्जुन नृत्य करता और संगीत सिखाता रहा। वह एक साल नपुंसक के रूप में रहा।

महाभारत के युद्ध में श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को 'गीता' का उपदेश देकर युद्ध में लड़ने के लिए प्रेरित किया। 'गीता' के उपदेश द्वारा प्रोत्साहित होकर अर्जुन कौरवों से लड़ा। जिसमें विजय प्राप्त की। अंत में राज–पाठ छोड़कर पांचों पांडव भाई तथा द्रौपदी स्वर्ग को चले गए। ऐसा महाबली योद्धा अर्जुन था। उसकी महिमा लिखी नहीं जा सकती। जती सती अर्जुन ! जै हो !!

भीष्म पितामह

''गंगेव पितामह चरण चित अंम्रित रसिआ ॥''

जिसका परमार्थ है कि गंगा जी का पुत्र भीष्म पितामह प्रभु का

ध्यान करके उनके चरण कंवलों में आनंदमयी रस को अनुभव करता रहा। उस प्रभु भक्ति का फल अमृत था जिस अमृत के सहारे वह कई दिनों तक तीरों की छैय्या पर सोया रहा था। प्रभु भक्ति एवं भीष्म प्रतिज्ञा के कारण अपनी मृत्यु को भी आगे-पीछे कर दिया। ऐसा भक्त भीष्म पितामह कौन था? हे भक्त जनों! ध्यान से एकाग्रचित्त होकर ऐसे बली पुरुष की कथा सुनो।

राजा शांतनू कौरवों और पांडवों के कुरु वंश के पितृ थे। राजा शांतनू बड़ा प्रतापी सम्राट था और गंगा नाम की अप्सरा पर मोहित हो गया। जब राजा को काम रोग हो गया तो उसने गंगा को विवाह करने के लिए निमंत्रण दिया। गंगा भी राजा शांतनू की जवानी तथा बल पर मोहित थी। इसलिए गंगा ने राजा शांतनू के साथ विवाह कर लिया और साथ जीवन बिताने के लिए हां तो कर दी लेकिन राजा शांतनू के आगे एक शर्त रख दी कि जिस दिन शांतनू गंगा के गर्भ से जन्मे बच्चे का मुख देखकर बच्चे के बारे पूछेगा तो वह उस दिन के बाद शांतनू से अलग हो जाएगी। उस समय राजा ने गंगा की यह शर्त स्वीकार कर ली। राजा शांतनू देवी गंगा को अपने रणवास में ले गया। वह कई साल गृहस्थ को भोगते रहे। राजा शांतनू मृत्यु लोक का वासी था और देवी गंगा इन्द्रलोक की अप्सरा इसलिए दोनों के स्वभाव और कर्म भिन्न थे। अप्सरा गंगा गुणों के कारण शांतनू से चतुर थी। गंगा राजा शांतनू से काम लीला करने के उपरांत जिस बच्चे को भी जन्म देती, उसको गंगा जल में बहा आती और इस तरह गंगा ने अपने सात बच्चे जल में प्रवाह कर दिए। राजा शांतनू गंगा के बच्चे बहा देने से चिंतित भी रहता और अपने वंश को आगे चलाने के बारे में भी सोचता रहता। जब गंगा ने आठवें बच्चे को जन्म दिया तो उसने पुत्र मोह में इस बारे उससे जिक्र किया। शांतनू ने बातों-बातों में ही अपनी खुशी प्रगट करते हुए उस आठवें बच्चे

को गंगा से पानी में बहाने से रोका। उसने कहा कि वह पिता होकर अपने राजकुमार को गंगा जल के प्रवाह में बहाने नहीं देगा। किए प्रण के अनुसार गंगा राजा शांतनू को शिशु सौंपकर इन्द्रलोक में चली गई और वह राजा शांतनू के पास वापिस नहीं आई। राजा शांतनू ने उस बच्चे का नाम 'देवव्रत' रखा। धीरे-धीरे देवव्रत युवा बलशाली हो गया। जैसे-जैसे देवव्रत जवान होता गया शांतनू बुढ़ापे की तरफ बढ़ता गया। उसको बुढ़ापा आ गया, मगर हृदय और रक्त में से स्त्री भोग की वासना न गई। वह अपनी दसों इन्द्रियों को वश में न रख सका। इन्द्रियों का गुलाम पुरुष सदा तन मन पर कष्ट उठाता है। वह कई बार मृत्यु का भागी भी बनता है। परिवार को भी काम वासना दुखी करती है।

गंगा के अलोप हो जाने के पश्चात उदास चित शांतनू गंगा दरिया के तट पर प्रतिदिन नियमानुसार जाया करता था और गंगा में स्नान करने से उसे शांति प्राप्त होती। उसे इस तरह अनुभव होता था जिस तरह सचमुच ही वह गंगा से मिल कर गया है। गंगा दरिया के घाट पर मल्लाहों के घर थे। वहां पर एक मल्लाह की सुन्दर कन्या जिसका नाम सत्यवती था, उस कंवल नयन सुन्दरी को देखकर शांतनू मोहित हो गया। उसने गरीब मल्लाह की बेटी सत्यवती के प्रेम में बेकाबू होकर पूछा, 'क्या तुम मुझसे विवाह करोगी।' लाजवंती की तरह कुमलाती हुई मल्लाह की बेटी ने सिर्फ इतना ही उत्तर दिया, "मैं क्या कह सकती हूं, आप मेरे पिता से बात करें।" यह सुनकर शांतनू मल्लाह के पास गया तो सारी बात प्रगट कर दी। उसने बताया कि वह राजा शांतनू है। मल्लाह ने राजा के मन की इच्छा सुनकर कहा- 'हे राजन ! मैं अपनी कन्या का विवाह आपके साथ कर देता हूं लेकिन मेरी एक शर्त है कि जो बच्चा सत्यवती के पेट से जन्म लेगा वहीं युवराज बनेगा। उसको ही राजपाठ देना होगा, यदि यह शर्त स्वीकार

है तो सुबह ही कन्यादान कर देता हूं। अगर आपको यह बात मंजूर नहीं तो यहां से चले जाएं।'

उस मल्लाह की यह बात सुनकर महाराजा शांतनू का रक्त बिल्कुल ठण्डा हो गया। इसके दो कारण थे। राजा शांतनू अपने पुत्र देवव्रत जो बलशाली एवं बुद्धिमान था, से काफी प्रेम करता था। दूसरी तरफ वह देवी गंगा का भी पुत्र था जिस गंगा से उसने कभी अटूट प्रेम किया था। चिंता एवं सोचों में डूबा हुआ राजा शांतनू मायूस होकर राजभवन वापिस लौट आया। लेकिन सत्यवती का चित्र उसकी आंखों में ही छाया रहा। राजा विरह रोग से तड़पने लगा। दो-चार दिन के पश्चात वह सख्त बीमार हो गया। अपने तन मन के रोग को महाराज ने एक वजीर के आगे प्रगट कर दिया। यह भेद देवव्रत के कानों पर भी पड़ गया। देवव्रत तो सचमुच का ही देवता था। वह अपने पिता से बहुत अनुराग करता था। सारी वार्ता को सुनकर उसका रक्त गर्म हो गया। उसने अपने पिता के तन मन को लगे इस महां भयानक रोग को दूर करने का फैसला किया कि वह अपने पिता की खुशी एवं सुख के लिए उसे दुखी नहीं होने देगा। वह कई दिन इस बारे सोचता रहा और अंत में अपने महल से निकल कर देवव्रत अकेला ही उस मल्लाह तथा उसकी कन्या सत्यवती के पास पहुंचा। उसने दोनों को बुलाकर मल्लाह से कहा-'आप अपनी कन्या का विवाह मेरे पिता महाराजा शांतनू के साथ कर दीजिए। मैं प्रण करता हूं। जमीन और आसमान को साक्षी रखकर भीष्म प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं अपने पिता के स्वर्गवास के बाद राजा नहीं बनूंगा, यहीं ही नहीं आजीवन अविवाहित रहूंगा। कुंवारा रह कर दिन व्यतीत करुंगा ताकि मेरी कोई औलाद न हो। तेरी बेटी को माता समझकर इसकी सदा सेवा करुंगा। महाराज शांतनू इस समय बीमार हैं और उनके जीवन को खतरा है। मैं प्रतिज्ञा करता हूं जीवन रहने तक राजवंश की भलाई

के लिए सदा सेवा करता रहूंगा। इसलिए मेरी यह विनती स्वीकार करें।

देवव्रत की यह भीष्म प्रतिज्ञा सुनकर मल्लाह बड़ा खुश हुआ। फिर उसने अपनी कन्या सत्यवती का विवाह महाराजा शांतनू के साथ कर दिया।

सत्यवती और शांतनू का विवाह हो गया। विवाह के बाद राजा शांतनू के सारे दुख रोग दूर हो गए। वह सत्यवती के साथ प्रसन्नचित रहने लगा। खुशी के इन पलों में राजा शांतनू को पता चल गया कि उसके पुत्र देवव्रत ने अपने पिता की खातिर अपनी सारी खुशियों का बलिदान किया है। वह सारी उम्र कुंवारा ही रहेगा। यह सुनकर वह उदास भी हुआ। राजा शांतनू ने अपने पुत्र देवव्रत को सत्कार से बुलाकर कहा-'पुत्र देवव्रत ! तुमने मेरी खुशी अरोगता के लिए भीष्म प्रतिज्ञा की है। इस कारण तुम्हारा नाम भीष्म पितामह प्रसिद्ध होगा । तुम लम्बी आयु व्यतीत करोगे। मैं तुम्हें वर देता हूं कि तुम्हारी इच्छा के बिना तुम्हें मृत्यु नहीं आएगी। स्वर्ग में तुम्हारा निवास होगा।'

अपने पिता के इन वचनों पर देवव्रत ने शीश झुकाया। उस दिन से देवव्रत को सभी भीष्म पितामह कहने लग गए। जैसी भीष्म प्रतिज्ञा देवव्रत ने की थी, ऐसा कोई भी नहीं कर सकता था।

भीष्म पितामह के समय परशुराम की संसार में प्रसिद्धि बढ़ी हुई थी। भीष्म पितामह उसके पास अस्त्र-शस्त्र की विद्या लेने के लिए चला गया। वह तीन वर्ष तक परशुराम जी के पास रहा। जब अच्छी तरह सारे अस्त्र-शस्त्र चलाने सीख लिए तो भीष्म बड़ा बलशाली, वीर, सुन्दर, बढ़िया योद्धा बना। भीष्म को अस्त्र-शस्त्र की विद्या में परिपक्व देखकर उसके गुरु परशुराम ने कहा कि भीष्म काशी की राजकुमारी अम्बा से विवाह कर लो, यह मेरा वचन है।

यह सुनकर उसने उत्तर दिया 'हे गुरुदेव ! मैं विवाह नहीं कर

सकता, क्योंकि आजीवन अविवाहित रहने का मैंने प्रण किया हुआ है।' यह कह कर भीष्म ने अपने गुरु परशुराम को महाराज शांतनू तथा सत्यवती के विवाह की सारी कथा सुना दी। लेकिन अहंकारी परशुराम ने इसे अनसुना कर दिया। अंत में बड़े अहंकार से बोला, "भीष्म ! तुमने मुझे गुरु धारण किया है और गुरु की आज्ञा का पालन करना तो शिष्य के लिए अतिआवश्यक है। जाओ काशी की राजपुत्री से विवाह कर लो अन्यथा मुझसे युद्ध करो। तुम्हें उसी तरह ही मार देना चाहता हूं जैसे पहले क्षत्रियों का वध किया है। मेरे कुल्हाड़े की मार को कोई नहीं सहन कर सकता। एक बार मैं पृथ्वी से क्षत्रियों का विनाश कर चुका हूं।"

भीष्म की इच्छा नहीं थी कि वह अपने गुरु परशुराम से युद्ध करें लेकिन नियम अनुसार उसे युद्ध करना पड़ा। इधर परशुराम ने कड़वे वचन बोल-बोलकर भीष्म को भी काफी क्रोधित कर दिया। शस्त्र पकड़ कर दोनों आपस में भिड़ने लगे। परशुराम को अनेक वर मिले हुए थे। भीष्म पितामह सत्य तथा ब्रह्मचार्य का उपासक था। दोनों शूरवीर एक समान होने के कारण पृथ्वी डोल गई। चारों ओर हाहाकार मच गई कि दोनों के युद्ध का अंत शायद बुरा निकले। कहीं देवता, राक्षस और मनुष्यों का इकट्ठा युद्ध न छिड़ जाए, जो सब को नष्ट कर देगा। वे दोनों 23 दिन लड़ते रहे, जीत-हार किसी की भी नहीं हो रही थी। यह देख कर इन्द्र, नारद, विश्वामित्र अन्य ऋषियों-मुनियों को साथ लेकर रणभूमि पर पहुंचे तथा दोनों का युद्ध बंद करवा दिया। सब ने परशुराम को समझाया कि भीष्म की प्रतिज्ञा को कायम रहने दें, इसे विवाह के लिए विवश मत करो। इस के धर्म की पालना का प्रश्न है। परशुराम मान गया। दोनों अपने-अपने निवास स्थान चले गए।

शांतनू की पत्नी सत्यवती के गर्भ से दो पुत्र हुए। एक का नाम

चित्रांगद और दूसरे का नाम विचित्रवीर्य था। दोनों युवा हुए तो राजा शांतनू परलोक गमन कर गया। सत्यवती विधवा हो गई। राज-पाठ दोनों भाईयों में बंट गया। भीष्म पितामह ने कोई हस्तक्षेप न किया, एक साधू की तरह जीवन व्यतीत करते रहे। विधमाता ने सत्यवती के पुत्रों की आयु बहुत अल्प लिखी थी। सत्यवती के दोनों पुत्रों का विवाह हुआ। विवाह के कुछ दिन पश्चात ही (चित्रांगद और विचित्रवीर्य) दोनों परलोक गमन कर गए। पुत्रों की मृत्यु के सदमा से सत्यवती के मासूम हृदय को बहुत गहरा धक्का लगा। कई दिन चक्कर खा-खा कर मूर्छित होती रही। धीरे-धीरे पुत्रों की शीघ्र मृत्यु का दुःख दूर हुआ तो राज-तख्त की चिंता सताने लग गई कि राज - पाठ अब किसके सपुर्द करे ? भरत राज समाप्त हो रहा था, दो जवान वधूएं अलग ही रो रही थीं, उन्होंने अभी दुनिया का कोई सुख नहीं देखा था, इसलिए इस विपरीत समय में सत्यवती ने भीष्म पितामह को पास बुलाया और बड़ी गम्भीरता से कहने लगी-पुत्र भीष्म ! भगवान को तो पता नहीं क्या सूझा है उसने मेरे सुखों के खिले हुए चमन को बर्बाद कर दिया। मेरा कोई सहारा नहीं रहा। शायद मेरे अहंकार का ही यह फल मिला है। मैंने भूल की जो पुत्र के लिए राज मांगा। मेरे घर पुत्रों ने जन्म लिया परन्तु उनकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। प्यारे पति का राज समाप्त हो रहा है इसलिए आप कृपा करें और अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ दें। एक तो मेरी दोनों बहुओं को संभालो और पुत्रों के जोड़े पैदा करो। यह कोई अधर्म नहीं, ये तुम्हारी भाभी हैं। दूसरा राज सिंघासन पर विराजमान हो, भरत राज कुल कायम रखनी चाहिए।'

सौतेली माता के वचन सुन कर भीष्म पितामह मुस्करा दिए। मुस्करा कर बोले हे माता ! देवव्रत अपनी प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ सकता। सूर्य, चांद और तारे बेशक अपने सिद्धांतों को छोड़ जाएं पर

मैं अधर्म नहीं करुंगा। न मुझे राज की लालसा है, न भोग की। प्रभु का सिमरन करके जीवन के दिन व्यतीत करता जा रहा हूं, हृदय शांत और सुखी है।'यह उत्तर दे कर भीष्म राज महल में से निकल गया। सत्यवती ने भीष्म को बहुत समझाया कि उसकी बात मान जाए, पर भीष्म अपने धर्म पर अडिग था। धर्म की खातिर उसने जीवन के सारे सुखों का त्याग कर दिया था।

जब भीष्म ने सत्यवती का कहना न माना तो उसने ब्यास जी को विधवा रानियों के बच्चे पैदा करने के लिए कहा, जिन से पांडव (पांच पांडवों का पिता) और धृतराष्ट्र (कौरवों का पिता) पैदा हुए।

जब कौरव और पांडव कुरूक्षेत्र के मैदान में लड़ने के लिए आए तो भीष्म पितामह कौरवों की सेना के सेनापति थे। वह चाहे वृद्ध थे लेकिन दस दिनों तक भयानक युद्ध लड़ते रहे। धनुषधारी अर्जुन ने भीष्म के शरीर को युद्ध के मैदान में तीरों से भेद दिया। अधिक तीर लग जाने पर भीष्म घायल हो कर धरती पर गिर गए। जब भीष्म धरती पर गिरे तो उनका शरीर धरती से न लगा, तीरों ने उन्हें ऊपर उठा लिया। उनको धरती पर गिरते देख कर हाहाकार तथा कौरव सेना में भगदड़ मच गई। भीष्म को धरती पर गिरा देख कर अर्जुन उनके पास गया। अर्जुन को देखकर भीष्म ने कहा-पुत्र ! मेरा सिर नीचे है, यह ऊंचा रहना चाहिए, मुझे तकिए की आवश्यकता है। यह वचन सुनते ही अर्जुन ने भीष्म पितामह के सिर के पास तीन तीर चलाए। तीर दूसरी तरफ पार निकल गए, जिससे पितामह का सिर ऊंचा हो गया। तीरों की शैय्या पर घायल पड़े भीष्म को सूझवान जराही मल्हम-पट्टी करने लगे तो उसने रोक दिया। भीष्म ने वचन किया-'मेरा जीवन समाप्त हो चुका है तथा अंतिम समय निकट है। इसलिए मेरे शरीर में से तीर न निकाले जाएं तथा न कोई मल्हमपट्टी की जाए।' चार-पांच दिनों में ही उत्तरायन आने वाली है। मैं उत्तरायन

में परलोक चला जाऊंगा।' भीष्म पितामह जी के अंतिम दर्शन करने के लिए धर्मपुत्र युधिष्ठिर श्री कृष्ण जी सहित पधारे। श्री कृष्ण तथा युधिष्ठिर से वार्तालाप करने के पश्चात उत्तरायन पर चढ़ने के बाद आत्मा पंच भूतक शरीर को त्याग कर परलोक गमन कर गई। ऐसी है भीष्म पितामह की कथा।

साखी गरूड़ की

पुरातन काल में एक ऋषि कश्यप हुए हैं, वह गृहस्थी थे तथा उनकी दो पत्नियां थीं बिनता और कदरू। कदरू के गर्भ में से सांप पैदा होते थे जिनकी कोई संख्या नहीं थी, पर बिनता के कोई पुत्र पैदा नहीं होता था। वह बहुत दुखी थी। उसने अपने पति के आगे अपना दुःख प्रगट किया। कश्यप ने कहा–तुम्हारे पुत्र तभी हो सकता है, यदि यज्ञ किया जाए। बिनता ने कहा फिर यज्ञ करो। यज्ञ का प्रबन्ध किया गया। देवराज इन्द्र जैसे देवता यज्ञ में आए। उस यज्ञ के साल बाद बिनता के गर्भ से दो पुत्र पैदा हुए जो अग्नि तथा सूर्य के समान बहुत तेज़ वाले थे। एक का नाम गरूड़ तथा दूसरे का अरूण रखा गया। जब दोनों बड़े हुए तो गरूड़ को विष्णु जी ने अपना यान बना लिया, उस पर सवारी करने लगे। गरूड़ सब पक्षियों से तेज़ दौड़ता था। अरूण सूर्य का रथवान बन बैठा क्योंकि वह बहुत महाबली था, सूर्य उस पर प्रसन्न रहता था।

अरूण तथा गरूड़ के बाद बिनता के चार पुत्र पैदा हुए। जिनके नाम यह हैं–ताखया, अरिष्ट नेमि, आरूनि तथा वारूण। ये छः पुत्र बड़े सूझवान तथा बली थे, पर सांपों से इनको सदा खतरा रहता था। कदरू चाहती भी थी कि बिनता के पुत्र मार दिए जाएं, पर उसको कोई बहाना तथा समय हाथ नहीं आता था। महाभारत में कथा आती है कि बिनता तथा कदरू एक दिन किसी बात पर आपस में वाद

विवाद करने लग पड़ी कि सूर्य का घोड़ा काला है या सफेद। कदरू कहती थी काला तथा बिनता कहती थी सफेद। चालाकी से कदरू ने सफेद घोड़े को काला साबित करके बिनता को दिखा दिया। शर्त के अनुसार बिनता पुत्रों सहित सौतन की गुलाम हो कर रहने लगी। पराधीन मनुष्य तो स्वप्न में भी सुखी नहीं होता, फिर सौतन की पराधीनता तो वैसे ही बुरी होती है। बिनता बहुत दुःखी हुई। बिनता ने कदरू से पूछा कि क्या कोई मार्ग है जिससे मैं स्वतन्त्र हो सकती हूं ? कदरू ने उत्तर दिया–'यदि स्वर्ग (इन्द्र लोक) में से अमृत का घड़ा मंगवा कर मुझे दे दो तो तुम तथा तुम्हारे पुत्र भी स्वतन्त्र हो जाएंगे, क्योंकि मैं अमृत अपने पुत्र सांपों को पिला दूंगी, वह अमर हो जाएंगे, उनको कोई नहीं मार सकेगा।'

सौतन की इस मांग को बिनता ने अपने पुत्र गरूड़ के आगे प्रगट किया। बलशाली गरूड़ बोले 'हे माता ! तुम्हारे सुखों के लिए मैं जान कुर्बान करने के लिए तैयार हूं। आज ही इन्द्र लोक पहुंचता हूं तथा अमृत का घड़ा लेकर आता हूं। यह कौन–सी कठिन बात है।' माता को इस तरह धैर्य देकर गरूड़ इन्द्रलोक चला गया। अमृत के घड़े को देवता भला कैसे उठाने देते। गरूड़ तथा इन्द्र की लड़ाई हो गई। कई दिन महा भयानक युद्ध लड़ते रहे। अंत में इन्द्र हार गया तथा गरूड़ जीत गया। गरूड़ की बहादुरी को देख कर इन्द्र उस पर प्रसन्न हो गया, खुशी में कहने लगा–'कोई वर मांगना हो तो मांग लो।' उस समय गरूड़ ने यह वर मांगा, 'एक तो मैं प्रभु विष्णु जी की सेवा करता रहूं तथा दूसरा सांप मेरी खुराक हो जाएं।' गरूड़ की यह मांगें सुन कर इन्द्र ने यहीं वर दिए। वर देने के पश्चात पूछा, 'एक तरफ तुम सांपों को अमृत दे कर अमर कर रहे हो, दूसरी तरफ कहते हो वह मेरी खुराक बन जाएं, यह क्या मामला है ?' गरूड़ बोला–'मैंने अमृत दे कर माता के वचन की पालना करनी है तथा उनको उनकी सौतन से स्वतन्त्र

करवाना है। जब मेरा धर्म पूरा हो जायेगा बेशक आप घड़ा वापिस मंगवा लेना। मैंने इसका क्या करना है। हां ऐसे करो ! दूत मेरे साथ भेजो ! जब मेरी माता यह अमृत का घड़ा मेरी सौतेली माता कदरू के हवाले करे तो उस समय वह जहां उस घड़े को रखे वहां से आपके दूत उस घड़े को उठा कर भाग आएं।'

गरूड़ की इस योजना को देवराज इन्द्र मान गया। इन्द्र ने उसी समय अपने चार दूत गरूड़ के पीछे मृत्यु लोक में भेज दिए। गरूड़ अमृत का घड़ा लेकर घर पहुंचा। अपनी मां को सौंपकर खुशियां प्राप्त कीं। बिनता ने वही घड़ा जा कर कदरू को सौंप दिया तथा कदरू ने घड़ा एक स्थान पर रखकर बिनता को स्वतन्त्र कर दिया। उधर सांपों के अमृत घड़े के पास पहुंचने से पहले ही इन्द्र के दूत घड़ा उठा कर रफ्फू चक्कर हो गए। कदरू के कहने पर सांप अमृत पीने गए। उनको घड़ा न मिला, पर जिस जगह घड़ा रखा हुआ था, उस जगह को जीभों से चाटने लग गए। उनकी जीभें छिल गईं। उस दिन से सांपों की नस्ली तौर पर जीभ छिलनी शुरू हो गई।

रामायण में लिखा है कि जब श्री रामचन्द्र जी मेघनाद से युद्ध कर रहे थे तो मेघनाद ने दैवी शक्ति के बल से श्री रामचन्द्र जी को सेना सहित नागों के फन से धरती पर गिरा लिया। उस समय देवर्षि नारद तथा भगवान विष्णु ने गरूड़ को भेजा। गरूड़ ने जाकर सारे नाग खा लिए तथा श्री रामचन्द्र जी को सेना सहित मरने से बचा लिया।

हिन्दू लोग गरूड़ को भगवान का रूप भी मानते हैं। यह पक्षियों का राजा तथा विष्णु का सेवादार है। इसके दर्शन करने बहुत शुभ हैं।

देवा पंडा की प्रार्थना

देवा पाहन तारीअले ॥ राम कहत जन कस न तरे ॥ (पन्ना ३४५)

भक्त नामदेव जी कहते हैं कि यदि देवा को पत्थरों ने पार उतार

दिया था तो हे मनुष्य ! अगर तुम राम नाम का सिमरन करते हो, तो भला कैसे न पार उतरोगे ? एक पत्थर ने उसे कैसे पार किया यह सारी कथा ध्यान से सुनो। देवा एक पुजारी था उसे 'देवा पंडा' कहते थे। वह उदयपुर राज के शाही मंदिर का पुजारी था। वह मंदिर 'चतुर्भुज स्वामी' का था। देवा रोज प्रातः काल उठ कर मूर्ति स्नान करा कर आभूषण तथा वस्त्र पहना कर उसे मंदिर में विराजमान कराता। उदयपुर का राजा रोज मंदिर में आता, पूजा-पाठ कराता तथा प्रसाद भेंट करता था। राजा नियमानुसार रोज मंदिर में आया करता था, वह चतुर्भुज स्वामी की मूर्ति के दर्शन किए बिना भोजन नहीं करता था।

संयोग से एक दिन राजा समय पर मंदिर न पहुंच सका। पंडे ने यह सोचकर कि अब राजा नहीं आयेगा, देव मूर्ति के आगे रखी सारी सामग्री को समेट लिया तथा जो सुंदर फूलों की माला चतुर्भुज स्वामी के गले में डाली हुई थी, जिसको राजा के गले में डाला जाता था, उस माला को देवा पंडे ने अपने गले में डाल लिया। फूलमाला गले में डाल कर मंदिर में से बाहर निकला, अभी मंदिर का द्वार बंद कर ही रहा था कि राजा के रथ के आने की आवाज़ कानों में पड़ी। जिससे देवा पंडा घबरा गया। आ गये ! कह कर फिर पीछे को मुड़ा। मंदिर का द्वार खोला, सारी सामग्री वापिस उसी स्थान पर रखी, यदि कोई चीज़ कम-ज्यादा थी, उसको क्रमवार किया। फूलों की माला जो अपने गले में डाल रखी थी, उस को गले से उतार कर वापिस चतुर्भुज देवता के गले में डाल दिया। इतने में राजा जी अंदर आ गये। राजा जी ने आते ही श्रद्धा, भक्ति, प्रेम तथा दिल की उमंग से चतुर्भुज स्वामी जी को डंडवत हो कर माथा टेका। पूजा की सामग्री भेंट की, देवा पंडित जी ने वेद मंत्र पढ़ कर पूजा अर्चना की तथा राजा को आशीर्वाद दिया। अंत में स्वामी चतुर्भुज जी के

गले से माला उतार कर राजा जी के गले में पहना दी। उस फूलों की माला के साथ दो सफेद दाढ़ी के बाल लगे हुए थे। जैसी दाढ़ी स्वामी जी की थी। राजा को शक हुआ कि शायद यह फूल माला देवता के गले में डालने से पूर्व देवा पंडा ने स्वयं गले में डाली हैं। यह अनुभव करके राजा ने स्वाभाविक ही पूछा–पंडित जी ! क्या प्रभु बूढ़े हो गए हैं ? उनकी दाढ़ी सफेद हो गई है ?

'हां, अन्न दाता ! भगवान सदा बूढ़े रहते है।' पंडा जी का उत्तर था।

मैं तो समझता था कि भगवान पर काल का असर नहीं होता, वह सदा जवान रहते हैं, जवान नहीं, अपितु मासूम बालक की तरह उनको दाढ़ी आती ही नहीं, जैसे श्री कृष्ण जी महाराज के चित्र देखने में आते हैं। राजा को भ्रम हो गया।

'यह स्वामी चतुर्भुज जी जब प्रातः काल दर्शन देते हैं तो उस समय एक ऋषि की तरह बूढ़े के रूप में होते हैं। दूध जैसी सफेद दाढ़ी होती है। मैं रोज दर्शन करता हूं।' पंडा जी ने राजा के आगे सफेद झूठ बोला, उसको दर्शन कभी नहीं हुए थे। अपनी एक गलती पर पर्दा डालने के लिए झूठ बोलता जा रहा था। राजा समझ गया। पर उसने कहा–'अच्छा ! कल मैं दाढ़ी सहित स्वामी जी के दर्शन करना चाहता हूं। आप उनके आगे प्रार्थना करना कि वह मुझे दर्शन दें, मैं आभारी होऊंगा।'

'बहुत अच्छा जी, ऐसा ही हो जाएगा।' पंडा जी का उत्तर था।

राजा चला गया। राजा के मन में शंका व क्रोध था। वह अशांत मन से गया। मन ही मन फैसला कर लिया कि यदि सुबह स्वामी जी के दाढ़ी न हुई तो वह पंडा को सजा ए मौत दे देगा।

उधर पंडा जी विचलित हो गए वह सोचने लगे अब क्या बनेगा ? झूठ तो बोल लिया, झूठ बोलना सरल है किन्तु इस पर पर्दा डालना

महा कठिन है। एक दिन जरूर नंगा हो जाता है और सदा सच कायम रहता है। उसका हृदय कांप उठा। शरीर का रक्त जम गया। जीवन की जगह मृत्यु निकट आती दिखाई देने लगी। राजा की नग्न तथा चमकती तलवार उसकी आंखों के आगे से नहीं हटती थी।

मृत्यु की सज़ा के डर से भयभीत हो कर चतुर्भुज स्वामी की मूर्ति के आगे पालथी मार कर बैठ गया। शुद्ध हृदय से कमलपति का ध्यान कर के प्रार्थना करने लगा, 'हे प्रभु मुझ से भूल हो गई। मुझ पापी का उद्धार करो। मैंने राजा जी के आगे झूठ बोला ! आप जगत के पालनकर्ता हो जहां पहले इतने अवतार धारण किए हैं, वहां एक सफेद दाढ़ी वाले बन कर अवतार लीजिए। मैं राजा जी के सामने सच्चा हो जाऊं। गरीब ब्राह्मण की मृत्यु हो गई तो कितना बुरा होगा। प्रभु ! लोग आपकी भक्ति करना छोड़ देंगे। नास्तिकता जगत में प्रधानता प्राप्त कर लेगी। हे दयालु ! कृपालु ! दया करो ! कृपा करो, मुझे डूबते को पार उतार दें, मुझे बचा लो। चालीस साल तुम्हारी सेवा की है, चालीस सालों में पहली बार कुछ मांगा है। दिमाग घूम गया, भूल हो गई। जान-बूझ कर कोई पाप नहीं किया।'

इस तरह देवा पंडा सारी रात प्रार्थना करता रहा। उसने कुछ भी न खाया न पीया। जब अगले दिन सुबह हुई तो देखता है, सचमुच ही सफेद दाढ़ी चतुर्भुज की मूर्ति के मुख पर आ गई। सुंदर रेशम की तरह दूध जैसे सफेद बाल थे। खुशी से उछल पड़ा डंडवत हो कर कई बार प्रणाम किया। वेद मंत्रों को पढ़ कर स्तुति की, मंदिर की घंटियां बजाई, आरती की तथा भगवान के दर्शन हो गए।

सुबह-सुबह राजा आया। जब उसने आते ही लम्बी सफेद दाढ़ी देखी तो उसको शंका हुई कि ब्राह्मण ने उसके साथ चालाकी खेली है, बनावटी बाल गूंद कर या किसी अन्य चीज़ से चिपकाए हैं। शंका दूर करने के लिए राजा आगे हुआ। बाल पकड़ कर खींचे। जब दाढ़ी

के बाल खींचे तो चतुर्भुज की मूर्ति मनुष्य शरीर (रक्त मांस) में परिवर्तित हो गई। बालों के खींचने का दर्द महसूस किया। मूर्ति ने नाक चढ़ाया, राजा ने बाल और अधिक जोर से खींचे, कुछ बाल उखड़ गए। जिस जगह से बाल उखाड़े गए उस जगह से रक्त की धारा निकल कर राजा के सफेद कपड़ों पर पड़ गई। कपड़े रंगे गए। राजा शर्मिन्दा एवं भयभीत हो कर कांपकर पिछली तरफ गिर पड़ा। होश आने पर अपनी भूल माफी के लिए मिन्नतें की, अरदासें, प्रार्थनाएं करने लगा। आगे से चतुर्भुज मूर्ति ने कहा, 'हे राजन ! आज से उदयपुर का राजा मेरे दर्शन नहीं कर सकता, जितनी देर तक राजकुमार रहेगा, उतनी देर वह दर्शन को आए, राज तिलक हो जाने के बाद जो राजा बन कर दर्शन करने आयेगा वह जीवित नहीं रहेगा।' यह कहने के बाद मूर्ति के चेहरे से दाढ़ी लुप्त हो गई। जैसे पत्थर की मूर्ति पहले थी वैसे ही रह गई। इस महान घटना की तरफ ईशारा करके मनुष्य को प्रभु भक्ति करने तथा झूठ छोड़ने की प्रेरणा दी गई है।

पर सदियों से धर्म का प्रचार होने, देवताओं के चमत्कार आदि के बावजूद भी मनुष्य झूठ का त्याग नहीं करता, झूठ जीवन में अनेक मुश्किलें पैदा करता है। भाईयों, मित्रों तथा समाज में उसे नीचा होना पड़ता है। एक झूठ के कारण कई झूठ बोलने पड़ते हैं, लज्जित होना पड़ता है। सतिगुरु साहिब जी का भी हुक्म है-

कूड़ निखुटे नानका ओड़कि सचि रही ॥

जो झूठ है हवा के बादलों, आग के धुएं की तरह उड़ जाता है तथा सत्य ज्यों का त्यों कायम रहता है। जैसे सूर्य, सूर्य है उसके आगे आए बादलरयतथा धरती समय के साथ पीछे हो जाती है, पर सूर्य कायम रहता है। आज के युग में झूठ प्रधान हो रहा है। जो कलयुग की निशानी है, दुखों का घर है। इसलिए कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए। सत्य का ही सहारा लेना चाहिए।

भक्त कबीर जी

कबीरि धिआइओ एक रंग ॥

(पन्ना ११९२)

सतिगुरु जी फरमाते हैं कि भक्त कबीर जी ऐसे प्रभु प्रेमी हुए हैं, जिन्होंने एक वाहिगुरु को एक रूप में याद किया। समय के अंधेरे एवं ब्राह्मणों के जाल उस को प्रभु के नाम से दूर न कर सके।

भक्त कबीर जी भारत वर्ष में पंद्रहवी सदी के मध्य में महान भक्त हुए हैं। उनके समय लोधियों का राज था तथा उस समय धर्म की लहर चलती थी। हिन्दू समाज के पुरोहित ब्राह्मण सनातन मत अनुसार जात, पात, गोत्र, कर्मकांड, मूर्ति पूजा में व्यस्त थे। लोगों को सच्चे धर्म तथा एक ईश्वर का नाम नहीं बताते थे, बल्कि अंधेरे में रखते थे ताकि उनका अपना हलवा-पूरी अर्थात स्वार्थ चलता रहे। उनका अपना जीवन तथा बच्चों का पेट पलता रहे। उस समय मूर्ति पूजा की प्रधानता थी।

उस समय ही हजरत मुहम्मद साहिब का चलाया हुआ इस्लाम धर्म भारत में प्रवेश कर चुका था। मस्जिदें बन चुकी थीं तथा बांग दी जाती थी। क्योंकि इस्लाम भी देवी-देवताओं (मूर्तियों) के विरुद्ध था, इसलिए साधु, संत, फकीर सब भक्ति मार्ग की तरफ बढ़े थे तथा एक ईश्वर की स्तुति करते थे। जैसे कबीर जी का अपना वचन है-

कबीरै पकरी टेक राम की तुरक रहे पचिहारी ॥४॥८॥

(पन्ना ४७७)

भक्त कबीर जी की जन्म कथा

भक्त कबीर जी बाबत भाई गुरदास जी ने अपनी रचित वार में

यूं फरमाया है-

होइ बिरकत बनारसी रहिंदा रामानंद गुसाईं।
अंम्रित वेले उठि के जांदा गंगा नहावन ताईं।
अगों ही दे जाइ कै लंमा पिआ कबीर तिथाईं।
पैरीं टुंबि उठालिआ बोलहु राम सिख समझाई।
जिउं लोहा पारस छुहे चंदन वास निंम महिकाई।
पसू परेतहुं देव करि पूरे सतिगुर दी वडिआई।
अचरज नों अचरज मिलै विसमादै विसमाद मिलाई।
झणा झरदा निझरहुं गुरमुखि बाणी अघड़ घड़ाई।
राम कबीरै भेद न भाई।१५।

भाई गुरदास जी फरमाते हैं कि बनारस शहर में एक त्यागी साधू रामानंद रहता था। जो बड़ा शिरोमणि भक्त तथा ब्रह्मज्ञानी था। उसकी दिनचर्या थी कि वह अमृत समय उठकर गंगा स्नान करके प्रभु का सिमरन किया करता था। एक दिन वह अंधेरे में जा रहा था कि उसके पैर को कुछ छुआ, उसने देखा कि आगे कोई (कबीर)लेटा हुआ था। उसे पकड़कर रामानंद ने उठाया, क्योंकि रामानंद 'राम' का नाम सिमरन करता था, उसने कहा-उठो भक्त राम नाम का जाप करो। कबीर उठ कर बैठ गया तथा राम नाम का जाप करने लगा।

रामानंद के छूने से ऐसा प्रभाव हुआ कि जैसे पारस लोहे को स्वर्ण कर देता है। जैसे चंदन के पेड़ के पास नीम भी सुगंधित बन जाती है। जो उसकी पशु वृति थी वह देव वृति में बदल गई, आश्चर्य में आश्चर्य बदल गया।

विस्माद में विस्माद। दसवें द्वार मूर्त जुड़ी तो बाणी का प्रकाश हुआ राम तथा कबीर एक हो गए। ऐसे महान भक्त की जन्म कथा इस प्रकार है हे भक्त जनों। जिज्ञासुओं, राम प्यारों, वृति एकाग्रचित करके श्रवण करो।

बनारस के पास गरीब जुलाहों का बसेरा था। वह परिश्रम करके अपना जीवन निर्वाह करते थे। उन जुलाहों में एक नेक दम्पति था, जिसका नाम नीरू एवं नीमा था। नीरू तथा उसकी धर्मपत्नी कपड़ा तैयार करने का कार्य करते थे। करघा लगाया हुआ था। नीरू कपड़ा बुनता तथा नीमा ताना तना करती थी। इसी तरह जीवन निर्वाह किए जा रहे थे।

नीमा पर परमात्मा ने अपार कृपा की। अचानक ही उसकी गोद हरी-भरी हो गई तथा सम्वत 1455 विक्रमी में ज्येष्ठ की पूर्णमाशी वाले दिन कबीर जी ने जन्म लिया। नीरू ने अपनी हैसियत से बढ़ कर खुशी मनाई तथा अपने संबंधियों को दावत दी। खुशी तथा मंगल कार्यहोते रहे। अपना कर्म करते रहे।

एक दिन ऐसा आया जब सारी बिरादरी इकट्ठी करके दावत की तथा बालक का नाम 'कबीर' रख दिया। कबीर नाम बड़े चाव से रखा, जिसके भावार्थ का तो शायद पता नहीं था, भगवान ने अपने भक्त को बड़ा बनाना था, इसलिए उसका नाम भी कबीर (बड़ा) रख लिया। नाम रखा गया तथा हंसता हुआ अपने इर्द-गिर्द के लोगों को हंसाता रहा तथा धीरे-धीरे बड़ा हो गया।

भक्त का रक्षक प्रभु स्वयं है। वहीं अपने सेवकों को पालता है। उस समय ऐसा वातावरण बना हुआ था कि बनारस के आसपास के गरीब लोग सभी मुसलमान हो चुके थे। कबीर का पिता नीरू भी मुसलमान हो गया था। वह अपनी इच्छा से मुसलमान नहीं बने थे, न ही उनको इस धर्म का ज्ञान था, वह तो तलवार के खौफ से मुसलमान बने थे। उस समय तलवार के जोर पर इस्लाम धर्म का प्रचार होता था, काज़ी तथा मौलवी बड़े शक्तिशाली बना दिए गए थे। नए बने मुसलमान कभी 'खुदा' कभी 'राम' कहते। परन्तु गरीब याद परमात्मा को करते रहते। ऐसी दशा में कबीर जी बालकों के साथ खेलते हुए

बड़े होते गए। उनकी आयु आठ साल की हो गई।

कबीर जी का भक्त जाहिर होना

बुद्धिमान कहते हैं कि शूल के पैदा होते ही उसका मुंह (लोक) नुकीला होता है, जिनको प्रभु ने अपनी तरफ लगाना होता है, उसको जन्म से ही अपनी तरफ लगा लेता है। भक्त प्रहलाद, ध्रुव आदि बचपन से ही भक्ति की तरफ लग गए। युवा होने पर उनकी भक्ति का प्रकाश हुआ।

इसी तरह भक्त कबीर ने जब होश संभाली, पांच छः साल का हुआ तो अपने माता-पिता के कार्य में हाथ बंटाता हुआ, उनको हंसाता जीवन दान प्रदान करता हुआ कई अद्भुत ही चमत्कार करने लग गया। अकेला बैठ जाता, हाथ जुड़ जाते तथा आंखें बंद हो जाती थीं। वह कितनी देर बैठा रहता तो नीमा कई बार स्तब्ध होती तथा कई बार डर जाती। वह आस-पड़ौस में से पूछती-'बहनों ! मेरे कबीरे को पता नहीं क्या होता है, चुप करके बैठ जाता है।'

जिसके पास वह बात करती, वह आगे से कहती-'बहन ! किसी ज्योतिषी या फिर किसी पीर को दिखाओ, क्या पता कोई बुरा साया चिपका हो। क्योंकि इस तरह ऐसे रोगी ही बैठते हैं, बच्चा तो नहीं न बैठ सकता। कहीं रोग बढ़ न जाए।'

पड़ोसनों की बातें सुन कर नीमा नीरू को पास आ कर कहती, उसको डराती तथा वह घबराया हुआ जा कर संतों-फकीरों के आगे मिन्नतें करता। ज्योतिषियों से पूछता, वे उस को धैर्य देकर घर को भेज देते, "तुम्हारा पुत्र ! बहुत बड़ा बनेगा, चिंता न कर।"

वह घर वापिस आ जाता, इसी तरह दिन गुजरते गए। एक दिन ऐसा चमत्कार हुआ कि सभी जुलाहे डरने लग गए कि कबीर जरूर ही कोई ईश्वरीय शक्ति है, भगवान का आदमी है। घटना यह हुई

कि एक अंधी बुढ़िया थी वह चली आ रही थी तथा कबीर का ध्यान दूसरी तरफ था। वह अंधी बुढ़िया कबीर से जा टकराई। कबीर ने ध्यान किया। बच्चा था, किसी अनोखी वस्तु की तरफ देख रहा था। बुढ़िया को देख कबीर के मुखारबिंद से स्वाभाविक ही वचन हो गया–

'माई ! तुम्हें दिखाई तो देता है, फिर अंधों की तरह मुझसे क्यों टकराई ?'

मैं तो अंधी हूं पुत्र ! यदि दिखाई देता तो तुम से क्यों टकराती। यह कह कर बुढ़िया जैसे ही चलने लगी, उसने कदम उठाया और आंखें झपकी तो रोशनी बढ़ गई, धुंध की तरह अंधेरा-सा हो कर आंखें खुल गईं तथा उसको साफ दिखाई देने लग गया, उसका तन मन खुशी से उछला, उसने पीछे मुड़ कर पूछा, 'बताओ लोगो ! मैं अभी किस बालक से टकराई थी। वह तो कोई वली पीर लगता है, मैं बारह साल से अंधी थी, मेरी आंखें ठीक हो गई, मुझे सब कुछ नज़र आ गया।'

कबीर जी पास ही खड़े बुढ़िया की तरफ देख रहे थे। वह सुन कर हैरान हुए तथा कहने लगे–'क्या बात है माता जी ! आप टकराए तो मुझ से थे, क्या चोट लगी है ? मुझे क्षमा कर दीजिए, मैं जानबूझ कर यहां नहीं खड़ा था, आप टकरा गए।'

कबीर जी मासूम बालक थे। उनको परमात्मा की दया–दृष्टि का ज्ञान अभी नहीं हुआ था। वह तो स्वयं को कबीर नीरू का पुत्र ही समझते थे। पर बुढ़िया ने मासूम बाल रूप भक्त कबीर जी के चरण पकड़ लिये। चरणों की धूल ले कर माथे तथा आंखों पर लगाई तो उसकी आंखों की सारी कमजोरियां जाती रहीं। उसने बालक रूप कबीर को उठा लिया। 'वली ! बड़े पीर...मेरी आंखें मुझको मिल गई, केवल यही बोलती गई।

लोग एकत्रित हो गए। कबीर की माता नीमा भी आ पहुंची। उसने आकर बुढ़िया की बगल से अपना कबीर उठा लिया। बुढ़िया ने सब को अपनी आंखों की कहानी सुनाई तो सुनने वाले बड़े हैरान हुए तथा बालक के प्रति श्रद्धा रखने लगे। उस दिन के बाद कोई भी कबीर को बुरा भला न कहता। सब उससे डरने लग गए। कई माताएं अपने घर में खड़े हो कर सेवा करने लगीं तथा अपने बीमार बच्चों के माथे कबीर की चरण धूल लगा कर निरोग करने लगीं। कबीर जी भक्त प्रगट हो गए, पर नीरू तथा नीमा को इतना ज्ञान न हुआ फिर भी वह कबीर को पुत्र होने के कारण बहुत प्यार करते थे।

कबीर जी का बाणी उच्चारणा

कबीर जी के जीवन की अनेक साखियां है, सभी का ब्यान करना कठिन है। कबीर जी बड़े प्रतापी भक्त थे। जब आठ साल के हुए तो नीरू को बिरादरी ने कहा, 'हम मुसलमान हैं। इस्लाम धर्म के अनुसार कबीरे की सुन्नत कर दो। इससे पांच से चार भाई तुम्हारे घर आएंगे। उनको खाना खिला देना, साथ ही तुम्हारा यश होगा। अब अल्लाह की कृपा से तुम्हारा पुत्र जवान होने लगा है।'

बिरादरी के भाईयों की यह बात सुन कर नीरू के मन में भी ख्याल आ गया तथा उस ने अपनी पत्नी से सलाह करके यह पक्का फैसला कर लिया कि वह कबीर की सुन्नत करके जरूर इस्लाम की मर्यादा को पूरा करेंगे तथा भाईयों को खाना खिलाएंगे। उन्होंने जमा की हुई पूंजी सारी पुत्र की खुशी पर वार देनी उचित समझी तथा भाग-दौड़ करके प्रबन्ध करने लगे, जब सारे प्रबन्ध हो गए तो उन्होंने मौलवी को बुलाया। मौलवी आ बैठा और लगा समझाने, गुण बताने लगा कि इस्लाम धर्म अनुसार ऐसा करना पड़ता है। मेल एकत्रित हो गया, देगें चढ़ गई, चावल उबाले जाने लगे। सब ने नए-नए वस्त्र पहने।

कबीर को भी नए वस्त्र पहनाए गए।

लेकिन कबीर चुपचाप सारा तमाशा देखता रहा। उसने अपने प्रभु परमात्मा की तरफ ध्यान किया तो परमात्मा ने अपनी शक्ति से कबीर जी की जुबान से मौलवी को समझाने के लिए ज्ञान उपदेश किया। एक महर्षि की तरह आठ साल के बालक कबीर ने बाणी उच्चारण की, जिस में प्रभु परमात्मा की शक्ति तथा मानव एकता प्रगट थी आप ने वचन किया :–

हिन्दू तुरक कहा ते आऐ किनि ऐह राह चलाई ॥
दिल महि सोचि बिचारि कवादे भिसत दोजक किनि पाई ॥१॥
काजी तै कवन कतेब बखानी ॥ पड़त गुनत ऐसे सभ मारे किनहूं खबरि न जानी ॥१॥ रहाउ ॥
सकति सनेहु करि सुंनति करीऐ मै न बदउगा भाई ॥
जउ रे खुदाई मोहि तुरकु करैगा आपन ही कटि जाई ॥२॥
सुंनति कीऐ तुरकु जे होइगा अउरत का किआ करीऐ ॥
अरध सरीरी नारि न छोडै ता ते हिन्दू ही रहीऐ ॥३॥
छाडि कतेब रामु भजु बउरे जुलम करत है भारी ॥
कबीरै पकरी टेक राम की तुरक रहे पचिहारी ॥४॥८॥

(आसा कबीर जी, पन्ना ४७७)

भक्त कबीर जी ने मौलवी या काज़ी को सम्बोधन करके फ़रमाया 'हे काजी ! आम तौर पर तुम अंधेरे में जा रहे हो। यह कभी ख्याल किया है कि हिन्दू या तुर्क (मुसलमान) पहले कहां से आए ? भाव कि हज़रत मुहम्मद साहिब तो छठी सदी में हुए, ईसा जी पहली सदी में तथा इसी तरह शेष धर्म बने। पर इंसान तो लाखों सालों से अस्तित्व में आया हुआ है। किस ने पहले मत चलाया ? कौन नरक को जाता है तथा कौन स्वर्ग को ? हे काज़ी ! यदि परमात्मा को मंजूर होता कि मैं मुसलमान होता तो पहले ही सुन्नत हो जाती, आपकी बात

मानें कि सुन्नत करने से मुसलमान हो जाते हैं तो स्त्री अर्द्ध-शरीर अर्थात् जीवन का आधा हिस्सा है, यदि आधे हिस्से ने ऐसे ही रहना है तो क्यों न हिन्दू रहें। हे काजी ! अच्छा तभी है, शराह के झमेले में न पड़ो तथा भजन करो। कबीर ने तो राम का सहारा लिया है। अन्य कोई सहारा उसको नहीं चाहिए, भजन ही कल्याण का साधन है।

आठ साल के बच्चे की यह बात सुन कर काजी के तो पैर उखड़ गए। वह बिटर-बिटर देखने लगा, पर अहंकार एवं हठधर्मी का पर्दा आंखों पर होने के कारण वह ईलाही भेद को न जान सका। वह क्रोध से बोला, 'किसी ब्राह्मण ने कबीर को बिगाड़ दिया है। इसे जरूर हिन्दू बनाने के लिए शिक्षा दी है। सुना है, यह बैठता भी हिन्दू साधुयों के पास है, काफिर...।'

ऐसा बोल कर कबीर को बाजू से पकड़ लिया। अपने निकट किया और कहा, 'सुन्नत करवानी पड़ेगी।' इस्लाम की शराह का उसूल है।

बालक कबीर मुस्कराया, पर मुंह से न बोला। लोगों में चर्चा हो गई, सभी एक-दूसरे की तरफ देखने लगे, उधर पुलाव जर्दा तैयार हो रहा था, उनकी महक आ रही थी तथा खाने वालों की भूखें बढ़ रही थीं। नीरू को भी कहते-'बच्चे को क्या सिखाया है यह हिन्दू बालकों के संग खेलता रहा, तुमने रोका नहीं।

'हे भाईयो ! मैं तो रोकता रहा, पर यह बालक कोई भगवान का प्रेमी है, जो मुझ गरीब के घर आया। वास्तव में ऐसा होता है कि कई बार मैं बात नहीं समझता। वह तो बोलता ही अद्‌भुत और बातें भी अद्‌भुत ही करता है। कई बार ऐसी बातें करता है, जो कि सत्य हो जाती है। मैं क्या करूं, क्रोधित भी नहीं होता।

बिरादरी के मुखियों ने आगे हो कर काज़ी को कहा 'देखो मियां जी ! जबरदस्ती पकड़ कर इसकी सुन्नत कर दो, आम बच्चे रोते

बिलखते ही तो सुन्नत कराते हैं, बच्चों की तरफ नहीं देखना चाहिए, चिंता मत करो।'

काज़ी ने बात सुनी, गुस्सा उसे भी था, क्योंकि उस समय इस्लाम राज धर्म था। बादशाह का हुक्म चलता था, गरीब की कोई नहीं सुनता था। काज़ी जरा आगे हुआ, उसने कबीर जी की बाजू पकड़ी तथा फिर से डांट कर कहा-'सुन्नत करनी ही पड़ेगी।'

भक्तों की लाज सदा भगवान रखता आया है। भगवान ने ऐसी माया रची, जिस को देख कर सभी लोग कबीर को भगवान-भक्त मान गए।

भगवान की माया यह थी कि उस ने स्वयं प्रगट हो कर कबीर को गंगा किनारे भेज दिया तथा उसकी छाया वहीं रहने दी। काज़ी क्रोध से लाल-पीला होता रहा तथा कबीर की छाया मुस्कराती रही। काज़ी यह सोचता रहा कि मासूम कबीर उसका मजाक उड़ा रहा था। वास्तव में कबीर उस समय गंगा के किनारे जा कर खेलने लग पड़ा था और 'राम' की मस्ती में मस्त था। काज़ी बड़े क्रोध से जब कबीर को थप्पड़ मारने लगा तो उस का हाथ खाली गया वहां कोई नहीं था छाया लुप्त हो गई।

काज़ी ने आंखें मली उसने देखा तो पता लगा कबीर वहां नहीं था, पर दूसरे लोगों को छाया दिखती रही। ऐसी माया हुई कि काज़ी को कोई दिखाई न दे, पर सारी बिरादरी को दिखाई दे। काज़ी ने शोर मचा दिया तथा कहने लगा 'पकड़ो ! कबीर कहां भाग गया। बड़ा शरारती बालक है।'

यह सुन कर सभी लोग हंस पड़े, उनमें से एक ने ऊंची आवाज़ में कहा-'वाह काज़ी जी ! कबीर तो आपके पास खड़ा है, चिंता क्यों करते हो ?'

'काज़ी साहिब अंधे तो नहीं हो गए ?' दूसरा बोला

'नहीं पागल हो गया !' तीसरा बोला

'नया काज़ी बुलाओ।' चौथी आवाज़ थी।

ऐसी कई तरह की आवाज़ें आईं। हे भक्त जनो ! भक्त की लाज रखने के लिए प्रभु ने माया रची। सभी जुलाहे काज़ी के विरुद्ध हो गए तथा शोर मच गया। उधर से आंधी आ गई, काज़ी साहिब अपने रास्ते चल दिए तथा लोग खाने वाली चीज़ें संभालने लगे। असली कबीर आ गया। उसके हाथ में एक लकड़ी की लाठी थी। कबीर राम का प्यारा 'राम धुन' गाता आ रहा था।

कबीर जी का बीमार होना

अगले दिन कबीर चारपाई पर लेट गया। वह लेटे हुए पांच-सात मिनटों के बाद बोल पड़ता, 'हे मेरे राम जी'। नीमा ने देखा उसका बालक कबीरा बीमार हो गया है। वह वैद्य जी को बुला कर लाई। वैद्य ब्राह्मण था, उसने कबीर की नब्ज़ न देखी क्योंकि हाथ लगाने से वह अपवित्र हो जाता था, उसका हिन्दू धर्म भ्रष्ट होता था। वह कुछ अंधविश्वासी था।

नीमा के बुलाने पर वैद्य आ गया। आने के दो कारण थे एक तो पैसे मिलने का लालच तथा दूसरा हकूमत का डर था। क्योंकि नवाब ने हिन्दू वैद्यों को हुक्म दिया हुआ था कि मुसलमानों के बुलाने पर उनके घर जा कर बीमार को देखें तथा ईलाज करें। इसलिए चारपाई के निकट हो कर वैद्य ने कबीर को देखा। उसका चेहरा देख कर, बातें सुन कर वैद्य ने नतीजा निकाला कि कबीर को कोई शारीरिक रोग नहीं है, हां वह मानसिक रोगी अवश्य था। वैद्य जी बोले कि कबीर को कोई रोग नहीं है, कहीं रात भर जागता होगा तथा इसको आराम से सोने दीजिए। यह सो कर उठेगा तो ठीक हो जाएगा।

कबीर बोला-'मैं रोगी नहीं हूं वैद्य जी ! मेरी नब्ज तो देखो, मेरा

दिल धड़क रहा है। ऐसे लगता है, कोई मुझे कुछ कह रहा है, समझ में नहीं आता वैद्य जी ! आप जरा देखो तो।'

वैद्य भ्रम में पड़ गया, कहने पर नब्ज न देखे तो हकूमत का डर, यदि नब्ज देखे तो वस्त्रों सहित स्नान करना पड़ना था, डर के मारे ने कबीर की नब्ज देखनी शुरू कर दी। दस मिनट दाई-बाई नाड़ी को टटोलता रहा पर किसी रोग का उसे पता न लगा। वैद्य ने माथे पर बल डाल कर नीमा को कहा, "व्यर्थ ही मेरी तरफ भागी आई। तुम्हारे लड़के को कोई रोग नहीं, यह तो अच्छा-भला है। मैं इसे क्या दवा दूं, यूं ही तंग किया जा रहा है।

नीमा हाथ जोड़ कर घबराई हुई कहने लगी-जी ! कल से कुछ खाता-पीता नहीं है, चारपाई से उठ कर चलता-फिरता नहीं। यदि मेरे कबीर को कोई दुःख न हो तो यह खेले, ऐसे क्यों सोया रहे।

'भोली नीमा ! वैद्य बोला, मैं झूठ नहीं बोलता तेरे कबीर को कोई रोग नहीं, यह बिल्कुल राजी खुशी है, चिंता न करो।'

नीमा ने तो अभी कोई उत्तर न दिया, पर कबीर जी स्वयं बोल पड़े :-

कत नही ठउर मूलु कत लावउ ॥
खोजत तन महि ठउर न पावउ ॥१॥
लागी होइ सु जानै पीर ॥
राम भगति अनीआले तीर ॥१॥ रहाउ ॥
एक भाई देखउ सभ नारी ॥
किआ जानउ सह कउन पिआरी ॥२॥
कहु कबीर जा कै मसतकि भागु ॥
सभ परहरि ता कउ मिलै सुहागु ॥३॥२१॥

(पन्ना ४२७)

कबीर जी उत्तर देते हैं, वैद्य जी ! यदि आप को कोई दुःख हो

तो आप दूसरे का भी दुःख ढूंढ लो। वास्तव में जिसे पीड़ा हो वहीं जानता है। दूसरों के दुःख को कौन समझता है। सुनो वैद्य ! मुझे राम भक्ति के नुकीले तीर (घुमावदार कुण्डियों वाले जो खींचने से तन को छेदते हैं) लगे हैं। मेरे शरीर का रोम-रोम बिंधा हुआ है। मैं तो उसके प्यार में पागल हूं।

जैसे किसी राजा की बहुत सारी सुंदर रानियां होती है, किसी रानी को यह नहीं पता होता कि राजा किस से अधिक प्यार करता है, क्योंकि सब को यहीं प्रतीत होता है कि वह एक दृष्टि से सब को प्यार करता है। वैसे ही मैं सोचता हूं कि इस सृष्टि पर बसने वाले पुरुष, पशु, पक्षी, कीड़े-मकौड़े सब उस परमात्मा की रचना है, क्या पता वह किस से प्यार करता है, पर आशा सब को है।

यह तो कर्मों की बात है यदि शुरू से ही माथे में विधाता ने प्रशंसा लिखी है तो जरूर प्रशंसा प्राप्त होगी। वह भी यदि पूर्व जन्म में कोई नेक काम किया है तो, जैसे सब रानियों में से आखिर एक भाग्यशाली रानी को पटरानी बनाया जाता है तथा उसके पुत्र को युवराज बनाया जाता है। जो राजा की मृत्यु के पश्चात राज का अधिकारी होता है। इसलिए वैद्य जी राम नाम के बाणों ने मुझे घायल किया है, 'यदि कोई पुड़िया है तो मुझे दें।'

माया से प्यार करने वाला वैद्य, आत्मिक ज्ञान से शून्य पंडित, छोटी आयु के बालक के मुंह से बहुमूल्य ज्ञान के वचन सुन कर केवल हैरान ही न हुआ, बल्कि उसके हाथ जुड़ गए। उसने कबीर को प्रणाम किया। मुंह से कहा-'हे बालक ! तुम कोई साधारण बालक नहीं, ईश्वर भक्त हो, मैं तुम्हारा ईलाज नहीं कर सकता। जगत के दुखियों का ईलाज किया करोगे, तुम धर्मी अवतार हो।'

यह कह कर वैद्य नीरू-नीमा के घर से चला गया, पर मन में कबीर के लिए श्रद्धा भाव जरूर पैदा हो गया। वह राम के सहारे

रहता था, राम का प्यारा कबीर।

कबीर जी का गुरु धारण करना

उस समय गुरु धारण करने की रीति थी, क्योंकि गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता। गुरु का शाब्दिक अर्थ है, अंधेरे में रोशनी देने वाला। जैसे विद्या गुरु अक्षर बताता है और आत्मिक गुरु आत्मा-परमात्मा का ज्ञान करवाता है। गुरुबाणी में 'गुरु' की बहुत महानता बताई गई है। आम कहावत भी है कि गुरु के बिना गति नहीं।

कहते हैं कि कबीर एक दिन भजन कीर्तन करता हुआ, एक महापुरुष के पास जा विराजा। उससे वार्तालाप करता रहा, वार्ता करते समय उस महापुरुष ने पूछा-'हे कबीर ! आपका गुरु कौन है ?'

'गुरु महाराज, मैंने अभी किसी को भी अपना गुरु नहीं बनाया। मैं तो राम नाम का सुमिरन करता हूं। साधू संत, फकीर आदि के दर्शन करके गुण प्राप्त करता हूं। नाम सुनता तथा यश करता हूं।' कबीर ने उत्तर दिया।

उस समय कबीर 22-23 वर्ष का युवक तथा विवाहित था। आपकी धर्मपत्नी का नाम 'लोई' था जिसे आम तौर पर 'माई लोई' कहा जाता है। लोग अनेक चमत्कार देख चुके थे तथा काफी आदर-सत्कार किया करते थे। लोई भी ध्यान देने लग गई कि उसके पति कुछ सूझवान हैं। लेकिन सत्य ही कबीर ने गुरु धारण नहीं किया था। शायद उन्हें कोई गुरु मिला नहीं था। कबीर जी निम्न जाति से थे। उस समय जात-पात का बोलबाला था। गुरु उच्च जाति से थे।

'हे भाई कबीरा ! गुरु धारण करो ! निगुरा रहना उचित नहीं। यह कह कर महापुरुष अपने मार्ग की तरफ चला गया। लेकिन कबीर जी चिंता में डूब गए कि वह किसे अपना गुरु बनाए ? गुरु भी तो कोई अच्छा परमेश्वर का भक्त ही होना चाहिए। इसलिए यह सोचता

हुआ वह घर आ गया तथा उसका मन करघे पर न लगा। कार्य करता हुआ मन ही मन में गुरु की तलाश करने लगा।

काशी भारत का प्राचीन धार्मिक शहर है। वेदकाल से यहां धर्म प्रचार होता रहा। गुरु बहुत थे लेकिन सबसे अधिक भक्ति भाव के शिष्य रामानंद जी के थे। वह माने हुए बुजुर्ग भक्ति भाव वाले तथा स्वभाव के बड़े दयालु थे। उनकी महिमा बहुत ज्यादा थी।

राम भक्त कबीर ने मन ही मन में फैसला कर लिया कि वह रामानंद जी को ही अपना गुरु धारण करेगा। लेकिन रामानंद जी मानेंगे कैसे ? कबीर जी कई दिन यत्न करते रहे कि रामानंद जी के दर्शन प्राप्त हो। लेकिन कोई अवसर नहीं बन रहा था। उनको कोई निकट नहीं जाने देता था। एक दिन कबीर ने एक अनोखी ही योजना सोची, जिसे भाई गुरदास जी ने भी अपनी वारों में अंकित किया है। उसने सोचा कि रामानंद जी स्नान करने के लिए गंगा के 'मणीकर्ण घाट' पर जाया करते हैं। कबीर जी सुबह शीघ्र ही जागे और उस घाट के पास सीढ़ियों पर लेट गए।

कबीर जी घाट पर सीढ़ियों के ऊपर लेटे हुए इंतजार करने लगे। उन्होंने पैरों की ध्वनि सुनी तथा सावधान हो गए। ज्यों ही रामानंद जी ने पैर रखा तो पैर कबीर जी के बदन को लगा और उन्होंने रामानंद जी के चरण स्पर्श प्राप्त कर लिए। अभी कुछ बोले नहीं थे कि रामानंद ने वचन कर दिया-

...उठो भाई ! राम कहो, सोने का अब समय नहीं। इस समय सोना ठीक नहीं-कहो राम।' राम के राम कह।

'राम राम राम राम' कहते हुए कबीर जी उठ गए तथा मार्ग से हट गए। रामानंद गंगा स्नान करने के लिए आगे बढ़े तथा गंगा स्नान करने लग गए। भक्त कबीर जी एक पैर खड़े हुए 'राम, राम' का सिमरन करते रहे। रामानंद जी जब गंगा स्नान करके वापिस लौटे

तो कबीर जी ने मुड़कर रामानंद जी को नमस्कार की और अपने मार्ग चले गए।

उस दिन से कबीर जी अपना गुरु रामानंद जी बताने लगे। समय कुछ ऐसा था कि धर्म के नाम पाखंड का बड़ा जोर-शोर था। मुसलमान काजी तथा ब्राह्मण दोनों ही धर्म के नाम पर लोगों से छल करते रहते थे। उनके साथ कबीर जी की सत्य पर चर्चा शुरू हो जाती तो कबीर जी चर्चा में सबको नीचा कर देते और अपना कामकाज भी करते रहते।

धीरे-धीरे कबीर जी भक्ति की तरफ बढ़े तथा उन्होंने भगवा भेष धारण कर लिया तो काफी चर्चा चल पड़ी। जात पात के अभिमानियों ने कबीर जी से उनके गुरु के बारे पूछा तो उन्होंने बड़ी दिलेरी से कहा-मेरे गुरु रामानंद जी हैं।'

इस तरह सारी काशी में कबीर जी तथा श्री रामानंद जी के शिष्य गुरु होने का शोर मच गया। कई रामानंद जी से पूछने लगे-कबीर जुलाहा आपका कैसे शिष्य है ? रामानंद जी यह सुनकर चुप ही रहा करते थे।

रामानंद जी के पास कबीर जी का उपस्थित होना

प्रत्येक स्त्री-पुरुष का स्वभाव है कि जो भी किसी से चर्चा करता हुआ हार जाए तो फिर वह ईर्ष्या बहुत करता है। कबीर जी पैर-पैर पर ब्राह्मणों, संतों तथा काजियों को खरी-खरी बातें कहने लगे तो उनको कोई और बात तो सूझी नहीं, निगुरा कह-कह कर बदनाम करने लगे। उन्होंने रामानंद जी से पूछा, 'क्या कबीर जुलाहा आपका शिष्य है ?'

रामानंद जी ने हंस कर कहा, 'मेरे शिष्यों में तो कोई नहीं है, बाकी मालूम नहीं अगर कोई हो या मन ही मन में हमें गुरु मान लिया हो।

'उनको बुला कर पूछें, वह आपका नाम बदनाम कर रहा है।' ब्राह्मणों का उत्तर था।

श्री रामानंद जी ने अपने शिष्य को बुला कर कबीर जी के पास भेजा और संदेश दिया कि 'कबीर जी यहां पधारे।'

कबीर जी पहले ही मन में रामानंद जी को अपना गुरु मान चुके थे। संदेश सुनते ही वह उठ गए तथा रामानंद जी के पास आकर उन्हें प्रणाम किया।

'मेरे भाग्य अच्छे हैं जो गुरु जी ने स्वयं मुझे याद किया है। मैं बलिहारी जाता हूं।' यह कहकर कबीर जी ने श्री रामानंद जी के आश्रम की मिट्टी लेकर सिर माथे पर लगाई। 'सद्‌पुरुषों के चरणों की धूल जन्म-जन्म के रोग दूर करती है।'

'हे कबीर ! ये ब्राह्मण कहते हैं कि आपने हमें अपना गुरु बनाया हुआ है ?' श्री रामानंद जी ने पूछा।

जी, हां ! इसमें कोई संदेह नहीं, आप ही मेरे गुरु हैं। मैं आपका शिष्य हूं। मैं भी यहीं कहता हूं। यह उत्तम कुल ब्राह्मण भला कैसे झूठ बोल सकते हैं ? महाराज मुझे क्षमा करें।'

श्री रामानंद जी-'क्या करते हो ?'

कबीर-कहत कबीर अवर नही कामा ।।
हमरै मन धन राम को नामा ।।४।।४।।

(पन्ना ६९२)

श्री रामानंद-'लेकिन मेरे शिष्य कैसे बने ? न मैंने दीक्षा दी। न कभी मिले।'

कबीर-यह भी सत्य है, आपने मुझे दीक्षा नहीं दी और न ही शिष्यों में बैठाया लेकिन आप मेरे गुरु अवश्य हैं। आपकी कृपा से मुझे राम ने अपने चरणों में डाला है। आप ने कहा था :-

उठो भाई कहो 'राम !' मेरी आत्मा ने आवाज़ दी थी-

किआ मांगउ किछु थिरु नाही ॥ राम नाम रखु मन माही ॥

(पन्ना ६१२)

श्री रामानंद–पर यह क्या रहस्य है, कुछ पता तो लगे। यह तो ठीक है कि आप प्रभु के प्यारे हो। प्रभु से आपका लगाव है। राम नाम का सिमरन करते हो ? ज्ञानी पुरुष हो पर मुझे आप गुरु कैसे मानते हो।

कबीर–'हे गुरुदेव, यह वार्ता इस प्रकार है, आप सुनो मैं बताता हूं, आप ने बाद में न्याय के अनुसार फैसला करना है।

श्री रामानंद–'हां भाई कहो, सारी बात खुल कर बताओ ताकि कुछ पता चले। देखो पंडित लोग कैसे क्रोध में हैं।

कबीर–'हे गुरुदेव ! एक पुरुष ने मुझे कहा है कि गुरु धारण करना चाहिए, गुरु के बिना गति नहीं होती। मैं गुरु की तलाश में घूमा, पर जाति से जुलाहा होने के कारण कोई ऊंची जाति वाला मुझे शिष्य बनाने को तैयार नहीं था। आखिर प्रभु की कृपा से मन में विचार आया कि आप को गुरु धारण किया जाए। मैं गंगा के घाट पर सीढ़ियों पर जा लेटा। आपके चरणों का स्पर्श प्राप्त किया तो आप ने कहा था, कहो राम के राम कहो ! मैंने राम कहा।

कबीर जी के मुख से सत्य सुन कर श्री रामानंद जी गुसाईं सोचने लगे। उनकी आत्मा ने प्रेरणा की, मुंह से निकला–ठीक है आप मेरे शिष्य हो।' उन्होंने पंडितों को सम्बोधन करके कहा, हे पंडित जनो ! कबीर जुलाहा नहीं कबीर राम प्यारा है, हमारा शिष्य है। ठीक कहता है। राम का नाम जपने वाला उत्तम पुरुष होता है। जाति भेदभाव फिजूल हैं, सारे जीवों की रचना ईश्वर ने की है।

श्री रामानंद पंडित जी गुसाईं का यह फैसला सुन कर कांशी के पंडित हक्के-बक्के हुए। उनको कोई बात न सूझी तो व्यर्थ की चर्चा करने लग पड़े तब कबीर जी ने श्री रामानंद जी के सम्मुख हो कर

उच्चारण किया–

जब लगु जोति काइआ महि बरतै आपा पसू न बूझै ॥
लालच करै जीवन पद कारन लोचन कछू न सूझै ॥२॥
कहत कबीर सुनहु रे प्रानी छोडहु मन के भरमा ॥
केवल नामु जपहु रे प्रानी परहु एक की सरनां ॥३॥२॥
जो जनु भाउ भगति कछु जानै ता कउ अचरजु काहो ॥
जिउ जलु जल महि पैसि न निकसै तिउ ढुरि मिलिओ जुलाहो ॥१॥

(धनासरी कबीर जी, पन्ना ६९२)

पिछली दो तुकों का भावार्थ है–हे पंडित ! आप तो महां विद्वान और पंडित हो, पर जो थोड़ी बहुत भी प्रभु भक्ति को जानता है, उसके लिए यह बात समझना कोई कठिन नहीं है कि प्रेम भक्ति ऐसी है, जो कि एक वस्तु को दूसरी वस्तु से मिला देती है। जैसे जल में जल मिल कर एक रूप हो जाता है, वैसे राम प्यारे से मिल कर जुलाहा भी अपने आप को भूल गया है। अहं का त्याग हो गया है। राम के बिना कुछ नहीं सूझता। कानों में आवाज़ गूंजती है।

राम सिमरि राम सिमरि राम सिमरि भाई ॥
राम नाम सिमरन बिनु बूडते अधिकाई ॥

(पन्ना ६९२)

ऐसे वचन सुन कर पंडित लज्जित हो कर श्री रामानंद जी के आश्रम में से चलते बने। उनको कोई बात न सूझी। वह झूठे और पाखंडी थे, सत्य के आगे टिक न सके। अपने गुरु की खुशी प्राप्त करके भक्त कबीर जी ने यह भी कह दिया था–

पंडीआ कवन कुमति तुम लागे ॥
बूडहुगे परवार सकल सिउ राम न जपहु अभागे ॥ रहाउ ॥

(मारू कबीर जी, पन्ना ११०२)

महांदानी कबीर जी

चारि पदारथ असट महा सिधि कामधेनु पारजात हरि हरि रुखु ।।
नानक सरनि गही सुख सागर जनम मरन फिरि गरभ न धुखु ।।

(टोडी महला ५, पन्ना ७१७)

सतिगुरु पंचम पातशाह जी फरमाते हैं कि जगत के जीव चार पदार्थों, आठ रिद्धियों-सिद्धियों, कामधेनु गाय, स्वर्ग के पारजात वृक्ष की लालसा करते हैं क्योंकि ये पदार्थ उत्तम गिने गये हैं। पर सतिगुरु जी कहते हैं कि जिन्होंने हरि का नाम जपा, उनको पदार्थों में से कमी न आई तथा साथ ही जन्म मरण भी कट गया, जो भक्ति की तरफ लगते है, माया के पदार्थ उनके आगे पीछे घूमते-फिरते हैं।

नामदेव जी ने तो नाम की इतनी स्तुति की है कि पतित भी पवित्र हो जाते हैं-

कउन को कलंकु रहिओ राम नामु लेत ही ।।
पतित पवित भए रामु कहत ही ।।१।। रहाउ ।।

(पन्ना ७१८)

इस प्रकार राम नाम जपने वालों का ऐसा ही यश होता है। भक्त कबीर जी का यश भी सारी कांशी में होने लगा। यहां तक कि अनेकों जरूरतमंद पुरुष भी उनके पास जाते तो कुछ न कुछ प्राप्त कर आते। आप महांदानी भी बन जाया करते थे। साधू-संत आते तो उनको भोजन खिलाते। कभी-कभी मन की मौज आती तो साधुओं को वस्त्र भी दान कर देते। राजा हरीशचन्द्र की तरह उन्होंने परोपकार करना तथा प्रत्येक वस्तु को प्रभु की वस्तु समझना ही अपना धर्म बना लिया था। कई पंडित कई बार कबीर जी की परीक्षा लेने आ जाया करते थे। पर पारब्रह्म की कृपा से उनको कोई कमी नहीं आती थी।

कबीर जी कर्म करते थे। कपड़ा बुनते तथा फिर उसको बाजार

में ले जाते। वहां कपड़े के बदले चीजें बदला कर ले आते। एक बार कपड़ा ले कर बाजार गए। उस समय शायद परमात्मा ने अपने भक्त की परीक्षा लेनी थी। एक साधू कबीर जी के आगे बाजार में जा खड़ा किया। वह साधू बड़ा गरीब था। उसकी शक्ल सूरत मृत मुर्दे के समान थी, उसने बड़ी दीनता से कहा–हे भाई ! मुझे तन ढंकने के लिए वस्त्र चाहिए।

कबीर भक्त ने उसकी तरफ देखा। वह ठण्ड से थर–थर कांप रहा था। मन में दया आई। कहने लगे–'कौन–सा वस्त्र चाहिए ?'

साधू–'भक्त ! सारे वस्त्र, धोती, कमीज, चादर आदि।

कबीर–'ये सारा थान ले जाओ।'

साधू–'ऐसा करो तो और क्या चाहिए। भगवान ! तुम्हारे पर्दे ढंकेगा, मैं कितनी देर से नग्न फिर रहा हूं।

कबीर 'राम ने जो दिया है सो ले जाओ। राम का दिया ही प्रयोग करते हैं तथा जरूरतमंदों को दे देते हैं। राम ही सब का दाता है।'

कबीर ने सारा थान साधू के हवाले कर दिया तथा स्वयं बाजार की तरफ चले गए। घर के लिए आटा, घी तथा गुड़ ले कर जाना था। चिंता करने लगे कि क्या करें ? किस वस्तु से चीजें खरीदें। पैसे पास नहीं थे। अच्छा ! जैसे राम की इच्छा, कह कर अपने घर की तरफ खाली हाथ चल पड़े। मन में 'राम–नाम' जपते गए।

कबीर जी जब घर पहुंचे तो उनकी माता ने कहा–'पुत्र ! तुमने कपड़ा तो थोड़ा–सा बुना था, पर चीजें बहुत ले कर घर भेज दी। आटा, गुड़ तथा घी तो दो महीने तक खत्म नहीं होगा...कितना मुनाफा कमाया ?'

अपनी मां के मुंह से यह सुन कर कबीर जी हैरान हुए। वह समझे कि उन्हें घर आने में देर हो गई है इसलिए मां गुस्से से कह रही है। अन्य कोई बात नहीं। वह बिना कुछ बोले चुपचाप ही अन्दर

चले गए तो घर में सचमुच ही आटा, घी और गुड़ देख कर हैरान हुए। उस समय उनको सुदामा तथा श्री कृष्ण जी की साखी याद आई। राजा बली तथा गरीब ब्राह्मण बावन की कथा का ख्याल करके मन ही मन प्रसन्न हो गए, 'हे राम ! अपनी लीलाओं को तुम ही जानते हो।' कहकर राम का यश करने लग गए।

कबीर जी का साधुओं को भोजन करवाना

कबीर जी अब ऐसी दशा में पहुंच गये जबकि नाम सिमरन तथा साधू संतों की संगत के बिना अन्य किसी काम-धंधे को हाथ न लगाते। उन्होंने भगवा भेष धारण कर लिया। गले में माला डाल ली तथा खड़ताले ले कर भजन गाने लगे। आप जी के जीवन का यहीं लक्ष्य बन गया जैसे कि आप की बाणी है

संतु मिलै किछु सुनीऐ कहीऐ ॥ मिलै असंतु मसटि करि रहीऐ॥१॥
बाबा बोलना किआ कहीऐ ॥ जैसे राम नाम रवि रहीऐ ॥१॥ रहाउ ॥
संतन सिउ बोले उपकारी ॥ मूरख सिउ बोले झख मारी ॥२॥
बोलत बोलत बढहि बिकारा ॥ बिनु बोले किआ करहि बीचारा ॥३॥
कहु कबीर छूछा घटु बोलै ॥ भरिआ होइ सु कबहु न डोलै ॥४॥१॥

(रागु गोंड कबीर जी, पत्रा ८७०)

जिस का भावार्थ-कबीर जी कहते हैं--हे मनुष्य ! जीवन का लाभ यही है कि जब कोई संत-महात्मा गुणी ज्ञानी मिले तो उसके पास बैठ कर कुछ सुनते तथा समझते रहें। यदि कोई आप से कम ज्ञान वाला हो तो उसको कुछ न कुछ बताएं पर यदि बुरी संगत हो तो चुप रहना ठीक है। बोलने के बाबत आप ने कहा, बोलना तो वहीं ठीक है जो वह परमात्मा अंतर आत्मा से अपने नाम या यश के बोल बुलाए तो उसी राम नाम में ही मस्त रहना ठीक है। संतों से मिलने से परोपकारी बनते हैं भाव-संत सेवा नेकी तथा धर्म कर्म बताते हैं

पर यदि मूर्ख से बोलने लग पड़े तो सिर खपाने के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता। इसलिए बहुत बोलना भी ठीक नहीं। अधिक बोलने से विकार बढ़ते हैं पर साधू-संतों से चुप रहना ठीक नहीं। आम कहावत है कि एक मूर्ख खाली घड़े की तरह अधिक बोलता है तथा जो ज्ञान रूपी जल से भरा होता है वह कम बोलता है, भाव यह कि ज्ञानी पुरुष जल्दबाजी नहीं करते, सहनशील होते हैं, इसलिए साधू-संत से संगत करने से लाभ मिलता है।

ऐसे विचारों के कारण कबीर जी के पास गुणी, ज्ञानी तथा साधू-महात्मा ऐसे आया करते जैसे कि उनका घर एक ठाकुर द्वारा था। कई बार ऐसी भीड़ लग जाती कि सारा सारा दिन सत्संग होता रहता। एक दिन बहुत सारे बैरागी साधू कहीं से भ्रमण करते कबीर जी के दर्शन करने आ गए, क्योंकि सारे कांशी शहर में इस बात की चर्चा थी कि कबीर नाम का जुलाहा विष्णु अवतार है तथा उसके मुख से निकला हुआ वचन सदा सत्य होता है। साधू सत्संग करके जब आनंदित हुए तो कबीर जी ने उनको भोजन के लिए पैसे तथा वस्त्र इत्यादि भेंट किए। वे साधू कबीर जी का यश करते हुए जब कांशी में घूमे तो कांशी के ब्राह्मणों ने बहुत क्रोध किया। उनको क्रोध इस बात का था कि एक जुलाहा हो कर इतना यश कराए तथा निम्न जाति से उठ कर पुण्य दान करे। यह ठीक नहीं कि ब्राह्मणों का धर्म तथा पूजा खत्म हो जाए। वह लोग कांशी की गलियों में कबीर जी की निंदा करने लगे। निंदा सुन कर कबीर के भक्त बड़े क्रोधित हुए तथा उन्होंने कबीर को कहा कि महाराज ! कांशी के ब्राह्मण आप की निंदा करते हैं जो सुनी नहीं जाती, तो कबीर जी ने निंदा के प्रति ऐसा वचन किया-

निंदउ निंदउ मो कउ लोगु निंदउ ॥

निंदा जन कउ खरी पिआरी ॥ निंदा बापु निंदा महतारी ॥१॥ रहाउ ॥

निंदा होइ त बैकुंठि जाईऐ ।। नामु पदारथु मनहि बसाईऐ ।।
रिदै सुध जउ निंदा होइ ।। हमरे कपरे निंदकु धोई ।।१।।
निंदा करै सु हमरा मीतु ।। निंदक माहि हमारा चीतु ।।
निंदकु सो जो निंदा होरै ।। हमरा जीवनु निंदकु लोरै ।।२।।
निंदा हमरी परेम पिआरु ।। निंदा हमरा करै उधारु ।।
जन कबीर कउ निंदा सारु ।। निंदकु डूबा हम उतरे पारि ।।३।।२०।।

(गउड़ी कबीर जी, पन्ना ३३९)

जिसका भावार्थ है कि, हे मित्र जनो ! जो लोग निंदा करते है उनको निंदा करने दें, क्योंकि सज्जनों निंदा मुझे बड़ी अच्छी लगती है। बेशक लोग निंदा करें। निंदा तो भक्तों की मां होती है। जिस की निंदा हो उस के मन में अहंकार नहीं आता तथा निंदा होने से बैकुण्ठ जाते हैं क्योंकि अंत में निंदा डूब जायेगी तथा हम पार चले जाएंगे। भाव कि निंदा करने वाला हमेशा झूठ के सहारे होता है तो निंदक को मुंह की खानी पड़ती है।

इस तरह एक दिन ब्राह्मण एकत्रित हो कर कबीर जी के पास आए। उनकी इच्छा थी कि कबीर का अपमान किया जाए, भाव बहुत सारे ब्राह्मणों को गरीब जुलाहा भला कैसे भोजन करायेगा। यह सलाह करके वह कबीर के घर पहुंचे तथा बड़े क्रोध से बोले-तुमने जाति के जुलाहे हो कर बैरागी साधुओं को भोजन खिला कर ब्राह्मणों की निंदा की है इसलिए अब हमें भी भोजन खिलाओ और दक्षिणा दी जाए।

कबीर जी यह सुन कर मुस्कराए तथा बोले, अच्छा यदि मेरे राम जी की यही इच्छा है तो ऐसा ही हो जाएगा। आओ बैठो आपको भोजन खिलाया जायेगा। गरीबों को जो कुछ भगवान देता है, वह वहीं कुछ बांटते जाते हैं। भगवान के घर किसी प्रकार की कमी नहीं। मेरा मोहन सदा मेरा ख्याल रखता है। बच्चे से भूल होती है तो क्षमा

करता है। आपको घबराना नहीं चाहिए, न ही क्रोध करना चाहिए। आप तो पूज्य ब्राह्मण हो, आपकी सेवा करना तो हर प्राणी का अधिकार है, आओ ! चरण धो लो तथा बैठो।

भक्त कबीर की बातें सुन कर ब्राह्मण एक तो हैरान हुए, दूसरे खुश हुए कि कबीर के पास भोजन कराने के कोई साधन नहीं है तथा हमें बिठा रहा है। अवश्य ही हम इसका मजाक उड़ा कर अपमान करेंगे। वह सारे बैठ गए।

ब्राह्मणों को भारी संख्या में बैठा देख कर 'माई लोई' कबीर जी की धर्मपत्नी कुछ घबराई तथा कबीर जी को बुला कर कहने लगी– 'यह आपने क्या किया ?'

कबीर–'क्या बात है ? इतनी घबराई हो ?

लोई–घबराऊ न तो क्या करूं ? घर तो कुछ नहीं है तथा आपने इनको भोजन के लिए बिठा लिया है।

कबीर 'मैंने नहीं बिठाया ! मैं बिठाने वाला कौन ? यह तो सब मेरे राम की महिमा है। उस ने कोई खेल रचा है। अपना खेल स्वयं ही देखेगा, चलो अंदर तथा मैं सारे ब्राह्मणों के हाथ स्वच्छ करवाता हूं।'

लोई 'उनके आगे क्या रखोगे ? केवल राम नाम !'

कबीर–'धन्य हो लोई जी ! धन्य हो, आपने सत्य कहा, राम नाम ही इनके आगे रखूंगा। सारा प्रताप तो राम नाम का है। कोरे घड़े में मैंने मिठाई लाकर रखी थी। बैरागी साधू को भोजन खिलाना था वह आने से पहले ही लुप्त हो गया। वही इनको खिला देते हैं।'

लोई 'वाह राम के भक्त।' यह कह कर लोई अंदर को चली गई। अंदर गई तो आंखें मल मल कर देखती हुई हैरान थी, कबीर जी के राम ने ऐसी माया रची कि माई लोई को सारा अंदर मिठाई से भरा हुआ नज़र आया। चारपाई, फर्श तथा हर जगह पर मिठाई के

भरे हुए थाल रखे थे तथा हर एक वरक पर लिखा था–'राम नाम !' माई लोई डर कर बाहर आ गई। खुशी से ज्यादा उसको बहुत हैरानी हुई।

माई लोई ने कबीर जी की बहुत महिमा देखी थी, फिर भी भ्रम में आ जाया करती थी। माया का पर्दा हटता नहीं था, वह असमंजस में पड़ जाती थी।

कबीर जी ने अपने शिष्यों और श्रद्धालुजनों को आवाज़ दी। जब वे आये तो कहा...'अंदर जाओ और थाल उठा कर ले आओ ! राम नाम का भोजन खिलाओ, ब्राह्मण बहुत भूखे और प्यासे हैं।'

कबीर जी स्वयं ब्राह्मणों की पंगत में खड़े रहे तथा उनके श्रद्धालु अंदर से थाल ला ला कर उनके आगे रखने लगे तो ब्राह्मण बहुत चकित तथा लज्जित हुए। थालों पर पड़े वरकों पर 'राम नाम' लिखा था। वे घबरा गये।

कबीर जी अपने राम को याद करते हुए बिलावल राग में अपने राम की महिमा गाने लगे–

चरन कमल जा कै रिदै बसहि सो जनु किउ डोलै देव ॥
मानौ सभ सुख नउनिधि ता कै सहजि सहजि जसु बोलै देव ॥ रहाउ ॥
तब इह मति जउ सभ महि पेखै कुटिल गांठि जब खोलै देव ॥
बारं बार माइआ ते अटकै लै नरजा मनु तोलै देव ॥१॥
जह उहु जाइ तही सुखु पावै माइआ तासु न झोलै देव ॥
कहि कबीर मेरा मनु मानिआ राम प्रीति कीओ लै देव ॥२॥१२॥

(पन्ना ८५७)

ब्राह्मणों ने भोजन पान किया। प्रसन्न हो कर पेट भर कर भोजन खाया। कबीर जी ने एक-एक रुपया दक्षिणा भी दी तथा जाने वाले को प्रार्थना करते रहे वह उन्हें क्षमा करते जाएं। मैं अनभिज्ञ सा तथा गरीब जुलाहा हूं। कबीर जी की भक्ति, राम भरोसा, विवेक को देख

कर ब्राह्मणों ने आगे से उनको बदनाम करना छोड़ दिया। भक्त कबीर जी का एक लड़का कमाल तथा एक लड़की कमाली थी। उनकी पत्नी माई लोई भी भक्ति करने लग गई। सारे इस तरह प्रभु पर विश्वास रखते थे।

जैदेउ नामा बिप सुदामा तिन कउ क्रिपा भई है अपार ॥
कहि कबीर तुम संम्रथ दाते चारि पदारथ देत न बार ॥२॥७॥

(पन्ना ८५६)

संसार अस्थिर है

जब लोग आर्थिक रूप से तंग हो, जिस समय मनुष्य की आर्थिक दशा अच्छी न हो तो वह देवी-देवता या भगवान का प्यारा हो जाता है ताकि उस को सुख तथा शांति यदि राज के द्वारा प्राप्त नहीं होती तो किसी भगवान की शक्ति के द्वारा ही उन पर कृपा हो जाए, लोग भटकते फिरते हैं। जैसे प्यासा मनुष्य जल वाली जगह की तरफ श्रद्धा से देखता है इसी तरह जिज्ञासु सुखी जीवन हासिल करने के लिए चात्रिक की तरह उधर को दौड़ता है, जिधर किसी भगवान के भक्त का नवास हो ताकि सुख प्राप्त हो।

कबीर अब आत्मिक ज्ञान का शिष्य ही न रहा, बल्कि अन्य पंडितों की तरह कांशी में ब्रह्म-ज्ञानी बन गया। कई श्रद्धालु इनके शिष्य बन गए। हर रोज़ कबीर जी के पास साधू-संतों की भीड़ लगी रहती, ज्ञान चर्चा होती रहती। कईयों के सवाल खुलकर बताए जाते। जिस किसी भी जिज्ञासु को कबीर जी ज्ञान किरन बख्शते उसको बाणी के द्वारा बख्शते। इसी कारण कबीर की बहुत सारी बाणी है जो उलझनों एवं रुकावटों को दूर करने का साधन बताती है। कबीर की बाणी अंधेरे में उजाला करती है, नवजीवन देती है। मुर्दा आत्मा को उमंग और बल प्रदान करती है।

एक दिन जो जिज्ञासु आए उनके हृदय में संशय की गांठें थीं, उन्होंने कबीर जी के आगे सवाल किया–

हे कबीर ! यह बताओ कि मनुष्य का इस जगत से क्या संबंध है। जीव को कलयुग में क्या करना चाहिए। जीव यमों के दण्ड से कैसे बचे, यह मार्ग बताएं। हम लोगों को तो कुछ नहीं सूझता–

कबीर जी ने उनको उत्तर दिया–

ऐसो इहु संसारु पेखना रहनु न कोऊ पईहै रे ॥
सूधे सूधे रेगि चलहु तुम नतर कुधका दिवईहै रे ॥१॥ रहाउ ॥

(पन्ना ८५५)

इसका परमार्थ यह है–हे राम जनो ! जो यह संसार देखते हो इसमें जितने जीव, पशु, पक्षी, मनुष्य है यह सदा नहीं रहेंगे, आते तथा चले जाते हैं। क्या राजा क्या रंक, मृत्यु का भारी हाथ सभी के दिलों की धड़कन को बंद कर लेता है। इस संसार में जीव को सत्य मार्ग पर चलना चाहिए ताकि यम का धक्का न लगे। सत्य मार्ग से भाव है जीवन को अच्छा बनाने के लिए गुरु या कोई महापुरुष जो उपदेश करता है उसके उपदेशों पर अमल करना चाहिए। ज्ञान सुनने या याद करने से जीवात्मा मुक्त नहीं होती, ज्ञान को अमल में लाना जरूरी है।

बारे बूढे तरुने भईआ सभहू जमु लै जईहै रे ॥
मानसु बपुरा मूसा कीनो मीचु बिलईआ खईहै रे ॥

हे राम जनो ! बाल, बूढ़े, जवान सभी को यम ने ले जाना है। मनुष्य चूहे की तरह है तथा होनी (मृत्यु) बिल्ली की भांति। चूहे (मनुष्य) को होनी रूपी बिल्ली खाए जाती है। परमात्मा ने यह बिल्ली इसलिए छोड़ी है कि संसार में भीड़ न हो जाए। पीपल के पत्तों की तरह पुराने पत्ते सूख कर झड़ जाते है तथा उनकी जगह नए फूट पड़ते हैं। मरना सत्य तथा जीना झूठ है।

धनवंता अरु निरधन मनई ता की कछू न कानी रे ॥
राजा परजा सम करि मारै ऐसो कालु बडानी रे ॥२॥

वह परमात्मा इस बात की तरफ से बहुत अच्छा है वह किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। धनी एवं निर्धन को एक आंख से ही देखता है। उसे किसी की रोक-टोक नहीं। वह राजा तथा प्रजा के लोगों को एक समान ही मारता है। यह काल (मौत) की प्रशंसा है भाव कि भू-स्वामी, राजा, सैनिक, धनवान, कंगाल, अनपढ़ तथा शिक्षित सभी ने एक दिन अवश्य मरना है। इसलिए जिज्ञासु जनों ! मृत्यु को सदा अटल समझो।

हरि के सेवक जो हरि भाए तिन्ह की कथा निरारी रे ॥
आवहि न जाहि न कबहू मरते पारब्रहम संगारी रे ॥३॥

(पन्ना ८५५)

हे राम भक्तों ! कबीर जी बोले, पर आम लोगों से हरि के संतों, हरि भक्तों की मृत्यु का फर्क है। दुनिया की निगाह में संत तथा भक्त भी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। दुनिया संतों-भक्तों के पंचभूतक शरीर को उठाकर श्मशान भूमि में ले जाकर अग्नि भेंट करती है लेकिन हरि के संत मरते नहीं। यह अमर हो जाते हैं। पंचतत्व शरीर को अवश्य बदलते हैं, आवागमन के चक्कर से मुक्ति पा लेते हैं। क्योंकि वे पारब्रह्म की शरण में लगे हुए हैं, जो राम भक्त हैं उनको मृत्यु से भय नहीं लगता वह तो मृत्यु को बल्कि स्वयं बुलाते हैं। क्योंकि मरने के (देह त्यागना) बिना जीव परमात्मा से नहीं मिलता।

कबीर जिसु मरने ते जगु डरै मेरे मनि आनंदु ॥
मरने ही ते पाइऐ पूरनु परमानंदु ॥२२॥

(पन्ना १३६५)

राम जनों ! राम नाम का सिमरन करें, फिर मृत्यु का भय नहीं रहेगा। आप मृत्यु को आवाज़ें देते रहोगे लेकिन मृत्यु आपके निकट

नहीं आएगी।

पुत्र कलत्र लछिमी माइआ इहै तजहु जीअ जानी रे॥
कहत कबीरु सुनहु रे संतहु मिलिहै सारिंगपानी रे॥४॥१॥

(पन्ना ८५५)

हे राम जनों ! पुत्र-पुत्री, स्त्री तथा धन आदि सबको जीव ने छोड़ जाना है। अगर जीवन रहने तक इनकी तरफ मोह कम करके ईश्वर के साथ वृति जोड़ ले तो कबीर जी की यह बात सत्य मानें कि हरि के साथ घुलमिल जाओगे-भाव मुक्त हो जाओगे। हर सांस के साथ राम नाम का सिमरन करना चाहिए।

कबीर जी ने और फरमाया है

कासी ते धुनि ऊपजै धुनि कासी जाई॥
कासी फूटी पंडिता धुनि कहां समाई॥

(पन्ना ८५७)

हे भक्त जनों ! घड़ियाल से आवाज़ पैदा होती है और उसी में ही अलोप हो जाती है। जब काशी (घड़ियाल) टूट जाता है तो आवाज़ उसके साथ ही खत्म हो जाती है। इसी तरह जगत थिर भी नहीं मगर है भी। हर वस्तु बनती है। अंडज, जेरज, सेतज और उतभुज जो जीवों के तत्वों से उत्पन्न होने के साधन हैं, वे जारी रहते हैं, जीव जन्म लेते और अंत में खत्म हो कर तत्वों के रूप में कायम रहते हैं।

इसलिए हे भक्त जनों ! तत्वों को कभी अमर नहीं मानना चाहिए, अमर तो आत्मा है, क्योंकि वह परमात्मा का अंश है। माया का विस्तार होने के कारण दिखाई नहीं देता। यदि मिथ्या समझ कर माया का त्याग करो, भाव न समझे तो प्राकृतिक है कि मन विस्माद में पड़ जाएगा। मन में ही सभी कार्य होते हैं। सेवा ही जीवन का मकसद है। इस जगत में न कुछ आता दिखाई देता है और

न ही जाता।

आवत कछू न दीसई नह दीसै जात ॥
जह उपजै बिनसै तही जैसे पुरिवन पात ॥२॥
मिथिआ करि माइआ तजी सुख सहज बीचारि ॥
कहि कबीर सेवा करहु मन मंझि मुरारि ॥

(पत्रा ८५७))

जात-पात एवं कबीर जी

गरभ वास महि कुलु नही जाती ॥ ब्रहम बिंदु ते सभ उतपाती ॥१॥ कहु रे पंडित बामन कब के होए ॥ बामन कहि कहि जनमु मत खोए ॥१॥ रहाउ ॥

(पत्रा ३२४)

भक्त कबीर जी राम के उपासक थे। उनका राम राजा दशरथ सुत राम नहीं बल्कि वह राम जो घट घट में बसता है। आप काशी में रहकर भारतीय संस्कृति से हित करते थे तथा नित्य कर्म लगभग हिन्दू साधू-संतों वाले करते थे। आप सुबह जल्दी उठ कर गंगा स्नान करने जाया करते थे तथा आते समय राम नाम का जाप करते लौटते थे।

एक दिन सुबह ही स्नान करने गए तो एक ब्राह्मण जो स्नान करने आया था, कबीर को देख कर बुड़बुड़ाने लगा कि उसका स्नान तो व्यर्थ गया, नीच जाति का जुलाहा माथे लग गया।

उसकी मूर्खता तथा जाति-पाति के भेदभाव वाला व्यवहार देख कर भक्त जी को हंसी आ गई तथा ब्राह्मण के साथ इस मामले पर फैसला करने पर तुल गये। आप घाट पर खड़े रहे। जब ब्राह्मण स्नान करके आया तो आप बोले, 'पंडित मुकंदा जी ! राम नाम !'

'धत् तेरी चंडाल की ! तू अभी भी कहीं गया मरा नहीं।'

कबीर जी-'महाराज जाता कैसे ! आप स्नान करके जाते तो नीचे

गंगा में स्नान करता। क्या पता गंगा मैया सारी अपवित्र हो जाती तो आप लोग स्नान कैसे करते।' एक बार और स्नान कर आओ।

सर्दी के दिन थे। ब्राह्मण ठंड से कांप रहा था। वह मुश्किल से दोबारा गया तथा फिर स्नान करके आया, पर कबीर जी वहां खड़े फिर उसके माथे लगे। इतने में अन्य पंडित आ गए, शोर मच गया तथा भीड़ हो गई। भीड़ को देख कर ब्राह्मणों के कोप से भक्त जी भयभीत नहीं हुए। भयभीत भी कैसे होते उनका रक्षक राम जो था, वह अपने राम पर विश्वास रखते थे।

'कबीर ! यह आपके लिए ठीक नहीं जो पंडितों का धर्म भ्रष्ट करते हो। अच्छा है कि आप बाहर किसी कुएं पर स्नान कर लिया करो या नीचे जा कर शूद्र घाट पर स्नान कर लिया करें, लड़ना - झगड़ना ठीक नहीं।' एक सूझवान पंडित ने झगड़ा खत्म करने के लिए कहा।

उसकी बात सुन कर भक्त कबीर जी हंस पड़े तथा उन्होंने कहा -

गरभ वास महि कुलु नही जाती ॥
ब्रहम बिंदु ते सभ उतपाती ॥१॥
कहु रे पंडित बामन कब के होए ॥
बामन कहि कहि जनमु मत खोए ॥१॥ रहाउ ॥

हे ब्राह्मण देवता जी ! मां के पेट में जब तुम थे तो उस समय न तो कोई कुल था न जात। ब्रह्मा के बनाए हुए सारे जीव जन्म लेते हैं। भला यह तो बताओ कि ब्राह्मण कब से हुए थे ? कब पहल हुई, क्या शुरू से ब्राह्मण बना कर भेजा है ? ऐसा नहीं है, ऐसे ही ब्राह्मण ब्राह्मण कह कर, क्यों जन्म गंवाते हो ? जन्म से न कोई शूद्र है न ब्राह्मण। यह सब संसार के भ्रम तथा विभाजन लोगों को लूटने के लिए उत्पन्न किया हुआ है।

कबीर जी का यह वचन सुनकर ब्राह्मण चुप हो गये, पर मुकंदा

भी बड़ा झगड़ालू था, उसको भी उल्टी-सीधी बहसें करते हुए पचास साल बीत गये थे। वह कहने लगा कबीर ! देखो क्यों उल्टी बातें करते हो ! लोगों को कुमार्ग लगाने का क्या लाभ। मैं ब्राह्मण हूं, मेरा पिता, दादा तथा पड़दादा भी ब्राह्मण थे। मेरी मां ब्राह्मणी थी। माता-पिता ब्राह्मण होने के कारण मैं ब्राह्मण हूं।

कबीर हंस पड़ा हंस कर उसका कंधा पकड़ कर बोला-

जौ तूं ब्राहमणु ब्रहमणी जाइआ ।।
तउ आन बाट काहे नहीं आइआ ।।२।।
तुम कत ब्राहमण हम कत सूद ।।
हम कत लोहू तुम कत दूध ।।३।।

(पन्ना ३२४)

जिसका भावार्थ है-यदि तुम ब्राह्मणी के पेट में से ब्राह्मण पैदा हुए हो, तो तुम ने जन्म किसी अन्य मार्ग से क्यों नहीं लिया ? उसी मार्ग से आए हो जिससे आम लोग जन्म लेते हैं। कबीर जी का भाव है कि शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण सभी नौ महीने पूरे मां के गर्भ में रहते हैं। प्रभु सब को पालता है तथा जब नौ महीने पूरे होते हैं तो भगवान ने जो मार्ग बच्चे के बाहर आने के लिए बनाया है उसी मार्ग से बाहर आता है। यदि भगवान ने जाति का भेदभाव किया होता या ऊंचे तथा निम्न पैदा किए होते तो ऊंची जाति के जन्म के लिए भी कोई अलग मार्ग कायम किया होता। यदि कोई अलग मार्ग नहीं है तो समझो कि सभी जीव एक समान हैं, कोई अछूत नहीं तथा कोई स्वर्ण नहीं। पुरुष कर्मों से ही ऊंचे या निम्न होते हैं। कबीर जी स्वयं ही प्रश्न करके उसको सम्बोधन करके कहते हैं-सुनो मुकंदे ! तुम किस तरह ब्राह्मण हो, तथा मैं किस तरह शूद्र हूं ? तुम्हारी नाड़ियों में भी वही खून है जो मेरी नाड़ियों में हैं। संसार के सब मनुष्यों का खून, मांस, हड्डियां, बाल, दांत, जीभ एक समान हैं।

कहु कबीर जो ब्रहमु बीचारै ॥
सो ब्राहमणु कहीअतु है हमारे ॥४॥७॥

जो परमात्मा का विचार करता है तथा प्रभु के ज्ञान का ज्ञानी है हम तो उसे ब्राह्मण कहते हैं भाव यह कि जन्म के कारण किसी को ब्राह्मण नहीं कहते। जो विद्या पढ़ कर ब्रह्म को जाने, उसका सिमरन करे, उसकी बनाई सृष्टि के जीवों से प्यार करे वास्तव में वहीं ब्राह्मण है। छूआछात को मानने वाले पंडित, यह ब्राह्मण नहीं बनावटी लोग हैं, ठग हैं, जो भगवान से छल करने से भी नहीं हटते।

कबीर के इन वचनों का उत्तर मुकंदे पंडित के पास नहीं था। वह तो जन्म के कारण ब्राह्मण था। केवल मुकंदे पंडित के पास ही नहीं बल्कि संसार का स्त्री पुरुष इस अमिट सत्य के विपरीत कोई दलील नहीं दे सकता। सभी जातियों, गोत्रों, कुलों तथा मतों को कायम करने वाला मर्द है। अपने स्वार्थ के लिए यह काम किया। सच्चाई को सुन कर बनारस के ब्राह्मण माथ पीटने लगे, क्योंकि जो अंधेरे की चादर तान कर वह भोले भाले लोगों को लूट रहे थे, उस अंधेरे को कबीर जी खत्म कर रहे थे। वह सारे भ्रम दूर करके करोड़ों मनुष्यों का पुनर्जन्म करना चाहते थे। उन्होंने पंडितों को गुस्से से सत्य सुनाया। वे जले-भुने हुए अपने रास्ते चल पड़े तथा गालियां देते रहे।

पंडित वापिस गंगा में स्नान करने के लिए चल पड़ा। भूले ब्राह्मण को सही मार्ग पर लाने के लिए कबीर के राम ने कबीर की सहायता की। जब मुकंदा गंगा में स्नान करने लगा तो भगवान ने माया के छल से कबीर को मुकंदे के साथ स्नान करते हुए दर्शाया, यह देखकर मुकंदा घबरा गया तथा हाथ-पैर मारने लगा। जब मुकंदे ने दूसरी तरफ देखा तो उधर भी कबीर खड़ा हंस रहा था। जिधर वह देखे उधर ही कबीर नजर आए। मुकंदा हैरान हो कर घबरा गया, और हड़बड़ा कर थर-थर कांपता हुआ जब पानी से बाहर निकलने लगा तो उसका

पैर फिसल गया जिससे वह मुंह के बल गंगा में गिर गया। उस समय कबीर रूपी ब्राह्मण ने उसको पकड़ लिया तथा खड़ा करके कहा, 'मुकंदे ! दिल के वहम छोड़ दे, हर मनुष्य मनुष्य ही है। जाति के कारण कोई शूद्र या ब्राह्मण नहीं है। कबीर जी के चरणों में नतमस्तक हो जाओ।

सत्य मुकंदे के मन पर न बैठा, वह गुस्से से भरा हुआ घर की तरफ भाग उठा। घर गया तो उसको पूजा-पाठ और खाना-पीना भूल गया, वह कबीर जी को गालियां देने लगा।

खैर, पंडितानी ने उसको कुछ धैर्य दिया, आदर से बिठाया और भोजन खाने की प्रेरणा की, वह बैठ गया, जब उठा, थाली उठा कर फैंक दी तथा रसोई से बाहर चला गया। वह कबीर जी को गालियां देने लगा। उसकी हालत देख कर ब्राह्मणी स्तब्ध ही न हुई बल्कि डर गई। उसने समझा उसके पति को सरसाम हो गया है तथा पागल हो गया है। उसको विपदा पड़ गई। वह घबरा कर पूछने लगी क्या बात हुई ? कबीर जी को क्यों गालियां देते हो वह तो प्रभु भक्त हैं।

'मेरे साथ बैठा भोजन कर रहा था नीच जाति मेरे साथ लगता है।' मुकंदे ने यह कहा तो पंडितानी बहुत हैरान हो गई। वह कहने लगी- हे भगवन् ! यह क्या माया हुई, यह पागल हो गया। मैं इसके पास बैठी थी, न कबीर आया, न उसकी परछाई, मैं ही अकेली थी। यह क्या कहते हो आपको भ्रम हो गया है।

यह सुन कर मुकंदा कपड़ों से बाहर हो गया तथा बड़े क्रोध से कहने लगा-

'तुम्हें दिखाई नहीं देता तुम अंधी हो, कबीर मेरे साथ बैठा खा रहा था, मेरे पास अब भी खड़ा है कबीर, परछाई की तरह मेरे साथ चिपक गया है ! मैं क्या करूं शूद्र कबीर ! चुड़ैल तुम नहीं जानती।'

पंडितानी–'क्या आप उसके साथ झगड़ पड़े थे।'

मुकंदा–'हां ! वह सुबह माथे लगा था, एक बार नहीं कई बार।'

पंडितानी–'उस से क्षमा मांग लो, वह हरि भक्त है परमात्मा उसकी सुनता है।'

मुकंदा–हैं, यह क्या कहा ! ब्राह्मण शूद्र से क्षमा मांगे, उसके पांवों में पड़े ? हे प्रभु ! कलयुग ! अंधेर ! यह नहीं हो सकता। मैंने कबीर का सिर फोड़ देना है। हट जाओ पीछे, मैं उसे मार दूंगा। वह जादूगर नहीं, मेरे मन का डर है। मेरी आंखें (कबीर जी को) देख रही हैं। मैं मार दूंगा। यह शूद्र है, ब्राह्मण नहीं बन सकता।' यह कह कर मुकंदा बाहर को चला गया तथा हाथ में पत्थर ले गया। अद्‌भुत ही बात हुई।

आगे-आगे पंडित मुकंदा तथा पीछे उसकी पत्नी दोनों भागे जा रहे थे। उसकी पत्नी ने शोर मचाया 'पकड़ो ! मेरा पति पागल हो गया, पकड़ों ओ लोगों पकड़ो, किसी का खून कर देगा तो मैं क्या करूंगी। इस को पकड़ लो।'

उसकी पत्नी के शोर को सुन कर पंडित मुकंदे के पीछे लोग दौड़ पड़े। लोगों को पीछे आता देख कर मुकंदा और तेज दौड़ने लगा। भागते हुए उसकी धोती खुल गई उसको इकट्ठा करते हुए भी दौड़ता गया। शोर मच गया। पंडित मुकंदा पागल हो गया, का शोर हर उस मनुष्य की जुबान पर था जिस ने मुकंदे को देखा, लोग इकट्ठे हो गए तथा शोर बढ़ गया।

कबीर जी स्नान करके अभी घर नहीं पहुंचे थे, वह रास्ते में ही जा रहे थे कि मुकंदे से उनका मेल हो गया। मुकंदे ने हाथ में पक्की ईंट पकड़ी हुई थी। कबीर जी को देखते ही उसने जोर से वह ईंट कबीर जी को मारी। ईंट माथे में लगी, ईंट टूट कर जमीन पर गिर गई पर कबीर जी को चोट न लगी, न कोई दाग पड़ा। ईंट इस तरह

लगी जैसे फूल लगता है, खून न निकला। लोग देख कर हैरान हुए, उन्होंने पहले तो समझा था कि कबीर जी शायद गिर पड़ेंगे।

कबीर जी को क्रोध नहीं आया। वह अपने स्वभाव अनुसार मुस्करा पड़े तथा बोले–क्यों पंडित जी ! इतने क्रोधित क्यों हो ? यह कहने की देर थी कि मुकंदे का गुस्सा उतर गया, उसको ज्ञान हो गया। उसके कपाट खुल गये, उसकी जन्म–जन्मांतर की सोई आत्मा की कालिख धुल गई। कुन्दन हो कर उसने कबीर जी के चरण पकड़ लिये। लोग भी निकट पहुंच गये तथा चुपचाप देखने लगे कि क्या चमत्कार होता है।

कबीर जी ने मुकंदे को अपने चरणों से उठाया तथा कहा–'मुकंदे ! उठो राम कहो। राम ने तुम पर कृपा की है राम की महिमा किया करो।' उसको सम्बोधन करते हुए कबीर जी ने फरमाया–

हम घरि सूतु तनहि नित ताना कंठि जनेऊ तुमारे ।।
तुम्ह तउ बेद पड़हु गाइत्री गोबिंदु रिदै हमारे ।।१।।
मेरी जिहबा बिसनु नैन नाराइन हिरदै बसहि गोबिंदा ।।
जम दुआर जब पूछसि बवरे तब किआ कहसि मुकंदा ।।१।। रहाउ ।।
हम गोरु तुम गुआर गुसाई जनम जनम रखवारे ।।
कबहूं न पारि उतारि चराइहु कैसे खसम हमारे ।।२।।
तूं बाम्हनु मै कासीक जुलहा बूझहु मोर गिआना ।।
तुम्ह तउ जाचे भूपति राजे हरि सउ मोर धिआना ।।३।।

(पन्ना ४८२)

परमार्थ–पंडितों ! हमारे घर तो सूत की तानियां तनी जाती हैं। आप थोड़ा–सा मामूली सूत गले में डाल कर कहते हो जनेऊ पहना हुआ है, आप तो केवल एक तंद ही पहने फिरते हो तथा हम तानियां उठाई फिरते हैं।

मेरी जुबान तो प्रभु का नाम जपती है तथा आंखों में नारायण बसता

है। हे मुकंदे ! जब परमात्मा तुम से पूछेगा तो बताओ क्या उत्तर दोगे ?

हम तो गंवार थे तथा आप हमारे रक्षक मालिक बने रहे, पर हजारों सालों से आप ने हमारा पार उतारा न किया, तुम तो ब्राह्मण हो तथा मैं काशी का जुलाहा हूं। मेरे ज्ञान को समझो, तुम सदा राजाओं की ताक रखते हो उनकी तरफ देखते हो, पर हमारा ध्यान प्रभु परमात्मा की तरफ है। हम रात-दिन उसी से मांगते हैं।

इस तरह मुकंदे पंडित को ज्ञान हुआ तथा वह कुशलपूर्वक पंडितानी के साथ गया। आगे से कबीर जी का भक्त बन गया। ऐसी राम की शक्ति है।

बादशाह का कबीर जी को सजा देना

नरू मरै नरु कामि न आवै ॥ पसू मरै दस काज सवारै ॥१॥
अपने करम की गति मै किआ जानउ ॥ मैं किआ जानउ बाबा रे ॥१॥ रहाउ ॥
हाड जले जैसे लकरी का तूला ॥ केस जले जैसे घास का पूला ॥२॥
कहु कबीर तब ही नरु जागै ॥ जम का डंडु मूंड महि लागै ॥

(गोंड कबीर जी, पत्रा ८७०))

गंगा पर स्नान करने का पर्व था। हजारों लोग एकत्रित हुए थे तथा सैंकड़ों महात्मा, संत-महंत आए हुए थे। स्थान-स्थान पर मंडलियां लगी हुई थीं। हर कोई अपनी-अपनी समर्था के अनुसार ज्ञान चर्चा कर रहा था। कोई अपने मत का उपदेश करता था तो कोई किसी से वाद-विवाद करता था। वेद-वेदांतों के ज्ञानी पुरुष आए हुए थे। श्रोता दर्शन यात्रा स्नान करके उपदेश सुनने के लिए बैठ जाते थे। इस तरह अत्यंत भीड़ थी।

भक्त कबीर जी भी गंगा स्नान करने गए, वहीं बैठ गए। उनके श्रद्धालु उनके पास आए तथा कहने लगे, 'कोई उपदेश करें। जीवन का लाभ सुनाएं।'

कबीर जी ने एक दिन पहले एक पुरुष की लाश अग्नि भेंट होती देखी जैसे वह जलती गई वैसे सारा दृश्य उनके नेत्रों के आगे रहा। वह बहुत ही प्रभावित हुए तथा उन्होंने जिज्ञासुओं के आगे यहीं ज्ञान चर्चा आरम्भ कर दी। आप ने लम्बी ज्ञान की बात शुरू की। आप ने देखा कि जीव-जन्तु, चौपाये पशु आदि यह सारे मरते हैं, क्योंकि पंच -भूतक शरीर को ईश्वर ने फिर तत्वों में मिलाना होता है।

पर कबीर जी सोचते रहे, जब पशु-पक्षी मरते हैं तो उनका कोई न कोई शारीरिक अंग या उनकी चमड़ी संसार के काम आती है। जैसे चौपाये पशु, गाय, बैल, भैंस, बकरा तथा छत्तरा, हिरण तथा शेर आदि इनकी खालें काम आती हैं। जूते तथा मशकें आदि बनती हैं पर जब नर मरता है तो यह किसी काम नहीं आता। उसका नजारा उनके उपरोक्त शब्दों में पेश किया है। आप ने फरमाया-

हे भक्त जनो ! जीव-स्त्री पुरुष जब मरते हैं तो इनका शरीर किसी काम नहीं आता। जब पशु मरता है तो दस काम संवारता है, पर जीव मरता है तो किसी काम नहीं आता। कबीर जी कहते हैं-परमात्मा की गति को मैं क्या जानूं। हे बाबा ! यह तो अनोखा ही खेल रचा है। पुरुष को जब जलाया जाता है तो उसकी हड्डियां ऐसे जल जाती हैं जिस तरह लकड़ी जलती है। उसके बाल ऐसे जलते हैं। जिस तरह घास का ढेर जल जाता है। कबीर जी ने जिज्ञासुओं तथा श्रोताओं को सम्बोधन करके कहा, हे सज्जनों ! जीवात्मा को उस समय ही ज्ञान होता है जब यम का डंडा सिर में लगता है, भाव हिसाब पूछा जाता है। यहां रहकर तो जीव सदा परमात्मा को भूला रहता है तथा अहंकार में कर्म करता है। लालच, वासना, अहंकार जीव की हड्डियों को कमजोर बनाए जाते हैं। जीव जगत में आता है तो स्वयं को नहीं पहचानता, वास्तविकता से दूर चला जाता है।

इस तरह ज्ञान चर्चा हो रही थी कि उच्च जाति के 'पंडित शोर

मचाते आ गए कि देवताओं की नगरी काशी गंगा में गर्क हो जायेगी। उन्होंने आकर कबीर जी को बड़े क्रोध से कहा कि वह उठ कर चले जाएं इस तरह पंडितों का अपमान होता है।

कबीर जी के अत्यंत श्रद्धालु थे। इस मामले से झगड़ा हो गया। झगड़ा बढ़ कर गाली -गलोच के बाद मार-पिटाई तक की नौबत पहुंच गई। उस झगड़े में पंडितों को मुंह की खानी पड़ी। वे भाग गए।

उस झगड़े का शोर सारी काशी में फैल गया। पंडितों ने अपने साथ मुसलमान काजियों को मिला लिया, क्योंकि कबीर जी सारे मतों के पाखंडों का खंडन करते थे। वह तो कहते थे, खुदा अथवा राम एक ही है तथा उसकी आराधना करो। देवी-देवता, मकबरा आदि की पूजा न करो। कबीर जी से सभी लोग ही खीझकर चिड़े हुए थे। इसलिए उन्होंने यह योजना बनाई कि नवाब को कह कर क्यों न कबीर को मरवा दिया जाये। नित्य के झगड़े खत्म हो जाएंगे।

संयोग से काशी में दिल्ली का बादशाह सिकंदर लोधी पहुंच गया। वह कट्टर धर्मी तथा प्रजा को खुश रखने वाला बादशाह था, उस में यह कमी थी कि वह उकसाहटी तथा कानों का कच्चा था।

सारे पंडित तथा शहर के काजी इकट्ठे हो कर बादशाह के पास गए तथा कबीर जी के विरुद्ध इतना कुछ कहा कि वह गुस्से से लाल पीला हो गया तथा उसने कहा, 'मैं निपट लेता हूं। आप जाओ। शहर में अमन रहेगा।'

बादशाह ने कबीर की तरफ अपने पैदल सिपाही को भेज दिया तथा हुक्म दिया कि कबीर को साथ ले कर आए। सिपाही कबीर जी के घर गया, कबीर जी घर पर ही थे। शाही संदेशक ने बादशाही हुक्म कबीर जी को सुनाया 'तुम्हें बादशाह ने बुलाया है, वह बहुत खफा है, तुम जरूर चलो जैसे भी हो वैसे।' यह हुक्म सुनते ही कबीर जी उसी समय पैदल सिपाही के साथ चल पड़े। वह न तो भयभीत

हुए और न ही डगमगाए क्योंकि उनको अपने राम का आसरा था, वह राम पर विश्वास रखते थे। कबीर जी के बहुत सारे श्रद्धालु भी उनके साथ चल पड़े। कईयों ने कहा बादशाह बहुत क्रोधी है वह कबीर जी को जान से मरवा देगा। कोई कहता काशी में से निकाल देगा। उनकी बातें सुन कर कबीर जी सहज स्वभाव अपने राम को याद करके उनको कहते गए–डरो मत, यह मेरे राम का ही हुक्म है, वह किसी अंधेरे को दूर करना चाहता है।

फुरमानु तेरा सिरै ऊपरि फिरि न करत बीचार ॥
तुही दरीआ तुही करीआ तुझै ते निसतार ॥१॥
बंदे बंदगी इकतीआर ॥ साहिबु रोसु धरउ कि पिआरु ॥१॥ रहाउ ॥
नामु तेरा आधारु मेरा जिउ फूलु जई है नारि ॥
कहि कबीर गुलामु घर का जीआई भावै मारि ॥२॥१८॥६९॥

(गउड़ी कबीर जी, पन्ना ३३८)

जिसका भाव है-हे प्रभु ! जो तुम्हारी आज्ञा है, उसको मानने के लिए मैं तैयार हूं। तुम स्वयं ही नदी हो और स्वयं ही मल्लाह। नैया भी स्वयं हो तथा पार भी आप ने ही करना है। मैं अज्ञानी पुरुष हूं। मैं तो सिर्फ कहता हूं। मनुष्य को भक्ति करनी चाहिए, सिर्फ आपके नाम की, वह चाहे क्रोध करे या खुश रहे। मनुष्य को उसका नाम जपते रहना चाहिए। हे ईश्वर ! तुम्हें याद करके इस तरह खुश हूं जैसे बच्चे का मन खुश होता है। मनुष्य तुम्हारा दास (नौकर) है जैसा दिल चाहे वैसे रखो, चाहे मार दो तथा चाहे जीवित रहने दो। तुम्हारी वस्तु जो हुई, अपनी वस्तु को स्वयं ही तो सम्भालते हो। लोगों तथा परमात्मा को सम्बोधन करके अपने मन को सम्बोधन करने लगे-

मन रे छाडहु भरमु प्रगट होइ नाचहु इआ माइआ के डांडे ॥
सूरु कि सनमुख रन ते डरपै सती कि सांचै भांडे ॥१॥ डगमग

छाडि रे मन बउरा ।। अब तउ जरे मरे सिधि पाईऐ लीनो हाथि संधउरा ।।१।। रहाउ ।। काम क्रोध माइआ के लीने इआ बिधि जगतु बिगूता ।। कहि कबीर राजा राम न छोडउ सगल ऊच त ऊचा ।।

(गउड़ी कबीर जी, पन्ना ३३८)

जिसका भावार्थ है-हे मन ! सारे संशय त्याग दे, किसी किस्म का भ्रम न कर, यदि कोई नारी नाचने लगी तो घूंघट क्यों ? प्रत्यक्ष हो कर नाचना उचित है, चाहे तुम दोषी ठहराए जाओ, राम नाम जपो तथा नेक कर्म करते जाओ, पर किसी से डरो मत। वह बहादुर नहीं समझा जाता जो लड़ाई के मैदान से डरता है। उस स्त्री को कोई सती नहीं कह सकता, जो पति के मरने के बाद जान छिपाने के लिए घर के बर्तन संभालने लगे, वस्तुओं की तरफ देखे। डगमगाने का क्या मतलब, जब संधउरा (नरेल) ही पकड़ लिया। अब तो जल कर मरने से छुटकारा होना है। भाव यह कि जिस तरह सती होने के समय स्त्री हाथ में संधउरा पकड़ लेती है, फिर पीछे नहीं हटती जल कर मर जाती है, वैसे सच्चाई को प्रगट करते हुए डरे क्यों ? यह सारी सृष्टि पांचों दुश्मनों-काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार के कारण खराब हो चुकी है। तुम अपने राम को न छोड़ना। इसके बदले में तुम्हें चाहे कष्ट क्यों न उठाने पड़े, राम राम जपता हुआ ही प्रहलाद अमर हुआ था।

इस तरह आत्मबल प्रदान करते हुए कबीर जी बादशाह सिकंदर लोधी के सम्मुख जा खड़े हुए। उन्होंने बादशाह को सलाम नहीं कही, चुप करके राम नाम का सिमरन करते रहे। बादशाह बड़ा हठधर्मी था, उसने जब देखा कि मुसलमान हो कर इस ने सलाम नहीं की, दूसरा 'राम' का नाम लेता है। इससे बड़ा काफिर कौन है यह तो मरवाने के काबिल है। इसको जीवित कैसे रखा जा सकता है। इसको दण्ड

देना ही ठीक है, नहीं तो नए बने मुसलमान बिगड़ जाएंगे।

बादशाह क्रोध से लाल पीला होकर कबीर से पूछने लगा-'कबीर तुम्हारा नाम है ?' 'हां जी !' कबीर ने आगे से उत्तर दिया। 'क्या यह ठीक है कि तुम हिन्दू धर्म तथा मुसलमानों के विरुद्ध प्रचार करते हो ? ऐसी कविता की रचना करते हो, जो लोगों को गुमराह करती है। जो पुरानी रस्मों तथा पूर्वजों के धर्म के विरुद्ध लोगों को भड़काती है। यह तुम्हारे बारे में शिकायतें हैं। बाकी तुमने मुझे सलाम क्यों नहीं की ? यह तुम्हारा अहंकार है।'

कबीर-'मैं किसी के विरुद्ध नहीं हूं। काजी, पंडितों की उन बातों के विरुद्ध जरूर हूं जो भोले लोगों को लूटने तथा धोखा देने के लिए आगे हैं। पाखंडों के विरुद्ध हूं, चाहे पाखंड इस्लाम का है या हिन्दू धर्म का। लोगों के भले की बात करता हूं। सलाम इसलिए नहीं किया, मैं अपने राम को अपना पातशाह समझता हूं। अपने 'राम' के बिना मैं किसी को सलाम नहीं कर सकता, मेरा राम जगत का पातशाह है।'

बादशाह 'तुम्हारा मत क्या है।'

कबीर-'दोनों मतों से न्यारा राम का सिमरन करना तथा सबसे प्यार करना। सब को राम ने बनाया है, राम उनका रक्षक है। वहीं हर तरह की सहायता करता है, मैं राम को याद करता रहता हूं।'

बादशाह-तुम बहुत बिगड़े हुए हो, मुसलमान हो कर 'राम' का नाम लेते हो। पुराने मतों के विरुद्ध हो। बादशाह को बादशाह नहीं मानते। राज के अमन के लिए यह एक खतरे का कारण है, इसलिए तुम्हें पानी में डुबा कर मारा जायेगा। जिस समय तुम्हें डुबाना होगा, तब सारे शहर के हिन्दू-मुसलमान बुला कर पास खड़े किये जाएंगे। यही मेरा हुक्म है, तुम काफिर हो, बागी हो। बादशाह के विरुद्ध बगावत करने का दोष है।

बादशाह के मुंह से उपरोक्त हुक्म सुन कर कबीर जी घबराए नहीं, डरे नहीं, अपितु उनके चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ गई। उन्होंने अपने राम को याद किया, उसका राम अंग-संग रहता था। उसके राम ने उसकी आत्मा को बलशाली किया। कबीर का राम तो बादशाह को चमत्कार दिखा कर उसको शिक्षा देना चाहता था। राम ने कबीर जी को प्रेरित किया तथा बादशाह को उत्तर दिया

आपे पावकु आपे पवना ॥ जारै खसमु त राखै कवना ॥१॥
राम जपत तनु जरि की न जाइ ॥ राम नाम चितु रहिआ समाई ॥१॥ रहाउ ॥
का को जरै काहि होई हानि ॥ नट वट खेलै सारिगपानि ॥२॥
कहु कबीर अखर दुइ भाखि ॥ होइगा खसमु त लेइगा राखि ॥३॥३३॥

(गउड़ी कबीर जी, पन्ना ३२९)

हे इस धरती के बादशाह ! वह परमात्मा स्वयं ही आग है तथा स्वयं ही हवा है। यदि उसने किसी को जलाना हो तो कोई बचा नहीं सकता। जीव को मारना या जीवित रखना मनुष्य के वश में नहीं बल्कि उस शक्तिवान परमात्मा के हाथ में है। जिन मनुष्यों को अपने जीवन के अंत का पता नहीं वह ऐसे उपाय करते हैं-किसी को मारने या जलाने का। यदि राम का सिमरन करते हुए जल भी जाएं तो क्या हर्ज है ? आत्मा में राम का नवास है, न कोई किसी को मारता है न जलाता है तथा न कोई बचाता है। यह तो उसी तरह है जैसे मदारी पत्थर से कई हेराफेरियां करके तमाशा करता है, पर किसी को समझ नहीं लगती-उसी तरह परमात्मा खेल करके देखता तथा खुश होता है। कबीर जी कहते हैं-दो अक्षर 'रा-म' का सिमरन करो-जो दिल करे सो कर ले यदि मेरा मालिक (राम) होगा तो वह डूबने-जलने से बचा लेगा। मिन्नतें करने का कोई लाभ नहीं, 'हे बादशाह सिकंदर ! वहीं करो, जो तुम्हारे मन में आए। मैं तो राम

का बंदा हूं।

परमात्मा पर कबीर का दृढ़-विश्वास देख कर बादशाह को खुश होना चाहिए था कि उस की प्रजा में ऐसी भक्ति, प्यार तथा एकता वाले व्यक्ति हैं तथा प्रचार होता था, पर वह मंद-बुद्धि वाला बादशाह, जो नेकी की जगह बदी कराना चाहता था, आवेश में आ गया। उसने आग-बबूला हो कर कहा कबीर को जंजीरों से बांध कर गंगा के गहरे पानी में फैंक दो, अपने आप डूब कर मर जायेगा। हमारे राज में ऐसे पुरुष का चलना, फिरना तथा बोलना खतरे से खाली नहीं, यह काफिर है, गंवार है।

उस समय बादशाह के मुंह से निकला हुआ हर शब्द कानून होता था, जिस कानून की कहीं अपील नहीं हो सकती थी। बिना सोच-विचार के बादशाह ने कबीर को मृत्यु दण्ड का हुक्म दे दिया। बादशाह के पास जो सरकारी आदमी खड़े थे, उन्होंने कोतवाल की तरफ ईशारा किया। वह शीघ्र ही आगे बढ़ा और कबीर को बाजू से पकड़ कर बाहर ले गया। कबीर कैद किया गया। मौलवी, काजी तथा पंडित बहुत खुश हुए। वह तालियां बजा-बजा कर हंसने लगे तथा मुंह जोड़-जोड़ कर बातें करने लगे। पर कबीर के श्रद्धालुओं तथा शहर के नेक लोगों के घर शोक छा गया, वह हाहाकार करने लगे, जो भी सुनता, वहीं गंगा किनारे की तरफ दौड़ता गया। हमदर्द, मित्रों, दुश्मनों तथा तमाशबीनों ने भीड़ एकत्रित कर दी। एक अद्‌भुत ही नेकी तथा बदी का अखाड़ा रचा गया। वैसे ही जैसे कि कभी प्रहलाद के समय था।

जंजीर के साथ कबीर को जकड़ा गया। हाथ पांव बांध दिए गए। जल्लाद को आज्ञा दी, वह बंधे हुए हाथों-पैरों के बीच ही बांस डाल कर कबीर को इस तरह उठा कर चले जैसे मरे हुए पशु को उठाते हैं, क्योंकि मुसलमान कोतवाल कबीर का अपमान करना चाहता था।

उस के मन में यह रोष था कि मुसलमान होते हुए कबीर हिन्दू धर्म की तरफ क्यों बढ़ता जाता है। चाहे खुदा, अल्लाह, राम, भगवान, प्रभु, वाहिगुरु तथा अकाल पुरख उस सर्वशक्तिवान परमात्मा के ही अलग-अलग नाम हैं, पर भुलक्कड़ मुसलमान नेता तथा हाकिम मुसलमान की जुबान से 'राम नाम' का शब्द उच्चारना बहुत बुरा समझते थे।

कबीर को गंगा किनारे ले गए, हजारों लोग उनके साथ थे। देखने वाले किनारे पर इकट्ठे हो गए थे। कहते हैं कि बादशाह सिकंदर लोधी भी देखने के लिए आ गया। वह अकेला नहीं था, उसके साथ उसकी बेगमें भी थीं, वे भी राम की शक्ति देखने आई थी। गंगा का जल ऊंची लहरें मार रहा था। दस-दस फुट ऊंचा जलभंवर था, जल भंवर नहीं शायद गंगा खुशी से उछल रही थी कि राम भक्त उसकी गोद में खेलने के लिए आ रहा था। राम भक्त को अपनी गोद में खिला कर वह अपना जीवन सफल कर लेगी। उसका तो अंग-अंग अगंमी खुशी से दीवाना हो रहा था। वह तो ऊपर आ कर जल्द से जल्द कबीर के चरण छूने के लिए बेताब थी, पर मूर्ख लोग गंगा के पानी को ऊपर चढ़ा हुआ देख कर खुश थे कि कबीर जल्दी डूब कर कहीं बह जायेगा। कोई नहीं रहेगा कबीर का नाम लेने वाला।

सरकारी नौका किनारे पर लाई गई। सिपाहियों तथा जल्लादों ने कबीर को उठा कर नौका (बड़ी नाव) में रख दिया। नौका के रस्से खोल दिये गए। मल्लाहों ने चप्पू चलाए व नौका गंगा की चढ़ाई की तरफ चली गई। करिश्मा भगवान का, साफ आकाश में ही आंधी तथा काली घटा छा गई। धर्मी लोगों ने कहा मुगलों पर भगवान क्रोधित हुआ है, वह अपने भक्त की रक्षा करेगा। नौका को डुबाएगा पर इस बात से और हैरानी हुई कि बादल तथा तूफान आया और पांच मिनटों में ही आगे चला गया। नौका न डूबी किनारे खड़ी साफ

दिखाई देती रही। जब नौका गंगा के मध्य में चली गई, जहां पानी बहुत गहरा तथा तेज चाल से चलता था, उस स्थान पर सिपाहियों तथा जल्लादों ने कबीर को उठा कर गंगा में फैंक दिया। गंगा में गिरते ही कबीर ने कहा 'हे राम तेरा आसरा ! आप ही मेरे जीवन दाता !' कबीर जी ने पानी पर तैरते हुए आकाश की तरफ देख कर अपने राम को याद किया–

आकासि गगनु पातालि गगनु है चहु दिसि गगनु रहाइले ॥
आनद मूलु सदा पुरखोतमु घटु बिनसै गगनु न जाइले ॥१॥
मोहि बैरागु भईओ ॥ इहु जीउ आई कहा गईओ ॥१॥ रहाउ ॥
पंच ततु मिलि काईआ कीन्ही ततु कहा ते कीनु रे ॥
करम बध तुम जीउ कहत हौ करमहि किनि जीउ दीनु रे ॥२॥
हरि महि तनु है तनु महि हरि है सरब निरंतरि सोई रे ॥
कहि कबीर राम नामु न छोडउ सहजे होई सु होई रे ॥३॥३॥

(गोंड कबीर जी)

हे राम ! आकाश पीछे आकाश तथा पाताल के बाद भी पाताल, आपकी माया का पसार ऐसा है जैसे आकाश पर बादल आ जाते हैं लेकिन जब बादल दूर हो जाएं तो आकाश साफ उसी तरह रहता है, वह नहीं जाता। इसी तरह परमात्मा अमर है। कबीर जी कहते हैं, मुझे आपका बैराग प्यारा हो गया है। यह जीव आकर किधर जाए ? यह कौतुक अच्छा है कि पांच तत्व मिला कर शरीर को बनाया है। यह तत्व कहां से आए ? भाव तत्वों का कर्त्ता भी तो आप हैं। कर्मों के कारण ही सब कुछ है, सब आपकी कृपा है। मेरा शरीर आप में है तथा आप मेरे शरीर में हो, आप तो हर जगह प्रवेश रखने तथा करने वाले हो। इसलिए मैंने आपका नाम नहीं छोड़ना चाहे कुछ भी हो। बादशाह मारे या जीवित रखे।

किनारे खड़े लोगों ने जब देखा तो उन्होंने शोर मचा दिया। बादशाह

ने बहुत बुरा किया, भक्त को पानी में डुबा दिया। सल्तनत गर्क हो जायेगी। ओ कबीर मत डूबना ! भगवान ! बचाना ! पर जिसका रक्षक राम है, उसको कौन मारे ? ज्यों ही कबीर ने 'राम तेरा आसरा' कहा तथा शब्द उच्चारण किया तो हाथों-पैरों की जंजीरें अपने आप टूट गईं। हाथ तथा पैर आज़ाद हो गये। पानी में एक डुबकी लगाने के बाद कबीर जी गंगा के पानी के ऊपर तैरने लग गए। पालथी बंध गई 'राम ! राम' का सिमरन करते हुए ऐसे बैठ गए, जैसे धरती पर आसन लगा कर बैठे होते हैं। पानी की लहरों का झोंका भी नहीं पड़ता था, लोग देख-देख कर हैरान हो रहे थे। कबीर के श्रद्धालु 'धन्य कबीर ! राम नाम ! जै सीता राम' उच्चारण करने लगे।'

नौका के मल्लाह, सिपाही तथा जल्लाद अंधे हो गये। नौका डूबने लगी। अपनी दुर्दशा पर वे दुहाई देने लगे। कोई बचाए ! कोई बचाए ! उन्होंने शोर मचा दिया, कबीर ने कुछ कर दिया, हमें चोटें लग रही हैं, पर उनको बचाए कौन ? किनारे खड़े लोगों को नौका दिखाई नहीं देती थी। नौका उल्टी हो गई जिससे जल्लाद, मल्लाह तथा वजीर डूब कर मर गए। गंगा का अथाह जल उन्हें बहा कर आगे ले गया। देखने वाले भयभीत हो गए।

दूसरी तरफ कबीर जी पानी की सतह पर पालथी मार कर बैठे थे, वह राम की महिमा कर रहे थे।

गंग गुसाईनि गहिर गंभीर ।। जंजीर बांधि करि खरे कबीर ।।१।।
मनु न डिगै तनु काहे कउ डराई ।। चरन कमल चितु रहिओ समाई ।। रहाउ ।। गंगा की लहरि मेरी टुटी जंजीर ।। म्रिगछाला पर बैठे कबीर ।।२।। कहि कंबीर कोऊ संग न साथ ।। जल थल राखन है रघुनाथ ।।

(पन्ना ११६२)

धीरे-धीरे जल अपने आप ही उनको घाट की तरफ ले आया,

जिस घाट पर रोज स्नान किया करते थे, उस घाट पर आ लगे। 'राम ! तेरा आसरा !' कह कर जल से उतरे तथा घाट की पत्थरीली सीढ़ी पर खड़े हो गए। किनारे पर खड़े कबीर के श्रद्धालु कबीर को देखते हुए घाट की तरफ आ गए थे। घाट पर पहुंच कर जब उन्होंने कबीर जी को कुशल देखा तो खुशी से गद्‌गद् हो गए। कबीर जी को प्रणाम करने लगे। आगे-आगे कबीर जी तथा पीछे लोग 'हरि नाम' का कीर्तन करते हुए शहर की तरफ चल पड़े, उनको रोकने वाला कोई न रहा। निंदकों के मुंह काले हुए।

लेकिन अपनी तरफ से कबीर को गंगा में डुबा कर बादशाह सिकंदर लोधी अपने महल को वापिस जा रहा था। चुगलखोर मौलवी तथा पंडित उसके साथ आ रहे थे। अभी अपने निवास स्थान पर नहीं पहुंचा था कि उनको संदेश मिला कि कबीर गुसाईं तो डूबा नहीं। वह तो हरि कीर्तन करता हुआ काशी के बाजारों में अपना जलूस लेकर घूम रहा है वह राम का रूप है। संदेश देने वाले ने साथ ही कहा 'हे बादशाह ! कबीर जादूगर है। वह पानी में नहीं डूबेगा, उसको आग में जलाओ। उसने तो जादू से जल्लाद, मल्लाह तथा सिपाही भी बेड़े सहित बहा दिए हैं। उसकी महिमा घटने की जगह बढ़ गई है। सारा शहर बादशाह सलामत को ही बुरा-भला कह रहा है। कबीर बल्कि ऊंची-ऊंची 'राम राम !' कहता है। वह मौलवी, काजियों तथा सरकारी हाकिमों को चिढ़ाता है। चुगलों के मुख से यह सुन कर बादशाह हैरान रह गया। वह सोचने लगा लोहे की जंजीरों से बंधा हुआ आदमी गंगा की लहरों में से कैसे बच गया। यदि यह आदमी इस तरह बच सकता है तो एक दिन बादशाही उल्टा सकता है, ऐसे आदमी को जरूर मारना चाहिए।' उसने वहां खड़े ही हुक्म दिया, 'कबीर को एक बार फिर मेरे सामने पेश करो, मैं उसे मारूंगा, खत्म करूंगा, यह नहीं हो सकता, कबीर जीवित रहे, एक जुलाहा भुलक्कड़

कहीं का, बादशाह कबीर जी की शान में बुरे शब्द बोलता गया।'

शाही सिपाही भाग उठे। जिधर कबीर जी के बारे पता चला वहीं जा पहुंचे। एक चौराहे के बीच शब्द पढ़ रहे कबीर को जा दबोचा। 'चलो ! तुम्हें बादशाह सलामत बुलाते हैं। उनका सख्त हुक्म है। जल्दी चलना होगा, यह आप क्या कर रहे हो ?

'चलो भाई बादशाह की जैसी इच्छा है, मनमर्जी कर ले। ले चलो ! कबीर बादशाह से डरता नहीं क्योंकि कबीर का पातशाह बड़ा है। मुझे अपने राम पर भरोसा है।' शाही सिपाही कबीर जी को ले कर बादशाह के पास चले गए।

कबीर जी को आग में फैंकना

हे भक्त जनों ! दुनिया के बादशाह सिर्फ उन लोगों को डरा-धमका सकते हैं, जिनका मोह-माया के साथ प्रेम हो, क्योंकि वह मृत्यु से भय खाते हैं। उनका चित्त नहीं करता अपने जीवनकाल में माया को त्यागने का, पुत्र, पुत्री, घर, स्त्री और उनकी बजाय शरीर से प्यार करते हैं। ऐसा प्रेम उन्हें भयभीत करता है लेकिन जो भक्तजन मोह-माया से दूर हैं उनका बादशाही डर कुछ नहीं बिगाड़ सकता, ऐसे राम भक्त कबीर जी थे, उनकी अगली साखी श्रवण करो।

बादशाह के सिपाहियों ने आकर कबीर जी को फिर घेर लिया। जब सिपाहियों ने पुनः कबीर जी को पकड़ लिया तो यह देखकर माई लोई, कमाल तथा कमाली के अलावा शेष सारे जुलाहे, जो कबीर जी के भक्त थे वे सब डर गए। उन्होंने शाही सैनिकों को काफी समझाने-बुझाने का प्रयास किया लेकिन समझता कौन ? अंत में वे बादशाह के पास चल पड़े।

सारे एकत्रित होकर बादशाह के आगे फरियाद करने लगे। उन्होंने बादशाह से अर्ज की-'हे बादशाह ! कबीर जी प्रभु के अनन्य भक्त

हैं। यह किसी का कुछ बिगाड़ते नहीं, लोग यूं ही ईर्ष्या करते हैं। इन्हें कृपा करके छोड़ दें। हो सकता है ईश्वर के प्यारे को कष्ट देने से कोई विपदा टूट पड़े।'

यह सुनकर बादशाह टस से मस न हुआ। वह अहंकार के नशे में ही रहा और उसने हुक्म किया-'कबीर को उतनी देर तक नहीं छोड़ा जाएगा जितनी देर तक वह 'राम' का नाम लेना छोड़ कर इस्लाम कबूल नहीं करता। इस तरह वह एक मत में आ जाएगा। बहुतेरे मतों में रहना उचित नहीं। यह हिन्दू एवं मुसलमान दोनों को तंग करता है।'

कबीर के सारे श्रद्धालु निराश हो गए, उन्होंने उम्मीद छोड़ दी कि बादशाह उनकी विनती नहीं मान रहा। उनके हृदय राम जी के आगे प्रार्थना करने लगे कि राम अपने भक्त की रक्षा करें। इस तरह सारे काशी शहर में हाहाकार मच गई। चारों तरफ शोर फैल गया। लेकिन ईर्ष्या करने वाले पंडित प्रसन्न थे। वह तो लोगों को कबीर जी के विरुद्ध भड़काते रहते थे।

उधर कबीर जी बादशाह के पास पेश हुए। कबीर जी निडर थे, उनके चेहरे पर राम नाम की लाली थी। जब बादशाह के पास जा कर खड़े हुए तो उन्होंने फिर सलाम नहीं की। यह देख कर बादशाह क्रोधित हो गया तथा कबीर जी को कहने लगा-

'यह तुम्हारे लिए ठीक नहीं कबीरा ! अभी भी मेरा कहना मान जाओ 'राम' नाम छोड़ दे। सच्चा मुसलमान बनो, नहीं तो मैं बहुत बुरा करूंगा, तुम्हारे सारे परिवार को बेलन में से बेल फैंकूगा। तुम्हारे टुकड़े किए जाएंगे। आगे तो तुम जादू के दांव-पेच के कारण बच गए, अब आग में जलाए जाओगे। जरा सोचो ! तुम्हारा जन्म मुसलमान के घर हुआ और तुम हिन्दू बने फिरते हो, जरा शर्म करो, हमने अब तुम पर कोई दया नहीं करनी। शाही हुक्मों को तो तुम जानते ही

हो कि कितने सख्त होते हैं। लेकिन कबीर जी ने बाणी द्वारा उत्तर दिया-

कबीर जिह दरि आवत जातिअहु हटकै नाही कोई ॥
सो दरु कैसे छोडीऐ जो दरु ऐसा होई ॥६६॥

(पत्रा १३६७)

अर्थात्-जिस राम के दरबार अथवा द्वार पर आते कोई रोकता नहीं, उस प्यारे के दर (दरवाजे या घर) को कैसे छोड़ दूं, वह तो सत्य का दर है।

कबीर कूकरु राम को मुतीआ मेरो नाऊ ॥
गले हमारे जेवरी जह खिंचै तह जाऊ ॥१४॥

हे बादशाह ! कबीर तो राम का कुत्ता है मोती नाम है। राम ने मेरे गले में रस्सी डाली हुई है, जिधर खींचता है उधर ही मुड़ पड़ता हूं, मेरे वश की कोई बात नहीं, राम का वफादार आदमी हूं।

''कहि कबीर भै सागर तरन कऊ मै सतिगुर ओट लईओ ॥''

(पत्रा ३२६)

कबीर जी कहते हैं डर रूपी समुद्र को तैरने के लिए मैंने सच्चे करतार का सहारा लिया है। इस तरह दिलेरी से कबीर जी बादशाह को सुनाते गए। उन्होंने सत्य कहने का फैसला किया था, जो होना था, वह तो होकर ही रहना था, फिर डर किस बात का। उन्होंने कहा-

कबीर जोरु कीआ सो जुलमु है लेई जबाबु खुदाई ॥
दफतरि लेखा नीकसै मार मुहै मुहि खाई ॥२००॥
कबीर लेखा देना सुहेला जऊ दिल सूची होई ॥
उसु साचे दीबान महि पला न पकरै कोई ॥२०१॥

(सलोक कबीर जी)

अर्थात्-(बादशाह आज) जो धक्का करता है, वह जुल्म बहुत बड़ा पाप करता है। अल्लाह-ईश्वर के मुख्यालय में उसके कर्मों का

जब लेखा होगा तो पाप का तराजू भारी निकलेगा। जब पाप अधिक हुए तो उसके मुख पर थप्पड़ लगेंगे। पापों का फल उसे भुगतना पड़ेगा, वार टल नहीं सकेगा।

यह भी समझो कि लेखा देना तभी सरल होता है, यदि दिल में सच्चाई हो, क्योंकि सच्चे परमात्मा की दरगाह में कर्मों के बिना कोई सहायता नहीं कर सकता। वहां कोई जमानती भी नहीं बनता, वहां तो नेक कर्म ही काम करते हैं।

यूं उत्तर देता हुआ कबीर जोर-जोर से ऊंची आवाज़ में कहने लगा, 'राम ही राम है, बंधू सारे राम ही राम हैं।'

कबीर लागी प्रीति सुजान सिउ बरजै लोगु अजानु ॥
ता सिउ टूटी किउ बनै जा के जीअ परान ॥२१७॥

वाह ! प्यारे के साथ प्यार जुड़ा, लेकिन मूर्ख व्यक्ति रोकते हैं। यदि प्यारों के साथ प्यार टूट गया तो मृत्यु हो जाएगी।

सिकंदर लोधी हैरान हो गया कि एक मामूली जुलाहा दिल्ली के बादशाह से नहीं डरता। मृत्यु से भय नहीं खाता। अच्छा ! मैं भी सिकंदर हूं। अवश्य ही इसे सीधे मार्ग में लगाऊंगा। यह कहकर उसने अहंकार किया, वह क्रोध से कांपा तथा आंखें लाल करते हुए उसने अहलकारों को हुक्म किया कि लकड़ियां एकत्रित की जाएं। उन लकड़ियों में कबीर को बैठा कर जला दो। पानी से तो बच गया, आग से कैसे बचेगा ? हां, लकड़ियां आधी नीचे रखना तथा आधी ऊपर रखना। पहरा सख्त कर दिया जाए यदि इस बार भी यह बच गया तो याद रखना आपकी जान नहीं बचेगी। आप जान-बूझकर कबीर को नहीं मारते।

यूं डांटकर बादशाह तम्बू में चला गया। उसका दिल कांपने लग पड़ा था, पर बादशाही अहंकार उसको विपरीत चला रहा था। जल्लादों ने कबीर जी को बांध लिया तथा उजाड़ में ले गए।

बादशाह के आदमी कबीर जी को जंगल में ले गए। उसी तरह जिस तरह कभी राजा सलवान के कहने पर उसके पुत्र पूरन को जंगल की तरफ ले गए थे। आग में जलाए जाने का हुक्म सुन कर लोग बहुत भयभीत हो गये कि अब तो कबीर जी अवश्य ही नहीं बचेंगे, बादशाह कहर ढा रहा है, इसकी बादशाही जरूर गर्क होगी।

सरकारी आदमियों ने जंगल में पहुंच कर बहुत सारी लकड़ियां इकट्ठी कीं। लकड़ियों के ढेर पर कबीर जी को बिठा दिया। उसी तरह जैसे 'राम जी' के हुक्म से सत्य धर्म की परीक्षा देने के लिए सीता जी कभी अग्नि परीक्षा के समय प्रसन्नचित चिता में बैठ गई थीं। नीचे-ऊपर लकड़ियां रख दीं, जैसे कबीर जी, परलोक गमन कर गए थे। हजारों लोग चारों तरफ खड़े देख रहे थे, सब के दिल कांपते, आंखें रोती थीं पर खामोश थे। बादशाही हुक्म के कारण कोई कुसक नहीं सकता था, नंगी तलवारों का पहरा था।

उन्होंने चारों तरफ से एक बार ही आग लगाई। सूखा ईंधन था पल में ही अग्नि का प्रचंड जल उठा। देखने वाले कलयुग के लोगों ने आहें भरी तथा कहा-'आज कबीर मर गया, अब नहीं बचेगा।' पर कबीर को भरोसा था कि उस के राम ने उसे अभी नहीं मारना और वह नहीं मरेगा, मारना जीवित रखना सब राम के हाथ है।

वाह ! आग की लपटें निकलीं, सारी लकड़ियां आग की लपेट में आ गई। सभी रखवाले दो दो गज पीछे हो गए क्योंकि ताप दूर-दूर जाता था। दूर से देखते रहे कि किसी करामात से कबीर आग में से निकल जाता है या नहीं। तीन घंटे आग जलती रही। तीन घंटों के बाद सरकारी कर्मचारियों को ऐसे प्रतीत होने लग पड़ा जैसे अब राख का ढेर ही रह गया है, उनको दृढ़ विश्वास हो गया कि इस बार कबीर जीवित नहीं रहा, उसकी हड्डियां भी जल कर राख हो चुकी होंगी। अब पानी फैंक कर चिता को बुझा कर गंगा में फैंक

देना चाहिए, उन्होंने पानी की मशकें मंगवाई–चिता को ठंडा किया, ठंडा करके जब राख को कुरेदा तो नीचे से कबीर जी जीवित निकले। उनके न ही आसपास के कपड़े जले और न ही खड़ाऊं जलीं। वह उठ कर राम ! राम ! कहने लग पड़े। उन्होंने सब से पूछा, राम जनो ! आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? मेरा राम रखवाला।'

जैसे अग्नि के ताप से सोना कुंदन हो जाता है चमक मारता है वैसे ही चिता में से निकल कर कबीर जी और भी नूर-नूर हो गए। उनके चेहरे का नूर सहन नहीं किया जा रहा था। वह सचमुच भगवान रूप हो गए थे। दोनों दण्डों में उनके राम ने उनको अपना हाथ देकर बचा लिया।

'कबीर जला नहीं, उसे आग ने नहीं जलाया, वह सचमुच राम भक्त है।' इस तरह काशी के हर वासी के मुख से अपने आप शब्द निकल रहे थे। हर तरफ कबीर की शोभा हो रही थी। कबीर का परिवार जो शोक में बैठा था वह खुश हो गया। माता लोई खुशी में फूली नहीं समा रही थी। राम ने उसके पति को बचा लिया था। कबीर का यश काशी की गलियों में गूंजने लगा। जो कोई सुनता वही कबीर जी के दर्शन करने जाता।

काशी के कोतवाल एवं अन्य सरकारी अहलकारों को सख्त हुक्म था कि जैसे भी हो कबीर को अवश्य मारना। यदि वह जीवित रह गया तो आपको मार दिया जायेगा। हुक्म भी पूरा करना कठिन हो गया।

आग में से निकले कबीर जी को उन्होंने फिर पकड़ लिया। हाथों - पैरों में जंजीरें तथा हथकड़ियां डाल कर फिर कबीर को जकड़ लिया। वह मूर्ख यह नहीं समझे कि कबीर राम–अंश है। यह अमर है, नहीं मरेगा। उन्होंने फैसला किया कि बादशाह को बिना बताए ही हाथी के आगे फैंक कर कबीर को मार दिया जाए। इसलिए योजना को

पूरा करने के लिए उतावले हो गए। वह यह न समझें कि जिसे आग ने नहीं जलाया, वह कैसे मरेगा।

कबीर जी को हाथी के आगे फैंकना

धर्मात्मा धर्म नहीं छोड़ता तथा बुरा बुराई का त्याग नहीं करता। बुरे के बाद बादशाही हठ वाला, उससे भी बुरा माना गया है। मनुष्य बादशाही हठ में अनेकों कुकर्म करता रहता है तथा जुल्म से बाज नहीं आता, यहां तक कि मृत्यु के पड़ाव तक पहुंच जाता है। इस सृष्टि पर अनेकों ऐसे बादशाह हुए हैं, जिन्होंने संतों-भक्तों को कष्ट दे कर अपना सर्वनाश किया। अवतार पैगम्बरों पर अपनी मनमानियां एवं अत्याचार करते आए, ऐसे ही आदमी सिकंदर लोधी के थे। जो कबीर भक्त जी को मारने पर तुले थे। अज्ञानी पुरुष परमात्मा की शक्ति की तरफ से आंखें बंद कर लेते हैं। कबीर जी तो गाते फिरते थे

कहत कबीर पंच को झगरा झगरत जनमु गवाईआ ॥
झूठी माईआ सभु जगु बाधिआ मै राम रमत सुखु पाईआ ॥

(आसा कबीर जी, पन्ना ४८१)

पर बादशाह के मूर्ख लोगों को वह कोई वर-श्राप नहीं देते थे, वह कहते थे साकत पुरुष अपने कर्मों का फल कड़वा खाता है। वह समझाने से नहीं समझता-

कहा सुआन कउ सिम्रिति सुनाए ॥ कहा साकत पहि हरि गुन गाए ॥१॥ राम राम राम रमे रमि रहीऐ ॥ साकत सिउ भूलि नही कहीऐ ॥१॥ रहाउ ॥ कऊआ कहा कपूर चराए ॥ कह बिसीअर कउ दूधु पीआए ॥२॥ सतसंगति मिलि बिबेक बुधि होई ॥ पारसु परसि लोहा कंचनु सोई ॥३॥ साकतु सुआनु सभु करे कराईआ ॥ जो धुरि लिखिआ सु करम कमाइआ ॥४॥

अंम्रितु लै लै नीमु सिंचाई ॥ कहत कबीर उआ को सहजु न जाई ॥५॥७॥२०॥

(आसा कबीर, पन्ना ४८१)

इसका भाव है कि हे पुरुषों ! साकत भगवान के ज्ञान को न समझने वाले नास्तिक पुरुष को कुछ नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उसने कोई बात नहीं माननी। उसकी तो दशा कौए जैसी है, जैसे कोई कौए को कपूर खिलाए तथा सांप को दूध पिलाए या अमृत जल नीम को डाले तो नीम मीठी नहीं होती, उनको आत्मिक शक्ति का ज्ञान नहीं होता। ऐसे मूर्ख पुरुष को समझाने का क्या लाभ।

यह फैसला किया गया कि कबीर को मस्त हाथी के आगे फैंकना है, इसलिए हाथी को लाया गया। महावत को बताया गया कि उसका हाथी कबीर जी को कुचल फैंके। क्योंकि बादशाही हुक्म कबीर को मार देने का था। कबीर जी ने स्वयं इस संबंध में शब्द उच्चारा है। आप जी फरमाते हैं–

गोंड कबीर ॥

भुजा बांधि भिला करि डारिओ ॥ हसती क्रोपि मूंड महि मारिओ ॥
हसति भागि कै चीसा मारै ॥ ईआ मूरति कै हउ बलिहारै ॥१॥
आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोरु ॥ काजी बकिबो हसती तोरु ॥१॥ रहाउ ॥
रे महावत तुझु डारउ काटि ॥ ईसहि तुरावहु घालहु साटि ॥
हसति न तोरै धरै धिआनु ॥ वा कै रिदै बसै भगवानु ॥१॥
किआ अपराधु संत है कीन्हा ॥ बांधि पोट कुंचर कउ दीन्हा ॥
कुंचरु पोट लै लै नमसकारै ॥ बूझी नहीं काजी अंधिआरै ॥३॥
तीनि बार पतीआ भरि लीना ॥ मन कठोरु अजहू न पतीना ॥
कहि कबीर हमरा गोबिंदु ॥ चउथे पद महि जन की जिंदु ॥४॥१॥४॥

(गोंड कबीर जी, पन्ना ८७०)

जिसका भावार्थ है–कबीर जी बताते है, हाकिमों ने मेरे बाजू व

तन को बांधा तथा गुच्छम-गुच्छा करके हाथी की सूंड के आगे फैंक दिया। उस समय हाथी बहुत गुस्से में था, पर जैसे ही कबीर जी गिरे तो हाथी उल्टा चिल्लाने लग पड़ा उसने तो उनसे पूछना चाहा, 'ऐ मूर्खो ! यह क्या करते हो ! इस मूर्ति कबीर जी पर तो मैं बलिहारी जाता हूं, ऐसे पुरुष को मेरे आगे फैंका, जो राम का भजन करता है ! वाह दाता ! यह क्या खेल है ?

कबीर जी कहते हैं, अद्‌भुत चमत्कार था, हे मेरे ठाकुर ! तुम्हारी लीला अपरम्पार है। काजी महावत पर क्रोधित होता था कि वह हाथी को आगे भेजे। यहां तक कि महावत को क्रोध से कहता था, नहीं तो तुम्हें मरवा दूंगा। इसको चाबुक मार कर भेजो ताकि कबीर भक्त इसके पांव नीचे कुचला जाये। कबीर जीवित नहीं रहना चाहिए। पर महावत आगे से हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। उसने कहा-हे काजी ! देखते नहीं मैं चाबुक मार रहा हूं, पर हाथी तो एक पैर भी आगे नहीं होता। मेरा क्या जोर ! ऐसा लगता है कि इसके हृदय में भगवान बसता है। यह भी प्रश्न उठता है कि बताओ तो भला साधू ने क्या गुनाह किया है जो उसको पोटली की तरह बांध कर हाथी के आगे फैंक दिया। देखते नहीं ? अंधे हो ! हाथी तो उसको नमस्कार कर रहा है। मूर्ख काजी न समझा। वैसे भी वह अज्ञानी था जिसने कि तीन बार परख की, पर उसका कठोर मन अभी भी न माना। पर कबीर जी कहते हैं, हमारा गोबिंद चौथे पद में रहता है, किसी को दिखाई नहीं देता तथा हरेक की रक्षा करता है। बात क्या कि हाथी कबीर जी को कुछ कहने के स्थान पर दूसरी तरफ जंगल को भाग उठा। महावत को फैंक कर मार दिया। वह जंगल को ऐसा गया, फिर न आया, उसने राज सेवा छोड़ दी। हाथी की योनि से छुटकारा पा कर राम जी की मर्जी से जीवन मुक्त हो गया। काजी तथा हाकिम हाथ मलते रह गए। उनके हाथ कुछ न आया।

काजी मुल्ला, पंडित सब शर्मिन्दा हुए जो कबीर जी के शत्रु थे। पर कबीर जी के श्रद्धालु तो ऊंची-ऊंची बोल कर कहने लगे- 'कबीर महान भक्त है। राम का भक्त।'

अहलकार बादशाह सिकंदर लोधी के पास पहुंचे। उन्होंने कहा 'हे बादशाह सलामत ! वह तो नहीं मरता। आग, पानी तथा हाथी उसको मार नहीं सके। वह तो सचमुच ही कोई खुदा का बंदा है। सारी काशी में बल्कि उसका यश होने लग गया है जो ब्यान नहीं किया जाता, सारे लोग बादशाह की निंदा कर रहे हैं। काजी तथा पंडितों को लोग फिटकारें दे रहे हैं। मामला इस तरह का है, बताओ अब क्या करें। हम तो बहुत तंग आ गए हैं। हमारे घर के बाल-बच्चे सब परेशान हैं, बीमार पड़ गये हैं।'

सिकंदर लोधी बादशाह सतिगुरु नानक देव जी को भी मिला था, पर अहंकार के कारण उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। वह शीघ्र ही गुरु जी के वचनों को भूल गया था, अपनी मन मानियां करने लगा था। कबीर जी के आग में न जलने की वार्ता सुन कर उसकी सोई आत्मा जाग पड़ी। हाथी ने भी कबीर को नहीं मारा। इस बात से उसको ज्ञान हुआ व आंखें खुलीं। अपनी मूर्खता पर वह पछताया। सारी बात सुन कर उसने अहलकार को कहा, क्या कबीर को एक बार और बुला कर ला सकते हो मेरे पास ?

'जैसे बादशाह सलामत की आज्ञा हो।' नफर ने उत्तर दिया था।

'अच्छा जाओ ! उसको बुला कर लाओ, देखो ! परेशान मत करना। अप-शब्द मत बोलना, आदर के साथ ले कर आओ, देखो वह खुदा का बंदा है, कहीं नाराज न हो जाए। उसका आदर करते आओ। कहो बादशाह क्षमा मांगता है। जाओ ! देर न करो।'

बादशाह का फरमान सुन कर नफर कबीर जी को लाने के लिए दौड़ गए। पहले घर पहुंचे, कबीर जी घर नहीं थे। फिर साधुओं के

डेरों पर पहुंचे पर वहां भी न मिले, गंगा के किनारे पता चला तो वह उधर गए। जब नजदीक गए तो क्या देखते हैं कि कबीर जी पालथी मार कर समाधि लगा कर बैठे हैं। ध्यान राम के चरणों में लीन है। आंखें बंद हैं। दशम द्वार पर पहुंचे हुए अपने राम का यश कर रहे हैं।

नफरों ने जा कर आवाज़ें दीं। कबीर जी ! कबीर जी ! पांचवी आवाज़ पर कबीर जी ने नेत्र खोले। नफरों की तरफ देखा पर मुंह से कुछ न बोले। नफरों ने प्रार्थना की-महाराज ! बादशाह सिकंदर लोधी आप को याद करते हैं। वह आप से क्षमा मांगना चाहते हैं।

'याद करते हैं क्यों ?'

'वह बादशाह, हम राम के सेवक।' कबीर जी ने पूछा।

'महाराज दर्शन करने के लिए।' नफर ने कहा।

'वाह ! मेरे राम तेरी महिमा अपरम्पार है। भूले भटकों को अच्छाई के मार्ग पर लगा देता है। मेरे दर्शन! एक गरीब जुलाहे के दर्शन! यह तो राम ही जाने। अच्छा, चलो भाई चलते हैं। मेरे राम की यहीं आज्ञा है।'

कबीर जी शाही नफरों के साथ बादशाह के निवास पर पहुंचे, पर बादशाह आगे से नंगे पांव स्वागत करने के लिए आया। उसने झुक कर कबीर को सलाम किया। पहले तो खुद सलाम करवाने के लिए कबीर को मौत का हुक्म देता था पर अब स्वयं कबीर जी के चरणों में गिर पड़ा। बड़े आदर से कबीर जी को अपने तम्बू में ले गया। आदर-सत्कार के साथ बिठा कर दोनों हाथ जोड़ कर प्रार्थना की तथा भूलों की क्षमा मांगी। कबीर जी ने उसको नेकी करने का उपदेश दिया।

कबीर जी ने अपने स्वभाव के अनुसार उपदेश दिया :

लंका सा कोटु समुंद सी खाई ॥ तिह रावन घर खबरि न पाई ॥१॥ किआ मागउ किछु थिरु न रहाई ॥ देखत नैन चलिओ जगु जाई ॥१॥ रहाउ ॥ इकु लखु पूत सवा लखु नाती ॥ तिह

रावन घर दीआ न बाती ॥२॥ चंदु सूरजु जा के तपत रसोई ॥
बैसंतरु जा के कपरे धोई ॥३॥ गुरमति रामै नामि बसाई ॥
असथिरु रहै न कतहूं जाई ॥४॥ कहत कबीर सुनहु रे लोई ॥
राम नाम बिनु मुकति न होई ॥

(आसा कबीर जी, पन्ना ४८१)

कबीर जी हंस कर बोले, 'हे दुनिया के बादशाह। आपने कहा है कि कबीर मांग ले जो कुछ मांगना चाहता है। आपके पास धरती है, दौलत है, सोना-चांदी है, पर जब हम ध्यान से देखते हैं तो नजर आता है कि यह माया है, जो स्थिर नहीं। न राज स्थिर रहना तथा न दौलत। धरती पर कई आए, कई गए। आपका दावा भी झूठा है, क्या पता कितनी देर रहना है ? अन्य कोई बलवान राजा या बादशाह आ जाए, वह आपको धर के आगे ले जाए।

ऐसे बादशाह सिकंदर लोधी को उपदेश करते हुए उदाहरण देते हैं-हे बादशाह ! दुनिया में लंका का पातशाह हुआ है रावण। उसकी लंका तथा इतना बड़ा किला था कि उसके चारों तरफ समुद्र के जैसी गहरी खाई खोदी हुई थी, भाव उसको कोई जीत नहीं सकता था, पर उस रावण के घर का आज कोई पता नहीं लगता।

'क्या मांगू कुछ रहने वाला नज़र नहीं आता। देखते-देखते सब कुछ चला जा रहा है। सब चले जा रहे हैं। उसी रावण के जिसकी मैंने बात की है, एक लाख पुत्र थे तथा सवा लाख नाती। पर जब श्री रामचन्द्र से युद्ध हुआ तो उसके घर कोई दीया बाती जलाने वाला भी न रहा। आप तो बादशाह अभी छोटे हो, उस रावण ने तपस्या के बल पर ऐसी शक्ति प्राप्त की थी कि चांद तथा सूरज उसकी रसोई पकाते थे, आग कपड़े धोती थी, भाव प्राकृतिक शक्तियां भी उसकी आज्ञा मानती थीं। जब ऐसे लोग नहीं रहे तो अन्य क्या रह जाना है। इस तरह अहंकार करना, राम भक्तों को तंग करना, दुःख

देना, यह तो पातशाहों को शोभा ही नहीं देता। जीवन की सच्चाई की आवश्यकता है। इसलिए हरेक को समझ लेना चाहिए कि परमात्मा की भक्ति के बिना सब झूठ है। झूठ चमत्कार जरूर दिखाता है, पर अंत राख ही राख है। क्या पता किस शुभ कर्मों के कारण आप को राज मिला है। आगे शुभ कर्म करो ताकि किसी लेखे जीवन पड़े धर्म का राज हो। धर्म ही तो मानव जीवन का लक्ष्य है।

ऐसे उपदेश सुन कर बादशाह सिकंदर लोधी को कुछ होश आई। ज्ञान हुआ तथा कबीर जी का आदर करता हुआ काशी से चला गया। कबीर जी के यश का डंका चारों ओर बज गया। हर तरफ उनकी शोभा होने लगी। राम धुनि गाई जाने लगी।

कबीर जी का उपदेश

कबीर जी का यश काशी शहर के घर-घर में फैल गया। अनेकों गुरमुख, संत, फकीर तथा कई यात्री दर्शन करने आ जाते। कबीर जी कई बार गंगा किनारे बैठ कर कथा उपदेश तथा वचन-विलास करते रहते तथा कई बार कोई न कोई जिज्ञासु प्रश्न कर देता तथा उसके वचन-विलास शुरू हो जाते। एक बार कबीर के पास एक साधू को पकड़ कर लाया गया, जिसने किसी की गठड़ी उठाई थी उसमें कीमती माल था। साधू को पकड़ कर लाने वालों ने बड़ा शोर मचाया। साधू को मारने पर तुले कि इस ने साधू वेष को धब्बा लगाया है। इसे ऐसा नहीं करना चाहिए।

कबीर जी ने सबको शांत रहने के लिए कहा तथा उस साधू को बिठा कर विवेक से पूछा-

कबीर जी-'क्यों भद्रपुरुष ये चीजें तुमने उठाई हैं ?'

साधू-'हां, जी ! मैंने उठाई थी गठड़ी तथा... !'

कबीर जी-'क्यों उठाई ? क्या आवश्यकता थी किसी वस्तु की ?'

साधू–'नहीं जी ! आवश्यकता तो कोई नहीं थी।'

कबीर जी–'फिर क्या कारण था इस गठड़ी को उठाने का ?'

साधू–'महाराज ! इसमें स्वर्ण की वस्तु तथा कुछ सोने की मोहरें थी। वह स्वर्ण मन में लालच ले आया। अनेकों यत्न करने पर भी महाराज ! माया पीछा नहीं छोड़ती। घर त्याग दिया, स्त्री छोड़ी, पर ऐसा हो जाता है। कभी सोना मन को आकर्षित करता है, कभी रूप तथा कभी यश। समझ नहीं आती। लालच अपमान भी बहुत करवाता है। फिर भी मन भारी भूल करता है, कुछ समझता नहीं।

यह सुन कर कबीर जी की वृति प्रभु चरणों में लग गई, उन्होंने उस साधू तथा पास बैठे व्यक्तियों को उपदेश करने के लिए बाणी का उच्चारण किया–

बिंदु ते जिनि पिंडु कीआ अगनि कुंड रहाईआ ।।
दस मास माता उदरि राखिआ बहुरि लागी माईआ ।।१।।
प्रानी काहे कउ लोभि लागे रतन जनमु खोईआ ।।
पूरब जनमि करम भूमि बीजु नाही बोइआ ।।१।। रहाउ ।।
बारिक ते बिरधि भईआ होना सो होइआ ।।
जा जमु आई झोट पकरै तबहि काहे रोइआ ।।२।।
जीवनै की आस करहि जमु निहारै सासा ।।
बाजीगरी संसारु कबीरा चेति ढालि पासा ।।३।।

(पन्ना ४८१-८२)

कबीर जी ने इसका परमार्थ भी स्वयं ही बताया, हे साधू तथा श्रद्धालु जनो ! यही तो मनुष्य के लिए जीवन संघर्ष है कि ईश्वर ने जब शरीर बनाया, माता के गर्भ अग्निकुंड में रखा तो दस महीने के बाद जन्म लेने के साथ ही माया का साया डाल दिया। माया साया बन कर ऐसी पीछे लगती है कि जीव को दिखाई नहीं देती। केवल अंदर ही अंदर कहती जाती है 'यह मेरा, यह मैं ! मेरी–मैं बड़ा !'

इस माया से बचने के लिए दूसरा पक्ष है प्रभु का नाम लेना, उसका सिमरन करके माया से बचना। पर मनुष्य को माया के पदार्थ इतने स्वादिष्ट लगते हैं कि वह हीरे जैसे अमूल्य जीवन को गंवा बैठता है। पूर्व जन्म में किए कर्म से जो नाम बीजना है, वह नहीं बीजता। अथवा अच्छे कर्म नहीं किए।

यह समझना चाहिए कि बुढ़ापे में जब काल या यमों ने सिर से पकड़ा तो क्या उत्तर देगा ? फिर रोयेगा, पर रोने से कोई लाभ नहीं। मिन्नतें करेगा, पर किसी ने दया नहीं करनी।

उस समय आशा तो जीवन की होगी, पर यम तो सांस रोक लेंगे– हे भाई ! यह समझ लो यह संसार तो बाजीगर के खेल की तरह है। चाहिए कि नाम सिमरन करके किनारा बदल दिया जाए। यह चोरी, यारी सब माया के खेल हैं। इससे बचना चाहिए। कबीर जी ने और हुक्म किया–

जोगी जती तपी संनिआसी बहु तीरथ भ्रमना ।। लुंजित मुंजित मोनि जटाधर अंति तऊ मरना ।।१।। ता ते सेवीअले रामना ।। रसना राम नाम हितु जा कै कहा करै जमना ।।१।। रहाउ ।। आगम निरगम जोतिक जानहि बहु बहु बिआ करना ।। तंत मंत्र सभ अउखध जानहि अंति तऊ मरना ।।२।। राज भोग अरु छत्र सिंघासन बहु सुंदरि रमना ।। पान कपूर सुबासक चंदन अंति तऊ मरना ।।३।। बेद पुरान सिंम्रिति सभ खोजे कहू न ऊबरना ।। कहु कबीर इऊ रामहि जंपउ मेटि जनम मरना ।।४।।५।।

(पन्ना ४७६–७७)

हे भक्त जनो ! देखो माया का अर्थ है बदलना। माया स्थिर नहीं रहती। आप यदि माया से प्यार करेंगे तो भूल गये। शरीर भी तो पंच भूतक माया का विस्तार है। इसने अवश्य एक दिन मिट्टी में मिलना है, जिसको हम दुनिया वाले मरना कहते हैं, मरना सब ने हैं। यदि सब

ने मरना है तो अहंकार, मोह-माया, वासना के पीछे जन्म क्यों गंवाएं। कबीर जी ने फरमाया बड़े योगी, जती, तपी संन्यासी तीर्थ पर घूमने वाले साधू भी जो देखते हो, जो जैनी, मौन रहने वाले लम्बी जटाओं वाले हैं इन सब ने एक दिन मरना है। पहले मर गए बाकी मरते रहेगें। इस लिए ठीक तो यह है कि उस राम का सिमरन करें, जो रसना राम नाम जपती रहेगी तो जीवन के संसारिक तौर पर मरने पर भी यम-जिसका भय है-कुछ नहीं करेंगे। चाहे कोई शास्त्रों, वेदों, ज्योतिष विद्या का ज्ञानी तथा व्याकरण का कितना गुरु हो, वह कभी भी अमर नहीं रहेगा। मंत्र, जंत्र करता हो, चाहे लुकमान हकीम तथा धन्वंतरि की तरह दवाएं भी देता हो, फिर भी सब ने संसार छोड़ना है।

यह तो हुई योगी या संतों की बात, आप समझो जो दुनिया के लोग हैं राजा-महाराजा सिंघासन पर बैठते, सिर पर छत्र झूलते हों तथा सुंदर नारियां भोग के लिए असीम हों जिन्होंने ऐश्वर्य बनाए हों, इस तरह के लोग भी जो दिखते हैं, वे भी तो एक दिन काल के ग्रास बनते हैं, चाहे चंदन, कपूर सुंगधियां लगा कर रखी हों। उन्होंने भी मरना है। कबीर जी कहते हैं कि वेद, पुराण, स्मृतियां सब पढ़ कर देखी हैं, अभ्यास के बिना कुछ नहीं, अभ्यास से सब ठीक होता है। ज्ञान ही केवल अच्छा नहीं। नाम का सिमरन करना ही ठीक है। इसलिए भाई रात-दिन सभी नाम का सिमरन किया करो। यमों का भय दूर हो जायेगा। माया अपने आप ही असर न करेगी।

कबीर जी ने काशी को त्याग देना

बादशाह सिकंदर लोधी ने जब कबीर जी के चमत्कार देख लिये, ज्ञान सुना, जो ज्ञान सारी मानव जाति के कल्याण हेतु था तो हिन्दू, मुसलमान, शूद्र तथा वैश्य जो भी गरीब थे, वे कबीर जी के श्रद्धालु बनने लगे। ऐसी दशा देख कर काजी तथा पंडित, उच्च कुल साधू

सब ईर्ष्या करने लगे, उनकी ईर्ष्या के कारण कबीर जी ने मन में इरादा कर लिया कि काशी से बाहर कहीं ओर बसना चाहिए। निवास भी ऐसी जगह हो जहां लोग कम आ सकें, अपना नाम सिमरन का समय बचा रहे। ऐसी जगह पहुंचना चाहिए। सोचते-सोचते उन्होंने 'मगहर' जाने का मन बना लिया।

'मगहर' ऐसा स्थान था, जहां कोई नहीं रहता था। यह भ्रम था कि मगहर में रहने वाले लोग गधे की योनि में पड़ते हैं। हो सकता है, वहां बुरे लोग पहले रहते हो, या ऐसे पुरुष जो जुआ आदि खेलते हो, पर कबीर जी क्योंकि आत्मिक तौर पर बहुत ऊंचे हो गये थे, वह तो सारी धरती को राम की पवित्र मेहनत समझते थे। इसलिए आपने फैसला कर लिया। आपके यह विचार थे-

कबीर तेरी झौपड़ी गल कटिअन के पास ॥
करनगे सो भरनगे तुम किउं भए उदास ॥

निपटारा तो कर्मों से होना है। जो जैसा कर्म करेंगे उन्हें फल भी वैसा ही (मीठा अथवा कड़वा) प्राप्त होगा। दूसरे को क्या चिंता। इस प्रकार उन्होंने काशी त्यागने का फैसला कर ही लिया।

इस तरह परिवार सहित कबीर जी मगहर चले गए। कबीर जी के श्रद्धालु भी वहां ही पहुंच गए। ज्ञान चर्चा होने लगी। भक्ति के प्रताप से बुरी जगह भी अच्छी बन गई, चहल-पहल हो गई। जिस जगह पर रहने या मरने से गधे की योनि प्राप्त होती थी वहां मुक्ति सस्ते दाम पर मिलने लगी, लोग बहु संख्या में आने लगे। सारी धरती परमात्मा की बनाई हुई शुद्ध है। जन्म-मरन, नेक, बुरे, नरक-स्वर्ग का संबंध पुरुषों के कर्मों से है। काशी के लोग जो चोरी, ठगी, अत्याचार पाप करेंगे तो उसका भाव यह नहीं कि परमात्मा उनको दंड नहीं देगा। जनसंख्या को बढ़ाने तथा जगत को लूट खाने का ढंग था जो ग्रंथों के द्वारा प्रगट किया हुआ था। कबीर के 'राम सिमरन

प्रताप' ने मगहर को काशी जैसा चहल-पहल वाला स्थान बना दिया।

कबीर गुसाईं को अब हिन्दू-मुसलमान दोनों पूजने लगे। उसके शिष्यों में दोनों जातियां थीं। कबीर जी ने उपदेश देकर निम्न जातियों को ऊपर उठाया।

काशी छोड़ने के बारे कबीर ने आप वचन किया-

जिऊ जल छोडि बाहरि भइओ मीना ।। पूरब जनम हउ तप का हीना ।।१।। अब कहु राम कवन गति मोरी ।। तजी ले बनारस मति भई थोरी ।।१।। रहाउ ।। सगल जनमु सिव पुरी गवाइआ ।। मरती बार मगहरि उठि आइआ ।।२।। बहुतु बरस तपु कीआ कासी ।। मरनु भइआ मगहर की बासी ।।३।। कासी मगहर सम बीचारी ।। ओछी भगति कैसे उतरसि पारी ।।४।। कहु गुर गज सिव सभु को जानै ।। मुआ कबीरु रमत स्री रामै ।।५।।१५।।

(*पन्ना ३२६*)

परमार्थ-जैसे मछली जल से बिछुड़ कर दुःख प्राप्त करती है, मैं समझता हूं कि पूर्व जन्म में तप नहीं किया जिससे काशी को छोड़ना पड़ा है। हे राम ! अब मैंने काशी को छोड़ दिया है अब मेरी कैसे गति होगी। बुद्धि कम हो गई है, सारा जन्म मैंने काशी में व्यतीत किया, अंतिम समय मगहर में आ गया हूं। भारी तपस्या तो काशी में की लेकिन मृत्यु के समय मगहर में रहना पड़ा। काशी और मगहर में कोई भिन्नता नहीं। मुक्ति तो भक्ति ने देनी है। जिस तरह की भक्ति वैसा ही फल प्राप्त होगा। हे रामानंद जी श्री गणेश अंतर्यामी सब जानता है। कबीर जी काफी देर तक मगहर में रहते रहे।

अन्न की महिमा

कबीर जी मगहर आ गए। वहां भी रौनकें तथा चहल-पहल बढ़ गई। श्रद्धालु-सत्संगी भी आने लग गए और ज्ञान गोष्ठी होनी आरम्भ

हुई। सत्संग होता तथा मगहर ही एक धर्मशाला का रूप धारण कर गया।

कबीर जी हरेक संत-महात्मा को प्रसाद अवश्य खिलाया करते थे। उनका लंगर चलता रहता था। जो भी आता प्रसाद लेकर तथा शुद्ध वचन सुनकर आनंदित होता।

एक दिन दो साधू आए। वह सत्संग में बैठे रहे तथा जब भोजन का समय आया तो कबीर जी ने उनसे भोजन के लिए विनती तो आगे से उन्होंने निवेदन किया-

'महाराज ! हम भोजन नहीं ग्रहण करते। अन्न त्याग दिया है। कभी मिल जाए तो दूध पी छोड़ते हैं अन्यथा निराहार रहते हैं। ऐसा ही कुछ नियम बना लिया है। यह शरीर सदा वासना की तरफ़ दौड़ता है। इसे वश में रखना बेहतर है।

यह सुनकर कबीर जी मुस्करा कर कहने लगे, अन्न को छोड़ने से मन पर काबू नहीं पाया जा सकता बल्कि और बढ़ौत्तरी होगी, क्योंकि दोबारा दूध के लिए तथा अन्य पदार्थों की तरफ बढ़ेगा। उसकी वृद्धि और मृगतृष्णा लाएगी। यह आप भूल कर रहे हैं, ऐसा नहीं करना चाहिए। अन्न तो जीवन का मूल है। जो अन्न नहीं लेता वह तो परमात्मा के विपरीत चलता है।

भक्त जी की बात सुन कर साधू कुछ घबरा गए तथा उन्होंने भक्त जी की बात की तरफ सूक्ष्मता से ध्यान दिया। उनके हृदय कुछ धड़क गए, ध्यान जागृत हुआ कि भ्रम से जीवन तो नहीं बनता, यह तो एक कमजोरी है। वे विचार कर ही रहे थे कि कबीर जी ने वचन किया-

धंनु गुपाल धंनु गुरदेव ॥ धंनु अनादि भूखे कवलु टहकेव ॥
धनु ओइ संत जिन ऐसी जानी ॥ तिन कउ मिलिबो सारिंगपानी ॥१॥
आदि पुरख ते होई अनादि ॥ जपीऐ नामु अंन कै सादि ॥१॥ रहाउ ॥
जपीऐ नामु जपीऐ अंनु ॥ अंभै कै संगि नीका वंनु ॥

अंनै बाहरि जो नर होवहि ।। तीनि भवन महि अपनी खोवहि ।।२।।
छोडहि अंनु करहि पाखंड ।। ना सोहागनि न ओहि रंड ।।
जग महि बकते दूधाधारी ।। गुपती खावहि वटिका सारी ।।३।।
अंनै बिना न होई सुकालु ।। तजिऐ अंनि न मिलै गुपालु ।।
कहु कबीर हम ऐसे जानिआ ।। धंनु अनादि ठाकुर मनु मानिआ ।।४।।

(गोंड कबीर जी, पन्ना ८७३)

जिसका परमार्थ है-वह ईश्वर एवं गुरु देव पिता धन्य है जिसने अन्न पैदा किया है तथा धन्य है अन्न जो हृदय कंवल में प्रसन्नता ले आता है। भाव-जब मनुष्य अन्न ग्रहण कर लेता है तो उसके चेहरे पर खुशी की लहर आ जाती है तथा मन प्रसन्न हो जाता है। जो संत अन्न खाते हैं तथा अन्न का त्याग नहीं करते अपितु परमात्मा की भक्ति करते हैं उनको परमात्मा अवश्य प्राप्त होगा।

अन्न का कर्त्ता परमात्मा है, यदि अन्न त्याग दें तो भक्ति नहीं होती। अन्न के स्वाद से ही तो नाम जपते रहते हैं। आपने क्यों ऐसा किया कि अन्न को ही त्याग दिया। अन्न को त्यागना नहीं चाहिए। यह तो जीव को प्रफुल्लित रखता है। हे भाई ! जहां नाम को जपना है, वहां अन्न को भी जपना है, अन्न के जाप से जल का ख्याल कर लें तो वह भी ठीक है। जल से अन्न स्वादिष्ट होता है।

कबीर जी बड़ी दिलेरी से कहने लगे, अन्न के बिना जो नर होता है, वह तो समझें कि अपनी इज्जत गंवा देता है। अन्न के बिना कोई नहीं होता। जो अन्न को छोड़कर पाखंड करता है, वह तो उस औरत की तरह है, जिसका पति हो लेकिन चाहे न तो वह न सुहागिन होती है और न ही विधवा। ऐसा पुरुष पाखंडी होता है, जो उपवास रखता है। कभी यह यत्न न करो कि अन्न को छोड़ दिया जाए।

अनेकों साधू-महात्मा ऐसे हैं कि संसार में तो कहते हैं कि हम दूधाधारी हैं लेकिन अंदर घुसकर रात को अन्य कुछ और ही खा

लेते हैं। मरूंडे भी खाते रहते हैं, जिन में चावल होते हैं, अन्न के बिना कोई सुख नहीं। अन्न छोड़ने से गोपाल नहीं मिलता। कबीर जी ऐसा तो जान लिया है कि ठाकुर जी धन्य हैं जिन्होंने अन्न पैदा किया है। परमेश्वर की अपार कृपा है।

इस तरह साधुओं को ज्ञान हो गया तथा उन्होंने लंगर में से प्रसाद ग्रहण किया व आनंदित हो गए। साधू कबीर जी का यश गान करने लगे।

कबीर जी का निधन

कहै कबीरु एकै करि करना ॥ गुरमुखि होइ बहुरि नही मरना ॥

(गोंड कबीर जी, पन्ना ८७२)

कबीर जी प्रभु के अनन्य भक्त थे। प्रभु ने अपने भक्त की महिमा करवा कर उसे अपने पास बुला लिया तथा परमात्मा की तरफ से जितना समय नश्वर संसार में रहने के लिए मिला था, वह सारा समाप्त हो गया। कबीर जी की मृत्यु के अंतिम क्षण निकट थे। चारों तरफ खबरें पहुंच गईं कि भक्त कबीर जी तैयार हैं, इस नश्वर संसार को छोड़कर वह अपने राम के पास जा रहे हैं। जिस राम को याद करते हुए उनकी जिह्वा नहीं थकती थी। कबीर जी ने सब श्रद्धालुओं को कह दिया कि वह प्रभु के पास जा रहे हैं। इस बात पर झगड़ा होने लगा, लड़ाई का खतरा पैदा हो गया। हिन्दू कहने लगे कबीर हमारा है, यह हिन्दू है, हम दाह संस्कार करेंगे, रस्म किरया होगी। पर मुसलमान शोर मचाने लगे कि कबीर मुसलमान है, इनको धरती में दफना कर इनकी याद में एक शाही मकबरा बनाया जायेगा, यह वली हैं। हजरत मुहम्मद साहिब की बरकतों की इन पर वर्षा हुई है हम ऐसे वली को भला कैसे शराह से दूर रख सकते हैं। वह तो महान फकीर हैं, वली हैं, बिजली खां दलेर हुआ फिरता था।

उधर राजा बीर सिंघ हिन्दुओं का नेता था तथा बिजली खां पठान मुसलमानों का नेतृत्व कर रहा था। उसका मुकाबला कर रहा था राजा बीर सिंघ।

कबीर जी एक बंद कोठरी में अकेले लेटे हुए थे उनकी वृति भगवान से जुड़ी हुई थी। कोठरी का दरवाजा बंद था। हिन्दू-मुसलमानों का शोर सुन कर अंदर से आवाज आई-लड़ो मत आप दोनों हमारे लिए प्रिय हो। परमात्मा के रंगों की तरफ देखो। मेरे राम की लीला न्यारी है, नेक कर्मों का फल नेक है। दोनों पक्ष चुप हो गए। 'दो चादरें तथा कंवल फूल लाओ ! हम तुम्हारा फैसला करेंगे।'

सफेद चादरें मंगवा कर शिष्यों ने कबीर जी को अंदर पकड़ा दीं, एक घण्टे के बाद 'राम राम' की धुन आनी बंद हो गई। लोगों ने कहा, 'भाई अंदर देखो।' जब कोठरी का दरवाज़ा खोला तो धर्म दास मुख्य शिष्य बीर सिंघ तथा बिजली खां पठान अंदर गये। अंदर झांक कर देखा तो वे हैरानी से विस्माद में डूब गये। दोनों चादरें पड़ी थीं, उन चादरों के नीचे तथा ऊपर कंवल के फूल पड़े थे, पर कबीर जी की पंचभूतक देह अलोप थी, एक दूसरे के मुंह की तरफ देखते तथा 'राम नाम सत्य है। राम राम !' कहते हुए सभी बाहर आ गये। एक चादर बिजली खां पठान ने उठा ली तथा दूसरी राजा बीर सिंघ ने। मुसलमानों वाली चादर का क्या हुआ ? यह कुछ पता नहीं, पर हिन्दुओं ने काशी में कबीर जी की यादगार तैयार की जो अभी तक कायम है। कबीर जी के ज्योति जोत समाने का समय 1575 विक्रमी है, पर भक्ति के कारण कबीर जी का नाम आज तक जीवित है। उनके बारे कबीर जी का अपना वचन है-

कबीर मनु निरमलु भईआ जैसा गंगा नीरु ॥
पाछै लागो हरि फिरै कहत कबीर कबीर ॥५५॥

(सलोक कबीर जी)

भाव-कबीर जी कहते हैं, मन ऐसा निर्मल हुआ है जैसे गंगा को नीर है। वहीं परमात्मा जिसको लोग ढूंढते हैं, वह कबीर जी के पीछे-पीछे फिरता था।

कबीर जी का वचन-

पांच नारद के मिटवे फूटे ॥ कहु कबीर गुर किरपा छूटे ॥

(पन्ना ८७२)

भक्त रविदास जी

(जन्म और माता-पिता)

भारतवर्ष में भक्ति की जो लहर चली थी, उसमें भक्त रविदास जी का भी बहुत ऊंचा स्थान है। महान महापुरुष और यूं कहें कि भक्तों में श्रेष्ठ भक्त हुए हैं। ऐसे भक्त जिनकी बाणी पढ़कर आज भी अनेकों जीव मुक्ति के मार्ग पर चलते हैं। आइए आपको उनकी कथा श्रवण करवाएं। ऐसे भक्तों और अवतारों की जीवन कथाएं सुनते रहें तो जीवन में बहुत परिवर्तन आ जाते हैं।

श्रेष्ठ भक्त रविदास जी का जन्म भी गंगा किनारे के महान पूजनीक शहर काशी (बनारस) में हुआ था। आपका पिता रघु चमड़े का व्यवसाय करता था और जाति चमार में से था। भक्त जी की माता का नाम धुरबिनीया था। वह एक परिश्रमी नेक माता थी। जो प्रभु-परमात्मा पर अटूट विश्वास रखती थी। दोनों जीवों का जीवन मेल भरा समृद्ध होने के कारण उनके पास अच्छे पैसे थे। बच्चे के जन्म की उन्होंने धूमधाम से खुशियां मनाईं। शिशु के जन्म की खुशी में उन्होंने बाजे-गाजे बजाए और अपनी जाति के लोगों को भोजनपान करवाया।

श्री रामानंद के दर्शन

काशी में स्वामी रामानंद जी का काफी आदर-सत्कार था। आप

गरीबों के गुरु माने जाते हैं। आप गरीबों के घरों को चल पड़ते। लोगों के दुःख सुख पूछते हुए 'राम नाम' के सिमरन की ओर जीवों को लगाते।

भक्त रविदास को जन्म लिए अभी पांच ही दिन हुए थे। नवजात शिशु रविदास दूध नहीं पीता था और रोता रहता था। उसका रुदन देखकर मां का हृदय अत्यंत दुखी होता था। उसने अपने पति रघु से कहा-'जी, किसी से पूछो ! बालक दूध नहीं पीता और रोता रहता है, जैसे कि इस दुनिया में आना उसे अच्छा नहीं लगा।'

'हो सकता है, इसलिए रोता हो कि भगवान ने उसको हम गरीबों के घर क्यों भेज दिया। हम निम्न जाति के चमार, चमड़े से रात-दिन घुलते हैं।' रघु ने उत्तर दिया।

धुरबिनीयां-'ऐसी बातें न करो। कामकाज की बात है, हम किसी से कम हैं ? आप जाओ और किसी को पूछो।'

अपनी धर्मपत्नी का कहना मान कर रघु घर से बाहर निकल कर अभी थोड़ी दूर ही गया था कि आगे स्वामी रामानंद जी आते दिखाई दिए। रिवाज़ अनुसार उसने धरती पर माथा टेक कर रामानंद जी का स्वागत किया।

स्वामी रामानंद जी-'सुनाओ भक्त, क्या बात है। शरीर तो ठीक रहता है ?

रघु-'महाराज ! आप की कृपा है कुशलपूर्वक रहते हैं, मेरी आपके आगे एक प्रार्थना है।'

स्वामी रामानंद जी-'क्या प्रार्थना है ?'

रघु-महाराज ! मेरे घर बालक ने जन्म लिया है, उसका नाम रविदास रखा है। वह जन्म से दूध नहीं पी रहा, केवल रोता रहता है। रात के समय जब उसने जन्म लिया, औरतों ने बताया है, उजाला हो गया था। बालक बड़ा सुन्दर है। पर यहीं दुःख है, वह दूध नहीं

पीता, दया करें, आप तो दयावान राम के प्यारे हो, कृपा करके मेरे बच्चे को देखो।'

स्वामी रामानंद जी 'चलो प्रेमी, हम आज किसी के दर्शन करने के लिए ही बेताब फिर रहे हैं। कुछ समझ नहीं आता, कौन मन को विचलित कर रहा है ? हो सकता है, तुम्हारा बालक ही हो। चार दिन से मन उपराम है। कोई नजर नहीं आता किसको मिलना है।

ऐसा कहते हुए गुरु रामानंद जी रघु के पीछे-पीछे चल पड़े। रघु घर पहुंचा। रघु खुश था कि भगवान स्वयं उनके गृह आए। वह भाग्यशाली है। स्वामी जी आंगन में जा खड़े हुए तो रघु अंदर गया तथा बालक को उठा कर बाहर ले आया।

स्वामी रामानंद जी ने बालक को देखा। उसके चेहरे को देखकर सिर पर हाथ रख कर स्वयंमेव वचन करने लगे-'हे बालक ! रोना ठीक नहीं। पूर्व जन्म का फल है, वह प्राप्त हो गया। आगे सम्भल कर चलना, यदि सम्भल कर चलोगे तो मन की मुरादें पूरी हो जाएंगी।'

इस तरह वचन करके उन्होंने 'राम-राम' कहा तो बालक रोने से हट गया, मुस्कराया। रामानंद जी ने उसके सिर से हाथ उठा लिया और रघु से कहा, भक्त ! इसे ले जाओ और इसकी माता को कहो कि इसे दूध पिलाए, यह पी लेगा। इस तरह वचन करके रामानंद जी चले गए। उनके मन की बैचेनी भी खत्म हो गई।

रघु बालक रविदास को अंदर ले गया। उसकी मां धुरबिनीया को सौंपा तो रविदास ने दूध पी लिया। उस दिन के बाद रविदास जी फिर कभी न रोये, हंसते रहे और जो भी आपके दर्शन करने आता, उसके कष्ट दूर हो जाते। यह सब राम की महिमा थी।

साखी भक्त रविदास जी के पूर्व जन्म की

स्वामी रामानंद जी रघु के घर में से निकले ही थे कि स्वामी जी

का शिष्य, जो रविदास जी को देखते समय पास ही खड़ा था बोला 'हे गुरुदेव ! यह क्या चमत्कार है ?'

स्वामी रामानंद जी–'कैसा चमत्कार... ?'

शिष्य–'एक तो आप सुबह सुबह नीच जातियों के मुहल्ले में आए। दूसरा बालक को देखकर आप ने वचन किया, 'पूर्व जन्म का फल है।' इसका क्या भावार्थ है कुछ समझ नहीं आई। राम जी का क्या हुक्म है ?

रामानंद जी गुसाईं का यह नियम था कि वह अपने शिष्यों को भ्रम में नहीं रखते थे। उनके हर संशय को निवृत करते थे। वह आप त्रिकालदर्शी थे। त्रिकालदर्शी होने के कारण उनको पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने अपने शिष्य को उत्तर दिया–'हे पुत्र ! यह बालक जो देखा है, यह एक महात्मा तथा भक्त होगा। पूर्व जन्म में इस ने एक भूल की थी, जिस कारण इसको चमार जाति के घर जन्म लेना पड़ा। जीव को कर्म का फल अवश्य मिलता है।

शिष्य–'महाराज ! इसने कैसी भूल की थी ?'

रामानंद जी–यह एक ब्रह्मचारी तथा मेरा शिष्य था। अब इसने रघु चमार के घर जन्म लिया है तथा 1 साल हुए मर गया था। इसका कल्याण होना था, पर इसकी एक इच्छा तथा दूसरी भूल रही। इसको फिर से जन्म लेना पड़ा।

शिष्य–'ऐसा ही तो मैं पूछ रहा हूं कि क्यों जन्म लेना पड़ा। आखिर वह कैसी भूल थी ?

रामानंद जी 'यह ब्रह्मचारी भिक्षा लेने जाता था तथा 'हरि नारायण' कहता था। चुटकी–चुटकी कई घरों से आटा ले कर आता जो लंगर में पकता था। जो साधू आता वही भोजन करता। हमारे डेरे के पास छोटू मल, कोटू मल बनियों का घर था। वह सारे बड़े नीच थे। उनका धंधा ठीक नहीं था, वह हर तरह गरीबों को लूटते थे। उनका अभद्र

व्यवहार देखकर लोग कानों पर हाथ रखते थे।

वे कम तोलते, धोखा करते, फरेब से माल कम देते तथा रकम ज्यादा लेते। 'राम की कसम, परमात्मा की सौगंध।' कह कर भोले पुरुषों को ठगते रहते। उन्होंने पापों से बहुत माया इकट्ठी की। यदि कभी पुण्य-दान करते भी तो मुनाफे की खातिर करते। वे माया नागिन के पुजारी थे। झूठ के कारण इनकी बुद्धि मलीन हो चुकी थी। घर की स्त्रियां सत्यवती नहीं रहीं, वह पर-पुरुषों से मेल करतीं। ऐसे महां पापी पुरुषों के घर से आया आटा खा कर संतों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, मन अशांत हो जाता है। परमात्मा के चरण कंवलों से वृति नहीं जुड़ती थी।

एक दिन वर्षा हो रही थी, हमारा शिष्य ब्रह्मचारी आटा मांगने के लिए गया। मंदिर में से निकलते ही बनिया के घर के आगे जाकर पैर फिसलने के कारण गिर पड़ा। चंडाल बनिए का लड़का खड़ा था, उसने ब्रह्मचारी को उठाया तथा आगे मांगने न जाने दिया, बल्कि अपने घर से ही उतना आटा दे दिया, जितना डेरे के लिए चाहिए था। ब्रह्मचारी आटा लेकर डेरे आ गया। प्रसाद तैयार हुआ, जब खाया तो मेरी वृति राम से टूट गई, शरीर आलसी हो गया नींद आने लगी, दिल पारे की तरह डगमगाने लगा, उसी समय मैंने ब्रह्मचारी को बुला कर पूछा, 'आज आटा कौन से घरों में से मांग कर लाए हो ? ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, गुरु जी ! ज्यादा घरों से भिक्षा नहीं मांगी बल्कि साथ वाले बनिए के घर से लाया हूं, क्योंकि उसके लड़के ने प्रार्थना की थी, दूसरा वर्षा के कारण घूमना कठिन था।

यह सुन कर हमें क्रोध आ गया। हमने ब्रह्मचारी को श्राप दिया कि, 'जा नीच तेरी वृति नीची है। तुमने चमारों के पास से बुरे पुरुषों की कमाई का आटा हमको खिला कर महां पाप किया है, इसका फल यह होगा कि तुम्हारा जन्म चमारों के घर होगा। उनके घर राम

नाम का सिमरन करने पर फिर तुम्हारा उद्धार होगा। इस श्राप के दसवें दिन के बाद ब्रह्मचारी का स्वर्गवास हो गया। अब 1 साल के बाद इसने रघु चमार के घर जन्म लिया है, परमात्मा ने हमें संदेश दिया कि यह भ्रम के कारण दूध नहीं पी रहा, इसलिए कि पहले तो बुरे पुरुषों के घर से आटा मांगने पर यह जन्म मिला है यदि नीच जाति मां के स्तनों का दूध पी लिया तो पता नहीं कितने जन्म लेने पड़ेंगे। इस तरह काफी घबराया हुआ रोता जा रहा था। चाहे बालक है पर आत्मा ऊंची है। ब्रह्मचारी है इस को ज्ञान नहीं कि पुरुष जन्म के कारण बुरा या अच्छा नहीं होता बल्कि कर्म के कारण बुरा या अच्छा होता है। हम इसका भ्रम दूर करने के लिए आए थे। अब यह दूध पी कर ताकतवर होगा। राम नाम का भजन करेगा तथा अब भी भजन कर रहा है। यह है उसके पूर्व जन्म की कथा।

शिष्य-'धन्य हो गुरु जी ! अपनी गति आप ही जानते हो। हम तो भूलने वाले जीव हैं। माया हमको ठगती रहती है। कई घर ठगे जाते हैं। आपकी कृपा-दृष्टि रहनी चाहिए। आपका सिर पर हाथ हो तो जीव का कल्याण हो सकता है।'

इसके आगे स्वामी रामानंद जी ने अपने शिष्यों को समझाया कि साधू को कभी एक घर से भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिए। यदि खाए भी तो गरीब मेहनती की सूखी मिसी रोटी खा ले। मायाधारियों का धन मेहनत का नहीं होता। वह ठगी का होता है, कईयों के खून पीये होते हैं, रात-दिन बुरे कर्म करने पर माया जुड़ती है। यह पाप के बिना इकट्ठी नहीं होती। वे माया के लिए राम जी को भी धोखा देते हैं।

रविदास जी ने भक्ति तथा कर्म करना

भगत भगत जग वजिआ चहुं चकां दे विच चमरेटा ।
पाणा गंढै राह विच कुला धरम ढोई ढोर समेटा ।

जिऊ कर मैले चीथड़े हीरा लाल अमोल पलेटा ।
चहुं वरनां उपदेशदा गिआन धिआन कर भगत सहेटा ।
नहावन आया संग मिल बानारस कर गंगा थेटा ।
कढ कसीरा सऊपिआ रविदासै गंगा दी भेटा ।
लगा पुरब अभीच दा डिठा चलित अचरज अमेटा ।
लईआ कसीरा हथ कढ सूत ईक जिउ ताणा पेटा ।
भगत जनां हरि मां पिओ बेटा ।

(भाई गुरदास जी)

रविदास जी बाल अवस्था से गुजर कर किशोर अवस्था में पहुंचे तथा घर के कामों में हाथ बंटाने लगे पर अलग-अलग तथा उपराम रहने लगे। उनके उपराम रहने के कारण घर के सदस्य भी परेशान रहते, पर कुछ कहने का साहस भी न पड़े, क्योंकि उनके चेहरे का तेज ही कुछ ऐसा था, दूसरा वह साधू-संतों की संगत करते। रामानंद जी के डेरे बैठे रहते तथा 'राम नाम' का सिमरन करते रहते। उनके ऐसा करने से परिवार वाले सोचने लग पड़े कि कहीं रविदास घर छोड़ कर ही न चला जाए। उन्होंने रविदास जी का विवाह कर दिया।

घर में पत्नी आने पर भी रविदास के स्वभाव में परिर्वतन न आया, वह अपने कार्य उसी प्रकार करते रहे। उनकी पत्नी अच्छे घर की बड़ी नेक थी। वह रविदास जी का आदर करती, हुक्म मानती तथा कार्य करती। इस तरह दिन व्यतीत होने लगे। भक्त जी सुबह उठ कर स्नान करके प्रभु का चिंतन करते तथा हर समय प्रभु को न भूलते, केवल राम नाम का सुमिरन करते रहते। घर के काम पीछे पड़ने लगे पर लोग देखने तथा सुनने वाले कहते, 'भक्त' है। पूर्व जन्म में अच्छा कर्म करते रहे जो प्रभु से प्यार हो गया। सत्य बोलना तथा दान करने का स्वभाव बड़े लोगों जैसा बन गया, यदि कोई जूते मांगता तथा कहता कि पैसे नहीं हैं तो उसको जूते मुफ्त ही भेंट कर देते।

पर अज्ञानी पुरुष रविदास जी के माता-पिता भीतरी भेद को न समझे। वह सोचते कि रविदास जी लापरवाह है, उन्हें अपनी मेहनत की कमाई की कोई चिंता नहीं। वे संसारिक दृष्टि से अपने पुत्र रविदास को देखते थे। उनका देखना उनके लिए लाभदायक नहीं। इस तरह एक दिन रविदास जी के माता-पिता क्रोधित हो गए तथा कहा-

'रविदास ! अपना घर अलग करो, अलग रसोई बना कर अलग ही कार्य किया करो। अपने काम को चाहे उजाड़ो या रखो, पर हमें दुःखी मत करो। हम यह सहन नहीं कर सकते कि तुम अपनी सारी कमाई दान करते जाओ, अपनी पत्नी को लेकर अलग कुटिया बना लो।'

यह सुनकर भक्त रविदास जी ने कोई गुस्सा न किया। उन्होंने बड़ी सहनशीलता से उत्तर दिया, 'पिता जी ! यदि आपकी यही इच्छा है तो ऐसा ही होगा। राम स्वयं ही काम करता है, जैसे राम जी की इच्छा होगी, काम होते रहेंगे।' चाहे रास्ते पर बिठा दीजिए या घर में जगह दे दीजिए। क्या पता किसी पूर्व जन्म के कारण फिर जन्म ले लिया है तथा आपका पुत्र कहलाया हूं, आज से ही अलग हो जाते हैं। काम करके खाना है।

उसी दिन रविदास जी लकड़ियां काट, सरकंडा तथा नरकट लेकर आए और शाही मार्ग पर अपनी कुटिया बना ली। उनकी पत्नी बड़ी हिम्मत वाली थी। उसने शीघ्र ही सिरकीआं बांधी तथा मिट्टी डाल कर, अच्छी तरह लीप पोंच कर सुंदर कुटिया बना ली। एक तरफ चौंतरा बना कर रविदास जी का स्थान बना दिया, दूसरी तरफ खुला आंगन बनाया जिस पर अतिथि बैठ जाया करते थे। स्वयं उस देवी ने भीतर ही एक तरफ अपना स्थान बना लिया तथा जूतियां तैयार करके आने-जाने वाले ग्राहकों की जूतियां गांठ कर वह अलग ही निर्वाह करने लगे।

पंडितों की दुश्मनी

नागर जनां मेरी जाति बिखिआत चंमारं ।। रिदै राम गोबिंद गुन सारं ।।१।। रहाउ ।। सुरसरी सलल क्रित बारुनी रे संत जन करत नही पानं ।। सुरा अपवित्र नत अवर जल रे सुरसरी मिलत नहि होइ आनं ।।१।। तर तारि अपवित्र करि मानीऐ रे जैसे कागरा करत बीचारं ।। भगति भागउतु लिखीऐ तिह ऊपरे पूजीऐ करि नमसकारं ।।२।।

(मलार बाणी भक्त रविदास जी, पन्ना १२९३)

भक्त रविदास जी ने कहा हे नगर वासियों ! कोई भ्रम मत खाओ, मेरी जाति चमार है । राम नाम जपने की महिमा है कि लोग अच्छा समझने लग पड़े हैं । राम नाम ने उत्तम बनाया है । गंगा का जल पवित्र है, पर मूर्ख लोग गंगा के जल से शराब निकालते हैं, जिसे केवल राक्षस पीते हैं, भद्र पुरुष नहीं । इसी तरह जन्म के कारण हम उत्तम थे, पर कर्म और विचार निम्न करके कभी बुरे हो गए। अब ख्याल ऊंचे हुए तो ऊंचे हो गए ।

आगे आप ने उदाहरण दिया जैसे गंगा के पवित्र जल से मिल कर दूसरा जल भी पवित्र हो जाता है। ताड़ के पत्ते बुरे हैं, पर उसके ऊपर राम नाम लिखा जाए तो पूज्य हो जाते हैं । उनको नमस्कार भी करते हैं। इसी तरह जन्म के कारण यदि कोई नीच घर में पैदा हुआ है तो भक्ति करके ऊंचा हो जाता है तथा उच्च कुल वाला बुरे कर्म करके बुरा हो जाता है । जैसे इन्द्र को श्राप मिल गया था ।

भगवान ने स्वयं कृपा की, भक्त रविदास जी से मंदिर, धर्मशालाएं तैयार करवा लीं । पूजा होने लगी तथा भक्त जी सभी जातियों को उपदेश करने लगे तो काशी के पंडित बहुत परेशान हुए। वह ईर्ष्या करने लगे । ईर्ष्या की जलन के कारण उन्होंने शोर मचा दिया कि

रविदास एक चमार जाति का होने के कारण उच्च कुल वालों से पूजा करवाता तथा उनको चरणामृत देता है। मोक्ष का मार्ग बताता है जो ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी को बताने का अधिकार नहीं। उसने मंदिर में देवताओं की मूर्तियां क्यों रखी हैं। इस तरह शोर मचा कर उन्होंने काशी के लोगों को इकट्ठा कर लिया तथा इकट्ठे होकर वे काशी के नवाब के पास चले गये। उन्होंने मनु स्मृति का सहारा लिया तथा नवाब को कहा–शूद्र देवताओं की पूजा नहीं कर सकता। साथ ही देव-दर्शन का भी इसे कोई अधिकार नहीं। अंधेर है धर्म भ्रष्ट होता है।

पंडितों का यह शोर सुन कर नवाब हैरान हुआ। वह नेक पुरुष था। किसी भक्त को कुछ नहीं कहना चाहता था। उसने पंडितों को धैर्य दिया और कहा–रविदास को बुला कर मैं फैसला करूंगा। आप घबराओ मत, गुस्से में न आओ। सुना है वह भी भगवान का भक्त है। भगवान की कृपा हरेक पर हो सकती है। साथ ही जितनी देर रविदास को अपने पास न बुलाएं, उतनी देर इंसाफ नहीं हो सकता।

उसी समय आदमी भेज कर रविदास को बुलाया गया। वह खुशी खुशी आए। वह किसी से डरते नहीं थे। वह तो राम (परमेश्वर) के भक्त थे।

नवाब बड़ा बुद्धिमान एवं न्यायप्रिय था। वह मुसलमान था तथा मूर्ति पूजा के विरुद्ध था। मूर्तियों को निर्जीव पत्थर की मूर्तियां समझता था। उसने एक अद्‌भुत प्रश्न दोनों के आगे रखा तथा रविदास जी को सम्बोधन करके कहा

'भक्त जी ये पंडित मेरे पास आए हैं। इनका यह दावा है कि आप शूद्र हो तथा आपको देव-मूर्ति की पूजा करने का कोई अधिकार नहीं। आपने मंदिर में देवताओं की मूर्तियां रख ली हैं। हमें तो कुछ समझ नहीं आता कि क्या करें। इसलिए एक योजना है कि गंगा

के पार देवताओं की मूर्तियां उठा कर रख देते हैं। आप प्रेम भक्ति से उनको अपने पास बुलाना। जिसके बुलाने पर वह आ गईं, उसको पूजा का अधिकार होगा, जिसके बुलाने पर न आईं उसको अधिकार नहीं होगा। साथ ही यह पता लग जाएगा कि आपके भगवान को ब्राह्मण प्यारे हैं या शूद्र ! कौन प्यारा है ! क्या आपको यह फैसला स्वीकार है ? रविदास जी ने वचन किया–मुझे तो यह फैसला स्वीकार है। जैसे इच्छा हो करो ! मेरा राम हर जगह है। हर वस्तु में, हर मूर्ति में, राम को सब प्यारे हैं। इनका झगड़ा निरर्थक ही है।'

पंडितों को पूछा तो उन्होंने ललकारा मार कर कहा-हमें भी मंजूर है। हम अपने देवताओं को बुलाएंगे, देवता हमारे हैं। उनको अहंकार था। वह अहंकार में घिरे हुए दीवाने हुए फिरते थे। इसलिए भी कि उनको विद्या का मान था, जंत्र, मंत्र जानते थे। वह मान गए। नवाब की इच्छा तमाशा देखने की थी, उसको भी विश्वास था कि पत्थर की मूर्तियां भला गंगा पार से कैसे आएंगी। दोनों को झूठा साबित करके देव मूर्ति पूजा छुड़ा देंगे। क्योंकि इस्लाम में मूर्ति पूजा नहीं होती।

उस किए गए फैसले के अनुसार हुक्म दे कर रविदास के मंदिर में से सारी देव मूर्तियां उठाई गईं। उनको चंदन की चौकी पर बड़े आदर के साथ गंगा के पार ले जा कर रख दिया गया। समीप कोई मनुष्य न रहने दिया। नवाब ने पहले पंडितों को हुक्म दिया कि उन देवताओं को गंगा जल के ऊपर से इधर किनारे बुलाएं।

'बुलाओ भाई ! यदि देवते आपके हैं तो हुक्म मान कर आ जाएंगे, बोलो पढ़ो मंत्र !'

पंडित आवाज़ें लगाने लगे, दो घण्टे आवाज़ें लगा कर थक गये पर पत्थर की जड़ मूर्तियां कैसे चल कर उनके पास आतीं। उनको आवाज़ कैसे सुनाई दे। जब आवाज़ें न सुनीं तो उनमें (पंडितों) से

कईयों ने वेद मंत्र, कईयों ने जादू-टोने, जंत्र-मंत्र पढ़ने तथा करने आरम्भ कर दिए। नवाब तथा अन्य लोग उस अनोखी लड़ाई को बड़ी दिलचस्पी से देख रहे थे। भीड़ बहुत लगी हुई थी। पूरा ज़ोर लगा कर अपनी सब शक्तियों तथा विद्याओं को परख कर पंडितों ने हार मान ली। हार मानते समय उन्होंने कहा, 'कलयुग में देव मूर्तियां न चेतन हो सकती हैं न कुछ कह सकती हैं। यह तो चुप और बिना हिले रह कर ही नर-नारी की प्रार्थना सुन कर उनकी आवश्यकताएं पूरी करती हैं। यह प्रभु का भेद है।'

पंडितों का यह उत्तर सुन कर नवाब हंस पड़ा। उसने हंसते हुए भक्त रविदास जी को कहा-'राम भक्त ! लीजिए अब आप अपने देवता को अपने पास बुला लें। पंडित तो बुला नहीं सके। वह कम प्रेमी लगते हैं।' नवाब का यह परिहास भी था। 'जैसे आज्ञा' कह कर रविदास जी पालथी मार कर बैठ गए। ध्यान प्रभु के चरणों में लगा दिया, आंखें बंद कर लीं और अपने राम को याद करते हुए अपनी उच्चारण की बाणी का ब्यान बड़ी श्रद्धा भावना से करने लगे-

> *कूपु भरिओ जैसे दादिरा कछु देसु बिदेसु न बूझ ॥ ऐसे मेरा मनु बिखिआ बिमोहिआ कछु आरा पारु न सूझ ॥१॥ सगल भवन के नाइका इकु छिनु दरसु दिखाइ जी ॥१॥ रहाउ ॥ मलिन भई मति माधवा तेरी गति लखी न जाइ ॥ करहु क्रिपा भ्रमु चूकई मै सुमति देहु समझाइ ॥२॥ जोगीसर पावहि नही तुअ गुण कथनु अपार ॥ प्रेम भगति कै कारणै कहु रविदास चमार ॥३॥१॥*

(गउड़ी पूरबी रविदास जीउ, पन्ना ३४६)

हे प्रभु ! मैं उसी तरह अनजान हूं जिस तरह कुएं में बहुत सारे मेंढक होते हैं पर कुएं की सीमा से दूर का उनको कोई ज्ञान नहीं होता, इस तरह मेरा मन विषय-विकारों के जाल में फंसा हुआ है। इसमें से आज़ादी प्राप्त करने के लिए कोई निकट का किनारा नहीं

दिखता। भाव यह कि जगत पदार्थों में मन ऐसा रमां हुआ है कि उसका निकलना असंभव है। हे सारे भवन, सप्त द्वीपों तथा सप्त पातालों के मालिक ! एक बार मुझे जरूर दर्शन दें। हे प्रभु ! मेरी बुद्धि मंद है, तुम्हारा भेद नहीं पा सकता, मुझ पर कृपा करो, ताकि मेरे भ्रम दूर हो तथा ज्ञान आए। हे प्रभु ! तुम्हारे गुणों का पारावार कोई नहीं पा सकता, बहुत बड़े योगी तथा मुनि भी तुम्हारी गति नहीं जान सकते। पर मेरे पास तो प्रेम भक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं, जाति भी चमार है। मैं तो प्रेम का वास्ता देकर ही कहता हूं। हे प्रभु ! आओ तथा दर्शन दो। आओ ! मेरे पास आओ।

नवाब, काज़ी, पंडितों तथा दर्शकों ने देवताओं के ऊपर निगाह लगाई हुई थी, वे चमत्कार देखना चाहते थे। मुसलमान नवाब एक तीर से दो शिकार करना चाहता था। एक तो दोनों पक्षों का न्याय, दूसरा यदि पत्थर की देव मूर्तियां न हिली तो ब्राह्मणों तथा हिन्दुओं को झूठा साबित करेगा कि ऐसे ही इन निर्जीव मूर्तियों की पूजा करते हो। यह तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकते। साथ ही भक्त रविदास जी की बहुत शोभा सुनी हुई थी। अनेकों करामातों की साखियां रविदास के श्रद्धालुओं ने प्रचलित की हुईं थीं, सभी लोग बहुत ध्यान से देख रहे थे। वह तो भक्त जी की परीक्षा कर रहे थे तथा ईश्वर भक्ति का मजाक उड़ा रहे थे। सारा शहर ही गंगा किनारे उमड़ पड़ा था। सबकी निगाहें गंगा पार रखी मूर्तियों पर थीं। कई तो देखने के लिए नौकाएं आगे ले गए थे। नवाब के पास खड़े अहलकार ने कहा–'नवाब साहिब ! वह देखो मूर्तियां हिल रही हैं। देखो ! देखो! नवाब ने उधर देखा तो सत्य ही देवताओं की मूर्तियां चल रही थीं। वह तो चौकी सहित आ रही थीं, सभी देख रहे थे।' उस समय सारे काशी के मंदिरों की घंटियां अपने-आप बजने लगीं। वातावरण गूंज उठा तथा जै-जै कार के नारे गूंजने

लगे पर पंडितों के मां-बाप मरने लगे। वे धरती में धंसते जा रहे थे। वे झूठे पाखंडी निकले।

पर रविदास जी अपनी धुन में मस्त, प्यार तथा श्रद्धा से आंखें बंद करके गाये जा रहे थे। उन्होंने दूसरा शब्द इस तरह गायन किया था। वह कह रहे थे-

हम सरि दीनु दइआलु न तुम सरि अब पतीआरु किआ कीजै ॥ बचनी तौर मौर मनु मानै जन कउ पूरनु दीजै ॥१॥ हउ बलि बलि जाउ रमईआ कारणे ॥ कारन कवन अबोल ॥ रहाउ ॥ बहुत जनम बिछुरे थे माधउ इहु जनमु तुम्हारे लेखे ॥ कहि रविदास आस लगि जीवउ चिर भइओ दरसनु देखे ॥२॥१॥

(भक्त रविदास जी, पन्ना ६९४)

हे प्रभु ! मेरे जैसा अज़ीज़ कोई नहीं और तुम्हारे जैसा मेहरबान नहीं। तमाम बख्शिशें करने वाले हो। सभी जानते हैं और क्या परखना है ? मैं यह विनती करता हूं कि मेरा मन तेरे चरणों से दूर न हो। नहीं होगा यह भी मुझे विश्वास है। मैं तो आप और आप की कुदरत से बलिहारी (कुर्बान) जाता हूं। फिर मुझ से क्यों नहीं बोलते ? कई जन्म आप से मेल नहीं हुआ। जुदाई में तड़पता रहा हूं, अब यह जन्म मैं आप के लेखे लगा देता हूं, भाव-तेरी भक्ति करते ही जीवन बिता दूं। एक तेरे दर्शन करने की आशा पर ही जीवन श्वास चल रहा है। तेरे दर्शन किए बहुत देर हो गई है इसलिए मेहर करके दर्शन दो, आओ मेरे स्वामी

तुम चंदन हम इरंड बापुरे संगि तुमारे बासा ॥ नीच रुख ते ऊच भए है गंध सुगंध निवासा ॥१॥ माधउ सतसंगति सरनि तुम्हारी ॥ हम अउगन तुम्ह उपकारी ॥१॥ रहाउ ॥ तुम मखतूल सुपेद सपीअल हम बपुरे जस कीरा ॥ सतसंगति मिलि रहीऐ माधउ जैसे मधुप मखीरा ॥२॥ जाती

ओछा पाती ओछा ओछा जनमु हमारा ।। राजा राम की
सेव न कीन्ही कहि रविदास चमारा ।।३।।३।।

(आसा रविदास जी, पन्ना ४८६)

हे प्रभु ! आप चंदन स्वरूप हो। मैं अरिंड की तरह हूं, पर फिर भी यह आशा है कि आपके संग वास है। आप से प्यार है। आपकी कृपा से निम्न वृक्ष ऊंचे हो गए हैं। मामूली चमार से भक्त रविदास बना हुं, सुगंधि आ गई है। हे प्रभु ! तुम्हारे संतों की संगत करता हूं इसलिए कि सत्संग में पहुंचने से तुम्हारी शरण में आ जाते हैं। मुझ में बहुत सारे अवगुण (बुरे कर्म) हैं पर आप बहुत उपकार करने वाले हो। हे प्रभु ! आप रंग-बिरंगे रेशम के बिस्तर की तरह हो, हम कीड़े की तरह हैं जो रेशम को खाता है, फिर भी कीड़े का निवास रेशम में होता है। इसी तरह आपने हम पर कृपा की है। मामूली-सी जात-पात भी नहीं है। रविदास चमार कहता है हे प्रभु ! आपकी सेवा नहीं की। भक्ति भाव से शून्य हूं कृपा करो, दया करो, आपके दर्शन की अभिलाषा है।

भक्त रविदास जी ने अपने राम को याद किया। याद किया सच्चे हृदय से। राम सहायक हुए चंदन की चौकी सहित देव-मूर्तियां गंगा की लहर से भक्त के पास आ गईं। काशी के मंदिरों की घंट्टियां बजती गईं। लोग जै जै कार करते गए तथा झूठे पंडित लोगों में से खिसक कर अपने घरों की ओर दौड़ गए। नवाब हैरान था। उसको समझ आई कि खुदा-परस्ती है क्या ? शुद्ध हृदय से की हुई अरदास व्यर्थ नहीं जाती।

भक्त जी उठे तथा आदर सहित चंदन की चौकी उठवा कर अपने मंदिर की तरफ चल पड़े। उनसे हज़ारों झूठे ब्राह्मणों कुल तथा जाति के अभिमानियों को मुंह की खानी पड़ी। राम सब का रक्षक है। बोलो भक्त रविदास जी की जै।

चितौड़ की रानी

साधू की जउ लेहि ओट ॥ तेरे मिटहि पाप सभ कोटि कोटि ॥
कहि रविदास जुो जपै नामु ॥ तिसु जाति न जनमु न जोनि कामु ॥

(पन्ना ११९६)

सत्य है, भक्त जी ठीक कहते हैं जो साधू-महात्मा की शरण में आता है, उनका आश्रय लेकर नाम जपता है, उसके सारे पाप उतर जाते हैं। जो नाम जपता है उसके तो जन्म-मरण के कष्ट भी कट जाते हैं अथवा वह जन्म-मरण में नहीं आता, ऐसा उपदेश भक्त रविदास जी करते रहते थे। उनकी महिमा दिन-प्रतिदिन दूर-दूर तक होने लगी। श्रद्धालु लोग दर्शन करने के लिए आते भक्त जी के पास सत्संग करते रहते।

कुछ सत्संगी राजस्थान के किला चितौड़ से आए। वह जब वापिस गए तो वहां की धर्म के प्रति रुचि रखने वाली रानी झाली ने भक्त रविदास जी की महिमा सुनी। सत्संगियों ने रानी को बताया कि भक्त जी को प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन हुए हैं। प्रभु उनके अंग-संग रहता है। बात क्या भक्त जी के प्रताप के संबंध में जो भी कुछ उन्होंने सुना था, वो रानी को सुना दिया। रानी के मन में लालसा उत्पन्न हुई कि वह भक्त जी के दर्शन करके अपना जन्म सफल करे। वह भी सत्संगी थी। उसने हुक्म दिया तथा राजा को मना लिया कि वह रानी को यात्रा करने की आज्ञा दे।

राजा ने तीर्थ यात्रा के लिए अनुमति दे दी। रानी झाली बहुत कुछ पूजा का सामान देने के लिए धन तथा लंगर के लिए सामग्री लेकर चितौड़ से चल पड़ी तथा चलती-चलती काशी नगरी आ पहुंची। उसने काशी नगरी की महिमा सुनी थी। देवताओं के भक्तों की नगरी

तथा साथ ही कपटी पंडितों की नगरी। माया का लालच पंडितों को बेहद था, वह आने जाने वाले को लूटते थे।

रानी झाली हाथी पर सवार होकर जब काशी के पास पहुंची तो वहां आगे से राजगुरु, राज पुरोहित मिल गए। उन्होंने रानी के पति के वंश का नाम लिया तथा कहा–'आप धर्मशाला में चलकर विश्राम करो, जो धर्मशाला चित्तौड़ के राजाओं की है, जब वे आते हैं तो वहीं ठहरते हैं। उसके बाद गंगा स्नान, पूजा, यज्ञ तथा पुण्य दान करने का योग्य प्रबन्ध किया जाएगा।'

'हे पंडितो ! पहले मैंने उस मंदिर में जाना है, जहां भक्त रविदास हैं।' रानी झाली ने पुरोहित को उत्तर दिया। क्या ? पहले एक चमार के मंदिर ! हरे राम ! यह आप क्या कह रही हो ! कुल रीति अनुसार सबसे पहले आप जी ने गंगा के स्नान करने हैं। तीर्थ यात्रा के लिए आए हो। यह आपको किसी ने भ्रम में डाल दिया है ?'

यूं कह कर पुरोहितों ने बड़ा प्रयास किया कि वह रानी को भक्त रविदास जी के डेरे की ओर से मोड़ लें, लेकिन असफल हो गए। रानी ने अपने सेवकों को आज्ञा की कि भक्त रविदास जी का देहुरा पूछ कर उधर चलें।

काशी का बच्चा-बच्चा भक्त रविदास जी के नाम से परिचित था। जब उन्होंने पूछा तो रविदास जी के श्रद्धालु उनको देहुरा तक ले गए। भक्त जी के उच्च मंदिरों की तरफ रानी झाली चली गई। जब वह वहां पहुंची तो आगे हरि नाम का कीर्तन हो रहा था। देवी-देवताओं की मूर्तियों के आगे आसन लगाए भक्त रविदास जी प्रभु का यशगान कर रहे थे। उनके श्रद्धालु पास बैठे ही मंजीरे बजा कर शब्द गायन कर रहे थे।

हरि सो हीरा छाडि कै करहि आन की आस ॥
ते नर दोजक जाहिगे सति भाखै रविदास ॥

जल की भीति पवन का थंभा रकत बुंद का गारा ।।
हाड मास नाड़ी को पिंजरु पंखी बसै बिचारा ।।१।।
प्रानी किआ मेरा किआ तेरा ।। जैसे तरवर पंखि बसेरा ।।१।। रहाउ ।।
राखहु कंध उसारहु नीवां ।। साढे तीनि हाथ तेरी सीवां ।।२।।
बंके बाल पाग सिरि डेरी ।। इहु तनु होइगो भसम की ढेरी ।।३।।
ऊचे मंदर सुंदर नारी ।। राम नाम बिनु बाजी हारी ।।४।।
मेरी जाति कमीनी पांति कमीनी ओछा जनमु हमारा ।।
तुम सरनागति राजा राम चंद कहि रविदास चमारा ।।५।।६।।

(सोरठि भक्त रविदास जी, पन्ना ६५९)

जिसका परमार्थ–भक्त जी बताते हैं कि हे बंधु ! इस शरीर पर जो मान करते हैं वह पानी की दीवार है। (सांस) हवा का सहारा है। मांस (मां का रक्त एवं पिता का वीर्य) का इसको गारा लगा हुआ है। हड्डियों, मांस तथा नाड़ियों का यह पिंजरा है। इसके पिंजरे में पक्षी (जीव आत्मा) वास कर रहा है। बंधु ! इस जगत में कुछ भी मेरा–तेरा नहीं, जैसे पक्षी सायंकाल को पेड़ पर आकर बैठ जाते हैं तथा सुबह होने पर उड़ जाते हैं। अगले दिन शायद किसी ओर वृक्ष पर बैठ जाएं, इसलिए वह उस पेड़ को कभी अपना नहीं कहते। इस तरह जीव इस संसार में आता है और चला जाता है। न आते हुए कुछ साथ लेकर आता है और न ही जाते हुए जगत की वस्तु को साथ लेकर जाता है। अपितु उसको मिट्टी का शरीर भी छोड़ना पड़ता है। हे मानव ! इस शरीर के सुखों के लिए गहरी निगाह रखकर जो भी मंदिर एवं किले का निर्माण कर रहा है, इसका क्या लाभ ? तुम्हारे लिए तो साढ़े तीन हाथ का स्थान ही काफी है। ऐ मूर्ख इन्सान! सुन्दर बाल संवार कर पगड़ी टेढ़ी बांध कर अभिमान से चलते हो लेकिन कभी यह सोचा है कि इस शरीर ने एक दिन मिट्टी का ढेर हो जाना है।......हे ऊंचे मंदिरों तथा शीश महलों में रहने वाली सुन्दर

एवं कमसिन नवयौवनाओं ! राम नाम के बिना जीवन की बाजी हार जाओगी। (यह व्यर्थ ही ऊंचे मंदिर एवं सुन्दर नारियों से तूने प्रीति की) हाय, अफसोस ! प्रभु के नाम के बिना बाजी गंवा दी। भाव अपना मनुष्य जन्म गंवा लिया।

मेरी जाति निम्न है तथा पंगत भी निम्न है। मेरा जन्म भी चमार जाति के घर हुआ, जिनको अछूत एवं शूद्र कहा जाता है। कोई निकट बैठने नहीं देता। फिर भी कृपालु, दयालु प्रभु दया करो मैं तुम्हारी शरण में आ गया हूं, आपके अलावा मेरा इस संसार में कोई नहीं। ... हे जगत के कर्ता धर्ता ... राम जी।

भक्त रविदास जी के पवित्र मुख से बाणी सुनते ही रानी के कपाट खुल गए, उसकी आत्मा सजीव हो गई। उसने मन ही मन में सोचा कि अच्छा हुआ, अल्पायु में भक्ति मार्ग में जुड़ गई हूं। शाही महलों में राम नाम के बिना सब व्यर्थ है। राम सिमरन के लिए उसकी आत्मा तड़प गई। जब कीर्तन समाप्त हुआ तो रानी झाली रविदास जी के चरणों में गिरकर आराधना करने लगी।

'हे प्रभु ! हे नाथ ! मुझ पर दया कीजिए तथा अपनी शरण में लगा कर भक्ति मार्ग पर चलने की विधि बताने की कृपा करें। मैं अभागिन ने मानव जन्म का मूल नहीं समझा। जीवन के जितने भी दिन बिताए व्यर्थ ही गंवा दिए हैं। मुझे अपनी शिष्या बनाकर सेवा का अवसर दें ताकि सिमरन कर सकूं। राम नाम पर राज और संसार के प्रत्येक सुख साधन अर्पण कर दूंगी। मैंने अभी तक किसी से नाम जपने की युक्ति नहीं जानी। अपना चरणामृत प्रदान करें। कृपा करें। प्रभु भक्ति का दान देकर कृतार्थ करें। इस तरह रानी विनय करती रही।

रानी झाली की विनती स्वीकार हो गई। भक्त रविदास जी ने उसे अपनी शिष्या बना लिया। रानी तीर्थ यात्रा के लिए जितना भी धन

एवं वस्त्र आदि लेकर आई थी, वह सारा रविदास जी के चरणों पर रखकर उनको शीश झुकाकर प्रणाम किया। आत्मा शांत हो गई। मन की मृगतृष्णा मिट गई तथा वह हरि नाम का जाप करने लग गई। केवल मुख से ही जाप नहीं करने लगी बल्कि मंझीरे तथा छैने आदि हाथ में लेकर रविदास जी की बाणी गाने लगी। वह नारी थी, कंठ रसीला तथा आत्मा में भक्ति का जोश था। जब वह बाणी गाती तो पक्षियों को भी मोहित करके आकाश से धरती पर आने के लिए विवश करती। राम नाम सिमरन के बल ने सचमुच ही उसे पगली बना दिया। सारे काशी में चर्चा शुरु हो गई कि चितौड़ नरेश की रानी झाली बाई भक्त रविदास जी की शिष्या बन गई है। हरि कीर्तन में सदा मग्न रहती। उसने साधारण भेष धारण कर लिया। खड़तालें हाथ में ले लीं। रानी के हरि कीर्तन में बैराग और प्रभु भक्ति का बेअन्त प्रकाश होता।

एक माह बीत गया रानी झाली बाई को काशी में रहते हुए। उसने काशी में गंगा स्नान भी किया तथा प्रसिद्ध मंदिरों के दर्शन भी किए। लेकिन 'गुरु रूप' में रविदास के अलावा किसी अन्य के प्रति श्रद्धा धारण न की। प्रभु के सिमरन में उसने ब्राह्मणों की तनिक परवाह न की और अपनी सारी दौलत, जो पुण्य दान के लिए लेकर आई थी, वह रविदास जी के भण्डारे में खर्च कर दी। उसका मन प्रभु सिमरन से तृप्त हो गया। रानी बनकर आई थी लेकिन जोगिन बन कर अपने राज की ओर चली गई। उसके चेहरे पर प्रभु भक्ति का नूर चमक रहा था जो भी दर्शन करता उसका मन शीतल हो जाता।

मार्ग में हर पड़ाव पर हरि संकीर्तन की मंडलियां करती हुई वह चितौड़ में पहुंची। उसकी दासियां, नौकर सब श्रद्धालु भक्त बन गए और कीर्तन करने लगे। खड़तालें तथा अन्य साज खरीदे गए। रानी चितौड़ के ऐतिहासिक किले में चली गई। उसने अपने महल का

एक हिस्सा मंदिर रूप बना दिया। प्रतिदिन सत्संग होता रहा। हरि कीर्तन से महल गूंजने लगे।

पापी आत्मा काशी के ब्राह्मणों को काफी दुख हुआ कि रानी झाली ने धन पदार्थ उनको भेंट नहीं किए अपितु एक चमार की शिष्या बनकर उसको सब कुछ सौंप गई। वह इकट्ठे होकर राजा चितौड़ के पास पहुंचे। राजा से मुलाकात हुई तो पंडितों ने दीन होकर विलाप करना शुरू कर दिया, 'महाराज ! अंधेर हो गया है। राजा धर्म तथा प्रजा के रक्षक होते हैं। धर्म की मर्यादा को यदि भारतवर्ष के प्रतापी राजा ही तोड़ने लग गए तो धर्म कैसे बचेगा ? हिन्दू संस्कृति का सर्वनाश हो जाएगा।

राजा-'मैं आप लोगों का भाव नहीं समझा, स्पष्ट बात बताएं। पहेलियां बुझाने की आवश्यकता नहीं।'

पंडित-'महाराज, स्पष्ट बात यह है कि आप की रानी झाली बाई जब तीर्थ यात्रा के लिए गई थी तो उन्होंने काशी के निवासी चमार जाति के रविदास को अपना गुरु धारण कर लिया है। सभी तीर्थों पर दान करने के लिए जो भी धन-दौलत आदि लेकर गई थी वह अकेले चमार रविदास को ही अर्पण कर आई। यह अनर्थ है। महाराज ! रानी ने एक तो पुरातन रीति-रिवाज व पूर्वजों की चलाई मर्यादा को भंग किया है, दूसरा ऊंची कुल की राजकुमारी तथा महाराजा चितौड़ की पटरानी होकर निम्न जाति के चमार को गुरु बनाना धर्म से मजाक है। ऐसी बात कभी नहीं हुई। चमार के लंगर से भोजन ग्रहण किया और चरणामृत पीकर जन्म भ्रष्ट कर बैठी हैं। इसके बदले रानी को प्रायश्चित करना चाहिए, नहीं तो कुल नाश होने का डर है। सारे देवता क्रोधी हैं। हम काशी के सब विद्वान तथा गुरुओं की तरफ से प्रतिनिधि बनकर आपके पास दुहाई लेकर आए हैं तथा रानी के कारण सब बुरा मना रहे हैं।'

रानी झाली ने राणा को गुरु धारण करने की गाथा अभी सुनाई नहीं थी। पंडितों से यह बात सुनकर चितौड़ का राणा तड़प उठा। उस समय दीवान से उठकर वह रानी के महल में गया। रानी झाली महल में प्रभु का यशगान करने में मग्न थी। वह रविदास जी का यह शब्द गायन कर रही थी और उसके चेहरे पर अनूठा ही नूर था। वह प्रभु के चिंतन में बैठी थी :-

बेगम पुरा सहर को नाउ ॥ दूखु अंदोहु नही तिहि ठाउ ॥ नां तसवीस खिराजु न मालु ॥ खउफु न खता न तरसु जवालु ॥१॥ अब मोहि खूब वतन गह पाई ॥ ऊहां खैरि सदा मेरे भाई ॥१॥ रहाउ ॥ काइमु दाइमु सदा पातिसाही ॥ दोम न सेम एक सो आही ॥ आबादानु सदा मसहूर ॥ ऊहां गनी बसहि मामूर ॥२॥ तिउ तिउ सैल करहि जिउ भावै ॥ महरम महल न को अटकावै ॥ कहि रविदास खलास चमारा ॥ जो हम सहरी सो मीतु हमारा ॥३॥२॥

(गउड़ी रविदास जी, पन्ना ३४५)

जिसका परमार्थ-भगवान के स्थान का नाम बेगमपुरा है भाव वहां न कोई चिंता है न दुख, कष्ट तथा न किसी को मामला देना पड़ता है। वहां कोई डरता नहीं, न ही किसी को कोई पीड़ा होती है। सुख ही सुख है तथा शांति का राज है।

अब मुझे भले देश में घर मिला है, वहां सातों सुख हैं। वहां की पातशाही बदलती नहीं, वह अमर पातशाही है। पहला, दूसरा एवं तीसरा पातशाह नहीं आता। परमात्मा की भक्ति वाले पूंजीपति वहां प्रचुर रहते हैं, उस शहर में जैसे किसी को चाहे वैसे चले, कोई रोक-टोक नहीं। जो परमात्मा के परिचित हैं उनकी तरफ बिल्कुल छूट है। रविदास जी ने तो सभी से मुक्ति का मार्ग ढूंढा है, सबको यही कहा 'मेरे सखा हो।'

रानी ने शब्द पढ़ना बंद किया। आराधना की तथा स्वाभाविक पीछे मुड़ कर देखा तो उसके पति देव राणा चितौड़ खड़े थे, वह उठकर खड़ी हो गई, अपने पति के चरण छुए तथा उनकी ओर देखा। पति के चेहरे के बदले रंग पर उसे संदेह हुआ और कहा–'दासी से क्या भूल हुई।'

'सुना है आप जब काशी तीर्थ यात्रा के लिए गई थीं तब रविदास चमार को अपना गुरु धारण किया है। क्या यह बात ठीक है ?' राणा ने रानी से पूछा।

'स्वामी ! जो कुछ आप ने सुना है, वह सब ठीक है। भक्त रविदास जी इस समय सबसे बड़े भक्त हैं। उनका सभी यश कर रहे हैं। उनकी बात परमात्मा भी मानता है।'

रानी झाली बाई ने दृढ़ता से उत्तर दिया। वह निडर थी। उसकी आंखों के आगे भक्त रविदास जी का चित्र था।

'हे रानी ! यह बात तो बुरी हुई। ऐसा नहीं होना चाहिए था।'

रानी–'क्यों स्वामी ! क्या बुरा हुआ ?

राणा–'चाहे भक्त हैं, लेकिन हैं तो निम्न जाति का शूद्र। आप राजपूत, कुल रीति तो पुरोहित अथवा ब्राह्मण को गुरु धारण करने की है। आपको ऐसा नहीं करना चाहिए था।'

रानी–'स्वामी ! ईश्वर के घर जाति–पाति नहीं देखी जाती, ईश्वर के रचे सारे जीव एक समान हैं।

राणा–'आपको प्रायश्चित करना होगा।'

पंडित कहते हैं, ऐसा करना ही होगा। रानी ! प्रजा में शोरगुल है।

रानी–''नहीं, मैं प्रायश्चित नहीं करूंगी। मैंने ऐसा कोई बुरा कर्म नहीं किया, सब मनुष्य भगवान के अंश हैं।

राणा जी ! यह पंडित झूठे तथा लालची हैं। इनको दान नहीं

मिला। रविदास बड़ा भक्त है, परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ था। गंगा पार से पत्थर की मूर्तियां उसकी गोद में आई थीं। ब्राह्मणों पर ईश्वर प्रसन्न नहीं था। क्या हुआ ? रविदास का जन्म नीच जाति के घर में हुआ है लेकिन उसने प्रभु की भक्ति करके अपने आपको मिट्टी से सोना कर लिया है। सोने को कोई मैल नहीं लगती। वह बेशक गंदी नालियों में पड़ा रहे। हमने सोने की डली की तरफ देखना है, गंदगी की तरफ नहीं देखना। स्वामी जी !' पंडित आपको धोखे से ठगने आए हैं। ये लालची तथा स्वार्थी हैं इनको कुछ धन दे दीजिए। सोना दान कर दें। काशी में भगवान पंडितों के पास नहीं, मैं देख आई हूं। वह तो केवल रविदास गुरु के पास है। उन्होंने मुझे सच्ची भक्ति का मार्ग दिखाया और ईश्वर के काफी निकट किया। मेरा प्रभु मुझे प्रतिदिन दर्शन देता है। मैं रविदास जी की निंदा नहीं सुन सकती। जाइए, महाराज ! इनको कह दें तथा लोगों को बोल दें और नगर में ढिंढोरा पिटवा दें कि रानी झाली रविदास चमार की शिष्या है। ......उनके सहारे ही प्रभु के दर्शन करती है।'

पिछले वाक्य रानी झाली ने क्रोध और जोश से कहे। उसका तन कांपने लग गया। आंखों में चण्डी जैसी ज्वाला चमक रही थी। बाहें अकड़ा गईं। रानी की सच्ची भक्ति के आगे चितौड़ का राणा चुप ही रहा। वह कुछ बोल न सका तथा नज़रें झुका लीं। उसका गुस्सा शांत हो गया। दूसरा वह अपनी रानी से काफी प्रेम करता था। रानी के विरुद्ध होना उसके लिए सरल नहीं था। रानी जितनी सुन्दर, मधुरभाषी थी उतनी ही पतिव्रता थी। वह एक सत्यवती देवी सदा धर्म पर अडिग रहती थी।

राणा अकेला ही पीछे मुड़ने लगा तो रानी ने कहा–'ठहरें, मैं भी आपके साथ चलती हूं। मैं स्वयं पंडितों से पूछती हूं कि वह कौन–सा मुंह लेकर भक्त रविदास जी का विरोध एवं निंदा करते फिरते

हैं।' उस समय राणा के रोकने पर भी रानी झाली साथ चल पड़ी। दोनों उस स्थान पर आ गए जहां पंडित बैठे थे। झरोखे में खड़े होकर पर्दे के पीछे रानी झाली ने पंडितों को संबोधन करते हुए कहा- पंडितो ! क्या आपको इस बात का दुःख है कि मैंने तीर्थ यात्रा के समय सारे धन पदार्थ भक्त रविदास को भेंट कर दिए और आपको दान न दिया ? ... आपको दक्षिणा की माया चाहिए, नए वस्त्र ! और कुछ बताएं।'

पंडित–'हां, ठीक है। हमें तो दान मिलना चाहिए था, वह मिल जाए।'

रानी 'अन्य तो कोई नाराजगी नहीं ? फिर आप प्रसन्न हो ?'

पंडित–'नहीं ! और हमें क्या नाराजगी हो सकती है ? दान लेने का हमारा अधिकार है, इसलिए हमें मिलना चाहिए। गुरु चाहे किसी को भी धारण करो।'

रानी–दो–दो सौ सोने की मोहरें अकेले–अकेले को मिल जाएंगी लेकिन यह सत्य बताओ कि रविदास की गोद में देवता आए थे ?' ...क्या यह सत्य है। जब नवाब ने परीक्षा ली थी तो आपने विरोधता !'

पंडित–'ठीक है रानी जी ! सभी बातें सत्य हैं। देवता आए थे।'

रानी–फिर तो वह बड़ा भक्त है जो किसी से ईर्ष्या नहीं करता, जाओ दान मिल जाता है। मेरा राणा जितनी बात मेरी सुन सकता है, उतनी आपकी नहीं सुनता। मेरा पति है, स्वामी है, अहंकार नहीं करती... बात सत्य है।

भक्तों का रक्षक भगवान है। वह अपने भक्तों की लाज हर स्थान पर रखता है। उस समय पंडितों को रविदास जी के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। उनका चमत्कारी चेहरा देख कर वे डर गए, झूठ न बोल सके। उन्होंने राणा जी से क्षमा मांग ली और कहा, 'हम तो माया के भूखे हैं।'

राणा ने सभी को सोना, नकद रुपए तथा वस्त्रों का दान किया। तदुपरांत बड़े आदर–सत्कार के साथ विदा किया और रानी झाली बाई से भक्त रविदास जी का यश सुना। फिर रानी ने चितौड़ के राणा को रविदास जी के जीवन की वह साखियां सुनाईं जो वह काशी से सुनकर आई थी।

रानी झाली ने राणा साहिब को प्रेरित करके रविदास जी का श्रद्धालु बना दिया। दोनों पति–पत्नी ने फैसला करके भक्त रविदास जी को चितौड़ आने का निमंत्रण भेजा। प्रेम एवं भक्ति में खिंचे हुए रविदास संदेश मिलते ही चितौड़ को चल पड़े। उनके साथ कई भक्त भी थे। मार्ग में प्रभु भक्ति का प्रचार करते हुए वे चितौड़ पहुंचे। राजमहल का एक हिस्सा रविदास जी के लिए खाली करवा दिया गया। पूजा की सामग्री मंगवाई गई और अन्न के भण्डार खोल दिए गए। निर्धनों को अन्न तथा वस्त्र बांटा जाने लगा।

भक्त जी के राजमहल में पहुंचने पर रानी झाली बाई ने सन्तों, पंडितों तथा विद्वानों को बुला कर एक बड़ा यज्ञ करना चाहा। रानी की सलाह पर स्वीकृति हो गई तथा यज्ञ का प्रबंध किया गया। शहर में पंडित, ज्योतिषी तथा विद्वानों एवं प्रतिष्ठित लोगों को यज्ञ में बैठने तथा भोजन का निमंत्रण दिया गया। राणा चितौड़ का निमंत्रण भला शामिल होने से इन्कार कौन करे ? यज्ञ वाले दिन सब एकत्रित हो गए तथा पंगतें लग गईं। जब प्रसाद बांटने लगे तो सन्तों और पंडितों ने इस बात का विरोध किया कि रविदास पंगत में क्यों बैठा है? यह निम्न जाति का चमार है। हम धर्म भ्रष्ट नहीं करवाएंगे। रविदास हमारे साथ न बैठे। हम उच्च कुल के हैं। उनके मन का भ्रम था।

सन्तों के यह कटु वचन रविदास जी ने भी सुन लिए, लेकिन वह क्रोधित नहीं हुए बल्कि मुस्कराते रहे। भक्ति के साथ-साथ रविदास जी लोगों का धर्म एवं जाति पाति पर सुधार भी करते रहते थे। उन्होंने

रानी को पास बुला कर कहा

'हे रानी ! यह उच्च ब्राह्मण हैं, पहले इनको भोजन करवाएं। हमारी कोई बात नहीं, हम बाद में भोजन ग्रहण कर लेंगे।'

ऐसे वचन सुनते ही रानी झाली बाई व्याकुल हो गई। उसके मन में आया कि वह सभी को कानों से पकड़-पकड़ कर बाहर निकाल दे। लेकिन भक्त रविदास जी ने रानी को प्रेम से समझाया। राणा और रानी मायूस हो कर खड़े हो गए, अंत में राणा ने पंगत में जा कर पंडितों से कहा, 'कृपा आप भोजन ग्रहण कीजिए, आपकी बात मान ली है। गुरुदेव आपके साथ पंगत में बैठ कर भोजन नहीं करेंगे।'

मूर्ख जाति के अभिमानी पंडित भोजन करने लग गए। वे हंस रहे थे कि उनकी बात स्वीकार कर ली गई है, लेकिन वे ऐसे मूर्ख थे कि जैसे भाई गुरदास जी ने बताया है जो अपनी राख उड़ा कर अपने सिर में डालते हैं :-

जिऊं हाथी दा नावणा बाहर निकल खेह उडावै ।
जिऊं ऊठै दा खावणा परहर कनक जवाहां खावै ।
कमले दा कछोटड़ा कदे लक कदे सीस वलावै ।
मूरख दा किहु हथु न आवै ।

मूर्ख कह तो बैठे लेकिन जब ईश्वर का चमत्कार देखा तो वे डर गए, कई बुद्धिहीन थे। उन्होंने शोर मचा दिया कि रविदास जी हमारे साथ बैठे हैं। प्रसाद बांटने वालों ने हंस कर कहा, 'महात्मा जी ! प्रसाद ग्रहण कीजिए, वहम मत करें, डर एवं भ्रम का कोई ईलाज नहीं, प्रसाद खाएं। लेकिन वे भयभीत हो गए। छोटे-बड़े सभी पंडित बोल पड़े और सूझवानों ने भक्त जी की लीला समझी कि उनका जाति अभिमान ईश्वर को अच्छा नहीं लगा। यह चमत्कार ईश्वर का है।

पंडित हार गए। उन्होंने राजा जी के आगे प्रार्थना की, 'महाराज ! महाराज ! भक्त रविदास जी को बुलाएं, वे स्वयं पंगत में बैठे तभी

भोजन होगा। हमारी जात-पात के अंधकार से भरी हुई आंखें खुल गई हैं। ईश्वर भक्ति एवं प्रेम भावना का भूखा है, जाति-पाति का नहीं।

भक्त रविदास जी उनके साथ बैठे तो सभी ने मिल कर भोजन ग्रहण किया। भोजन के पश्चात भक्त रविदास जी ने सबको प्रेम और भक्ति का उपदेश दिया।

भक्त जी का ठाकुर नदी में बहाना

चितौड़ के राजा चंद्रहांस को संसार से तारते हुए भक्त रविदास जी देश की यात्रा तथा तीर्थों का स्नान करते हुए काशी नगरी में आ गए। काशी में एक हिन्दू राजा नागर मल भी था। वह मुगल सल्तनत के अधीन रहता था तथा अपना राज करता था। तीर्थों तथा धर्मों के ज्यादा मुकद्दमे उसी के पास जाते।

जब रविदास जी वापिस काशी आए तो आपका यश दुगुना होने लगा। राजा नागर मल ने एक बड़ा यज्ञ किया। उस यज्ञ में भक्त रविदास जी को भी निमंत्रण दिया गया। जब आप पधारे तो आपके साथ श्रद्धालु तथा सेवक भी थे। जब वे यज्ञ में शामिल होने लगे तो ब्राह्मणों ने शोर मचा दिया कि शूद्र ब्राह्मणों के बीच नहीं बैठने चाहिए। इस तरह हमारा अपमान होता है, धर्म भ्रष्ट होगा। रविदास चाहे भक्ति करता है, फिर भी जन्म के कारण तो शूद्र है।

यह सुन कर नागर मल कुछ सोच में पड़ गया, वह न तो ब्राह्मणों को नाराज कर सकता था तथा न ही भक्त रविदास जी को कह सकता था कि वह यज्ञ में शामिल न हों। उनके आगमन पर पूजा-अर्चना के समय लोगों ने माथा टेकना शुरू किया। माया के ढेर लग गए, ब्राह्मणों की तरफ किसी ने न देखा। सारे ही निराश हो गए। ब्राह्मणों ने राजा नागर मल के पास जा कर फरियाद की तथा राजा को क्रोध से कहा 'हे राजन ! आप ने पुराने शास्त्रों, स्मृतियों, ब्राह्मणों तथा

ग्रंथों का तिरस्कार किया है। शूद्र का यज्ञ में क्या काम ? कलयुग आ गया है। हम प्रसाद नहीं लेंगे, हम जा रहे हैं।'

वास्तव में ब्राह्मण लालची थे, वे यज्ञ छोड़कर जाना भी नहीं चाहते थे तथा शोर ही मचा रहे थे। नागर मल ने विवेक और गंभीरता से कहा-'हे पंडित जनों ! इस बात का कई बार फैसला हो चुका है कि भक्त रविदास एक ब्रह्म स्वरूप आत्मा हैं। जाति-पाति का भेदभाव मत करें। यदि कोई भजन करता है, वह पवित्र एवं उच्च कुल हो जाता है। कर्म प्रधान है, जाति प्रधान नहीं। आओ ! भक्त जी के पास चलकर ही निर्णय कर लेते हैं।'

यह कह कर राजा ब्राह्मणों को साथ लेकर भक्त रविदास जी के पास गए। अन्तर्यामी भक्त जी जो घाट-घाट के ज्ञाता थे, उन्होंने राजा के मन की भावना जान ली और कहा 'हे राजन ! आज्ञा करें, आप कैसे आए हो।'

नागर मल ने कहा-'महाराज ! ब्राह्मण शंका कर रहे हैं। इनकी शंका निवृत कीजिए।

रविदास जी-'ब्राह्मण किस बात की शंका करते हैं ? इनको हम क्या कहते हैं, भला बता सकते हैं ?

नागर मल 'एक इनकी शंका है कि आप जन्म से शूद्र हो, इसलिए पुराने वेद-शास्त्रों के अनुसार आपका यज्ञ में शामिल होना उचित नहीं, इसलिए आप अलग बैठें।

रविदास जी-'दूसरी शंका क्या है ?'

नागर मल-'दूसरी शंका यह है कि आप एक तरफ तो ईश्वर की उपासना बताते हो और देवी-देवताओं, ठाकुर, जनेऊ आदि को झूठा कहते हो, दूसरी तरफ यह सभी मर्यादा निभाते भी हो। आप ने जनेऊ भी डाला हुआ है। यह ब्राह्मणों जैसी बेईमानी है। ऐसी शंका है। इनका जवाब देना भी आवश्यक है।'

रविदास जी यह सुनकर मुस्करा दिए। उन्होंने फरमाया–'हमें यह समझ में नहीं आता कि ब्राह्मण किस बात की ईर्ष्या करते हैं ? परमात्मा सबका कर्ता है इसलिए उसकी पूजा करते हैं। यश करते हैं। शंख सागर में से मिला विष्णु भगवान को अर्पण हुआ। चंदन शीतल वस्तु है, जो माथे पर शीतलता के कारण लगाया जाता है। लेकिन जनेऊ हमने धागे का नहीं पहना। यह भ्रम है, जनेऊ तो जत और धर्म का है। भलाई तो सेवा की निशानी है। ब्राह्मणों का आधिपत्य नहीं, कोई जायदाद नहीं। यह एक घमण्ड है। केवल राज भाग इनके अधीन रहा। इन्होंने अपनी इच्छा से किसी को ऊंचा और किसी को नीचा करार दे दिया। राजन ! जरा सोचिए यदि हम काशी में जन्म न लेते, कहीं बाहर से आते तो क्या पता चलना था कि हम कौन हैं। यह पंचतत्व शरीर किसी का गोरा तथा किसी का काला है। जाति से शरीर का कोई संबंध नहीं होता। क्षत्रिय और ब्राह्मण भी काले हैं तथा कुकर्म भी शूद्रों से अधिकतर करते हैं। परमात्मा जिस बालक को जन्म देता है, उसके माथे पर जाति एवं गौत्र नहीं लिखता। या तो पंडित इस संबंध में कोई सबूत दें।

भक्त जी का बाणी उच्चारणा

खटु करम कुल संजुगतु है हरि भगति हिरदै नाहि ।। चरनारबिंद न कथा भावै सुपच तुलि समानि ।।१।। रे चित चेति चेत अचेत ।। काहे न बालमीकहि देख ।। किसु जाति ते किह पदहि अमरिओ राम भगति बिसेख ।।१।। रहाउ ।। सुआन सत्रु अजातु सभ ते क्रिसन लावै हेतु ।। लोगु बपुरा किआ सराहै तीनि लोक प्रवेस ।।२।। अजामलु पिंगुला लुभतु कुंचरु गए हरि कै पासि ।। ऐसे दुरमति निसतरे तू किउ न तरहि रविदास ।।३।।

(केदारा रविदास जी, पन्ना ११२४)

हे राजन ! समझने वाली बात यह है कि प्रभु की भक्ति के बिना भाव दिल से परमात्मा के साथ प्रेम किए बगैर हर मनुष्य नीच है। चाहे छः प्रकार के कर्म क्यों न करता हो। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि ईश्वर की आराधना करे। यदि जन्म-जाति की ओर जाओ तो वाल्मीकि बताएं कौन-सी उच्च कुल में से थे, जिन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम चन्द्र जी की रामायण लिखी। राम नाम के सिमरन से ही तो वह श्रेष्ठ हो गए।

एक पुरुष कुत्तों का शिकार करता था लेकिन श्री कृष्ण के चरणों का भंवरा था इसलिए वह सत्कार प्राप्त कर गया। पिंगला व अजामल जैसे अनेकों प्रभु सिमरन करने वाले नश्वर संसार से मुक्ति प्राप्त कर गए। ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति का ऊंचा स्थान बनाता है। इसलिए हे राजन ! यदि ऐसे पुरुष संसार से पार हो गए हैं तो आप क्यों घबरा रहे हो। ईश्वर की स्तुति करना सबसे बेहतर है। यह ब्राह्मण एवं जाति पाति का ख्याल छोड़ दीजिए। कबीर जी का वचन याद कीजिए यदि ब्राह्मण उच्च कुल होते हैं तो इनका जन्म उन बच्चों की तरह नहीं होता, जो शूद्रों के बच्चे हैं।

भक्त रविदास जी के ऐसे वचन सुनकर नागर मल को संतुष्टि हो गई परन्तु ईर्ष्यालु ब्राह्मण वाद-विवाद करते चले गए।

जनेऊ के बारे विवाद छिड़ा तो भक्त जी ने चार युगों के जनेऊ के बारे में बताया। सतियुग का जनेऊ सोना का था, त्रेता युग का चांदी का था, तांबे का जनेऊ द्वापर युग में हुआ तथा कलयुग में सिर्फ धागा का जनेऊ है। शेष रही ठाकुरों की बात-मैं मूर्ति पूजक नहीं।

हे राजन ! यदि आप कहते हो तो गंगा की मूर्तियां गंगा में बहा दी जाती हैं।

नागर मल-'परन्तु आप ने यह रखीं क्यों ? यह क्या भेद है ?'

रविदास जी-'यह एक भेद है आत्मिक मंडल का, भक्ति करने

का साधन। इस संबंध में भक्त जी ने शब्द उच्चारण किया-

फल कारन फूली बनराइ ॥ फलु लागा तब फूलु बिलाई ॥
गिआनै कारन करम अभिआसु ॥ गिआनु भइआ तह करमह नासु ॥३॥
घ्रित कारन दधि मथै सइआन ॥ जीवत मुकत सदा निरबान ॥
कहि रविदास परम बैराग ॥ रिदै रामु की न जपसि अभाग ॥

(भैरउ रविदास जी, पन्ना ११६७)

हे राजन ! आप बुद्धिमान हो वनस्पति की तरफ देखो ! पहले फूल लगते हैं, फूल के बाद जब फल की कली बन जाती है तो फूल झड़ जाते हैं, उनकी जरूरत नहीं रहती। फल रह जाता है। इसी तरह भक्ति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए पहले कर्म होता है। भाव भगवान की ओर ध्यान लगाने के लिए कोई न कोई भगवान का चिन्ह रखा जाता है। जब मन टिक जाता है तो वह मूर्ति एक तरफ हो जाती है कर्म का नाश हो जाता है एवं ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे बच्चा पहले खिलौनों से प्रेम करता है तथा खेलता है, पर जब बड़ा हो जाता है उसको ज्ञान हो जाता है तो खिलौनों की जगह असली चीज़ से खेलने लग पड़ता है। घी निकालने के लिए दूध अथवा दहीं को रिड़का जाता है। इसलिए हे राजन ! सोचने की बात है हम कोई मूर्ति पूजक नहीं यह तो युगों-युगों से चली आ रही एक मर्यादा थी मंदिर में मूर्ति रखना, कल से सब गंगा में प्रवाह कर दी जाएंगी, अन्य कोई शंका है तो बताओ।

ईश्वर की कृपा से भक्त जी ने हर बात पर ब्राह्मणों को झूठा साबित कर दिया। वे बड़े शर्मिंदे हुए तथा रविदास जी यज्ञ में शामिल हुए। उसी दिन जब वापिस अपने मंदिर आए तो हुक्म करके सभी मूर्तियां गंगा में प्रवाह कर दीं तथा मंदिर में कीर्तन ही प्रधान कर दिया। आप दो समय सत्संग करते तथा सत्संग में वाहिगुरु का यश गाया जाता। भक्त रविदास जी के दर्शन करने के लिए दूर-दूर से संगतें आतीं।

मीरां बाई व भक्त रविदास जी

मीरां बाई उदयपुर के महाराणा सांगा की पुत्रवधू हुई हैं। इस मीरां बाई का नाम सारे भारत के मंदिरों में गूंजता है। यह श्री कृष्ण जी की भक्त हुई। मीरां बाई के भजन मंदिरों में गाए जाते हैं। इसके श्री कृष्ण प्यार तथा भक्ति की फिल्में भी तैयार हुई हैं।

मीरां बाई युवावस्था में ही विधवा हो गई थी। अपने पिता से आज्ञा लेकर वह तीर्थ यात्रा करने के लिए आई। वह प्रभु की भक्ति करने के लिए काशी पहुंची।

काशी नगरी मंदिरों तथा पंडितों की नगरी है, हजारों यात्री रोज आते हैं तथा मंदिरों में गंगा के किनारे हमेशा चहल-पहल रहती है। ऐसी नगरी में मीरां बाई पहुंची। उसके साथ उसकी एक वफादार दासी थी, जिसका नाम करमां बाई था।

यहां बता देना ठीक है, चाहे अलग जगह पर भी मीरां बाई के लिए लिखा है कि मीरां बाई बचपन से ही श्री कृष्ण जी की भक्त थी, वह विष्णु पद पढ़ती तथा युवा अवस्था में श्री कृष्ण जी के मंदिर में देव-दासियों की तरह नृत्य भी करने लग जाती थी। वह श्री कृष्ण के अतिरिक्त किसी की वंदना नहीं करती थी तथा श्री कृष्ण को ही पारब्रह्म समझती थी। वह जब काशी में पहुंची तो उसने हर जगह आडम्बर का ही प्रभाव देखा, विश्व के मालिक पारब्रह्म की वास्तविक पूजा कम होती देखी। वह संतों-महंतों के पास घूमी। उसने हर जगह जाकर ईश्वर का प्रकाश देखने का यत्न किया तो उसको कहीं कुछ नज़र न आया।

मीरां हरि की प्यारी थी। कृष्ण की मूर्ति को उसने मां के कहने पर अपना स्वामी माना था और श्री कृष्ण जी का आंचल न छोड़ा। पर जब ज्ञान हुआ, शादी हुई तो पता लगा कि उसके संसारिक पति

राणा साहिब है तो उसके साथ संसारिक संबंध रखा, जितना स्त्री-पुरुष का शारीरिक संबंध होता है। पर मीरां बाई की आत्मा या रूह तो श्री कृष्ण भगवान के चरणों से जुड़ी रही। धीरे धीरे मूर्ति एक तरफ हो गई, केवल भक्ति रह गई। आत्मा प्रभु परमात्मा के भजन गाने लगी, वह आडम्बर से बहुत दूर चली गई। काशी के मंदिरों में भगवान का यश कम मिला। उसको तो ब्राह्मण यश ही नजर आया। माया की पूजा दिखाई दी तथा हृदय में संशय उत्पन्न हुआ। व्याकुलता आई, पर जब रविदास जी के दर्शन किए तो आत्मा में से आवाज आई-'यही सत्य है। वास्तव है ! प्रभु की पूजा ! मीरा ! जो ढूंढती थी सो मिल गया।'

मीरां ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की-'हे स्वामी जी !...... यह शब्द अभी मुंह से निकला ही था कि भक्त रविदास जी ने रोक दिया। उन्होंने कहा, 'हे देवी ! मैं तो एक निम्न जाति का व्यक्ति हूं। आप के भले के लिए प्रभु के आगे प्रार्थना करता हूं कि जन्म-जन्म का बिछुड़ा हुआ कहीं मिल जाउं। चौरासी के चक्र में पड़ा हूं मुझे 'स्वामी' कहने का क्या लाभ। स्वामी तो वह मालिक है, जो जगत का कर्ता है, उसके आगे ही प्रार्थना करो।

भक्त जी ऐसे शब्द पढ़ने लग पड़े :

हम सरि दीनु दइआलु न तुम सरि अब पतीआरु किआ कीजै ॥
बचनी तोर मोर मनु मानै जन कउ पूरनु दीजै ॥१॥
हउ बलि बलि जाउ रमईआ कारने ॥ कारन कवन अबोल ॥ रहाउ ॥
बहुत जनम बिछुरे थे माधउ इहु जनमु तुम्हारे लेखे ॥
कहि रविदास आस लगि जीवउ चिर भइओ दरसनु देखे ॥२॥१॥

(धनासरी रविदास जी, पन्ना ६९४)

जिसका भावार्थ है-हे करतार ! इस दुनिया में मेरे जैसा कोई गरीब नहीं तथा आप के जैसा कोई दयालु नहीं। यह बात मानी है। आपके

सुन्दर वचनों में मेरा मन लगा है। भरोसा कर बैठा हूं। अब मन किसी तरफ नहीं जाता।

हे मेरे दातार ! मैं आप पर बलिहारी जाता हूं। पर क्या कारण है कि आप हम से बोलते नहीं, चुप रहते हो। है तो बात ठीक, हे प्रभु ! मैं कई जन्म तथा चिरकाल से आप से बिछुड़ा हूं। अब दर्शन की अभिलाषा है। इसलिए यह मनुष्य जन्म आपके सपुर्द कर दिया है। अथवा मनुष्य जन्म का भाव है कि प्रभु की भक्ति की जाए तथा आशा है कि जीवन में सफलता प्राप्त हो। ऐसे कार्य करें। इसके आगे उन्होंने उच्चारण किया–

'हे देवी ! सब का दाता राम है। उस राम के आगे प्रार्थना करते रहें तथा उसकी ही भक्ति करें। ऐसी भक्ति करें कि द्वेष भाव मिट जाए। मुझे स्वामी कहोगे–मैं तो स्वयं उसको मालिक मानता हूं तथा आओ, इस तरह उनका यश करें–

चित सिमरनु करउ नैन अविलोकनो स्रवन बानी सुजसु पूरि राखउ ॥ मनु सु मधुकरु करउ चरन हिरदे धरउ रसन अंम्रित राम नाम भाखउ ॥१॥ मेरी प्रीति गोबिंद सिउ जिनि घटै ॥ मै तउ मोलि महगी लई जीअ सटै ॥१॥ रहाउ ॥ साध संगति बिना भाउ नही उपजै भाव बिनु भगति नही होइ तेरी ॥ कहै रविदासु इक बेनती हरि सिउ पैज राखहु राजा राम मेरी ॥२॥२॥

(धनासरी रविदास जी, पन्ना ६९४)

मन में आठों पहर सिमरन करते रहो, आंखों में भगवान का ही चित्र हो तथा जो कान सुनने के लिए हैं, इनमें आपके यश के बिना कुछ और न सुनाई दे। ऐसा मन हो कि वह भंवरे की तरह अमृत रूपी यश को ही प्राप्त करें, केवल भगवान का नाम ही उच्चारण करता रहे अन्य किसी तरफ मन न लगे।

यह भी प्रार्थना है कि मेरी प्रीति अन्य किसी और भाव दौलत,

अहंकार, वासना आदि की तरफ न लगे, बल्कि प्रभु का ही यश करती रहे, यह भक्ति महंगे दाम पर ली है। यहां रविदास जी का अपने पूर्व जन्म की तरफ ईशारा है। कैसे उन्होंने पिछले जन्म में भक्ति की पर छोटे से आलस्य के कारण फिर जन्म लेना पड़ा, फिर भक्ति करनी पड़ी।

इसके आगे उन्होंने समझाया–हे देवी ! भक्ति अकेले नहीं होती साधू संगत में होती है क्यों? साधू संगत के बिना प्रेम की उत्पत्ति नहीं होती, प्रेम ही तो भक्ति का मूल है। बस यही प्रार्थना है कि वह भगवान जो राजाओं के राजा हैं, लाज रखें। ऐसा ही कहना चाहिए।

मीरां बाई ने वचन सुने तो हृदय में शांति आ गई। ऐसे ही तो महापुरुष वह ढूंढती थी। उस समय मीरां बाई तथा करमां बाई रविदास जी के मंदिर में ही बैठी थीं कि शाम हो गई। उस समय काशी के मंदिरों की घंटियां बजने लगीं। आरती का समय था, आरती होने लगी। मीरां बाई भी दीये जला कर आरती किया करती थी, पर भक्त रविदास जी की आरती सादे ढंग से होती हुई दिखाई पड़ी। दोनों हाथ जोड़ कर एकाग्रचित्त होकर भक्त रविदास जी ने यह शब्द पढ़ दिया–

नामु तेरो आरती मजनु मुरारे। हरि के नाम बिनु झूठे सगल पासारे ।।१।। रहाउ ।। नामु तेरो आसनो नामु तेरो उरसा नामु तेरा केसरो ले छिटकारे ।। नामु तेरा अंभुला नामु तेरो चंदनो घसि जपे नामु ले तुझहि कउ चारे ।।१।। नामु तेरा दीवा नामु तेरो बाती नामु तेरो तेलु ले माहि पसारे ।। नाम तेरे की जोति लगाई भइओ उजिआरो भवन सगलारे ।।२।। नामु तेरो तागा नामु फूल माला भार अठारह सगल जूठारे ।। तेरो कीआ तुझहि किआ अरपउ नामु तेरा तुही चवर ढोलारे ।।३।। दस अठा अठसठे चारे खानी इहै वरतणि है सगल संसारे ।। कहै रविदासु नामु तेरो

आरती सति नामु है हरि भोग तुहारे ॥४॥३॥

(धनासरी रविदास जी, पन्ना ६९४)

हे भगवान ! आरती, वास्तव में तो आपका नाम ही आरती है। हे मुरदैत्य को मारने वाले प्रभु मुरारी जी ! स्नान भी आपके नाम या साधू संगत की श्रद्धा रूपी धूल है। यह विश्वास हो गया है कि हरि के नाम के अतिरिक्त जितने भी पसारे हैं, वह झूठे हैं। सत्य कहीं नहीं, नाम ही सदा रहने वाला है, अन्य जो कुछ भी दिखाई देता है वह नश्वर है। यदि आसन को लें, कुशा का हो या अन्य किसी वस्तु का तो वह भी टूट कर खत्म हो जाने वाला है, सच्चा आसन तो आपका नाम ही है। चंदन घिसने वाला पत्थर 'उरसा' भी तो आपका नाम है। केसर भी आपका नाम ही है। नाम ही शुद्ध पवित्र जल है, चंदन पर उसको चढ़ाना चाहिए। इन तुकों का समूचा भाव यह है कि हे प्रभु ! आरती करने का जितना सामान, आसन, पत्थर, चंदन तथा केसर आदि जो कुछ ठाकुरों को लगाया जाता है, सब आपके ही पैदा किए हुए हैं। जब वे आपको ये सब चढ़ाते हैं तो कौन-सा प्रशंसनीय कार्य करते हैं। ये सब तो आपके ही हैं, इसलिए आपका नाम श्रेष्ठ है।

अब लें अन्य चीजें, दीया, उसकी बाती तथा तेल आदि, वह भी मैं आपका नाम ही उत्तम समझता हूं। भाव यह कि आपके नाम का यश कर लेना ही उचित है, बाकी झूठा दिखावा है। वास्तव में आपकी शक्ति रूप सूरज, चांद या अग्नि तेल, रूईं जो आपकी किरत या शक्ति है, उसी से ही सब ओर रोशनी होती है। दीये जला कर मनुष्य अहंकार करे कि मैंने आपको रोशनी दी है, यह झूठ है, अहंकार है। इसलिए मैं तो कोई दीया नहीं जलाता। वास्तव में भक्तों के घर में आपके नाम की रोशनी है। सारे जगत में रोशनी है, एक मंदिर तो कुछ बात नहीं।

हे प्रभु ! पंडित कहता है फूलों की माला चढ़ाई जाये। इसलिए फूलों की माला आपकी नाम की शक्ति के साथ अठारह भार वनस्पति जो आप ने धरती पर उत्पन्न की है, पहले ही आपको अर्पण है। सारे फूल भंवरों ने जूठे किए हैं। देखो ! आपकी दी हुई मेहर आपको कैसे समर्पित करो। भाव यह कि फूलों का क्या लाभ, यह तो झूठा आडम्बर है। वास्तव में सब कुछ आपका अपना ही है। इस आडम्बर से बेहतर नाम जपना ठीक है, नाम ही जपते रहना चाहिए। अठारह पुराण, ६८ तीर्थ यह संसार में हैं। बस अपना तो नाम है और सत्य स्वरूप का भोग लगाते हैं। इससे अधिक कुछ नहीं।

मीरां बाई जिस तलाश में थी, उसमें उसको सफलता मिली। उसने निवेदन किया, हे प्रभु भक्त ! दासी को भी भक्ति करने का साधन बताओ, अपनी शिष्य बनांओ, गुरु के बिना भक्ति नहीं हो सकती। मैं तो नाम सिमरन करती, उस भगवान के मंदिरों में उसका यश करती जब नृत्य करती हूं तो सारे लोग मजाक करते हैं, कोई मुझे पगली कहते हैं तथा बुरी समझते हैं।

यह सुन कर भक्त जी बोले–'हे मीरां ! आपका जन्म तो राजा के घर हुआ। आपका इस तरह भक्ति करते फिरना लोगों के लिए मजाक हो सकता है। अमीर को भक्ति करता देख कर लोग इसलिए मजाक करते हैं क्योंकि उनको ज्ञान नहीं, वे अंधे हैं। माया के मोटे पर्दे की पट्टी उनकी आंखों पर बंधी रहती है। उनको तो सिर्फ दुनिया के पदार्थ, मान, अपमान, लालच तथा अहंकार आदि ही दिखाई देते हैं। उनको आत्मिक मण्डल का ज्ञान नहीं जिसे ज्ञान न हो, उसकी बात का क्रोध नहीं करना चाहिए।

मीरां बाई–'जैसे आप हुक्म करोगे, वैसे ही करूंगी, कृपा करें। ससुराल तथा मायके वाले सभी इस बात के विरुद्ध है, पर आत्मा भक्ति के साथ जुड़ चुकी है। रविदास जी ने मीरां बाई को उपदेश

दिया। उसको भक्ति तथा सेवा की तरफ लगाया। वह उसी तरह भक्ति करने लगी।

भक्त रविदास जी का मेवाड़ जाना

कहा भईओ जउ तनु भइओ छिनु छिनु ॥ प्रेमु जाइ तउ डरपै तेरो जनु ॥१॥ तुझहि चरन अरबिंद भवन मनु ॥ पान करत पाइओ पाइओ रामइआ धनु ॥१॥ रहाउ ॥ संपति बिपति पटल माइआ धनु ॥ ता महि मगन होत न तेरो जनु ॥२॥ प्रेम की जेवरी बाधिओ तेरो जन ॥ कहि रविदास छूटिबो कवन गुन ॥३॥४॥

(पन्ना ४८६-८७)

मीरां इस शब्द को हर समय पढ़ा करती थी क्योंकि इस शब्द का भाव उसके जीवन से मिलता था। मायके तथा ससुराल वाले भक्ति छुड़वाने के लिए उसको कहते थे कि वह साधू भेष त्याग कर मंदिर में राज भवन में ही पूजा करती रहे। देव-दासियों की तरह मंदिर में लोगों के सामने नृत्य न करे, इस तरह राजपूती शान को दाग लगता था। उनकी समझ ही ऐसी थी, पर मीरां कोई परवाह न करती। वह इस शब्द को पढ़ कर ही सुना छोड़ती।

इसका भावार्थ है, क्या हो जाएगा अगर इस तन के टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे ? हे प्रभु ! तुम्हारा प्यार नहीं जाना चाहिए। जीवन का डर नहीं, डर यह है कि आपका प्यार न जुदा हो। यही आपके भक्त को डर रहता है। आपके चरण कंवलों में मन लग गया है, भंवरा बन कर भक्ति का रस ले रहा है। जायदाद तथा माया के झगड़ों में तुम्हारा भक्त नहीं उलझता, तुम्हारा भक्त तो प्यार की ज़ंजीर से बंधा है। किसी तरह भी तुम्हारा सेवक प्यार के बंधन से आज़ाद नहीं हो सकता। अर्थात भक्त जन भक्ति नहीं छोड़ता चाहे उसको

कितने ही कष्ट क्यों न मिलें। जैसे भक्त प्रहलाद को अनेकों कष्ट और डर दिये गए, पर उसने 'राम' नाम का त्याग नहीं किया। 'राम' ने ही उसकी सहायता की। उसको तपते स्तम्भ से भी बचा लिया। मीरां बाई तथा करमां बाई रविदास जी के पास कुछ समय सेवा करने तथा नाम सिमरन के बाद अपने नगर मेवाड़ को लौट गईं। मार्ग में सत्संग होते गए।

मेवाड़ में पहुंच कर मीरां बाई ज्यादा भक्ति में रंगी गई, वह दुनिया तथा माया के पदार्थों को भूल गई। उसके भाई तथा ससुराल वाले इतने क्रोधित हुए कि उसे मारने पर तुल गए। एक दिन ऐसी दशा आ पहुंची कि उसकी माता भी उसकी दुश्मन हो गई। मां कभी संतान को नहीं मारती। पर मेवाड़ के शाही खानदान ने उसे इतना मजबूर किया कि उसने विष का प्याला भरा तथा मीरां को बुला कर कहा–'मीरां यह ठाकुरों का अमृत है, पी लो। सोमनाथ के मंदिर में से आया है। पवित्र अमृत ! जो जन्म मरण काट देगा।'

मीरां एक तो मां पर विश्वास करती थी तथा दूसरा वह भगवान के नाम पर न्यौछावर होती थी। उसने विष का प्याला उठाया तथा गटागट पी लिया। उसके दिल दिमाग पर कोई असर न हुआ, बल्कि उसे विष स्वादिष्ट लगा। उसके प्रभु ने सत्य ही विष को अमृत बना दिया, मीठा शर्बत। उसने कहा–'माता जी ! अमृत तो बहुत ही मीठा है और है कि यही है ?'

मीरां बाई की मां शर्मिंदा हो गई। वह कुछ न कह सकी, बोल भी न सकी, उसको संदेह हो गया कि मीरां को पता लग गया है इसी कारण वह कह रही है। मीरां की मां के हृदय में ममता उमड़ी। उसने मीरां को गले लगा लिया और रोते हुए कहा, 'मीरां ! यह अमृत नहीं, विष था, तुम्हें मारने के लिए दिया था, तुम्हारा भाई तथा तुम्हारे पिता अब तुम्हें जीवित नहीं देखना चाहते, इसलिए मुझ से विष

दिला दिया।

मीरां बाई–'मां मुझे भाई और पिता जी मारना क्यों चाहते हैं ?'

मां–'मीरां तुम एक बड़ी भूल कर आई हो, जो तुम ने रविदास चमार को अपना गुरु धारण कर लिया। अच्छा था यदि रामानंद गुसाईं या किसी पंडित के चरणों में लगती। यह क्या किया ?'

मीरां बाई–'माता जी ! भगवान की दुनिया में सभी उसके पुत्र हैं, सारे मनुष्य हैं उसके बनाए हुए। किरत कर्म करके, कोई माया के कारण बड़ा है तथा कोई छोटा, आत्मा तथा खून हरेक के एक हैं। ईश्वर की भक्ति कोई बुरा कार्य नहीं अपितु नेक कर्म है।

माता जी ! पर मैं मरी नहीं जहर तो अमृत बन गया। मेरा भगवान ही रक्षक।

माता आंसू बहाती रही क्योंकि वह अपनी पुत्री से बहुत प्रेम करती थी लेकिन मीरां बाई का खतरा न टला।

एक दिन करमां बाई ने कहा–'हो सकता है मामला बिगड़ जाए, गुरु रविदास जी को बुला लें, उनके आने पर मामला ठीक हो जाएगा, बाहर बहुत चर्चा है।'

यह सुन कर मीरां हंस पड़ी तथा प्रभु यश में भजन गाने लग गई, उसने कह दिया कि जरूर बुला लो। भेज दो संदेश यदि आ जाएं।

'मैं स्वयं जाती हूं।' करमां बाई का उत्तर था।

'अच्छा' कह कर मीरां बाई भक्ति लहर में विष्णु पद गाने लगी, वह एक पल भी भगवान का यश करने से नहीं रुकती थी।

दूसरे दिन सफर का प्रबन्ध करके करमां बाई काशी नगर की तरफ चल पड़ी, उसको आशा थी कि उसके कहने पर भक्त जी अवश्य आ जाएंगे।

करमां बाई भक्त रविदास जी के निवास पर पहुंच गई, उसने भक्त रविदास जी के आगे प्रार्थना की–'महाराज ! कृपा करके आप मेवाड़

तक चलो। एक तो उधर के जिज्ञासु दर्शन करना चाहते हैं और दूसरा मीरां बाई बहुत संकट में है।'

रविदास जी ने पूछा-'मीरां बाई को क्या संकट आ गया ? वह तो प्रभु की दासी है।'

करमां बाई-'महाराज ! मीरां का भाई चंद्रभाग ही उसका शत्रु बन गया है। माता ने जहर दे दिया, मीरां आपके दर्शन करना चाहती है।'

अपने भक्तों की लाज रखने वाले प्रभु ने रविदास जी को प्रेरणा की तो वह मेवाड़ की तरफ चल पड़े। उनके साथ बहुत सारे श्रद्धालु भी साथ थे। मार्ग में आप कलयुगी जीवों को यूं उपदेश करते जा रहे थे-

नाथ कछूअ न जानऊ ।। मनु माइआ कै हाथि बिकानऊ ।।१।। रहाउ ।। तुम कहीअत हौ जगत गुर सुआमी ।। हम कहीअत कलिजुग के कामी ।।१।। इन पंचन मेरो मनु जु बिगारिओ ।। पलु पलु हरि जी ते अंतरु पारिओ ।।२।। जत देखऊ तत दुख की रासी ।। अजौ न पत्याइ निगम भए साखी ।।३।। गोतम नारि उमापति सवामी ।। सीसु धरनि सहस भग गांमी ।।४।। इन दूतन खलु बधु करि मारिओ ।। बडो निलाजु अजहू नही हारिओ ।।५।। कहि रविदास कहा कैसे कीजै ।। बिनु रघुनाथ सरनि का की लीजै ।।६।।१।।

(पन्ना ७१०)

इस शब्द में भक्त रविदास जी ने जन-साधारण पुरुष की अवस्था ब्यान की है कि वह कैसे विनती करता है-हे करतार ! मैं तो कुछ भी नहीं जानता। न जप तप का ज्ञान है। आप तो जगत के स्वामी हैं। हम कलयुग के वासनावादी आदमी हैं।

पांचों (लोभ, मोह, अहंकार, क्रोध, वासना) ने मेरे मन को बिगाड़

दिया है। पल-पल इन्होंने हरि परमात्मा से दूर किया है। और ज्ञान के निकट नहीं आने दिया। जिधर भी देखते हैं दुःखों का ही साम्राज्य है। अभी भी बोध नहीं हुआ। आगे उदाहरण के तौर पर बताते हैं कि दुनिया के लोगों देखो ! पाप कर्म करने वाले बड़े पुरुष भी सजा से बच नहीं सके। ऋषि गौतम की पत्नी अहल्या तथा इन्द्र की कथा मिसाल है। देवराज इन्द्र कामुक होकर बेईमान हुआ तो ऋषि गौतम के श्राप से हज़ारों दुःख उठाए, शरीर पर निशान पैदा हो गए। पांचों ने ऐसा दुखी किया कि निर्लज्ज अभी भी विचार नहीं करता। भक्त जी कहते हैं कि हरि भजन के बिना परमात्मा की शरण लेने का कोई लाभ नहीं होता, इसलिए ईश्वर की शरण के लिए भजन अति आवश्यक है।

रविदास जी मेवाड़ की ओर रवाना हो गए। कई सैंकड़ों मील का मार्ग था। मार्ग में वह जहां भी पड़ाव करते, वहां ही सत्संग करके हरि भक्ति की वर्षा करते। दुखी लोग दुःखों के बारे पूछते। आत्मिक ज्ञानी तथा अभिलाषी आत्मा की बाबत पूछते। इस तरह ही सब कुछ होता जाता। भक्त जी की महिमा जगत में चारों तरफ बेहद होती।

इस तरह मार्ग में एक दिन भक्त रविदास जी अपने स्वामी परमात्मा से वचन विलास करने लग गए। भक्त तथा परमात्मा के क्या संबंध होते हैं ? कैसे परमात्मा भक्तों के वश में हो जाता है ? इस बातचीत को जगत के आगे इस शब्द द्वारा प्रगट किया-

जउ हम बांधे मोह फास हम प्रेम बधनि तुम बाधे ॥
अपने छूटन को जतनु करहु हम छूटे तुम आराधे ॥१॥
माधवे जानत हहु जैसी तैसी ॥ अब कहा करहुगे ऐसी ॥१॥ रहाउ ॥
मीनु पकरि फांकिओ अरु काटिओ रांधि कीओ बहु बानी ॥
खंड खंड करि भोजनु कीनो तऊ न बिसरिओ पानी ॥२॥
आपन बापै नाही किसी को भावन को हरि राजा ॥

मोह पटल सभु जगतु बिआपिओ भगत नही संतापा ॥३॥
कहि रविदास भगति इक बाढी अब इह का सिउ कहीऐ ॥
जा कारनि हम तुम आराधे सो दुखु अजहू सहीऐ ॥४॥२॥

(सोरठि रविदास जी, पन्ना ६५८)

जिसका परमार्थ भक्त जी फरमाते हैं–हे ईश्वर ! जीव (हम) जगत में आए तो आप ने मोह के बंधन से जकड़ कर हमें बांध लिया पर हमने भी तुम्हें प्रेम रूप बंधनों के कारण बांधा है। हम तो आपको याद करके बंधनों से छूट गए, पर अब आप अपने छूटने का प्रबन्ध करो।

हे प्रभु ! जैसे हमारा प्यार आपके साथ है, वह आप ही जानते हो। अब क्या कहोगे, यह प्यार टूटने वाला नहीं। यह प्यार तो ऐसा है जैसे जल और मछली का प्यार होता है। शिकारी या मछली को खाने वाला जल में से पकड़ कर मछली को चीरता तथा टुकड़े–टुकड़े करता है, पकाता और खाता है, पर मछली पानी को नहीं भूलती। मछली खाने वाला पानी पीता रहता है। ऐसे ही हमारा प्यार आपके साथ है।

हे प्रभु ! आप विशेष किसी एक के नहीं जैसे हिन्दू ब्राह्मण कहते थे कि भक्ति का अधिकार केवल ब्राह्मण या उच्च जाति को है, निम्न जाति का कोई भी भक्त नहीं हो सकता। भक्त जी कहते हैं कि आप किसी के खास नहीं हैं, बल्कि हरेक को भक्ति करने का हक है। सारा जगत ऐसे मोह रूप के पर्दे से ढंका हुआ है कि उसको ज्ञान नहीं होता। पर भक्तों को दुःख नहीं होता। हे प्रभु ! आपकी भक्ति ही हमें बढ़ती दिखाई देती है। हम ने आपको याद करने के लिए अनेकों कष्ट सहन किए तथा आज भी सहन कर रहे हैं, ऐसा आपका प्यार है। हे दाता ! कृपा करते रहो जिससे जीवों का कल्याण हो, मोह का पर्दा दूर करो। यह मोह रूप बंधन तथा पर्दा ही दुखों

का घर है ।

एक जिज्ञासु के साथ एक धनवान पुरुष आया, वह किसी कारण डरने लग पड़ा था । उसने कई प्रकार के साधन अपनाए, पर उसका डर दूर नहीं हुआ । महापुरुषों से मेल करके उसको यह ज्ञान हुआ कि जन्म मरण के कष्ट जीव सहन करता है । भक्त जी का डेरा मार्ग में था कि धनवान ने भक्त जी के आगे प्रार्थना की कि जन्म-मरण का दुःख कैसे दूर हो ? त्रिकालदर्शी भक्त जी उसके मन की भावना को जान गए तथा उन्होंने इस बाणी के द्वारा उपदेश दिया–

दुलभ जनमु पुंन फल पाइओ बिरथा जात अबिबेकै ॥ राजे इन्द्र समसरि ग्रिह आसन बिनु हरि भगति कहहु किह लेखै ॥१॥ न बीचारिओ राजा राम को रसु ॥ जिह रस अन रस बीसरि जाही ॥१॥ रहाउ ॥ जानि अजान भए हम बावर सोच असोच दिवस जाही ॥ इंद्री सबल निबल बिबेक बुधि परमारथ परवेस नही ॥२॥ कहीअत आन अचरीअत अन कछु समझ न परै अपर माइआ ॥ कहि रविदास उदास दास मति परहरि कोपु करहु जीअ दइआ ॥३॥

(पत्रा ६५८)

भक्त रविदास जी का उपदेश

भक्त रविदास जी के पास एक ब्राह्मण आया। वह जूते की मुरम्मत करवाने आया था । भक्त जी ने देखा वह उच्च कुल, सुन्दर शरीर तथा नए वस्त्रों का अहंकार करता था, वह दूर-दूर रहे तथा भयभीत हो कि कहीं चमार के निकट न हो जाए, चमड़े से घृणा करे । जब बोले तो बड़े रोब के साथ। उसी समय रविदास जी के एक-दो श्रद्धालु आ गए । उन्होंने नमस्कार की तथा कहा, 'हे भक्त जी ! आपकी अपार कृपा है, जो दुःख दूर हो गए । मन शांत हो गया, हृदय की

जलन मिट गई।... आप तो सदा ही प्रत्यक्ष राम रूप हो।'

श्रद्धालु के मुख से यह वचन सुन कर उस ब्राह्मण को क्रोध आया तथा वह बोला, 'कैसे नीच पुरुष हो आप लोग, एक जूतियां मुरम्मत करने वाले का श्री राम चन्द्र जी से मुकाबला करते हो। ऐसा कैसे हो सकता है ? नीच पुरुष बड़े-छोटे का ख्याल नहीं करते।'

ब्राह्मण की यह अहंकार भरी बात सुन कर श्रद्धालुओं को बुरा लगा। उन्होंने कड़ा उत्तर दिया तो भक्त जी ने उनको बोलने से रोका तथा कहा, 'पंडित जी ठीक कहते हैं', मैं गरीब चमार भला श्री राम जी के मुकाबले पर कैसे हो सकता हूं ! श्री राम तो मेरे मालिक हैं, जगत के कर्ता-धर्ता हैं। हरे राम राम राम !'

भक्त जी अपने राम के साथ एकसार हो गए, जूते की भी मुरम्मत करते जाएं। 'हाथ कार्य की तरफ और चित यार की तरफ ...।' वाह ! कैसा जीवन था।

उस ब्राह्मण का ध्यान उधर पड़ा। उसने जब देखा तो वह हैरान हुआ। उसकी आंखों को ऐसे लगा, जैसे सचमुच ही धनुषधारी श्री राम जी बैठे थे। वह भीलनी के बेर खा रहे थे, उसके मुंह से एकदम आश्चर्य से निकला, 'राम ! हे राम !'

भक्त जी ने जूता तैयार किया तथा कहा, 'लीजिए पंडित जी ! यह है आपका जूता, पहन कर देखो ! और तो नहीं करना ?'

ब्राह्मण की सुधबुध ठीक हुई। उसने जूता पैरों में पहना। दो पैसे फैंक कर भाग गया। वह ब्राह्मण था तथा उसको अहंकार था। उसके जाने के बाद उसकी मनोदशा का अनुभव करके भक्त जी ने इस प्रकार वचन किया-

तुझहि सुझंता कछू नाहि ॥ पहिरावा देखे ऊभि जाहि ॥ गरबवती का नाही ठाउ ॥ तेरी गरदनि ऊपरि लवै काउ ॥१॥ तूं कांई गरबहि बावली ॥ जैसे भादउ खूंबराज तू तिस ते खरी

उतावली ॥१॥ रहाउ ॥ जैसे कुरंक नही पाईओ भेदु ॥ तनि सुगंध ढूढै प्रदेसु ॥ अप तन का जो करे बीचारु ॥ तिसु नही जमकंकरु करे खुआरु.॥२॥ पुत्र कलत्र का करहि अहंकारु ॥ ठाकुरु लेखा मगनहारु ॥ फेड़े का दुखु सहै जीउ ॥ पाछे किसहि पुकारहि पीउ पीउ ॥३॥ साधू की जउ लेहि ओट ॥ तेरे मिटहि पाप सभ कोटि कोटि ॥ कहि रविदास जुो जपै नामु ॥ तिसु जाति न जनमु न जोनि कामु ॥४॥१॥

(बसंतु रविदास जी, पन्ना ११९६)

भक्त जी के वचन का भावार्थ यह है कि मेरी देह तुम्हें कुछ पता नहीं लगता, अपना पहनावा तथा अपने आप को सुंदर देख कर अहंकार करती जा रही हो, यह अहंकार तो ठीक नहीं, अहंकारी आत्मा को कहीं कोई जगह नहीं देता। तुम्हारी गर्दन पर तो कौआ बोलता है भाव यम सिर पर खड़ा काल का हुक्म सुनने को तैयार है।

वाह ! पागल देह पर आत्मा अहंकार करती है, पर कभी देखा है भादों के महीने में मशरूम उगती हैं, पर उगने की शीघ्रता से नष्ट होने की ज्यादा शीघ्रता होती है। भाव कि जीव मशरूम की तरह है। पता नहीं कब नष्ट हो जाना है। अहंकार करने वाला जीव जंगल के उस हिरन की तरह है, जिसे यह बोध नहीं होता कि कस्तूरी तो उसके पास है, पर ढूंढता बाहर फिरता है, क्योंकि सुगंधि जो बाहर से आती अनुभव होती है। इसी तरह जो अपने तन का विचार करे, यह क्या है ? कैसे आया ? कैसे करेगा ? तो उस पुरुष को कभी यम परेशान नहीं करता। भाव वह नरकों का भागी नहीं बनता, वह तो स्वयं ही सुधर जाता है।

आमतौर पर जो जीव अपने तन का अहंकार करता है तो वह साथ ही अपनी सुन्दर पत्नी, कमाऊ पुत्र या रिश्तेदारों का अहंकार कर लेता है, पर यह नहीं जानता कि यह सब के सब साथ चलने वाले

नहीं। सब अपने-अपने कर्म के मालिक हैं। परमात्मा ने लेखा अकेले-अकेले से मांगना है। वह मांगने वाला है। जो कर्म किए हैं, उसका फल भोगना है। फिर बताओ किसे आवाज़ दोगे। 'पति जी ! पति जी ! किसी ने भी नहीं आना।

हे जीव ! सबसे अच्छी बात है कि अहंकार को त्याग कर अच्छे साधू-संत का आसरा ले। साधू की संगत से तुम्हारा अहंकार मिट जाएगा, नाम सुमिरन से पाप मिट जाएंगे, पाप भी वह जो करोड़ों ही करोड़ों हैं। भाई ! जो नाम जपता है, वही पार उतरता है। नाम जपने वाले की न जाति, न गोत्र परखी जाती है।

वह ब्राह्मण तो चला गया पर दूसरे श्रद्धालु पास बैठे थे। उन्होंने भक्त जी के पास से ज्ञान उपदेश सुना। इसी तरह रास्ते पर जाते अनेकों पुरुष आ बैठते। कईयों को यह विश्वास था कि रविदास जी के दर्शन करने से ही दुःख निवृत हो जाते हैं। लोग सुनते तथा दूर-दूर तक यश ले जाते थे। कई बार स्वामी रामानंद जी गुसाईं भी आते तथा रविदास जी के साथ वचन विलास करके चले जाते, पर भेद न खोलते वह वृद्ध हो चुके थे। शाम को रविदास जी भी काम बंद करके उनके डेरे में जाकर सत्संग सुनते थे।

नहावन आया संग मिल बानारस कर गंगा थेटा।
कढ कसीरा सउपिआ रविदासै गंगा की भेटा।
लगा पूरब अभीच दा डिठा चलित अचरज अमेटा।
लईआ कसीरा हथ कढ सूत, ईक जिउं ताना पेटा।
भगत जना हरि मां पिउ बेटा।

काशी में बड़ा भारी मेला था। उसको अभीच नक्षत्र पर्व कहा जाता था। भाई गुरदास जी के उपरोक्त कथन के अनुसार उस पर्व पर लोगों तथा श्रद्धालुओं के साथ रविदास जी भी गंगा स्नान करने के लिए उठ कर आ गए। उनके पास एक कसीरा (पैसा) था।

रविदास जी तथा उनकी धर्म पत्नी गंगा स्नान करने लगे। उस समय बहुत भीड़ थी, हज़ारों स्त्री, पुरुष स्नान करते हुए अपनी आर्थिक दशा के अनुसार पूजा कर रहे थे तथा चढ़ावा चढ़ा रहे थे। कुछ न कुछ गंगा की भेट करना शुभ समझा जाता था।

रविदास जी ने कसीरा निकाला पर साथ ही मन में यह इच्छा धारण की कि कसीरा फैंकना नहीं, यदि गंगा मैया शक्तिशाली है तो वह अपना हाथ ऊंचा करके कसीरा पकड़े। गंगा मैया ने राम भक्त के मन की इच्छा को जान लिया। उसके कानों में ऐसी वाणी हुई, जिससे प्रगट हुआ, हे रविदास ! तेरा कसीरा स्वीकार है। लोगों का सोना तथा मोहरें स्वीकार नहीं। भगवान भक्ति भावना का भूखा है, उसको धनवान अच्छे नहीं लगते।

रविदास जी ने कसीरा निकाला। हाथ में लेकर गंगा जल में गया। स्नान की डुबकी लगा कर उसने गंगा को कसीरा पकड़ाने के लिए हाथ आगे बढ़ाया तो उधर से गंगा की लहरों में से हाथ निकला, वह हाथ गंगा का था। गंगा अपनी भेंट मांग रही थी। प्रसन्नता व्यक्त कर रही थी। सब ने उस हाथ को देखा। पंडित तथा बड़े सेठों ने, जो यज्ञ तथा भंडारे करवाने आए थे, उनको गंगा के दर्शन न हुए। रविदास जी खुश होकर नाचने लग पड़े। उनके जीवन में एक उल्लास आया।

उस समय कहते हैं कि सारे बनारस के मंदिरों के घण्टे अपने आप बजने लग पड़े। घंटियों तथा घंटों की घनघोर ने लोगों के दिल दहला दिए, क्योंकि वह अपने आप बज रहे थे। भाई गुरदास जी कहते हैं, भक्त की लाज भगवान ने रखी तथा इस तरह कहना माना, जैसे बालक का कहना पिता मानता है। भाव पिता बालक की मांगें पूरी करता है।

उस दिन से रविदास जी की भक्ति प्रगट हो गई। सभी उनको

भक्त जी ! भक्त जी ! कह कर बुलाने तथा आदर करने लगे।

भक्त रविदास जी तथा पारस

कहा भइओ जउ तनु भइओ छिनु छिनु ॥ प्रेमु जाइ तउ डरपै तेरो जनु ॥१॥ तुझहि चरन अरबिंद भवन मनु ॥ पान करत पाईओ पाइओ रामइआ धनु ॥१॥ रहाउ ॥ संपति बिपति पटल माइआ धनु ॥ ता महि मगन होत न तेरो जनु ॥२॥ प्रेम की जेवरी बाधिओ तेरो जन ॥ कहि रविदास छूटिबो कवन गुन ॥३॥४॥

(पन्ना ४८६)

जिसका परमार्थ है-भक्त रविदास जी भक्ति में लीन कर्म करते हुए प्रभु को कहते जाते थे-हे परमात्मा ! बेशक तन कट जाए तुम्हारा भक्त नहीं डरता, पर प्यार न छूटे। डर प्यार का है। मेरा मन तो तुम्हारे चरण कंवल रूप घर में पहुंच गया है। हे राम ! तुम्हारी भक्ति रूप पर्दा है, वह प्राप्त होने पर जगत पर जो माया रूपी पर्दा है, वह तुम्हारे भक्त पर कोई असर नहीं करता। भाव माया से प्रेम नहीं करता। तुम्हारा भक्त तो प्यार की डोरी से बंधा है। भक्त रविदास जी कहते हैं, यही डर है कि तुम्हारा भक्त कैसे बचे इस दुनिया रूपी भवसागर से।

जब आप ऐसे सोच-विचारों में थे तो भगवान ने एक अद्‌भुत ही कौतुक किया। कहते हैं, एक साधू आया। कहा जाता है कि वह वास्तव में ईश्वर था। भक्त की परीक्षा के लिए आया था।

यह भी हो सकता है कि कोई दयावान साधू-महात्मा ही हो, जिसने रविदास भक्त जी की निर्धनता दूर करने की दिल में इच्छा धारण की हो।

वह साधू रविदास भक्त जी के पास आया। लम्बी सुनहरी दाढ़ी, भगवा भेष, गले में माला थी। उसको रविदास जी ने आसन दिया

और वह बैठ गया, और पूछने लगा–'हे भक्त ! निःसंदेह तुम मेहनत करते हो फिर भी तुम्हें नुक्सान रहता है। संगत भी करते हो ? माया का कैसे गुजारा होता है ?'

रविदास जी–'हे महाराज जी ! जिस हालत में भगवान रखता है, उसी में रहना ठीक है। मेहनत की कमाई द्वारा खाते हैं, बहुत आनंद है, झोंपड़ी हो या शीश महल दिन ही काटने हैं। जितने श्वास राम ने दिए हैं उतने भोग जाना है। उसके नाम का धन पास रहे तो वही ठीक है।

साधू–'मैं आपके नाम की महिमा सुन कर आया हूं पर आपकी आर्थिक दशा बुरी देख कर ख्याल आया है कि आपकी सेवा करूं। मेरे पास पारस है यह रख लो।

रविदास जी 'पारस का क्या लाभ?'

साधू–'पारस ऐसी वस्तु है, जो लोहे से छुआ जाए तो लोहा सोना बन जाता है। वह सोना बाजार में बेच कर पैसे कमाए जाते हैं। जूतियां मुरम्मत करते हो, इससे लाभ नहीं होता। पारस से एक दिन में ही अमीर हो जाओगे।

रविदास जी–'मायाधारी तो अंधा, बहरा होता है। माया की आवश्यकता नहीं, परिश्रम में ही बरकत है।

साधू–'देखो भक्त जी ! माया की हरेक मनुष्य को जरूरत है। माया से बड़े-बड़े महल, मंदिर तथा किले बनते हैं। उन किलों, मंदिरों की शोभा बढ़ती है तथा यश होता है। बड़े भंडारे किए जाते हैं, देखते नहीं कितने लोग माया एकत्रित करते हैं। काशी के पंडित तो देखो मारो-मार करते धन एकत्रित करते हैं। बोलो ! राम भक्त ! दूं पारस !'

साधू ने गोल पत्थर का टुकड़ा निकाला, वह रविदास जी के आगे किया। उसको दिखाया, पर भक्त तो परमात्मा के नाम सिमरन से ही प्रसन्न था। उसने उत्तर दिया–'महाराज ! जितनी माया अधिक

आती है, उतनी बुद्धि भ्रष्ट होती है। अहंकार आता है, शरीर में दोष बढ़ते हैं। हम देखते हैं कि ऊंचे मंदिरों के पुजारी अहंकारी हैं। महलों वाले राजा अहंकारी हैं। जिस तरफ देखो आपको अहंकार, लालच, वासना की बाढ़ बहती नज़र आएगी। आप हमें इस झोंपड़ी में ही राम नाम का सुमिरन करने दें। धर्म पत्नी भी गरीबी में ठीक है। राम की कृपा है।'

साधू रूपी भगवान ने हठ किया। पारस उसके पास रख कर उठ कर अपने मार्ग चल पड़ा। उसके जाने के बाद भक्त ने पारस उठा कर छत्त में रख दिया। छत्त में नरकट तथा बांस थे। उन्होंने तो सोना बनना नहीं था। रविदास जी की धर्म पत्नी कहीं बातें सुनती रही थी। साधू के जाने के पश्चात उसने रविदास जी के पास आकर पूछा।

'जी ! ... साधू पारस, सोने, मंदिरों की क्या बात करता था ?'

रविदास जी-'राम का नाम छुड़वाता तथा धन-दौलत का लालच दे रहा था। कहता था सोना बना कर बेचो, अमीर बन जाओ, मंदिर तथा महल बनाओ।'

पत्नी-'सोना किससे बनना था ?'

रविदास-सोना बनना था पारस के साथ। वह रख गया और मैंने उठा कर छत्त में रख दिया है, हमारे किस योग्य ? वह काम नहीं करना चाहिए, जो राम नाम से दूर करे। राम नाम ही सर्वोपरि है।

कई साल के बाद वह साधू फिर आया। रविदास जी उसी त्रिण की झोंपड़ी में बैठे थे तथा पहले की तरह ही अपना काम कर रहे थे। कपड़े, बर्तन, चमड़े तथा हथियारों में कोई भी फर्क नहीं पड़ा था, सारी जगह वैसी ही थी। साधू ने पूछा, 'भक्त जी! मैं आपको पारस दे गया था।'

रविदास जी-'हां, महाराज ! आप मुझे पारस दे गए थे, वह उठा कर अमानत समझ कर छत्त में रखा है. ले जाओ। वहीं पड़ा है,

एक काला पत्थर ।

यह सुन कर साधू मन ही मन बहुत खुश हुआ तथा उसने पारस उठा लिया। पारस को पकड़ कर भक्त जी की तरफ देख कर पूछा - 'भक्त जी ! आपकी वास्तविक इच्छा क्या है ?

रविदास जी ने साधू की तरफ देखा। सूई तथा आर हाथ से रख कर उन्होंने वचन किया-

हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरे ॥ हरि सिमरत जन गए निसतरि तरे ॥१॥ रहाउ ॥

हरि के नाम कबीर उजागर ॥ जनम जनम के काटे कागर ॥१॥

निमत नामदेउ दूधु पीआइआ ॥ तउ जग जनम संकट नही आइया ॥२॥

जन रविदास राम रंगि राता ॥ इउ गुर परसादि नरक नही जाता ॥३॥

(पत्रा ४८७)

रविदास जी का भक्ति की तरफ दृढ़-विश्वास देख कर वह साधू उठ बैठा तथा पारस को हाथ में मलता हुआ बोला, 'ठीक है रविदास जी ! कोई जन्म के कारण ऊंचा नहीं होता, बल्कि कर्म के कारण ऊंचा बनता है। आपका दिल साफ है तथा भक्ति शुद्ध हृदय से कर रहे हो, अवश्य ही कल्याण होगा ।'

ऐसा वचन करता हुआ वह साधू वहीं अलोप हो गया । उसे अलोप देख कर रविदास जी समझ गए कि स्वयं भगवान आए थे। उनको पश्चाताप हुआ कि जी भर कर दर्शन क्यों न कर सके, उस दिन से रविदास जी के पास रिद्धियां-सिद्धियां आ गईं ।

भक्त रविदास जी के पक्के मंदिर बनने

तुम चंदन हम इरंड बापुरे संगि तुमारे बासा ॥ नीच रूख ते ऊच भए है गंध सुगंध निवासा ॥१॥ माधउ सतसंगति सरनि तुम्हारी ॥ हम अउगन तुम्ह उपकारी ॥१॥ रहाउ ॥ तुम मखतूल

सुपेद सपीअल हम बपुरे जस कीरा ॥ सतसंगति मिलि रहीऐ माधउ जैसे मधुप मखीरा ॥२॥

(पन्ना ४८६)

इस तरह प्रार्थनाएं करते हुए भक्त रविदास जी अपना कर्म करते रहते थे कि भगवान ने इच्छा की कि वह अपने भक्त की शान ऊंची करे। उन्होंने देख लिया था कि भक्त माया को तो हाथ नहीं लगाता। वह सदा विनम्र तथा त्याग में रहता है। इस तरह कितने ही दिन व्यतीत हो गए तो एक दिन भगवान ने कौतुक रचना शुरू कर दिया। वह कौतुक इस तरह हुआ।

रविदास जी ने छोटी-सी लकड़ी की चौकी पर देवता की पत्थर की मूर्ति रखी हुई थी, उस मूर्ति को सुन्दर वस्त्र पहना कर सजाया था, नीचे आसन बिछा था। रोजाना जंगल के बाग में से फूल लाकर चढ़ाए जाते, दोनों समय पूजा होती। रविदास जी का नित्य कर्म यह था कि बहुत रात रहते उठ कर झोंपड़ी को साफ करके, झाड़ू तथा पोचा फेरते, दोनों प्राणी स्नान करते। स्नान करने के बाद देवता की मूर्ति को स्नान कराया जाता तथा आसन साफ किया जाता। फिर पूजा शुरू होती। मूर्ति के आगे बैठे ही सूरज उदय हो जाता, सारा दिन हाथ कार्य की तरफ तथा मन भगवान की तरफ लगा रहता।

पारस वापिस लेकर भगवान के लुप्त होने के तीसरे दिन बाद जब रविदास जी ने देवता का आसन झाड़ा तो नीचे से सोने की मोहरें निकलीं। उनकी छनकार तथा चमक मायाधारी के दिल को तो खुशी तथा मस्ती में मग्न कर देती, पर रविदास जी की आत्मा पर कोई भी असर न हुआ। उसने ठीकरियों की तरह मोहरें उठा कर एक तरफ रख दीं। स्वयं पूजा करने में व्यस्त हो गए। उन मोहरों की तरफ ध्यान न दिया। यह संशय जरूर था कि वह मोहरें आई कहां से ?

यह कौतुक एक दिन का नहीं था, रोज़ सुबह जब भक्त जी देवता

का आसन साफ करते तो उनको पांच मोहरें मिलतीं। वह उनको उठा कर झरोखे में रख देते। बहुत-सी मोहरें इकट्ठी हो गईं, भक्त ने उनका प्रयोग नहीं किया। सोने को मिट्टी के बराबर समझा। भगवान ने जब देखा रविदास मोहरें देख कर डगमगाया नहीं तो रात को सपने में कथन किया- हे रविदास ! इन सोने की मोहरों को झरोखे में मत रखो, यह तुम्हारे प्रयोग करने के लिए हैं। तुम्हारा देवता, जिसकी तुम पूजा करते हो तभी प्रसन्न रह सकता है अगर इन सोने की मोहरों से देवता के लिए मंदिर बनवाओ, मूर्ति बड़ी तथा सुन्दर रखो, आए जिज्ञासुओं तथा श्रद्धालुओं के लिए धर्मशाला तैयार करो।

यह स्वप्न देख कर रविदास घबरा कर उठ बैठा। उसकी नींद खुल गई। 'राम ! राम ! जिह्वा रटने लग पड़ी। अपनी धर्म पत्नी को हिला कर उठा लिया। सपने में सुने सारे वाक अपनी धर्म पत्नी को सुना दिए। वह गुणवंती समझदार थी। भगवान से डरने वाली थी। उसने हाथ जोड़ कर सलाह दी-स्वामी जी ! जैसे भगवान की इच्छा है, हमें वैसे करना चाहिए। गुरु (रामानंद) जी से पूछ लेना चाहिए। भगवान की कृपा है। स्वामी जी ! भगवान दयालु हैं। भगवान को नाराज नहीं करना चाहिए।

'अच्छा ! जैसी प्रभु की इच्छा है, वैसे ही करूंगा।' रविदास जी ने उत्तर दिया।

सुबह हुई, एक सेठ जी आकर हाजिर हुए। उन्होंने मोहरों की थैलियां रविदास जी के आगे रख कर माथा टेका। माथा टेकने के बाद हाथ जोड़ कर प्रार्थना की-'हे प्रभु ! आपकी कृपा से मेरे घर बालक ने जन्म लिया है। मैं पुत्र का मुख देखने के लिए मछली की तरह तड़प रहा था। आपकी शोभा सुनी थी। एक दिन आपकी झोंपड़ी के आगे से निकलते हुए मन ही मन में कामना की कि मेरे घर पुत्र हो तो इस भक्त के लिए मंदिर बनवा दूंगा। दस महीने के

बाद मेरी इच्छा पूरी हुई है। गुलाब के फूल जैसा बालक मेरे घर आया है। मैं यह धन बांध कर हाजिर हूं। मेरी कामना पूरी करने के लिए बख्शो। आज्ञा करो।'

रविदास जी की झोंपड़ी के पास खुली जगह पड़ी थी, उसको खरीद कर मंदिर बनने शुरू हो गए। एक देवता का मंदिर तैयार हुआ तथा एक रविदास जी और एक आए गए साधुओं व श्रद्धालुओं के रहने के लिए शानदार आवास तैयार हुआ। संगमरमर की देव मूर्तियां तैयार करवाई गईं। बढ़िया आभूषण पहनाए गए। जो भी देव मूर्ति के दर्शन करता वही वाह ! वाह ! कहता। रविदास की धर्म पत्नी खुशी तथा हैरानी में मग्न थी। वह भी राम सिमरन करने लगी, उसका जीवन बदल गया। रविदास के माता-पिता खुश थे कि ऊंची कुल के ब्राह्मण की तरह उनके पुत्र का आदर हो रहा था। यह चमत्कार करते हुए आप ज्योति जोत समा गए। आपकी भक्ति अपार है।

भक्त पीपा जी

सतिगुरु नानक देव जी महाराज के अवतार धारण से कोई ४३ वर्ष पहले गगनौर (राजस्थान) में एक राजा हुआ, जिसका नाम पीपा था। अपने पिता की मृत्यु के बाद वह राज तख्त पर विराजमान हुआ। वह युवा तथा सुन्दर राजकुमार था। वजीरों की दयालुता के कारण वह कुछ वासनावादी हो गया तथा उसने अच्छी से अच्छी रानी के साथ विवाह कराया। इस तरह उसकी दिलचस्पी बढ़ती गई तथा कोई बारह राजकुमारियों के साथ विवाह कर लिया। उनमें से एक रानी जिसका नाम सीता था, अत्यंत सुन्दर थी, उसकी सुन्दरता तथा उसके हाव भाव पर राजा इतना मोहित हुआ कि दीन-दुनिया को ही भूल गया। वह उसके साथ ही प्यार करता रहता, जिधर जाता उसी को देखता रहता। वह भी राजा से अटूट प्यार करती।

जहां पीपा राजा था और राजकाज के अतिरिक्त स्त्री रूप का चाहवान था, वहीं देवी दुर्गा का भी उपासक था, उसकी पूजा करता रहता। दुर्गा की पूजा के कारण अपने राजभवन में कई साधुओं तथा भक्तों को बुला कर भजन सुनता और भोजन कराया करता था। राजभवन में ज्ञान चर्चा होती रहती। उस समय रानियां भी सुनती तथा साधू और ब्राह्मणों का बड़ा आदर करतीं, उनका सिलसिला इसी तरह चलता गया। यह सिलसिला इसीलिए था कि उसके पूर्वज ऐसा करते आ रहे थे तथा कभी भी पूजा के बिना नहीं रहते थे। उन्होंने राजभवन में मंदिर बनवा रखा था।

उस समय भारत में वैष्णवों का बहुत बोलबाला था। वह मूर्ति पूजा के साथ-साथ भक्ति भाव का उपदेश करते थे। शहर में वैष्णवों की एक मण्डली आई। राजा के सेवकों ने उनका भजन सुना तथा राजा के पास आकर प्रार्थना की-महाराज ! शहर में वैष्णव भक्त आए हैं, हरि भक्ति के गीत बड़े प्रेम तथा रसीली सुर में गाते हैं।

यह सुन कर राजा ने उनके दर्शन के लिए इच्छा व्यक्त की। उसने अपनी रानियों से कहा। रानी सीता बोली, 'महाराज ! इससे अच्छा और क्या हो सकता है ? अवश्य चलो।'

राजा पीपा पूरी सलाह तथा तैयारी करके संत मण्डली के पास गया। उसने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि 'हे भक्त जनो ! आप मेरे राजमहलों में चरण डाल कर पवित्र करें। तीव्र इच्छा है कि भगवान महिमा श्रवण करें तथा भोजन भंडारा करके आपकी सेवा का लाभ प्राप्त हो। कृपा करें प्रार्थना स्वीकार करो।'

संत मण्डली के मुखी ने आगे से उत्तर दिया-'हे राजन ! यदि आपकी यही इच्छा है तो ऐसा ही होगा। सारी मण्डली राज भवन में जाने को तैयार है। भंडारे तथा साधुओं के लिए आसन का प्रबन्ध करो।'

पीपा एक राजा था। उसने तो आदेश ही देना था। सेवकों को आदेश दिया। सारे प्रबन्ध हो गए। एक बहुत खुली जगह में फर्श बिछ गए तथा संत मण्डली के बैठने का योग्य प्रबन्ध किया। भोजन की तैयारी भी हो गई।

संत मण्डली ने ईश्वर उपमा का यश किया। भजन गाए तो सुन कर पीपा जी बहुत प्रसन्न हुए। संत भी आनंद मंगलाचार करने लगे, पर जब संतों को पता लगा कि राजा सिर्फ मूर्ति पूजक तथा वासनावादी है तो उनको कुछ दुःख हुआ। उन्होंने राजा को हरि भक्ति की तरफ लगाना चाहा। उन्होंने परमात्मा के आगे शुद्ध हृदय से आराधना की कि राजा दुर्गा की मूर्ति की जगह उसकी महान शक्ति का पुजारी बन जाए।

जैसे सतिगुरु जी का हुक्म है-

हम ढाढी हरि प्रभ खसम के नित गावह हरि गुण छंता ॥
हरि कीरतनु करह हरि जसु सुणह तिसु कवला कंता ॥
हरि दाता सभु जगतु भिखारीआ मंगत जन जंता ॥
हरि देवहु दानु दइआल होइ विचि पाथर क्रिम जंता ॥
जन नानक नामु धिआईआ गुरमुखि धनवंता ॥२०॥

(सोरठि वार मः ३, पन्ना ६५०)

उन हरि भक्तों की प्रार्थना प्रभु परमात्मा ने सुनी। राजा पीपा को अपना भक्त बनाने के लिए नींद में एक स्वप्न द्वारा प्रेरित किया। उस सपने की प्रेरणा से राजा पर विशेष प्रभाव पड़ा।

राजा को स्वप्न आना

भक्त मण्डली में से उठ कर राजा पीपा अपने आराम करने वाले शीश महल में आ गया। वह अपनी रानी सीता के पास सो गया, जैसे पहले वह सोया करता था। उसकी शैय्या मखमली थी तथा

उस पर विभिन्न प्रकार के फूल और खुशबू फैंकी हुई थी। उसको दीन दुनिया का ज्ञान नहीं था। उस रात राजा को एक स्वप्न आया। वह स्वप्न इस तरह था–

स्वप्न में जैसे राजा अपनी रानी सीता के साथ प्रेम–क्रीड़ा कर रहा था। वह बड़ी मस्ती के साथ बैठे थे कि शीश महल के दरवाज़े अपने आप खुल गए, उनके खुलने से एक डरावनी सूरत आगे बढ़ी, जैसे कि राजा ने सुना था कि दैत्य होते हैं तथा दैत्यों की सूरत के बारे में भी सुना था, वैसी ही सूरत उस दैत्य की थी। राजा डर गया तथा उसके मुंह से निकला, 'दैत्य आया ! दैत्य आया ! वह तो नरसिंघ के जैसा था। राजा के पास आकर उस भयानक शक्ति ने कहा- 'हे राजा ! सुन लो ! दुर्गा की पूजा न करना, नहीं तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।' ऐसा संदेश दे कर वह शक्ति पीछे मुड़ गई तथा दरवाज़े के पास जाकर अदृश्य हो गई। उसके जाने के पश्चात राजा इतना भयभीत हुआ कि उसकी नींद खुल गई। शरीर पसीने से लथपथ था तथा उसने अपनी पत्नी सीता को जगाया, जो कि आराम से सुख की नींद सोई थी।

'हे रानी ! उठो, शीघ्र उठो।'

रानी उठी तथा उसने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, हे नाथ ! क्या आज्ञा है ?

पीपा–'आओ ! दुर्गा के मंदिर चलें।'

सीता–'इस समय नाथ ! अभी तो आधी रात है। दूसरा स्नान ?'

पीपा–'कुछ भी हो ! अभी जाना है, चलो ! मेरा हृदय धड़क रहा है। बहुत भयानक स्वप्न आया है।'

पतिव्रता नारी सीता उठी। राजा के साथ चली तथा दोनों मंदिर पहुंचे। राजा पीपा ने जाते ही दुर्गा देवी की मूर्ति के आगे स्वयं को समर्पित किया तथा आगे से आवाज़ आई। 'मैं पत्थर हूं हरि भक्ति

के लिए संतों के साथ लगन लगाओ। ...भाग जाओ।' ऐसा कथन सुन कर राजा उठ बैठा। वह एक तरह से डर गया था। वह सीता को साथ लेकर वापिस अपने महल आ गया। संतों से बात करते दिन निकल गया तथा सुबह हुई तो स्नान करके पूजा की सामग्री लेकर संतों को मिलने जाने के लिए तैयार हो गए।

संतों से मिलन

संत उधरन दइआलं आसरं गोपाल कीरतनह ॥
निरमलं संत संगेन ओट नानक परमेसुरह ॥१॥

स्वप्न में हुए कथन से राजा के जीवन में एक बहुत-बड़ा परिवर्तन आया। वह तो आहें भरने लगा। दुर्गा के मंदिर का पुजारी आया। उसने प्रार्थना की। राजा ने दुर्गा के मंदिर में जाने से इन्कार कर दिया तथा संतों की तरफ चल पड़ा। जितनी जल्दी हो सका, वह उतनी जल्दी पहुंच गया तथा संतों के मुखिया के पास जा कर विनती की कि 'महाराज ! मुझे हरि नाम सिमरन का मार्ग बताएं। आपके दर्शन करने से मेरे मन में वैराग उत्पन्न हो गया है। रात को नींद नहीं आती, न दिन में चैन है। कृपा करो। हे दाता ! मैं तो एक भिखारी हूं।'

राजा की ऐसी व्याकुलता देख कर संतों के मन में दया आई, वह कहने लगा-'हे राजन ! यह तो परमात्मा की अपार कृपा है जो आपको ऐसा वैराग उत्पन्न हुआ। पर जिसने बख्शिश करनी है, वह यहां नहीं है, वह तो काशी में है, उनका नाम है गुरु रामानंद गुसाईं। उनके पास चले जाओ।'

यह सुन कर राजा ने अपनी रानी सीता सहित काशी जाने की तैयारी कर ली। वह काशी की तरफ चल पड़ा था। उसका मन बेचैनी से इस तरह पुकार रहा था-

मेलि लैहु दइआल ढहि पए दुआरिआ ॥

रखि लेवहु दीन दइआल भ्रमत बहु हारिआ ॥
भगति वछलु तेरा बिरदु हरि पतित उधारिआ ॥
तुझ बिनु नाही कोई बिनउ मोहि सारिआ ॥
करु गहि लेहु दइआल सागर संसारिआ ॥१६॥

(जैतसरी मः ५, पन्ना ७०९)

राजा पीपा की ऐसी अवस्था हो गई, वह अधीनता से ऐसे निवेदन करने जाने लगा–हे दाता ! कृपा करके दर्शन दीजिए मैं कंगाल आपके द्वार पर आकर नतमस्तक पड़ा हूं, अब और तो कोई आसरा नहीं। कृपा करो, प्रभु ! हे दातार ! आप भक्तों के रक्षक मालिक हो, आपका विरद पतितों का उद्धार करना है। आपके बिना कोई नहीं, आप दातार हो, अपना हाथ देकर मेरी लाज रखो तथा भव–सागर से पार करो ! दया करो दाता, आपके बिना कोई भव सागर से पार नहीं कर सकता। ...ऐसी व्याकुल आत्माओं के लिए सतिगुरु महाराज की बाणी है।

इस तरह बैचेनी से प्रभु की तरफ ध्यान करता हुआ पीपा चल पड़ा। उसको ऐसी लगन लगी कि उसको सीता के तन का प्यार भी कम होता नज़र आने लगा। वह ध्यान में मग्न काशी पहुंच गया।

त्रिकालदर्शी स्वामी रामानंद भी प्रातःकाल गंगा स्नान करने जाते थे। जब गंगा स्नान करके आ रहे थे तो उन्होंने सुना कि गगनौर का राजा पीपा भक्त काशी में आया है तथा उनको ही ढूंढ रहा है। उन्होंने यह भी देखा कि उनके आश्रम के पास शाही ठाठ थी। हाथी, घोड़े, छकड़े तथा तम्बू लगे थे। सेवक से पूछा तो उसने भी कहा–'महाराज ! गगनौर का राजा आया है।'

स्वामी जी ने आश्रम के बाहरले फाटक को बंद करवा दिया तथा आज्ञा की कि 'दर्शन के लिए आज्ञा लिए बिना कोई न आए। इस तरह ताकीद की, उस पर अमल हो गया। राजा पीपा जब दर्शनों के लिए चला तो फाटक बंद मिला और आगे से जवाब मिला, 'गुरु

की आज्ञा लेना आवश्यक है, ऐसा करना होगा।'

आज्ञा प्राप्त करने के लिए सेवक गया। वह वापिस आया तो उसने संदेश दिया–'हे राजन ! स्वामी जी आज्ञा करते हैं, हम गरीब हैं, राजाओं से हमारा क्या मेल, अच्छा है वह किसी मंदिर में जाकर लीला करें, राजाओं से हमारा मेल नहीं हो सकता।'

राजा पीपा की उत्सुकता काफी बढ़ चुकी थी। उसने उसी समय हुक्म दिया, 'जो कुछ पास है, सब बांट दिया जाए। हाथी, घोड़े, सामान मंत्री वापिस ले जाएं तथा तीन कपड़ों में सीता तथा हम रहेंगे।'

पीपा के कर्मचारियों ने ऐसा ही किया। सीता तथा राजा के सिर्फ तन के वस्त्र रह गए। हाथी, घोड़े, तम्बू सब वापिस भेज दिए। धन पदार्थ गरीबों को बांट दिया। प्यार रखा प्रभु से। उत्सुकता कायम रखी हृदय में। फाटक के आगे जा खड़ा हुआ। फिर प्रार्थना करके भेजी, 'महाराज आपके दर्शन की अभिलाषा, आत्मा बहुत व्याकुल है।'

स्वामी जी ने अभी और परीक्षा लेनी थी कि कहीं यूं ही तो नहीं करता। उन्होंने कह कर भेजा, 'बहुत जल्दी में है तो कुएं में छलांग जा मारे।' वहां से जल्दी ही परमात्मा के दर्शन हो जाएंगे। सेवक ने ऐसा ही कहा, पीपा जी ने सुना।

पीपा भक्त तो उस समय गुरु–दर्शन के लिए इतना उत्सुक था कि वह अपने तन को चिरवा सकता था। सुनते ही वह कोई कुंआ ढूंढने के लिए भाग उठा। उसके पीछे उसकी सत्यवती नारी सीता भी दौड़ पड़ी। वह कुएं में गिरेगा। कुएं में गिरने से शीघ्र दर्शन हो सकते हैं। ऐसा बोलता हुआ वह दौड़ता गया, शोर मच गया।

उधर स्वामी रामानंद जी ने अपनी आत्मिक शक्ति से देखा कि पीपा जी को सत्यता ही 'हरि' से प्यार हो गया है, भक्त बनेगा, इसलिए उन्होंने ऐसी माया रचाई कि पीपा जी को कोई कुआं ही न मिला।

वह भागता फिरता रहा। रानी उसके पीछे-पीछे। धीरे-धीरे वह खड़ा हो गया। उसको स्वामी रामानंद जी के भेजे हुए शिष्य मिले जो वहां पहुंच गए। उन्होंने जाकर गुरु जी का संदेश पीपा जी को दिया-

'हे राजन ! आपको गुरु जी याद कर रहे हैं।'

'गुरु जी बुला रहे हैं ! वाह ! मेरे धन्य भाग्य ! जो मुझे याद किया। मैं पापी पीपा।' कहते हुए, पीपा जी शिष्यों के साथ चल पड़े तथा गुरु रामानंद जी के पास आ पहुंचे। डंडवत होकर चरणों पर माथा टेका। चरण पकड़ कर मिन्नत की, 'महाराज ! इस भवसागर से पार होने का साधन बताओ। ईश्वर पूजा की तरफ लगाओ। मैं तो दुर्गा की मूर्ति का पुजारी रहा हूं। लेकिन नारी रूप ने मुझे अज्ञानता के खाते में फैंक छोड़ा।'

'उठो ! राम नाम कहो ! उठो ! स्वामी रामानंद जी ने हुक्म कर दिया तथा बाजू से पकड़ कर पीपा जी को उठाया। पीपा राम नाम का सिमरन करने लग गया। स्वामी रामानंद जी ने उन्हें चरणों में लगा लिया।

पीपा जी भक्त बने

'देखो भक्त ! आज से राज अहंकार नहीं होना चाहिए, राज बेशक करते रहना लेकिन हरि भजन का सिमरन मत छोड़ना। साधू-संतों की सेवा भी श्रद्धा से करना, निर्धन निःसहाय को तंग मत करना। ऐसा ही प्यार जताना जब प्रजा सुखी होगी, हम तुम्हारे पास आएंगे, आपको आने की आवश्यकता नहीं। राम नाम का आंचल मत छोड़ना। 'राम नाम' ही सर्वोपरि है।

पीपा जी उठ गए। उनकी सोई हुई आत्मा जाग पड़ी। रामानंद जी से दीक्षा लेकर उनके शिष्य बन गए। पूर्ण उपदेश लेकर अपने शहर गगनौर की तरफ मुड़ पड़े। तदुपरांत उनकी काया ही पलट

गई, स्वभाव बदल गया तथा कर्म बदला। हाथ में माला तथा खड़तालें पकड़ लीं, हरि भगवान का यश करने लगा।

पीपा जी अपने राज्य में आ पहुंचे। उन्होंने भक्ति करने के साथ साथ साधू-संतों की सेवा भी आरम्भ कर दी। गरीबों के लिए लंगर लगवा दिए तथा कीर्तन मण्डलियां कायम कर दीं। राज पाठ का कार्य मंत्रियों पर छोड़ दिया। सीता जी के अलावा बाकी रानियों को राजमहल में खर्च देकर भक्ति करने के लिए कहा। ऐसे उनके भक्ति करने में कोई फर्क न पड़ा।

पर वह गुरु-दर्शन करने के लिए व्याकुल होने लगे। उनकी व्याकुलता असीम हो गई तो एक दिन रामानंद जी ने काशी में बैठे ही उनके मन की बात जान ली। उन्होंने हुक्म दिया कि वह गगनौर का दौरा करेंगे। उनके हुक्म पर उसी समय अमल हो गया। वह काशी से चल पड़े तथा उनके साथ कई शिष्य चल पड़े। एक मण्डली सहित वे गगनौर पहुंच गए।

सूचना पहुंच गई गुरु रामानंद जी आ रहे हैं। राजा भक्त पीपा तथा उसकी पत्नी को चाव चढ़ गए। वह बहुत ही प्रसन्नचित होकर मंगलाचार तथा स्वागत करने लगे। उनके स्वागत का ढंग भी अनोखा हुआ। कीर्तन मण्डली तैयार की गई, भंडारे देने का प्रबन्ध किया गया। शहर को सजाया गया तथा लोगों को कहा गया कि वह गुरुदेव का स्वागत करें, दर्शन करें, क्योंकि गुरमुखों, महात्माओं के दर्शन करने से कल्याण होता है-ऐसे महात्मा के दर्शन दुर्लभ हैं। बड़े भाग्य हों तो दर्शन होते हैं। जैसे सतिगुरु जी फरमाते हैं

वडै भागि भेटे गुरदेवा ।। कोटि पराध मिटे हरि सेवा ।।१।।
चरन कमल जाका मनु रापै ।। सोग अगनि तिसु जन न बिआपै ।।२।।
सागरु तरिआ साधू संगे ।। निरभउ नामु जपहु हरि रंगे ।।३।।
पर धन दोख किछु पाप न फेड़े ।। जम जंदारु न आवै नेड़े ।।४।।

त्रिसना अगनि प्रभि आपि बुझाई ।। नानक उधरे प्रभ सरनाई ।।५।।

(पन्ना ६८३-८४)

जिसका परमार्थ है–जिन सौभाग्यशाली पुरुषों ने रोशनी करने वाले गुरु की सेवा की है, उनके तमाम पाप कट गए। जिन गुरमुखों का मन प्रभु के चरण कंवलों के प्यार में रमां है, उन को शोक की अग्नि नहीं सताती, अर्थात संसार के भवसागर को साधू–संगत के साथ ही पार किया जा सकता है, इसीलिए कहते हैं कि वह परमात्मा जो निर्भय है, उसके नाम का सिमरन करो। प्रभु नाम सिमरन से जिन्होंने पराया धन चुराने का पाप एवं बुरे कर्म किए हैं, उनके निकट भी यम नहीं आता। क्योंकि प्रभु ने कृपा करके तृष्णा की अग्नि शीतल कर दी है। गुरु की शरण में आने के कारण उनका पार उतारा हो गया है। ऐसे हैं गुरु दर्शन जो बड़े भाग्य से प्राप्त होते हैं।

दो तीन कोस आगे से राजा अपने गुरुदेव को आ मिला। उसने प्रार्थना करके अपने गुरुदेव को पालकी में बिठाया तथा आदर सहित राज भवन में लेकर गया। चरणामृत पीया, सेवा करके पीपा आनंदित हुआ। कीर्तन होता रहा। कई दिन हरि यश हुआ तो स्वामी रामानंद जी ने विदा होने की इच्छा व्यक्त की तथा पीपा ने बड़ी नम्रता के साथ इस तरह प्रार्थना की–

हे प्रभु ! निवेदन है कि इस राज शासन में से मन उचाट हो गया है। यह राज पाठ अहंकार तथा भय का कारण है। इसको त्याग कर आपके साथ जाना चाहता हूं। आत्मा–परमात्मा के साथ कभी जुड़े। हुक्म करो।

'हे राजन ! यह देख लो, संन्यास लेना कष्टों में पड़ना है। बड़े भयानक कष्ट उठाने पड़ते हैं। भूखमरी से मुकाबला करना पड़ता है। जंगलों में नंगे पांव चलना पड़ता है। सुबह उठ कर शीतल जल

से स्नान करना होता है। ऐसा ही कर्म है, अहंकार का त्याग करना पड़ता है। प्रभु कई बार परीक्षा लेता है। परीक्षा भी अनोखे ढंग से होती है। यदि ऐसा मन करता है तो चल पड़ो साथ में।

पीपा गुरुदेव के चरणों पर माथा टेक कर राजभवन में गया, शाही वस्त्र उतार दिए तथा कफनी तैयार करवा कर गले में डाल ली, वैरागी साधू बन गया। उसने रानियों तथा उनकी संतान को राज भाग सौंप दिया। छोटी रानी सीता के हठ करने पर उसको वैरागन बना कर साथ ले चला। वैष्णव संन्यासियों में नारी से दूर रहने की आज्ञा होती है, पर स्वामी रामानंद जी सीता जी की पतिव्रता और प्रभु-प्यार देख कर उसको रोक न सके। सीता साथ ही चल पड़ी तथा वे अपने राज से बाहर हो गए। वे साधू-मण्डली के साथ घूमने लगे।

भगवान श्री कृष्ण जी के दर्शन

साधू मण्डली के साथ विचरण करते हुए भक्त जी ने द्वारिका नगरी में प्रवेश किया। वहां पहुंच कर स्वामी रामानंद जी तो अपने आश्रम कांशी की तरफ लौट आए, पर पीपा जी अपनी सहचरनी सीता के साथ वहीं रहे। भगवान श्री कृष्ण जी के दर्शन करने के लिए व्याकुल होकर इधर-उधर फिर कर कठिन तपस्या करने लगे। वह ध्यान धारण करके बैठ जाते। उनको जो कोई बात कहता, वह उसी को सत्य मान जाते। पर उनके साथ जब बेईमानी या धोखा होने लगता तो परमात्मा स्वयं ही उनकी रक्षा करता। भक्त जी तो दुनिया की बातों से दूर चले गए थे।

कथा करने वाले एक पंडित ने कहा, 'भगवान श्री कृष्ण जी द्वारिका नगरी में रहते हैं, वहां कोई महान भक्ति वाला ही पहुंच सकता है। उन्होंने दूसरी द्वारिका नगरी बसाई है। वह नगरी जल के नीचे है।

यह कथा श्रवण करने के बाद भक्त के मन पर प्रभाव पड़ गया।

वह तो भगवान के दर्शनों के लिए और ज्यादा व्याकुल हो गए। एक दिन यमुना किनारे बैठे थे। सीता जी उनके पास थी। उनके पास एक तिलकधारी पंडित बैठा था। उसको पूछा–

'हे प्रभु सेवक पंडित जी ! भला यह तो बताओ कि भगवान श्री कृष्ण जी जिस द्वारिका नगरी में रहते हैं, वह कहां है ?'

उस पंडित ने भक्त जी की तरफ देखा और समझा कि कोई बहुत ही अज्ञानी पुरुष है, जो ऐसी बातें करता है। उसने क्रोध से कह दिया–'पानी में।'

'पानी में' कहने की देर थी, बिना किसी सोच–विचार तथा डर के भक्त जी ने पानी में छलांग लगा दी। उनके पीछे ही उनकी पतिव्रता स्त्री ने छलांग लगा दी तथा दोनों पानी में लुप्त हो गए।

देखने वालों ने उस ब्राह्मण को बहुत बुरा भला कहा तथा वह स्वयं भी पछताने लगा कि उससे घोर पाप हुआ है, पर वह क्या कर सकता है ? वह डर के कारण वहां से उठ कर चला गया।

उधर अपने भक्तों के स्वयं रक्षक ! भगवान विष्णु ने उसी समय कृष्ण रूप धारण करके अपने सेवकों को बचा लिया। जल में ही माया के बल से द्वारिका नगरी बसा ली तथा अपने भक्तों को दर्शन दिए। साक्षात् दर्शन करके पीपा जी तथा उनकी पत्नी आनंदित हो गए। जन्म मरण के बंधनों से मुक्त हुए। ऐसा आनंद द्वारिका नगर से प्राप्त हुआ कि वहां से लौटना कठिन हो गया। प्रार्थना की 'हे प्रभु ! कृपा करो अपने चरण कंवलों में निवास प्रदान करें।'

यह खेल समय के साथ होगा। अभी भक्तों को पृथ्वी लोक पर रहना होगा। भगवान कृष्ण जी ने वचन कर दिया।

प्रभु जी ने निशानी के तौर पर अपनी अंगूठी उनको दी। रुकमणी जी ने सीता को साड़ी देकर कृतार्थ किया। दोनों पति पत्नी निशानियां लेने के बाद प्रभु के दरबार से विदा हो गए। देवता उनको जल से

बाहर तक छोड़ गए। पर प्रभु से विलग कर भक्त जी उसी तरह तड़पे जिस तरह जल के बिना मछली तड़पती है। उनको कपड़ों सहित पानी में से निकलते देख कर लोग बड़े स्तब्ध हुए।

कई लोगों ने पूछा–'भक्त जी आप तो डूब गए थे।'

भक्त जी ने कहा–'नहीं भाई हम डूबे नहीं थे, हम तो प्रभु के दर्शनों को गए थे, दर्शन कर आए हैं।'

जब लोगों को पूरी वार्ता का पता लगा तो पीपा जी की महिमा सारी द्वारिका नगरी में सुगन्धि की तरह फैल गई।

सीता सहचरी की रक्षा

लोग दूसरों की बातों में आने वाले तथा अन्धविश्वासी होते हैं। जब एक व्यक्ति ने बताया कि पीपा और उनकी पत्नी सीता प्रभु के दर्शन करके वापिस लौट आए हैं और प्रभु की निशानियां भी साथ लाए हैं तो शहर के सारे लोग पीपा जी के दर्शनों को आने लग गए। कुछेक तो प्रभु रूप समझ कर उनकी पूजा करने लग गए। पीपा जी को यह बात अच्छी न लगी। वह अपनी पत्नी सीता के साथ वन में चले गए ताकि एकांत में प्रभु भक्ति कर सकें। लोग तो हरि नाम सिमरन का भी समय नहीं देते थे। वह घने जंगल की तरफ जा रहे थे कि मार्ग में एक पठान मिला। वह बड़ा कपटी और बेईमान था और स्त्री के रूप का शिकारी था। वह दोनों भक्तों के पीछे लग गया। थोड़ी दूर जाने पश्चात सीता को प्यास लगी। वह एक कुदरती बहते जल के नाले से पानी पीने लग गई। भक्त जी प्रभु के नाम सिमरन में मग्न आगे निकल गए। उनकी और सीता की काफी दूरी हो गई। पठान ने पानी पी रही सीता को आ दबोचा। वह उसे उठा कर जंगल में एक तरफ ले गया। जो प्रभु के प्रेमी होते हैं, प्रभु भी उनका ही होता है। पठान के काबू में आई सीता ने परमात्मा का

सिमरन शुरू कर दिया। प्रभु सीता की रक्षा के लिए शेर के रूप में शीघ्र ही वहां आ गए और सती सीता की इज्जत बचा ली। पठान को कोई पाप कर्म न करने दिया और अपने पंजों से पठान का पेट चीर कर उसे नरक में भेज दिया। जब पठान मर गया तो शेर जिधर से आया था उधर को चला गया। सीता अभी वहां ही खड़ी थी कि प्रभु फिर एक वृद्ध संन्यासी के रूप में उसके पास आ गए। उन्होंने आते ही कहा-"बेटी सीता ! तुम्हारा पति पीपा भक्त खड़ा तेरा इंतजार कर रहा है। चलो, मैं तुम्हें उसके पास छोड़ आऊं।"

सीता उस संन्यासी के साथ चल पड़ी। वह भक्त पीपा जी के पास सीता को छोड़ कर आप अदृश्य हो गए। जिस समय संन्यासी आंखों से ओझल हो गया तो सीता को पता चला, 'ओहो ! यह तो प्रभु जी थे, दर्शन दे गए। मैं चरणों पर न गिरी।' वह उसी समय 'राम ! राम ! का सिमरन करने लग गई।

ठग साधू तथा सीता जी

सीता सहचरी एक तो प्राकृतिक तौर पर सुन्दर एवं नवयौवना थी, दूसरा, प्रभु भक्ति और पतिव्रता होने के कारण उसके रूप को और भी चार चांद लग गए थे। भक्तिहीन पुरुष जब उसको देख लेता था तो उसकी सुन्दरता पर मोहित हो जाता था। वह दिल हाथ से गंवा कर अपनी बुरी नीयत से उसके पीछे लग जाता था।

एक दिन चार दुष्ट पुरुषों ने सीता जी का सत भंग करने का इरादा किया। उन्होंने साधुओं जैसे वस्त्र खरीद लिए तथा नकली साधू बन गए। कई दिन भक्त पीपा जी के साथ घूमते रहे। एक दिन ऐसा सबब बना कि एक मंदिर में रात्रि रहने का समय मिल गया। उस मंदिर में दो कमरे थे।

मंदिर बिल्कुल खाली था। आसपास आबादी की जगह घना जंगल

था। जबसे भक्त पीपा जी और सती सीता ने संन्यास लिया था, वह एक बिस्तर पर नहीं सोते थे। उस दिन भक्त पीपा ने सती सीता को अकेली कमरे में सोने के लिए कहा तथा आप साधुओं के साथ दूसरे कमरे में सो गए। शायद ईश्वर ने ठगों का नकाब उठाना था, इसीलिए सीता सहचरी को अलग कमरे में विश्राम करने लिए कहा। चारों ठग साधुओं ने योजना बनाई कि अकेले-अकेले साथ के कमरे में आकर सती सीता जी का सत भंग करें। जब काफी रात हो गई तो जहां सती सीता जी सोई हुई थी, एक दुष्ट दबे पांव आगे गया। वह यही समझता रहा कि न तो पीपा जी को पता चला है, न सीता जी को। उनकी कामना पूरी होने में अब कोई कसर नहीं रहेगी। आखिर सीता है तो एक स्त्री थी, पुरुष के बल के आगे उसका क्या ज़ोर चलता है ? उस कमरे में अन्दर एक दुष्ट साधू घुस कर ढूंढने लगा कि सीता कहां है, क्योंकि काफी अंधेरा था। दबे पांव हाथों से तलाश करते हुए जब वह आसन पर पहुंचा, उसने शीघ्र ही सीता सहचरी को दबोचने का प्रयास किया। बाजू फैला कर वहीं गिर गया। जब हाथ इधर-उधर मारे तो उसकी चीखें निकल गईं। डर कर वह शीघ्र ही उछल कर पिछले पांव गिर गया। तलाशने पर पता चला कि कोमल तन वाली सुन्दर नारी बिस्तर पर नहीं है बल्कि तीक्ष्ण बालों वाली शेरनी है, उसके कान हैं, दांत हैं और वह झपटा मार कर पड़ी। गिरता-गिरता वह दुष्ट बाहर निकल आया। डर के कारण उसका दिल वश में न रहा। उसको हांफता हुआ देखकर दूसरे बाहर चले आए और उसे दूर ले जाकर पूछने लगे-मामला क्या है ? उसने कहा 'सीता का तो पता नहीं कहां है परन्तु उसकी जगह एक शेरनी लेटी हुई है। वह मुझे चीरने ही लगी थी, मालूम नहीं किस समय की अच्छाई की हुई मेरे आगे आई है, जो प्राण बच गए।

अरे पागल ! सीता ही होगी, यूं ही डर गए। डर ने तुम्हें यह

महसूस करवाया है कि वह शेरनी है। चलो ज़रा चल कर देखें, मैं त्रिण जलाता हूं। धूनी से अग्नि लेकर उन्होंने कुछ त्रिण जलाई। उन्होंने जलती हुई त्रिण के साथ कमरे में उजाला करके देखा तो सचमुच शेरनी सोई हुई है। उसकी सूरत भी डरावनी थी। डर कर चारों पीछे हट गए। अग्नि वाली त्रिण हाथ से गिर गई। उनमें से एक ने जाकर भक्त पीपा जी को जगा दिया। उसकी समाधि खुलने पर उसको बताया, 'भक्त जी अनर्थ हो गया। सीता तो पास वाले कमरे में नहीं है, उसके आसन पर शेरनी है। या तो आपकी पत्नी सीता कहीं चली गई है या शेरनी ने उसे खा लिया है। कोई पता नहीं चलता कि ईश्वर ने क्या माया रची है ?

पापी पुरुषों से यह वार्ता सुन कर पीपा जी हंस पड़े। वह मुस्कराते हुए बोले, 'सीता तो संभवतः कमरे में ही होगी लेकिन आपका मन और आंखें अन्धी हो चुकी हैं। इसलिए आपके दिलों पर पापों का प्रभाव है। आपको कुछ और ही दिखाई दे रहा है। चलो, मैं आपके साथ चलकर देखता हूं।

भक्त पीपा जी अपने आसन से उठ गए तथा उठकर उन्होंने साथ वाले कमरे में सीता जी को आवाज़ दी, 'सहचरी जी !'

'जी भक्त जी !' आगे से उत्तर आया।

'बाहर आओ ! साधू जन आपके दर्शन करना चाहते हैं।'

सीता सहचरी अपने बिस्तर से उठकर बाहर आ गई। चारों ठग साधू बड़े शर्मिन्दा हुए। उनको कोई बात न सूझी। वह चुप ही रहे। सूर्य निकलने से पूर्व ही वे सारे दुष्ट (ठग साधू) पीपा जी का साथ छोड़ कर कहीं चले गए। प्रभु ने सीता की रक्षा की। सबका रक्षक आप सृजनहार है।

जब सुबह हुई तो वे दुष्ट नज़र न आए। भक्त जी ने सीता को कहा–'मैं विनती करता हूं कि अब भी आप राजमहल में लौट जाओ।

देखो कितने खतरों का सामना करना पड़ता है। कई पापी मन आपके यौवन पर गिर पड़ते हैं। कलयुग का समय ही ऐसा है। आपके रूप पर मस्त होते हैं, यह लोग पाखण्डी हैं और मन पर काबू नहीं। आप अपने राजमहल में चले जाओ और सुख शांति से रहो।'

ऐसे वचन सुनकर पतिव्रता सीता जी ने हाथ जोड़ कर कहा–हे प्रभु ! ज़रा यह ख्याल कीजिए कि यदि आपके होते हुए आपके चरणों में मेरी रक्षा नहीं हो सकती तो राजभवन में रानियों को सदा खतरा ही रहता है। नारी को पति परमेश्वर के चरणों में सदैव सुख है, चाहे कोई दुःखी हो या सुखी, मैं कहीं नहीं जाऊंगी। जो बुरी नीयत से देखते हैं, वे पापों के भागी बनते हैं। मेरा रक्षक परमात्मा है।'

'अच्छा ! जैसी आपकी इच्छा।' यह कह कर पीपा जी प्रभु के साथ मन लगा कर बैठ गए।

वे दुष्ट चुपचाप ही भाग गए थे। उनको पता चल गया था कि सीता सहचरी का रक्षक ईश्वर आप ही है।

सूरज मल सैन को उपदेश

कायउ देवा काइअउ देवल काइअउ जंगम जाती ॥
काइअउ धूप दीप नई बेदा काइअउ पूजऊ पाती ॥१॥
काइआ बहु खंड खोजते नव निधि पाई ॥
ना कछु आइबो ना कछु जाइबो राम की दुहाई ॥१॥ रहाउ ॥
जो ब्रहमंडे सोई पिंडे जो खोजै सो पावै ॥
पीपा प्रणवै परम ततु है सतिगुरु होई लखावै ॥२॥

(धनासरी पीपा जी, पन्ना ६९५)

भक्त पीपा जी जब उपदेश किया करते थे तो वह बाणी भी उच्चारण करते थे। आप जी की बाणी राजस्थान के लोक साहित्य में मिलती है। मगर श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में एक शब्द है। इसका भावार्थ

यह है :

हे भक्त जनो ! यह जो पंचतत्व शरीर है, यही प्रभु है, भाव शरीर में जो आत्मा है वही परमात्मा है। साधू-सन्तों का घर भी शरीर है। पंडित देवतों की पूजा करते हैं, पूजा की सामग्री सब शरीर में है। सब कुछ तन में है। इसमें से ढूंढो। सतिगुरु की कृपा हो। इस तन से सब कुछ प्राप्त होता है।

ऐसे उपदेश करते हुए भक्त पीपा जी देश में भ्रमण करते रहे। जहां भी किसी को पता लगता कि पीपा राज छोड़कर भक्त बन गया है तो बहुत सारे लोग दर्शन करने के लिए आते। बड़े-बड़े राजा तथा सरदार अमीर लोग उपदेश सुनते। आप एक निरंकार का उपदेश देते तथा मूर्ति पूजा का खंडन करते।

आप महा त्यागी थे। एक बार आप एक रियासत की राजधानी में पहुंचे। ठाकुर द्वार पर निवास था। आप स्नान करने के लिए सरोवर के पास पहुंचे तो एक बेरी के नीचे गागर पड़ी हुई थी। उसमें से आवाज़ आई, 'मेरे कोई बंधन काटे, गागर में से आज़ाद करे।'

'उफ ! माया !' भक्त जी ने देख कर कहा-'भक्तों की शत्रु।' कह कर चले आए तथा सारी वार्ता सीता जी को सुनाई, 'स्वर्ण मुद्राएं पड़ी हैं।' हे स्वामी जी ! अच्छा किया आपने। उधर मत जाना, स्वर्ण मुद्राएं हमारे किस काम की !'

उनकी बातचीत पास बैठे चोरों ने सुन लीं। उन्होंने योजना बनाई कि चलो, हम गागर उठा लाते हैं। वह चले गए, पर जब गागर को हाथ डाला तो वहां सांप फुंकारे मारता हुआ दिखाई दिया। वे डर कर एक तरफ हो गए।

यह देख कर उनको काफी गुस्सा आया। एक ने कहा-'साधू को अवश्य ही हमारा पता लग गया होगा कि हम चोर हैं। उसके साथ एक सुन्दर नारी भी है। वह हमें धोखे से मरवाना चाहता है। चलो,

यह गागर उठाकर ले चलें तथा उसके पास रख दें। सांप निकलेगा तथा डंक मार कर इहलीला समाप्त कर देगा। नारी हम उठा कर ले जाएंगे। एक चोर की इस बात पर सभी ने हामी भरी।

चोरों ने गागर का मुंह बांध कर उसे उठा कर ठाकुर द्वार में आहिस्ता से भक्त पीपा जी के पास रख दिया और वहां से चले गए। भक्त उठा तो गागर को देखकर बड़ा आश्चर्यचकित हुआ लेकिन उसमें से उसी तरह आवाज़ आई, 'क्या कोई मेरे बंधन काटेगा ? मैं संतों की शत्रु नहीं, दासी हूं।'

भक्त जी ने गागर में से माया निकाल कर साधुओं को दो भंडारे कर दिए। खाली गागर ठाकुर द्वार में रख दी। उन भंडारों से जय-जयकार होने लग गई, लोग भक्त पीपा जी का यश करने लगे।

उस नगरी के राजा सूरज मल सैन को उपदेश देकर भक्ति मार्ग की ओर लगाया। आप १३६ वर्ष की आयु भोग कर इस संसार से कूच कर गए। पिछली आयु में आप पूर्ण ब्रह्म ज्ञानी हो गए थे। संसार में आपका नाम भक्ति के कारण अमर है।

बोलो ! भक्तों की जय, सतिनाम श्री वाहिगुरु तथा राम नाम का महान प्रताप।

श्री सैन जी

हे जिज्ञासु जनों ! भक्तों की महिमा अनंत है। हज़ारों हैं, जिन्होंने प्रभु परमात्मा का नाम जप कर भक्ति करके संसार में यश कमाया। ऐसे भक्तों में एक 'सैन' भक्त भी हुआ है। वह जाति से नाई था तथा उसकी बाणी का शब्द भी है।

धूप दीप घ्रित साजि आरती ॥ वारने जाउ कमला पती ॥१॥
मंगला हरि मंगला ॥ नित मंगलु राजा राम राइ को ॥१॥ रहाउ ॥
ऊतमु दीअरा निरमल बाती ॥ तुंही निरंजनु कमला पाती ॥२॥

रामा भगति रामानंदु जानै ॥ पूरन परमानंदु बखानै ॥३॥
मदन मूरति भै तारि गोबिंदे ॥ सैनु भणै भजु परमानंदे ॥४॥२॥

(पन्ना ६९५)

जिसका परमार्थ–भक्त जी कहते हैं, हम कमलपती (विष्णु भगवान) पर बलिहारी जाते हैं। मंगला चरण उपमा है, सदा उस राम राय ईश्वर की जिसकी सारी सृजना है। अच्छे दीये पर निरबल रोशनी है। हे ईश्वर ! सब कुछ तू ही है। भाव सूर्य के दीये वाला मालिक है। राम की भक्ति को रामानंद जानता है। क्योंकि वह पूर्ण परमानंद का भेद बताता है। भगवान की मूर्ति की तरफ देखकर तथा भक्ति करके परम आत्मा परमात्मा का भजन करो, ताकि सुख का साधन मिले। ईश्वर भक्ति यही है। (यह शब्द) आरती के समय पढ़ा जाता है। परमात्मा की उस्तति है। इस भक्त के बारे भाई गुरदास जी ने यूं लिखा है :

सुन प्रताप कबीर दा दूजा सिख होआ सैन नाई ।
प्रेम भगति रातीं करे भलके राज दुवारै जाई ।
आए संत पराहुने कीरतन होआ रैनि सबाई ।
छड न सकै संत जन राज दुआरि न सेव कमाई ।
सैन रूप हरि होई कै आया राने नों रीझाई ।
रानै दूरहुं सद के गलहुं कवाई खोल पैन्हाई ।
वस कीता हउ तुध अज बोलै राजा सुनै लुकाई ।
प्रगट करै भगतां वडिआई ।

उस समय भक्ति की लहर का बोलबाला था। काशी तथा अन्य शहरों में भक्त मंडलियां बन चुकी थीं। भक्त जन परस्पर मिलकर सत्संग किया करते थे। भक्त कबीर का नाम सुनकर दूसरा सिक्ख सैन नाई हुआ। वह एक राजा के पास नौकर था। वह सुबह जाकर मुट्ठी चापी तथा मालिश किया करता था। सुबह उठकर राजा के पास

पहुंच कर पूरी सेवा करनी पड़ती थी।

एक दिन संत आ गए। रैण-सबाई (सारी रात का कीर्तन) होना था। सैन जी भजन में ऐसे मन लगा कर बैठे कि राजा के पास जाने का ख्याल ही न रहा। प्रभु परमात्मा के चरणों में ध्यान जुड़ा रहा। संत सारी रात कीर्तन करते रहे।

उधर राजा ने सुबह उठना था और उसकी सेवा होनी थी। अपने भक्त की लाज कायम रखने के लिए भक्तों के रक्षक प्रेम में आकर्षित ईश्वर को सैन जी का रूप धारण करके राजा के पास आना पड़ा। भगवान ने राजा की सेवा इतनी प्रेम से की कि राजा प्रसन्न हो गया तथा गले में से हार उतार कर सैन जी के भ्रम में भगवान को दे दिया। भगवान जी मुस्कराए तथा हार ले लिया और अपनी माया शक्ति से वह सैन जी के गले में डाल दिया लेकिन उनको पता न लगा। ऐसी लीला की भक्तों के प्रेम में ऐसा प्रभु बंध जाता है कि वश में होकर कहीं नहीं जाता।

सुबह हुई। दिन निकल आया। होश आई तो ख्याल आया कि राजा के महल में नहीं गए। राजा नाराज हो जाएगा। यह सोचकर सैन जी चल पड़े। आगे राजा बाधवगढ़ (रीवा) अपने महल में टहल रहा था। उसने स्नान करके नए वस्त्र पहन लिए थे। सैन डर कर कुछ उदास-सा पहुंचा तो राजा ने पूछा, "सैन ! अब फिर क्यों आए ? क्या अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता है ? आज की तेरी सेवा तो बहुत ही सराहनीय थी।

सैन ने ख्याल किया कि राजा गुस्से से ऊपर से हंस रहा है। असल में नाराज है। उसने कांपते हुए विनती की, 'महाराज ! क्षमा कीजिए, मैं आ नहीं सका। भक्त जन आ गए थे और रात भर कीर्तन होता रहा। मन कीर्तन सुनने में ही लगा रहा। मैं क्षमा चाहता हूं, गरीब सेवादार हूं।

यह बात सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा 'आज तुझे क्या हो गया है ? ये कैसी बातें कर रहे हो, मेरे पास तुम समय पर आए, सोए को उठाया, नाखुन काटे, मालिश की, स्नान करवाया, कपड़े पहनाए तथा प्रसन्न होकर मैंने अपना हार उतार कर तुझे दिया, वह हार आज तुम्हारे गले में पड़ा हुआ है ।

भक्त सैन ने गले को हाथ लगाया तो सचमुच ही गले में सोने के मनकों वाली माला पड़ी हुई थी तथा उसे पता न चला। उस समय उसको ज्ञान हुआ तथा प्रभु उस्तति करके राजा को कहने लगा 'यह सत्य है राजन ! मैं नहीं आया। मैं जिसकी भक्ति कर रहा था, उसने स्वयं आकर मेरा कार्य किया। यह माला आपने भगवान के गले में डाल दी और भगवान अपनी शक्ति से मेरे गले में डाल गए। यह तो प्रभु के कौतुक हैं ।'

यह सुनकर राजा और भी आश्चर्य चकित हुआ। उसे भी ज्ञान हो गया तथा उसने श्री सैन जी के चरणों में नतमस्तक होकर कहा 'भक्त जी ! अब आपको राज की तरफ से खर्च मिला करेगा, आप अब बैठ कर भक्ति किया करें ।

ऐसा हुआ भक्त सैन नाई। कबीर जी तथा रविदास जी की तरह आप की महिमा बेअंत है। जो नाम जपता है, वह पार हो जाता है। जैसे सतिगुरु साहिब फरमाते हैं, नाम जपने वालों की महिमा बेअंत हुआ करती है ।

सलोक महला ३

हउमै जलते जलि मुए भ्रमि आए दूजै भाइ ॥
पूरै सतिगुरि राखि लीए आपनै पंनै पाई ॥
इहु जगु जलता नदरी आइआ गुर कै सबदि सुभाइ ॥
सबदि रते से सीतल भए नानक सचु कमाई ॥१॥ मः ३॥
सफलिओ सतिगुर सेविआ धंनु जनमु परवाणु ॥

जिना सतिगुर जीवदिआ मुइआ न विसरै सेई पुरख सुजाण ॥
कुलु उधारे आपणा सो जनु होवै परवाणु ॥
गुरमुखि मुए जीवदे परवाणु हहि मनमुख जनमि मराहि ॥
नानक मुए न आखीअहि जि गुर कै सबदि समाहि ॥२॥

(पत्रा ६४३)

गुरु रामानंद जी

पवित्र गंगा के किनारे काशी नगरी स्थित है, जिसे बनारस भी कहा जाता है। इस नगरी में 15वीं सदी में कभी घर-घर लोग रामानंद जी को याद करते थे। आप एक महापुरुष हुए हैं। वैष्णव मत के नेता और योगी थे।

उस साल के लिखित ग्रंथों और हिन्दी महान कोष के अनुसार आपका जन्म प्रयाग (इलाहाबाद) में एक ब्राह्मण भूरीरी करमां के घर सम्वत १४२३ विक्रमी को माता सुशीला जी के गर्भ से हुआ। उस समय भारत में तुर्क अथवा अरब देशों के मुसलमान आकर दबदबा कायम कर चुके थे और इस्लाम धर्म के प्रचार के साथ-साथ भारत गुलाम हो चुका था। लोगों की जीवन मर्यादा एक खिचड़ी हुई पड़ी थी।

स्वामी रामानंद जी का पूर्व नाम रामदत्त था। पांच वर्ष तक घर में ही रहे और जनेऊ की रस्म पूरी होने के पश्चात उनको काशी ले जाया गया ताकि विद्या दिलाई जाए। उस समय काशी ही विद्या का घर था। रामदत्त अपने गुरु से अक्षर और व्याकरण पढ़ते थे कि एक दिन बाहर गए। एक बाग में घूमते हुए उनका मेल राघवानंद जी के साथ हो गया। राघवानंद जी एक बड़े योगी तथा ज्योतिष विद्या के गुरु थे। उन्होंने जैसे ही रामदत्त को पास बुलाया और देखकर बोले, 'भगवान की लीला अद्भुत है। यह बालक कितना सुन्दर एवं

होनहार है, मगर कुछ दिनों के पश्चात ही इसकी मृत्यु हो जाएगी और माता-पिता के लिए यह दुःख का कारण बनेगा। बालक आयु बहुत अल्प लेकर आया है।'

यह वचन करके राघवानंद जी आगे चले गए। रामानंद अपने गुरु के पास आया, जिससे विद्या ग्रहण करता था। उसने रोते हुए कहा- 'हे गुरुदेव ! मार्ग में मुझे स्वामी राघवानंद जी मिले थे। उन्होंने वचन किया है कि मेरी आयु बहुत अल्प है। थोड़े दिन में ही मेरी मृत्यु होने वाली है। इसलिए गुरुदेव मैं विद्या प्राप्त नहीं करना चाहता। क्या लाभ पढ़ने का ?

रामदत्त के गुरु ने जब यह बात सुनी तो राघवानंद का नाम सुनकर वह भी घबरा गया। उसने ऊपर से रामदत्त को दिलासा देते हुए कहा- 'कोई बात नहीं, उनका भाव होगा बचपन गया और जवानी आई। आओ चलकर पूछते हैं। चिन्ता मत करो, ईश्वर भला ही करेगा। वह रामदत्त को साथ लेकर राघवानंद के पास पहुंचे। राघवानंद ने जो कुछ बाग में कहा था वहीं रामदत्त के विद्या गुरु से कह दिया। राघवानंद का यह वचन सुनकर रामदत्त के विद्या गुरु ने विनती की- 'महाराज ! कौन-सा यत्न किया जाए, जिससे इस बालक की आयु लम्बी हो जाए, कृपा करके कोई उपाय बताएं।'

'इस बालक की आयु लम्बी हो सकती है, यदि योगाभ्यास हो।' राघवानंद ने उत्तर दिया।

'फिर आप इस बालक को अपना शिष्य बनाएं और इसकी आयु लम्बी करें। होनहार बालक है।' रामदत्त के विद्या गुरु ने विनती की।

स्वामी राघवानंद ने रामदत्त को अपना शिष्य बना लिया और नाम रखा 'रामानंद'। स्वामी जी ने उसको योगाभ्यास करवाना शुरू कर दिया। योगाभ्यास करते-करते और श्वास दसवें द्वार चढ़ाते तथा उतारते रामानंद जी की आयु बढ़ गई और वह योगी हो गए। राघवानंद जी

के पश्चात 'रूमान जी' वैष्णव सम्प्रदाय के अध्यक्ष बन गए। आपका ऐसा तेज प्रताप बढ़ा कि प्रसिद्ध गुरु, जपी तपी, करामाती प्रगट हुए। भक्त रविदास जी आदि आपके ही शिष्य बने।

स्वामी रामानंद जी ने देश के समस्त तीर्थों की यात्रा करके भक्ति मार्ग का उत्तम उपदेश दिया। आप एक महापुरुष और ब्रह्मज्ञानी विख्यात हुए। आपका एक शब्द इस तरह है :

कत जाइए रे घर लागो रंगु ॥ मेरा चितु न चलै मनु भइओ पंगु ॥१॥ रहाउ ॥ एक दिवस मन भई उमंग ॥ घसि चंदन चोआ बहु सुगंध ॥ पूजन चाली ब्रहम ठाई ॥ सो ब्रहमु बताइओ गुर मन ही माहि ॥१॥ जहा जाइए तह जल पखान ॥ तू पूरि रहिओ है सभ समान ॥ बेद पुरान सभ देखे जोई ॥ ऊहां तउ जाइए जउ इहां न होई ॥२॥ सतिगुर मै बलिहारी तोर ॥ जिनि सकल बिकल भ्रम काटे मोर ॥ रामानंद सुआमी रमत ब्रहम ॥ गुर का सबदु काटै कोटि करम ॥३॥१॥

(पत्रा ११९५)

भाव-अब कहां जाना है ? घर में रंग लग गया है। मेरा मन अब भटकता नहीं। पिंगला हो गया है, भाव टिक गया है। एक दिन मन में यह उमंग पैदा हुई कि किसी मंदिर में ठाकुर की पूजा करें। चंदन तथा इत्र आदि तैयार करें। पूजा करने चले तो वह ब्रह्म गुरु ने मन में ही बता दिया। अब जिस तीर्थ पर जाते हैं वहां जल तथा ठाकुर द्वार ही मिलते हैं। हे ईश्वर ! तुम तो सर्वव्यापक हो। वेदों तथा पुराणों का अध्ययन किया है। उनसे पता चलता है कि ठाकुर (ईश्वर) प्रत्येक स्थान पर है। बाहर तब जाएं यदि वह अंदर न हो। हे सतिगुरु ! हम आप पर कुर्बान हैं, जिन्होंने सारे फिक्र तथा भ्रम काट दिए हैं। रामानंद अब ब्रह्म को याद करता है। गुरु के शब्द ने मेरे कर्म नाश कर दिए हैं।

भक्त धन्ना जी

सतिगुरु नानक देव जी के अवतार से पूर्व कोई ५२ वर्ष पहले मुम्बई के पास धुआन गांव में भक्त धन्ना का जन्म एक जाट घराने में हुआ था। आपके माता पिता कृषि तथा पशु पालन कर के निर्वाह करते थे। वह बहुत निर्धन थे। जब धन्ना थोड़ा-सा बड़ा हुआ तो उन्होंने इसे पशु चराने के लिए लगा दिया। वह प्रतिदिन पशु चराने जाया करता था। परिश्रम करना निर्धन के लिए सब कुछ था।

गांव के बाहर एक कच्चे तालाब के किनारे एक ठाकुर द्वार था। उसमें बहुत सारी ठाकुरों की मूर्तियां रखी हुई थीं। उन मूर्तियों की पूजा की जाती थी। लोग सुबह जाकर माथा टेकते तथा भेंटें अर्पण कर आते थे। असल में गांव के ब्राह्मण के लिए उसके भोजन का प्रबंध था। वह भोजन किया करता था।

उस पंडित को ठाकुरों की पूजा करते, स्नान करवाते तथा घंटियां खड़काते हुए प्रतिदिन धन्ना भक्त देखता। वह बालक मन ही मन में सोचता कि यह क्या कौतुक है। इसकी बुद्धि कम होने के कारण उसको ज्ञान अधिक नहीं था। एक दिन उसके मन में आया कि देखता हूं कि क्या है ? वह खड़ा देखता रहा। इस तरह देखते हुए उसे कई दिन बीत गए। एक दिन उसने पंडित से पूछा कि यह क्या मामला है ? तो जो पंडित ने बताया, जैसे उसे भाई गुरदास जी ने यूं बताया :

बाहमण पूजे देवते धंना गऊ चरावन आवै। धंनै डिठा चलित ऐह पुछै बाहमण आख सुनावै। ठाकुर दी सेव करै जो इछे सोई फलु पावै। धंना करदा जोदड़ी मै भी देह इक जो तुधु भावै। पथर इक लपेट करि दे धंनै नो गैल छुडावै। ठाकुर नो नावालकै छाहि रोटी लै भोग चढ़ावै। हथ जोड़ मिंनत करै पैरीं पै पै बहुत मनावै। हऊं भी मुंह न जुठालसां तूं रुठा मै

किहु न सुखावै । गोसाईं परतख होई रोटी खाहि छाहि मुहि लावै । भोला भाऊ गोबिंद मिलावै ।१३।

(भाई गुरदास जी)

भाव ब्राह्मण ठाकुरों की पूजा करता था तथा वहां धन्ना गाएं चराया करता था। धन्ने ने ब्राह्मण की यह खेल देखी एवं ब्राह्मण से पूछा पंडित जी ! यह क्या मामला है, आप इन मूर्तियों के आगे बैठकर क्या करते रहते हो ? ब्राह्मण ने उत्तर दिया-बन्धू ! ठाकुरों की सेवा है, जो सेवा करे, उसकी मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं। धन्ने ने कहा-'यह ठाकुर मुझे भी दे दीजिए। धन्ने से छुटकारा पाने के लिए कपड़े में लपेट कर एक पत्थर दे दिया। घर जाकर धन्ने ने उस पत्थर को ठाकुर समझकर उसे स्नान करवाया तथा लस्सी-रोटी आगे रखकर भोग लगाने के लिए कहने लगा। ठाकुर प्रसाद न ले तो धन्ना हाथ जोड़ कर मनाने लगा, साथ में मिन्नतें कीं। धन्ने ने भी सौगंध खा ली कि ठाकुर जी यदि आप नहीं खाएंगे तो मैं भी भूखा ही रहूंगा। उसका यह प्रण देखकर प्रभु प्रगट हुए तथा उसकी लस्सी पी और रोटी खाकर धन्ने भक्त को दर्शन दिए। भोलेपन में पूजा करने तथा साफ मन उसने श्रद्धा से पत्थर में से ईश्वर को पा लिया।

धन्ने भक्त की पूर्ण कथा इस प्रकार है-जब धन्ना भक्त को प्रभु की लगन लगी, उस समय उसके माता-पिता वृद्ध हो चुके थे तथा वह अकेला नवयुवक था। उसने ख्याल किया कि यदि ठाकुर की पूजा करने से सत्य ही ठाकुर प्रसन्न हो जाएं तो घर की सारी आवश्यकताएं पूरी कर लूं। घर से गरीबी चली जाए। सुख की सांस आए तथा आवश्यक वस्तुएं भी मिल जाएं। ऐसा करने पर वह प्रसन्न हो जाएगा तथा जीवन के चार दिन सुख से बीत जाएंगे। माता-पिता ने गरीबी काटी, अब वह भी गरीब रहे, ऐसा करना तो उचित नहीं। मन में ऐसे विचार करके उसने झिझक-झिझक कर आखिर यह

फैसला कर ही लिया कि अवश्य पंडित से मिलकर विनती करूंगा। लोग भी कहते हैं, प्रभु सब देता है। यदि ठीक है तो दे। ऐसा करना होगा।

आखिर एक दिन सुबह शीघ्र ही उठकर घर से धन्ना ठाकुर द्वारे चला गया। आगे पंडित पूजा कर रहा था। जब पूजा करके हटा तो धन्ने ने हाथ जोड़ कर कहा–'पंडित जी ! मुझे पहले यह तो बताएं कि जिनकी पूजा की जाती है, यह क्या देते हैं ? इनके पास कौन-सी शक्ति है ?'

धन्ने ! इनकी पूजा करने से सब कुछ प्राप्त होता है। ये हमारे देवता हैं। भगवान हैं, जो मांगो वही देते हैं। जब यह प्रसन्न हो जाएं तो पौं बारह।

'कृपा करें तो एक ठाकुर मुझे भी दे दें, मैं भी पूजा किया करूं। जब ठाकुर प्रसन्न हो जाएंगे तो कुछ मांग लूंगा। मैं बड़ा निर्धन हूं।'

'तुम्हारे पास ठाकुरों ने प्रसन्न नहीं होना।'

'क्यों पंडित जी ?' धन्ने ने हैरान होकर पूछा।

'तुम्हें बोल तो दिया। एक तो तुम जाट हो। जाट इतना बुद्धिमान नहीं होता कि पूजा कर सके। न ही जाट को ठाकुर रखने का अधिकार है। दूसरा तुम अनपढ़ हो। विद्याहीन पुरुष पशु का जन्म होता है। तीसरा मंदिर के बिना ठाकुर न कहीं रहते हैं और न ही प्रसन्न होते हैं। इसलिए तुम जिद्द मत करो और अपने खेतों की देखभाल करो। ब्राह्मण का धर्म है पूजा-पाठ करना। जाट का कार्य है अनाज पैदा करना। बंधू ! आप लोग हल चलाते तथा रम्बे से गोडी करते ही अच्छे लगते हो। ऐसे पूजा की तरफ ध्यान मत दो, पछताओगे।

ब्राह्मण ने इधर-उधर की कह कर बहुत समझाने का यत्न किया लेकिन धन्ना टस से मस न हुआ। वह अपनी जिद्द पर अडिग रहा। पंडित कमजोर-सा था लेकिन धन्ना भरी जवानी का नवयुवक। पंडित

को चिन्ता हुई कि कहीं पिटाई न कर दे। इसलिए पंडित ने डरते हुए धन्ने को कहा-'अच्छा धन्ना ! जिद्द करते हो तो मैं तुम्हें भी एक ठाकुर दे देता हूं।' यह कहकर ब्राह्मण ने धन्ने को टालने के लिए ठाकुर पत्थर सालगराम जो मंदिर में फालतू पड़ा था, उठाकर धन्ने के हवाले कर दिया। साथ ही उसे पाठ-पूजा करने की विधि बता दी कि विश्वास के साथ पूजा करना, मन लगाकर।' यह कहकर उसे भेज दिया।

धन्ना ठाकुर चादर में लपेट कर घर ले गया तथा ठाकुर को अन्दर रख दिया। उसी समय वह एक बढ़ई के पास गया तथा एक लकड़ी की चौकी बनवाई। उस चौकी को अच्छी तरह धो कर उस पर ठाकुर को टिका दिया।

रात धन्ने को नींद न आई। वह मन ही मन में योजनाएं सोचता रहा कि सुबह उठकर वह कैसे ठाकुरों को प्रसन्न करेगा। यदि ठाकुर प्रसन्न हो भी जाएंगे तो क्या मांगूंगा ? घर में किस-किस वस्तु की आवश्यकता है। यदि आवश्यकताएं अधिक हैं तो पहले क्या चाहिए ? इस तरह की दलीलें तथा सोचों में ही रात बीत गई। मुर्गा ने सुबह बांग दी तो वह बिस्तर से उठ बैठा। पहले स्वयं स्नान किया तथा फिर ठाकुर को स्नान कराया। जब स्नान हो गया तो कितनी देर तक हाथ जोड़ कर ठाकुर जी के आगे बैठा रहा। विद्याहीन था, पूजा-पाठ का कोई ज्ञान नहीं था इसलिए वह चुप करके बैठा रहा, पर श्रद्धा से उसकी आत्मा कह रही थी, ठाकुर बहुत अच्छे हैं। सारे जगत के हर्ता कर्ता हैं। मुझे सुख दो। मैं आपको भोग लगाऊंगा।

धन्ना अकेला था। घर के काम उसको स्वयं करने पड़ते थे। ठाकुरों को स्नान करवा कर उनके आगे भक्ति भाव से बैठ कर दिन उदय होने पर उठा, लस्सी रिड़की, रोटियां पकाईं। जो मक्खन निकाला वह कटोरी में डाल कर रख लिया। थाली में रोटी परोस कर लस्सी

गड़वी में डाल कर धन्ने ने ठाकुर जी के आगे विनय किया, 'हे प्रभु जी ! भोग लगाओ ! मुझ गरीब के पास रोटी, लस्सी तथा मक्खन ही है और कुछ नहीं । मैं गरीब कंगाल हूं, जब और चीजें दोगे तो वह चीज़ें आपके आगे परोस कर रखा करूंगा। खाओ ! ठाकुर जी। ऐसा कह कर वह बैठा देखता रहा। अब पत्थर भोजन कैसे करें ? ब्राह्मण तो ठाकुर के भोग का बहाना लगा कर सारी सामग्री घर ले जाता था। एक निवाला पत्थर के मुंह को लगाना तथा थाल उठा कर घर को चले जाना। भोले-भाले धन्ने को इन चालाकियों का कुछ पता नहीं था, वह तो ब्राह्मण के वचनों को सत्य समझता था।

दो घण्टे बीत गए। ठाकुर जी ने धन्ने का प्रसाद न लिया। धन्ना बहुत हैरान हुआ। वह व्याकुल होकर कहने लगा, 'हे प्रभु ! क्या जाट का प्रसाद आप नहीं खाते ? यह शुद्ध है। मैंने स्नान करके पकाया है। यदि लस्सी तथा मक्खन अच्छा नहीं लगता तो बताओ और क्या लाऊं। दादा तो इतनी देर नहीं लगाते थे। वह प्रसाद तो तुरंत खा जाते थे, प्रभु कृपा करो। हां, यह भी पक्का समझो। यदि आज आप ने प्रसाद न खाया तो मैं भी नहीं खाऊंगा। मर जाऊंगा, पर आपको खिलाए बगैर नहीं खाऊंगा। मैं वचन देता हूं, मैं जाट हूं, हठ नहीं छोड़ूंगा। यदि आपका धर्म है सिर्फ ब्राह्मण के हाथ से खाना तो हमारा धर्म है हठ के बदले कुर्बान हो जाना। प्रसाद खाओ नहीं तो मैं धरना लगा कर बैठ जाता हूं। यह कह कर धन्ने ने पालथी मार ली तथा ठाकुर की तरफ देखता हुआ बैठ गया।

प्रभु ने विचार किया कि अब तो पत्थर में से प्रगट होना पड़ेगा। भक्त धन्ने की आत्मा निर्मल है। यह छल कपट नहीं जानता। इसका दृढ़ विश्वास बन गया है कि ठाकुर भोजन खाते हैं, अब किसी के समझाने पर नहीं समझेगा। यह मेरा सच्चा भक्त है। इसकी लस्सी पीनी पड़ेगी। यदि पत्थर के आगे जाट मर गया तो संसार मेरी भक्ति

छोड़ देगा। धन्ना देखता रहा, उसकी आंखें ठाकुर जी के आगे टिकी हुई थी। एक घण्टा और बीतने के पश्चात धन्ना क्या देखता है कि अचानक ही श्री कृष्ण रूप भगवान जी धन्ने की रोटी मक्खन के साथ खा रहे हैं तथा लस्सी भी पी रहे हैं। धन्ना खुशी से झूम उठा। मेरे प्रभु ! आ गए ! भोजन खाने लग गए। मेरे प्रभु ! धन्ने की सारी लस्सी पी ली। रोटी और मक्खन खा लिया। थोड़ा-सा शीत प्रसाद रहने दिया। भोजन खाकर प्रभु जी बोले। धन्ने जो इच्छा है मांग लो, मैं तुम पर प्रसन्न हूं, मांगो।'

धन्ने भक्त ने हाथ जोड़ कर (बाणी द्वारा) विनती की :

गोपाल तेरा आरता ॥
जो जन तुमरी भगति करंते तिन के काज सवारता ॥१॥ रहाउ ॥
दालि सीधा मागउ घीउ ॥ हमरा खुसी करै नित जीउ ॥
पन्हीआ छादनु नीका ॥ अनाजु मगउ सत सी का ॥१॥
गऊ भैस मगउ लावेरी ॥ इक ताजनि तुरी चंगेरी ॥
घर की गीहनि चंगी ॥ जनु धंना लेवै मंगी ॥२॥

(पन्ना ६९५)

परमार्थ-हे प्रभु ! मैं तेरी प्रशंसा करता हूं, क्योंकि जो भी तेरी आरती उस्तति करते हैं, तू उनके कार्य संवार देता है। मुझे कुछ मांगने के लिए कहा है, मैं तो आवश्यक वस्तुएं ही मांगता हूं। गेहूं, दाल तथा घी दीजिए। मैं प्रसन्न हो जाऊंगा यदि जूता, कपड़े तथा अनाज सात प्रकार का, गाय या भैंस, सवारी करने के लिए घोड़ी तथा घर की देखभाल करने के लिए एक सुन्दर नारी मुझे दें। यह सभी वस्तुएं मिल जाएं तो मेरे कार्य संवरते हैं।

धन्ना जी के ये वचन सुनकर प्रभु हंस पड़े। हंसते हुए ही बोले - 'ये सब वस्तुएं तुम्हें मिल जाएंगी।'

प्रभु बोले-'अन्य कुछ ?'

प्रभु ! और क्या बताऊं और क्या मांगूं ? हां, जब भी मैं आपको याद करूं, आप दर्शन दीजिए। यदि कोई ज़रूरत हुई तो बताऊंगा। हे प्रभु ! मुझे वचन दें कि मेरे याद करने पर आप अवश्य दर्शन दिया करेंगे।

'तथास्तु ! तेरी यह बात मानता हूं।' भगवान ने उत्तर दिया।

हे प्रभु ! यदि मेरी यह विनती स्वीकार है तो धन्ना आज से आपका आजीवन सेवक हुआ। मैं सारा जीवन भक्ति में ही व्यतीत करूंगा। आपके अलावा किसी अन्य का नाम नहीं लूंगा। धन्ना यूं कहता गया और खुशी से वह दीवाना हो गया था। उसकी आंखें बन्द हो गई थीं। जब उसने आंखें खोलीं तो प्रभु जी लुप्त हो चुके थे। वह पत्थर का सालगराम उसके सामने पड़ा था। वह प्रसन्नचित उठा। बर्तन उठाए तथा बर्तन में जो शीत प्रसाद बचा था, उसे खाकर कृतार्थ हो गया। उस प्रसाद को खाने से धन्ने को तीनों लोकों का ज्ञान हो गया। वह प्रभु का यशगान करने लगा। ऐसी नाम खुमारी चढ़ी कि उसके चेहरे की लाली और ही हो गई। दिखाई देता जगत अति सुन्दर दिखने लगा।

प्रभु के दर्शनों के कुछ दिन पश्चात धन्ने के घर तमाम खुशियां आ गईं। एक अच्छे धनवान के घर उसका विवाह हो गया। पत्नी आई तो दहेज में घोड़ी, गाय, लवेरी तथा सुन्दर वस्त्र आदि प्रचुर मिल गए। उसकी बिना बोई भूमि पर भी फसल लहलहा गई तथा अन्न भी बेशुमार हुआ। धन्ना भक्त अपने प्रभु का यश करने लगा। लोग धन्ने की प्रभु भक्ति की महिमा का वर्णन करने लगे। सारे लोग कहने लगे धन्ना भक्त हो गया है। उसके दर्शन करके लोग कृतार्थ होने लगे।

धन्ने को किसी ने कहा कि चाहे प्रभु तुम्हारी भक्ति पर प्रसन्न हैं, तुम्हारी बात मानते हैं लेकिन फिर भी तुम्हें गुरु धारण करना

चाहिए। जब उस पुरुष से धन्ने ने पूछा कि मुझे किसको अपना गुरु बनाना चाहिए तो उसने स्वामी रामानंद जी का नाम लिया। एक दिन अचानक ही प्राकृतिक तौर पर स्वामी रामानंद जी उधर आ निकले। भक्त धन्ने ने हार्दिक तौर पर साधू-संगत की भरपूर सेवा की। सेवा के पश्चात धन्ने ने दीक्षा के लिए उनसे विनती की। स्वामी रामानंद जी ने धन्ने की विनती को स्वीकार कर लिया तथा गुरु दीक्षा देकर धन्ने को रामानंद जी ने अपना शिष्य बना लिया। धन्ना कर्म करता हुआ राम नाम का सिमरन करने लगा। मौज में आकर कई बार धन्ना प्रेम पाती द्वारा अपने भगवान को अपने पास बुला लेता और उससे मनवांछित कार्य पूर्ण करवाता।

एक दिन एकाग्रचित्त होकर भगवान को उसने याद किया और मन में मौज आई कि प्रभु उसकी गऊओं का चरवाल बने। भक्तों के मन की परमात्मा भी जानता है। उस समय भक्त को कोई आवश्यक कार्य था और गऊएं चर रही थीं। अचानक एक बालक के रूप में भगवान जी ने दर्शन दिए और उसे कहा 'हे भक्त ! तेरी भक्ति का अब समय है। घर में साधू पधारे हैं, उनकी सेवा करो, तुम्हारी गऊएं मैं चराता हूं। भक्त धन्ने ने उस बालक को ध्यान से देखा। उसकी शक्ल सूरत अद्भुत थी। पहले तो भक्त झिझका कि कोई गऊएं धकेल कर न ले जाए। लेकिन बाद में उसने भरोसा करके सोचा कि क्या मालूम प्रभु की ही लीला है। यह सोच कर वह घर की ओर चला गया। उसके घर में सचमुच ही साधू आए हुए थे और उन साधुओं के साथ वही बालक बीच में बैठा हुआ था, जिसको भक्त धन्ना जूह में अभी छोड़ कर आया था। वह आश्चर्य चकित हुआ तथा चरणों में नतमस्तक हो गया।

भक्त ! गऊएं तो चरा रहे हैं। यह भी मन में इच्छा धारण की है कि भगवान कुएं पर तुम्हारी गाड़ी को धक्का दे। सो ऐसा ही

होगा......। यह कह कर भगवान अदृश्य हो गए। धन्ना जी जब कुएं पर गए तो आगे उसके बैल जोत रहे थे तथा कुंआ बह रहा था। भगवान बालक रूप में गाड़ी हांक रहे थे। भक्त धन्ना यह देखकर अपने प्रभु की उस्तति करने लग गया।

भक्त नामदेव जी

नामा छींबा आखीऐ गुरमुखि भाई भगति लिवलाई ।
खत्री ब्राहमन देहुरै ऊतम जाति करन वडिआई ।
नामा पकड़ उठालिआ बहि पिछवाड़े हरि गुण गाई ।
भगत वछल आखाइंदा फेर देहुरा पैज रखाई ।
दरगह माण निमाणिआं साधसंगति सतिगुर सरणाई ।
ऊतम पदवी नीच जाति चारे वरन पए पग आई ।
जिऊं नीवाण नीर चल जाई ।४।

भाई गुरदास जी फरमाते हैं-एक नामदेव नाम का भक्त हुआ है। वह जाति का छींबा था और उसने प्रेम भक्ति से ध्यान जोड़ा हुआ था। एक दिन उच्च जाति के क्षत्रिय और ब्राह्मण एक मन्दिर में जाकर प्रभु का यशगान कर रहे थे कि नामदेव भी उनके बीच बैठकर प्रभु की आराधना करने लगा। जब उच्च जाति वालों ने देखा कि यह निम्न जाति का उनके पास बैठकर प्रभु की स्तुति कर रहा है तो उन्होंने उसे पकड़कर संगत से उठा दिया। वह देहुरे मन्दिर के पिछले भाग के पास जाकर प्रभु की स्तुति करने लग गया। भगवान ने भी एक ऐसी अद्‌भुत लीला रची कि देहुरा का मुंह घुमा दिया। वह उस तरफ हो गया तो उच्च जाति वाले बहुत हैरान हुए।' क्योंकि प्रभु के दर पर निमानों को मान मिलता है। निम्न जाति वालों को प्रभु उत्तम पदवी प्रदान करता है। उसी तरह प्रभु का प्रेम निम्नों की ओर जाता है। जैसे नीर नीचे वाले स्थान

पर बहता है, ऊंचाई की तरफ नहीं जाता।

माता-पिता एवं बचपन

जिस नामदेव बाबत भाई गुरदास जी ने लिखा और यश किया है, इस भक्त नामदेव की बाणी भी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में विद्यमान है। आपका जन्म गांव नरसी ब्राह्मणी, ज़िला सतार, मुम्बई में कार्तिक शुदि ११ सम्वत, १३२७ विक्रमी को हुआ। आपकी माता का नाम गोनाबाई और पिता का नाम सेठी था, जो छींबा जाति से थे। वे कपड़े धोते एवं छापते थे। सेठी बहुत ही नेक पुरुष था। वह सदा सत्य बोलता तथा कर्म करता रहता था। पिता नेक होने पर उसका पुत्र भी नेक निकला। वह भी साधू-संतों की संगत के पास बैठता। यहां पर सुमति एवं उपदेश भरे वचन सुना करता था।

उनके गांव में एक देवता का मन्दिर था, जिसे विरोभा देव का मन्दिर कहा जाता था। उस मन्दिर में देवते रखे हुए थे। वहां जाकर लोग बैठते तथा भजन करते थे। वह भजन गाने बैठते तो वह भी भजन गाने लग जाता। वह बच्चों को इकट्ठे करके यश करने लगता और भजन-कीर्तन करवाता। सभी उसको शुभ बालक कहते थे। वह वैरागी और साधू स्वभाव हो गया था। कोई काम-काज न करता। वह सदा बैठा रहता और कभी-कभी काम-काज करता हुआ भी राम यश गाने लग जाता।

'नामदेव ! एक दिन उसके पिता ने कहा-बेटा कोई कामकाज किया करो। काम के बिना हमारा निर्वाह नहीं हो सकता।' कर्म करके भोजन खाना है, घर का परिवार चलाना है। अब तुम्हारा विवाह भी हो चुका है।'

'विवाह तो आप ने कर दिया।' नामदेव बोला। लेकिन मेरा मन तो प्रभु की भक्ति में लगा हुआ है। क्या करूं ? जब मन नहीं लगता

तो ईश्वर आवाज़ें मारता रहता है। नामदेव ने उत्तर दिया।

'बेटा ! भक्ति भी करो, प्रभु की भक्ति करना गलत नहीं। लेकिन रोज़ी भी जीवन के निर्वाह के लिए कमानी है। वह भी कमाया करो। ईश्वर रोज़ी में बरकत डालेगा।'

नामदेव जी का विवाह छोटी उम्र में ही हुआ और उनकी पत्नी का नाम राजाबाई था। नामदेव का धर्म-कर्म, भक्ति करने को ही लोचता था। मन रोके नहीं रुकता था। पर उसकी पत्नी ने उसको पाठशाला से विलग करा दिया। उसको व्यापार कार्य में लगाया पर वह असफल रहा।

ठाकुरों को दूध पिलाना

एक दिन नामदेव के पिता ने उसको कहा, 'पुत्र ! मैं दो तीन दिन के लिए बाहर जा रहा हूं। अपने मंदिर में जो ठाकुरों की सेवा मैं करता हूं वह तुम करना। स्नान करने के पश्चात ठाकुरों को स्नान कराना, मंदिर को स्वच्छ रखना तथा ठाकुरों को दूध चढ़ाना। जैसे सारी मर्यादा मैं पूर्ण करता हूं वैसे तुम करना। देखना लापरवाही या आलस्य मत करना। नहीं तो ठाकुर नाराज़ हो जाएंगे।'

'बहुत अच्छा पिता जी, जो आज्ञा, वैसे ही ठाकुरों की पूजा होगी। आप चिंता न कीजिए।' नामदेव जी ने उत्तर दिया और अपने पिता को घर से विदा किया।

अगले दिन नामदेव जी सुबह शीघ्र ही उठे, स्नान किया और धूप जलाई। तदुपरांत ठाकुरों के आगे दूध का कटोरा भर कर रखा। आप हाथ जोड़ कर बैठ गया और देखने लग गया कि ठाकुर जी कैसे दूध पीते हैं। वह काफी देर तक देखता रहा लेकिन ठाकुरों ने दूध न पिया।

ठाकुरों ने दूध कहां पीना था ? वह तो पत्थर की मूर्ति थे। उनके मुख पर चम्मच भर कर दूध लगाया जाता और शेष दूध पंडित पी

जाते थे। नामदेव जी को इस बेईमानी का पता नहीं था। वह तो समझते थे कि ठाकुर सारा दूध पी जाते हैं। तब उन्होंने ठाकुरों के आगे विनती करनी शुरू की- 'हे प्रभु ! मैं तो आपका छोटा-सा सेवक हूं, दूध लेकर आया हूं। यह दूध शुद्ध है, कृपा करके इसे ग्रहण कीजिए।'

अंत में भक्त ने बहुत बेचैनी से इस प्रकार ठाकुरों से प्रार्थना की :

दूधु कटोरै गडवै पानी ॥ कपल गाइ नामै दुहि आनी ॥१॥
दूधु पीउ गोबिंदे राइ ॥ दूधु पीउ मेरो मनु पतीआइ ॥
नाही त घर को बापु रिसाइ ॥१॥ रहाउ ॥
सुोइन कटोरी अंम्रित भरी ॥ लै नामै हरि आगै धरी ॥२॥

(पन्ना ११६३)

'हे प्रभु ! दूध का कटोरा तथा जल का गड़वा आपके पास रखा हुआ है। यह दूध मैं कपला गाय से दोह कर लाया हूं। हे मेरे गोबिंद ! दूध पीजिए, यदि आप दूध पी लेंगे तो मेरा मन शांत हो जाएगा, नहीं तो घर पहुंचकर पिता जी नाराज़ होंगे। सोने की कटोरी मैंने आपके आगे रखी है। पीएं ! अवश्य पीएं ! मैंने कोई पाप नहीं किया। यदि मेरे पिता से प्रतिदिन दूध पीते हो तो मुझ से आप क्यों नहीं ले रहे ? हे प्रभु ! दया करें। कृपा करें। आगे ही पिता जी मुझे बुरा एवं निकम्मा समझते हैं। यदि आज आप ने दूध न पिया तो मेरी खैर नहीं। पिता जी घर से निकाल देंगे।' हे भगवान !

जो कार्य नामदेव जी के पिता सारी उम्र न कर सके। ठाकुर तथा अपने जीवन के साथ सदा बेईमानी की। न शुद्ध हृदय से प्रार्थना करते रहे और न ही ठाकुर जी ने दूध पिया। जैसे ब्राह्मण चम्मच से दूध ठाकुर जी के मुख को छुआ कर चम्मच पीछे कर लेते थे, तैसे ही नामदेव जी के पिता जी करते रहे, लेकिन मासूम आत्मा नामदेव जी को इसका पता नहीं था। वह ठाकुर जी के आगे बैठा मिन्नतें

करता रहा। अंत में प्रभु भक्त की भक्ति पर खिंचे हुए आ गए। पत्थर की मूर्ति द्वारा हंसे। उसे नामदेव जी ने अपनी बाणी द्वारा यूं बताया है

ऐकु भगतु मेरे हिरदे बसै ॥ नामे देखि नराइनु हसै ॥३॥

(पन्ना ११६३)

एक (नामदेव) भक्त प्रभु के हृदय में बस गया, नामे (नामदेव) को देखकर प्रभु हंस पड़े। हंस कर उन्होंने दोनों हाथ आगे बढ़ाए और दूध पी लिया। दूध पी कर मूर्ति फिर ज्यों की त्यों हो गई।

दूधु पीआई भगतु घरि गइआ ॥
नामे हरि का दरसनु भइआ ॥४॥३॥

(पन्ना ११६३-६४)

दूध पिला कर नामदेव जी घर चले गए। इस तरह उनको प्रभु ने साक्षात्-दर्शन दिए। यह नामदेव की भक्ति मार्ग पर प्रथम जीत थी। उसकी विनती सुनी गई तथा आत्मा कहीं ओर हो गई। प्रभु से ध्येय मिल गया। इस साखी के संबंध में भाई गुरदास जी ने यह उच्चारा है :

कंम किते पिऊ चलिआ नामदेव नो आख सिधाया ।
ठाकुर दी सेवा करीं दुध पीआवन कहि समझाया ।
नामदेव इशनान करि कपल गाई दुहिके लै आया ।
ठाकुर नो नहावाल कै चरणोदक लै तिलक चढ़हाया ।
हथ जोड़ बिनती करै दुध पीअहु जी गोबिंद राया ।
निहचऊ करि आराधिआ होई दयाल दरस दिखलाया ।
भरी कटोरी नामदेव लै ठाकुर नों दुध पीआया ।
गाई मुई जीवालीअनु नामदेऊ दा छपर छाया ।
फेरि देहुरा रखिओनु चारि वरन लै पैरीं पाया ।
भगत जनां दा करे कराया ।११।

(वारां भाई गुरदास जी)

शुद्ध हृदय से की हुई उनकी वंदना ऐसी प्रवान हुई कि उनके पास शक्तियां आ गईं। वह भक्ति भाव वाले हो गए तथा जो वचन मुंह से कहते वहीं सत्य होते। आपके पिता आए। उन्होंने जब सुना कि नामदेव ने पत्थर के ठाकुरों में जान डाल दी, उनको दूध पिलाया तो वह बड़ा खुश हुआ। उसने समझा उसकी कुल सफल हो गई। उसने जाकर ठाकुरों के मंदिर में प्रार्थनाएं कीं। नामदेव जी का नगर में यश होने लगा। नामदेव ठाकुरों के पास बैठे उनका यश गायन करते रहते। घर के कामों को त्याग दिया।

पुंडरपुर में बीठुल के चरणों में

नगर नरसी ब्राह्मणी के निकट ही पुंडरपुर था। वहां मंदिर थे। उन मंदिरों में मेले लगते थे। प्रत्येक सप्तमी तथा बोधनी एकादशी को बड़ी भारी भीड़ होती थी। बहुत सारी भक्त मण्डलियां दूर-दूर से आकर भजन करतीं। नामदेव जी 'बारकरी भक्त मण्डली' के साथ मिल कर पुंडरपुर गए। यह चंदन भागा नदी के किनारे है। जिसको गंगा की तरह दक्षिण में पूज्य नदी समझा जाता है। एक पण्डलीक भक्त हुआ है। वह पांडरंग बीठुल राय भगवान का उपासक था। वहां तिलोकेसर चक्रपाणि भगवान की मूर्ति थी, जो एक टांग के वजन पर ईंट के ऊपर खड़े हुए थे। उसका नाम बिठुल रखा हुआ था। जिसका अर्थ है-भगवान। हर कार्य उसकी दया से होता था और उसकी पूजा होती थी।

भक्त नामदेव जी ने पुंडरपुर का यश सुना हुआ था। जब वहां की भक्ति और सभा को आंखों से देखा तो वहीं टिक गए। उन्होंने फैसला किया कि 'बीठुल राय' की पूजा करते हुए ही जीवन व्यतीत करेंगे। चार दिन मेले में कीर्तन होता रहा। आनंद लेते रहे, सच्चे प्यार के कारण भगवान के दर्शन करते रहे। बहुत सारे लोगों को

पता लग गया कि नरसी ब्राह्मणी नगर वाले नामदेव जी यहीं हैं जिनको भगवान ने साक्षात् दर्शन दिए थे ।

नामदेव जी एक दिन बीठुल भगवान के आगे समाधि लगा कर बैठे कि बीठुल जी के पैर हिला दिए । प्रेम की जंजीर में जकड़ा हुआ बीठुल स्वर्ग के सिंघासन को छोड़ कर नामदेव जी के सामने आ खड़ा हुआ । उसने वचन किया, 'भक्त ! तुम्हारी क्या लालसा है, तुम रात, दिन मुझे आराम से नहीं बैठने देते । स्मरण ही करते रहते हो ।' नामदेव जी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, 'हे दाता ! मैं क्या बताऊं ? मेरे पास कुछ नहीं रहा । आप ने दर्शन दे कर अपना बना लिया है । आंखों व हृदय में आप रहते हो ।'

'प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति ।। गोबिंदु बसै हमारै चीति ।।'

वश की बात नहीं । दर्शनों को मन लोचता रहता है ।

भक्त की प्रार्थना, उसकी मिन्नतें सुन कर प्रभु कृपालु हो गए । उन्होंने दर्शन देते हुए वचन किया, 'हे नामदेव ! तुम्हारी भक्ति स्वीकार ! जब याद करोगे दर्शन होंगे, तुम्हारे कार्य पूर्ण होंगे । मन की मुरादें पूरी होंगी । यदि तुम प्रभु के हो गए हो तो प्रभु तुम्हारा हो गया है ।'

यह वचन करके भगवान बीठुल जी अदृश्य हो गए । नामदेव भक्ति में लगा रहा । कहते हैं, ऐसा मस्त हुआ विस्माद और वैराग की दुनिया में गया कि उसको कोई भी होश न रही । कई दिन बैठा प्रभु यश के गीत गाता रहा ।

नामदेव जी की तीर्थ यात्रा

'घट घट पूरन ब्रहम है गुरमुख वेखालै ।।'

भक्तों को भक्त प्यारे होते हैं । संतों को संतजन अच्छे लगते हैं । नामदेव की महिमा होने लगी । उनके पास कई साधू-संत आते तथा

दर्शन करने के साथ वार्तालाप करते ।

महाराष्ट्र में एक प्रसिद्ध संत श्री ज्ञानेश्वर थे। वह भी भक्ति भाव वाले और आत्मिक तथा भगवान ज्ञान के ज्ञाता थे। उनकी दिव्य दृष्टि बड़ी दूर की थी । उन्होंने जब नामदेव के दर्शन किए तो कहा- 'नामदेव ! हम तीर्थों के दर्शनों को जा रहे हैं । आओ हमारे साथ चलो !'

यह वचन सुन कर नामदेव जी ने प्रार्थना की-'महाराज ! इच्छा तो है पर बीठुल जी के दर्शन को मन आकर्षित करता है। कोई पेश नहीं जाने देते। चले गए तो दर्शन कैसे होंगे ?

यह सुन कर महात्मा बोले-'नामदेव ! यह एक भ्रम है, माया का पर्दा है । इतना कुछ करने पर माया का पर्दा दूर नहीं हुआ । तुम्हारा बीठुल सर्वशक्तिमान है । जैसे जड़ एक और पत्ते, फूल अलग ऐसा भेद है... ।'

ऐसे वचन करके महापुरुष ने नामदेव को ज्ञान उपदेश किया । माया तथा भ्रम का पर्दा दूर किया और वचन किया -'बीठुल (भगवान) हर जगह होने के साथ-साथ उसके प्रकाश के जब दर्शन होते हैं तो मन प्रसन्न होता है। तीर्थों पर जाने से ज्ञान में वृद्धि तथा महापुरुषों के दर्शन होते हैं। अनेकों संत मण्डलियां मिलती हैं। आओ ! आपका बीठुल हर जगह रहता दिखाएं ।'

जैसे आज्ञा महाराज ! आप ने ही मान रखना है। यह वचन करके नामदेव जी साथ चलने को तैयार हो गए ।

संत ज्ञानेश्वर जी की संत मण्डली नामदेव जी को साथ लेकर महाराष्ट्र में तीर्थों के दर्शन करने लगी । मध्य-भारत में घूमते हुए त्रिवेणी, काशी तथा हरिद्वार आदि तीर्थों के दर्शन किए। संत मण्डलियों के साथ ज्ञान चर्चा हुई तथा सत्य ही अनेक संत मण्डलियों के दर्शन हुए। नामदेव जी के मन का भ्रम दूर हो गया । उनका बीठुल हर

जगह रहता हुआ नज़र आया। मन मान गया, प्रसन्न हो गए। भगवान के दर्शन होने लगे।

मृत गाय सजीव करना

संत ज्ञानेश्वर जी की संत मण्डली के साथ तीर्थों की यात्रा करते हुए श्री नामदेव जी मथुरा-वृंदावन से दिल्ली (हस्तिनापुर) आ गए।

वृंदावन में जब नामदेव जी ने भगवान कृष्ण जी के मंदिरों में भगवान के दर्शन किए तो उनको श्री कृष्ण जी के रूप की जगह बीठुल जी के दर्शन हुए। एक महीना वृंदावन में ही संत मण्डली टिकी रही तथा दर्शन होते रहे।

दिल्ली में यमुना घाट पर संत मण्डली ने डेरा जमा दिया तथा भजन कीर्तन होने लगा। शहर के हिन्दू तथा सूफी मुसलमान संतों के दर्शनों के लिए आते।

बातों-बातों में जब श्री नामदेव जी की करामातों का शहर वासियों को पता लगा तो शहर वाले ज़ोर-शोर से आने लगे। बहुत शोभा हुई, नामदेव जी का यश होने लगा।

उस समय दिल्ली में तुर्कों का राज था। मुहम्मद बिन तुगलक दिल्ली का बादशाह था। यह बादशाह इस्लाम का प्रचारक, हिन्दू धर्म तथा हिन्दुओं से ईर्ष्या करता था। इसे पता लगा कि एक नामदेव हिन्दू दक्षिण की तरफ से आया है। उसको भगवान ने कई बार दर्शन दिए हैं। वह करामाती है, शक्ति वाला है। उनसे जो कोई भी मनोकामना मांगता है वही प्राप्त कर रहा है। कीर्ति सुन कर बादशाह ने वजीर भेज कर नामदेव जी को किले में आमंत्रित किया।

नामदेव जी का बादशाह के पास जाना था कि हिन्दुओं में मायूसी की लहर दौड़ गई। उन्होंने विचार किया कि कहीं बादशाह नामदेव जी को मरवा ही न दे, क्योंकि वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह

हिन्दुओं पर अत्यंत जुल्म करता था। हिन्दू इकट्ठे होकर बादशाह के पास गए। उनके नेताओं ने बादशाह के आगे प्रार्थना की, 'बादशाह सलामत ! नामदेव जी को छोड़ दिया जाए। उनके भार के बराबर तुला हुआ सोना हम से ले लो। बादशाह न माना। सारे हताश होकर मुड़ आए तथा सीधे ज्ञानेश्वर जी के पास जा कर प्रार्थना की-महाराज ! अपने शिष्य को बचाओ। यवन बादशाह अच्छी नीयत का नहीं, ईर्ष्यावादी है।

'हे भक्त जनो ! नामदेव जी का रक्षक उसका भगवान बीठुल है। चिंता मत करो। बादशाह ने बीठुल को नहीं बनाया, बीठुल ने बादशाह को पैदा किया। जो अपने मालिक के साथ मुकाबला करता है, वह कभी जीत नहीं सकता। देखो, भगवान क्या खेल करता है ? चिंता मत करो। भगवान का नाम लो।'

संत जी के यह वचन सुन कर श्रद्धालुओं को संतोष हुआ।

बादशाह ने नामदेव को पास बुला कर कहा-'सुना है तुम बहुत करामाती हो। खुदा तुम्हारा कहना मानता है। यदि यह बात सत्य है तो अपने भगवान को कह वह मरी गाय जीवित करे।'

बादशाह की यह बात सुन कर नामदेव जी ने वचन किया-

सुलतानु पूछै सुनु बे नामा ॥ देखउ राम तुम्हारे कामा ॥१॥
नामा सुलताने बाधिला ॥ देखउ तेरा हरि बीठुला ॥१॥ रहाउ ॥
बिसमिलि गऊ देहु जीवाई ॥ नातरु गरदनि मारउ ठांई ॥२॥

(पन्ना ११६५)

भाव-सुल्तान (बादशाह) ने पूछा-सुन नामदेव ! तेरे राम के मैं चमत्कार देखना चाहता हूं। नामदेव को सुल्तान ने बांध लिया। कहने लगा तुम्हारा हरि भगवान देखता है। इस समय मरी हुई गाय जीवित करो, नहीं तो सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा।

नामदेव जी ने वचन किया-'बादशाह ! भगवान का संबंधी कोई

नहीं। यदि भगवान ने गाय को मारा है तो मैं कौन हूं, उसको जीवित करने वाला ? वह तो स्वयं भगवान की इच्छा से ही जीवित हो सकती है।

बादशाह-'मैंने सुना है तुमने बहुत सारी करामातें दिखाई हैं। पत्थर की मूर्ति को मनुष्य की तरह दूध पिलाता रहा है। क्या यह सत्य है ?'

नामदेव-'मुझे तो पता नहीं करामात किसे कहते हैं ? मैं तो यह जानता हूं कि प्रभु सुमिरन अच्छा है। संत मण्डलियों के साथ हरि कीर्तन करता तथा सुनता हूं। यदि भगवान कोई चमत्कार करता है तो वह भगवान की लीला है। आप ने बुलाया तो आ गया, भेजोगे तो चला जाऊंगा।

बादशाह-'हम कुछ नहीं सुनना चाहते। बताओ गाय जीवित करोगे या नहीं ? ज्यादा बातें बनाने की दरबार में आज्ञा नहीं, एक बात बताओ।'

नामदेव-'मैं कुछ नहीं जानता, मेरे बीठुल जाने, जैसा वो चाहे वैसा ही होगा।' आप प्रजा पर जुल्म करते हो। जिसने बादशाह बनाया है, उसको याद नही करते।

यह सुन कर बादशाह क्रोधित हो गया। उसने वजीरों की तरफ देखा, फिर नामदेव जी को कहा-'अच्छा ! एक पहर समय की मोहलत दी जाती है। इसी समय गाय जीवित कर दो नहीं तो सब के देखते कत्ल कर दिए जाओगे। हाथी के पैरों के नीचे कुचल दिए जाओगे। यही मेरा हुक्म है। लोगों को धोखा देकर पीछे लगाते हो। 'यह कह कर बादशाह महलों में चला गया।

नामदेव जी कैद थे। उनके हाथ बंधे हुए थे, सिपाहियों के पहरे में उनको बिठाया हुआ था। सात घड़ियां बीत गईं पर गाय न हिली, वह उसी तरह मृत पड़ी रही। अद्‌भुत कौतुक था। लोग हैरान थे

कि यदि गाय न उठी तो नामदेव जी को बादशाह जरूर मार देगा। लोग भगवान के आगे प्रार्थना कर रहे थे।

बादशाह घर गया तो उसको उदर पीड़ा होने लगी। वह क्षण में ही इतना तंग हुआ कि उसके बचने की कोई उम्मीद न रही। शाही हकीम भाग-दौड़ करने लगे।

बादशाह की आंखों के आगे नामदेव जी का चित्र था। कभी-कभी उनका चित्र दूसरी तरफ होता तो भयानक सूरतें नज़र आतीं। वह चिल्लाने लगा-'बचाओ ! मुझे बचाओ।'

बादशाह के सूझवान वजीर ने कहा 'बादशाह सलामत स्वस्थ हो सकते हैं, शायद नामदेव जी को पकड़ने के कारण खुदा नाराज़ हो गया हो, जान के बदले में उसको छोड़ देना चाहिए, वह खुदा का बंदा है, हो सकता है खुदा नाराज़ हो गया हो।

यह बात बादशाह के मन को छुई। उसने उसी समय हुक्म दिया 'छोड़ दो।'

हुक्म हुआ, पर उधर और ही खेल हो चुका था। बादशाह के आदमियों ने जब देखा, देर हो रही थी तो उन्होंने बादशाह के पहले हुक्म के अनुसार नामदेव जी को उठा कर हाथी के आगे फैंक दिया। हाथी पहले तो घबराया। उसने खुदा के बंदे को देखा, पर एक बार उठा कर फैंका। उस बाबत नामदेव जी आप ही बताते हैं-

'करै गजिंदु सुंड की चोट ॥ नामा उबरै हरि की ओट ॥८॥

उसी समय वजीर वहां पहुंच गया। उसने जल्लादों को बादशाह का हुक्म सुनाया तथा नामदेव जी के हाथ पैर खोले गए। उधर गाय भी उठ बैठी। लोग तथा वजीर समस्त लोग आश्चर्यचकित हुए।

नामदेव जी ने बादशाह को उपदेश दिया। उसका दुःख दूर किया। इस बाबत भक्त नामदेव जी की अपनी बाणी का यह पूरा शब्द है

सुलतानु पूछै सुनु बे नामा ॥ देखउ राम तुम्हारे कामा ॥१॥

नामा सुलताने बाधिला ॥ देखउ तेरा हरि बीठुला ॥१॥ रहाउ ॥
बिसमिलि गऊ देहु जीवाई ॥ नातरु गरदनि मारउ ठांई ॥२॥
बादिसाह ऐसी किउ होई ॥ बिसमिलि कीआ न जीवै कोई ॥३॥
मेरा कीआ कछू न होइ ॥ करि है रामु होइ है सोइ ॥४॥
बादिसाहु चढ़िओ अहंकारि ॥ गज हसती दीनो चमकारि ॥५॥
रुदनु करै नामे की माइ ॥ छोडि रामु की न भजहि खुदाइ ॥६॥
न हउ तेरा पूंगड़ा न तू मेरी माई ॥ पिंडु पड़ै तउ हरि गुन गाई ॥७॥
करै गजिंदु सुंड की चोट ॥ नामा उबरै हरि की ओट ॥८॥
काजी मुलां करहि सलामु ॥ इनि हिंदू मेरा मलिआ मानु ॥९॥
बादिसाह बेनती सुनेहु ॥ नामे सर भरि सोना लेहु ॥१०॥
मालु लेउ तउ दोजकि परउ ॥ दीनु छोडि दुनीआ कउ भरउ ॥११॥
पावहु बेड़ी हाथहु ताल ॥ नामा गावै गुन गोपाल ॥१२॥
गंग जमुन जउ उलटी बहै ॥ तउ नामा हरि करता रहै ॥१३॥
सात घड़ी जब बीती सुणी ॥ अजहु न आइओ त्रिभवन धणी ॥१४॥
पाखंतन बाज बजाइला ॥ गरुड़ चढ़े गोबिंद आइला ॥१५॥
अपने भगत परि की प्रतिपाल ॥ गरुड़ चढ़े आए गोपाल ॥१६॥

(पन्ना ११६५-६६)

देहुरा घूमना

संत मण्डली के साथ विचरण करते हुए नामदेव जी कपिलधारा मंदिर में चले गए। वहां आगे मंदिर में पूजा हो रही थी। अपने भगवान बीठुल के दर्शन करने के लिए वह भी विराज गए। क्योंकि प्रभु के बिना किसी अन्य से लगाव नहीं करते थे। केवल प्रभु से ही प्यार था। जैसे फरमाते हैं-

जैसी भूखे प्रीति अनाज ॥ त्रिखावंत जल सेती काज ॥
जैसी मूड़ कुटंब पराइण ॥ ऐसी नामे प्रीति नराइण ॥१॥

नामे प्रीति नाराइण लागी । सहज सुभाइ भइओ बैरागी ॥१॥ रहाउ ॥
जैसी पर पुरखा रत नारी ॥ लोभी नरु धन का हितकारी ॥
कामी पुरख कामनी पिआरी ॥ ऐसी नामे प्रीति मुरारी ॥२॥
साई प्रीति जि आपे लाए । गुर परसादी दुबिधा जाए ॥
कबहु न तूटसि रहिआ समाई ॥ नामे चितु लाइआ सचि नाइ ॥३॥
जैसी प्रीति बारिक अरु माता ॥ ऐसा हरि सेती मनु राता ॥
प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति ॥ गोबिंदु बसै हमारै चीति ॥४॥१॥७॥

(पन्ना ११६४)

जिसका परमार्थ–नामदेव जी फरमाते हैं, मेरी परमात्मा से ऐसी प्रीति है जैसी कि भूखे की अन्न से, प्यासे की पानी से, ऐसी नामदेव की प्रीति भगवान से है। उस प्रीत के लगने से स्वाभाविक ही आप वैरागी हो गए हैं। आप आगे फरमाते हैं, जैसी किसी पुरुष की पराई नारी के साथ प्रीति होती है। लालची दौलत के साथ प्यार करता है। पर यह वह प्रीति है, जो स्वयं लगाता है। गुरु की कृपा से सारे भ्रम मिटते रहते हैं। जैसे एक बच्चे तथा मां का प्यार होता है वैसे मेरी तथा हरि की प्रीति है। अंत में कहते हैं कि हरि परमात्मा हमारे मन में रहता है।

बात क्या स्वयं मंदिर में जा बैठे तथा परमात्मा का यश करने लगे। मंदिर के पुजारियों को पता लगा कि दक्षिण में से आया यह नामदेव भक्त जाति से छींबा है। छींबा जाति को उस समय निम्न जाति समझते थे। ब्राह्मण लोग उन्होंने नामदेव जी के पास आकर उनको पूछा 'आप जन्म से छींबे हो ?'

नामदेव जी 'हां, भाई ! ऐसा ही कहते हैं।',

पंडित 'फिर आप यहां से उठ जाओ। इस मंदिर में उच्च कुल पुरुष ही पूजा कर सकते हैं।'

नामदेव जी–'वे कौन लोग ?'

पंडित -'ब्राह्मण तथा क्षत्रिय आदि ।'

नामदेव जी-'यह आपको भ्रम है। हर प्राणी एक -समान है। जन्म के कारण कोई बुरा या अच्छा नहीं होता। अच्छा-बुरा तो कर्मों के कारण होता है। जो कोई जैसा कर्म करता है वैसा ही वह फल पाता है। भगवान के लिए सभी नर-नारी उसी तरह प्यारे हैं, जैसे एक पिता के लिए सारे पुत्र प्यारे होते हैं। चाहे कोई कम कार्य करता है, चाहे कोई ज्यादा। प्रभु तो सबका है।'

पर पंडित ने एक बात न मानी। उन्होंने भक्त नामदेव जी को बाजू से पकड़ कर उठा दिया।

भक्त नामदेव जी उठ बैठे। उठकर सीढ़ियां उतरते हुए अपने मालिक बीठुल को याद करते रहे। उन्होंने अपनी बाणी में बताया है कैसे अपने मालिक बीठुल जी को याद किया तथा प्रार्थना की, लोग चाहे बुरा कहें, मंदिरों में से उठा दें, पर आप मत उठाना। आप भक्त को मत भुलाना।

मो कउ तूं न बिसारि तू न बिसारि ॥ तू न बिसारे रामईआ ॥१॥
रहाउ ॥ आलावंती इहु भ्रमु जो है मुझ ऊपरि सभ कोपिला ॥
सूदु सूदु करि मारि उठाइओ कहा करउ बाप बीठुला ॥१॥ मूए
हूए जउ मुकति देहुगे मुकति न जानै कोइला ॥ ए पंडीआ मो
कउ ढेढ कहत तेरी पैज पिछंउडी होइला ॥२॥

(पन्ना १२९२)

हे प्रभु ! मुझे तुम न छोड़ना ! तुम न छोड़ना ! हे दाता ! मंदिर वालों को शक है कि मैं नीच हूं। नीच होने के कारण उन्होंने मुझे मार पीट कर मंदिर में से निकाल दिया है। अब बताओ दाता ! मुझे क्या करना चाहिए। हे प्रभु ! क्या कहते हो ! निर्जीव हुए को मुक्त करोगे ? वह मुक्ति किस काम ? उसे किस ने जानना है ? यह ब्राह्मण मुझे छींबा कहते हैं यदि अब तुम ने कोई चमत्कार न

दिखाया तो निंदा होगी। लोग भक्ति नहीं करेंगे। हे दयालु ! हे कृपालु ! सब तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। अपनी बाजुओं का बल दिखाओ।

हसत खेलत तेरे देहुरे आइआ । भगति करत नामा पकरि उठाइआ ॥१॥ हीनड़ी जाति मेरी जादिम राइआ । छीपे के जनमि काहे कउ आइआ ॥१॥ रहाउ ॥ लै कमली चलिओ पलटाई ॥ देहुरै पाछै बैठा जाइ ॥२॥ जिउ जिउ नामा हरिगुण उचरै ॥ भगत जनां कउ देहुरा फिरै ॥३॥६॥

(भैरउ नामदेव जी, पन्ना ११६४)

भाव–हे प्रभु ! खुशी–खुशी हंसता हुआ तुम्हारे मंदिर में आया था, तुम्हारी भक्ति करते हुए पंडितों ने मुझे पकड़ कर रोक दिया है। हे श्री कृष्ण जी ! मेरी जाति निम्न है। मैंने छींबा जाति में क्यों जन्म लिया ?

कम्बली (भूरी) कंधों पर रखकर नामदेव चल पड़ा। ठाकुर द्वारे के पिछवाड़े जा बैठा। जैसे–जैसे नामा हरि के गुण गाए जाता था, वैसे–वैसे पंडितों का ठाकुर द्वारा घूमता जाता था। जैसे भूचाल आता है वैसे मंदिर हिल पड़ा। सब समझे कि सचमुच भूचाल आ गया। कई फटाफट छलांगें मार कर मंदिर की कुर्सी से नीचे उतर आए। कांपता हुआ तथा सरकते–सरकते ठाकुर द्वारा घूम गया। जैसे किसी ने स्वयं घुमाया होता है। नीचे पहिये लगाए होते हैं। जहां नामदेव जी बैठे भक्ति कर रहे थे, वहां जाकर मंदिर खड़ा हो गया पर नामदेव जी आंखें बंद करके शब्द पढ़ते जा रहे थे। हाथों में पकड़े छैनों की आवाज़ वायु–मण्डल में गूंज रही थी। धरती डगमगा रही थी। ब्राह्मणों में दो सूझवान पंडित थे। वह तुरंत नामदेव जी के चरणों में गिर पड़े कि कहीं मंदिर तथा शहर ही नष्ट न हो जाए। उन्होंने नामदेव जी के चरण पकड़ लिए। प्रार्थना की, 'प्रभु के प्यारे ! समाधि खोलो ! हमारी भूलें बख्शो। हम पापी ! निंदक ! पांडे क्षमा करो,

रहम करो मासूम बच्चों पर ! उनकी प्रार्थना ने नामदेव जी की समाधि खोल दी। जब आंखें खोल कर देखा तो ठाकुर द्वारे का मुंह नामदेव जी की तरफ था। उन्होंने शीघ्र उठ कर डण्डवत प्रणाम किया। परमात्मा की प्रशंसा की। भक्त नामदेव जी को पकड़ कर मंदिर में से उठाने वाले पंडित बड़े लज्जित हुए तथा धरती उनको टिकने नहीं देती थी। फिर भी वह अभिमानी नामदेव जी के चरणों में न लगे। मंदिर से बाहर चले गए।,

नामदेव जी का बेगारी बनना

भगवान के चमत्कार बड़े अनोखे और आश्चर्यजनक होते हैं। वह प्रभु अनेकों बार अद्भुत ही खेल करता है। हे भक्त जनो ! सुनो ! श्री नामदेव जी जब तीर्थों की यात्रा कर रहे थे तो एक ऐसे शहर जा निकले जहां पठानों का राज था। पठान हाकिम होने के कारण बड़े अभिमानी थे। वह जिस हिन्दू को देखते उसी को बेगारी बना लेते थे। उनको न किसी का भय और न डर, वह ऐसे ही थे।

नामदेव जी अपने मन की मस्ती में अकेले ही एक तरफ को चल पड़े। संत मण्डली से बिछुड़ गए। बाजार में जा रहे थे तो एक पठान मिला। वह अहंकारी पठान था। उसने मिलते ही बड़े रौब में कहा, 'यह भार उठा कर ले चलो, ऐसे ही घूमते फिर रहे हो।'

नामदेव जी ने कोई उत्तर न दिया। उन्होंने भार सिर पर उठा लिया और चल पड़े। आगे-आगे पठान चलता जा रहा था तथा पीछे-पीछे नामदेव जी। नामदेव जी को ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उनको भार उठवाने वाला पठान नहीं था बल्कि उनका बीठुल था। वह अपने इस बीठुल का यश करने लग पड़े। उन्होंने इस तरह उच्चारण किया–

हले यारां हले यारां खुसिखबरी ॥ बलि बलि जांउ हउ बलि बलि जांउ ॥ नीकी तेरी बिगारी आले तेरा नाउ ॥१॥ रहाउ ॥

कुजा आमद कुजा रफती कुजा मे रवी ।। द्वारिका नगरी रासि बुगोई ।।१।। खूबु तेरी पगरी मीठे तेरे बोल ।। द्वारिका नगरी काहे के मगोल ।।२।। चंदी हजार आलम ऐकल खानां ।। हम चिनी पातिसाह सांवले बरनां ।।३।। असपति गजपति नरह नरिंद ।। नामे के स्वामी मीर मुकंद ।।४।।२।।३।।

(पन्ना ७२७)

भाव-हे मित्र, हे सज्जन, अपनी प्रसन्नता की सूचना दो, खुश हो ? मैं तुम पर कुर्बान जाता हूं। तुम्हारी बगार बहुत अच्छी है। तुम्हारा नाम बहुत बड़ा (आली) है। कुजा आमदन कहां से आए ? कुजा रफ्ती कहां गया था ? कुजा मेरवी कहां चला है ? यह द्वारिका नगरी है। यहां सत्य बताना मुगल गालियां निकाल रहा था। नामदेव जी उसको कहते है तुम्हारी पगड़ी कितनी सुन्दर हैं ? तुम्हारे बोल मीठे हैं। द्वारिका में मुगल कहां ? तुम तो हरि के रूप हो। तुम अश्वपति घोड़ों के मालिक सूर्य हो। तुम ही गजपति-हाथियों के मालिक इन्द्र हो। नरहि नरिंद-मनुष्य के राजा ब्रह्मा तथा तुम मेरे सरदार मुकंद (मुक्ति देने वाले) हो।

सूखे कुएं में पानी

पंजाब के तीर्थों की यात्रा करके भक्त मण्डली ने पीछे मुड़ना था। इनकी सलाह हुई कि देश के रेतीले हिस्से द्वारा वापिस मुड़ा जाए ताकि इस इलाके के जीवों में भी हरि नाम का प्रचार किया जाए। चलते-चलते संत मण्डली बीकानेर में पहुंची। राजपूताने में से होकर इनको अजमेर जाना था। बीकानेर में 'कैलावत जी' स्थान पर पहुंचे तो इनको प्यास लगी, पर रेत के मरुस्थलों में पानी कहीं नहीं था। सूरज के ताप से आकाश, वायु मण्डल तथा धरती एक जलती हुई भट्ठी बने हुए थे, सारी संत मण्डली प्यास से मरने लगी। योग के

बल से ज्ञानेश्वर ने देखा कि दो सौ गज पर कुंआ तो है, पर उसका पानी सूखा हुआ है । उसने संत मण्डली को कहा कि भगवान का सहारा लेकर थोड़ा रास्ता और तय करो। फिर शायद जल मिल जाए। उन साधुओं ने हौंसला किया और प्रभु का सिमरन करते हुए सूखे कुएं के पास पहुंच गए। कुंआ खंडहर हो चुका था। सारा पूरकर फिर घास उगा हुआ था। ज्ञानेश्वर ने कहा, 'प्रभु के प्रेमियो ! मैं बर्तन लेकर नीचे जाता हूं और जल लेकर लौटता हूं। संतों को जल चाहिए था। उन्होंने अनुमति देते ढील न की। ज्ञानेश्वर जी करमंडल लेकर नीचे गए। योग विद्या के बल पर धरती पर पहुंचे व जल आदि पीकर संतों के लिए करमंडल भरकर ले आए। सारे संतों ने पानी पीकर अपनी प्यास बुझाई। जब नामदेव जी को पानी पीने के लिए आग्रह किया तो भक्त जी ने उत्तर दिया, 'मेरी रक्षा मेरा बीठुल करता है। यदि उसे मेरी आवश्यकता है तो इस कुएं में से पानी ऊपर करेगा, नहीं तो पानी नहीं पीना, मृत्यु स्वीकार है ।'

यह कहकर भक्त जी कुएं के किनारे रोष पूर्वक बैठ गए। बीठुल का नाम जपना शुरू कर दिया। कुछ आधे घंटे के बाद कड़क हुई। संतों ने कुएं में झांक कर देखा कि मिट्टी का घड़ा जो कुएं में बंधा हुआ था, वह अपने आप टूट गया। धीरे-धीरे सारी मिट्टी लुप्त हो गई। कुएं में से शुद्ध और शीतल जल देख कर सभी ने खुशी मनाई तथा प्रसन्न होकर नामदेव जी को आवाज़ें दीं। उनकी आवाज़ें सुनकर नामदेव जी ने कहा, 'मेरे बीठुल ने जल भेज दिया, मेरी विनती उन्होंने सुन ली ।'

उठे तथा करमंडल द्वारा शीतल जल बाहर निकाल कर पीया।

ऐसी शक्ति एवं भक्ति देख कर सारी संत मण्डली नामदेव जी के चरणों में झुक गई तथा नामदेव जी स्वयं यूं प्रभु का यशगान करने लगे-

मोहि लागती तालाबेली ।। बछरे बिनु गाइ अकेली ।।१।। पानीआ बिनु मीनु तलफै ।। ऐसे राम नामा बिनु बापुरो नामा ।।१।। रहाउ ।। जैसे गाइ का बाछा छूटला ।। थन चोखता माखनु घूटला ।।२।। नामदेऊ नाराइनु पाइआ ।। गुर भेटत अलखु लखाइआ ।।३।। जैसे बिखै हेत पर नारी ।। ऐसे नामे प्रीती मुरारी ।।४।। जैसे तापते निरमल घामा ।। तैसे राम नामा बिनु बापुरो नामा ।।५।।४।।

(पन्ना ८७४)

बीठुल जी के चरणों में

तीर्थ यात्रा करके भक्त नामदेव जी फिर पुंडरपुर लौट आए। पुंडरपुर पहुंचते ही वह अपने भगवान बीठुल जी के चरणों में पधारे। चरणों में माथा झुका कर बृति जोड़ी तथा पुकार-पुकार कर कहने लगे- 'हे मेरे बीठुल ! आपके चरणों के अलावा मेरा मन कहीं भी नहीं लगता। मुझे शांति प्राप्त नहीं हुई चाहे हर जगह आपका रूप नज़र आता रहा। आह ! यहां आकर तो मन तृप्त हो गया है।

अनमड़िआ मंदलु बाजै ।। बिनु सावन घनहरु गाजै ।।
बादल बिनु बरखा होई ।। जऊ ततु बिचारै कोई ।।१।।

हे ईश्वर ! यहां आकर तो दसवें द्वार में सुरति ऐसी जुड़ी है कि आज बिना किसी साज के जैसे अनमड़ी ढोलक, बाजे साज बजने की लय उत्पन्न हो रही है। श्रावन ऋतु के बिना ही प्रेम रूपी बादल गरजने लग पड़े तथा नाम, शांति और प्रभु प्यार की वर्षा होने लग पड़ी। बस समझो तत को विचार कर आनंद मंजिल में पहुंच गया हूं, मृगतृष्णा मिट गई, भ्रम-भेद खत्म हो गए। विशालता आ गई सुरति पहुंच गई दसवें द्वार।

मो कउ मिलिओ रामु सनेही ।। जिह मिलिए देह सुदेही ।।१।। रहाउ ।।
मिलि पारस कंचनु होइआ ।। मुख मनसा रतनु परोइआ ।।

हे बीठुल जी ! आपका मित्र मिला तथा उसने मुझे आपका मित्र बना दिया। राम ही राम ! राम रूप मित्र मिलने के साथ मेरा यह शरीर सफल हो गया। यदि शरीर राम का सिमरन न करता, आपके चरणों में न आता तो पता नहीं इसके साथ क्या बीतता ? अब तो ऐसा हुआ है जैसे पारस से मिल कर लोहा भी सोना बन जाता है। पारस रूप आप थे। मुख में नाम रूपी मणि है। भाव प्रभु यश के बिना–

निज भाउ भइआ भ्रमु भागा ।। गुर पूछे मनु पतीआगा ।।२।।
जल भीतरि कुंभ समानिआ ।। सभ रामु ऐकु करि जानिआ ।।
गुर चेले है मनु मानिआ ।। जन नामै ततु पछानिआ ।।३।।

हे प्रभु ! आपका प्यार मिला तो भ्रम का नाश हो गया। गुरु के पूछने पर मन मान गया। अब तो उस घड़े वाली बात है जैसे पानी भरने के लिए घड़ा ले जाए। घड़ा हाथ से छूट जाने पर पानी से भर कर पानी में ही डूब कर एक रूप हो गया। मेरी आत्मा को जो माया ने जकड़ा था, माया का हाथ खिसक गया तथा आत्मा आपके प्यार में डूब गई। बस अब मन ने मान लिया है कि एक राम ही सब जगह बसता है। गुरु तथा शिष्य में भेद नहीं रहा, तत विचारने के कारण इस भेद को नामदेव जी कहते हैं, हमने पा लिया है।

इस प्रकार नामदेव जी अपने बीठुल के आगे वचन करते रहे। प्रार्थना करते हुए कहते रहे, 'हे प्रभु अपने चरणों में जगह दीजिए, कृपा करो।'

तीर्थ यात्रा करते हुए घटित हुई घटनाओं का पता पुंडरपुर के लोगों को लग गया। सारे लोग रोज़ सुबह आकर नामदेव जी के दर्शन करके आनंदित हो गए तथा 'भक्त भक्त जग बजा।' जो दर्शन करता उसके कार्य पूर्ण हो जाते, मन के भेदभाव दूर होते तथा तन के रोग खत्म होते। दर्शन करने के गरीबी दूर होती। नामदेव जी का यश चारों

ओर फैल गया। ऐसी प्रभु की कृपा हुई।

नामदेव जी का नया घर

पुंडरपुर के निकट 'चन्दन भगा' नदी बहती थी। उस नदी के किनारे नामदेव जी जा बैठते तथा ईश्वर भक्ति में जुड़ जाते। अपने मालिक प्यारे परमात्मा को याद करते। एक दिन लिव जोड़ कर बैठे थे कि किसी ने जा कर कहा, 'हे नामदेव जी ! आपके घर को आग लग गई है। सारा घर जल गया। शीघ्र चलो।'

आग लग गई। आग लगाई लगाने वालों ने। मेरा घर कैसे हुआ, उसका ही था। जला दिया उसने स्वयं, मैं क्या कहूं ? नामदेव जी ने उत्तर दिया।

फिर भी ज़ोर देने पर भक्त जी उठ कर आए तथा आकर जलते हुए त्रिण के घर को देखते रहे। मन में ऐसा विचार आया कि लोगों ने जो घर की चीज़ें बचा कर रखी थीं, उनको उठा उठा कर आग में फैंकने लग पड़े तथा मुंह से कहने लगे–हे प्रभु ! यह जो चीज़ें लोगों ने बचाई हैं, इनको भी साथ ले जाओ ! मैं इनका क्या करूंगा। 'यदि घर नहीं रहा तो चीज़ें मैं कहां रखूंगा। ले जाओ, ले जाओ।'

भक्त जी का यह कौतुक देख कर लोग बहुत हैरान हुए तथा रोकने का यत्न करने लगे। पर भक्त जी न रुके। वह चीज़ों को फैंकते गए। उनको भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे थे। भगवान ने कहा, 'हे नामदेव ! इस आग में भी तुम्हें मेरा स्वरूप ही दिखता है ?'

हे प्रभु ! यह आग भी आपकी बनाई है। आप ही जला रहे हो तथा आपका ही सारा खेल है। मेरा नहीं, सब कुछ आपका है।

इस तरह भक्त और भगवान के बीच बात होती रही। भक्त की सारी चीज़ें नहीं जली थीं कि आग अपने आप धीमी हो गई। एकदम बुझ गई तथा भक्त जी एक वृक्ष के नीचे रात को सो गए।

सुबह हुई तो लोग देख कर स्तब्ध हुए कि नामदेव जी का घर नया बना हुआ था। रातो-रात घर बन गया। ऐसी झोंपड़ी बनी कि जैसी किसी ने देखी नहीं थी। सफाई थी तथा लकड़ियां बहुत ही प्रेम से चुन-चुन कर लगाई थीं। सबसे अद्‌भुत बात यह थी कि घर का सामान सारा नया आ गया था। जले का नामो-निशान न रहा।

लोगों ने जैसे आकर भक्त नामदेव जी को पूछा। उन्होंने अपने एक शब्द में इस प्रकार सारी वार्ता ब्यान की है-

पाड़ पड़ोसणि पूछि ले नामा का पहि छानि छवाई हो ॥
तो पहि दुगणी मजूरी दैहउ मो कउ बेढी देहु बताई हो ॥१॥
रीबाई बेढी देनु न जाई ॥ देखु बेढी रहिओ समाई ॥
हमारै बेढी प्रान अधारा ॥१॥ रहाउ ॥
बेढी प्रीति मजूरी मांगै जउ कोऊ छानि छवावै हो ॥
लोग कुटंब सभहु ते तोरै तउ आपन बेढी आवै हो ॥२॥
ऐसो बेढी बरनि न साकउ सभ अंतर सभ ठांई हो ॥
गूंगै महा अंम्रित रसु चाखिआ पूछे कहनु न जाई हो ॥३॥
बेढी के गुन सुनि री बाई जलधि बांधि ध्रू थापिओ हो ॥
नामे के सुआमी सीअ बहोरी लंक भभीखन आपिओ हो ॥४॥२॥

(पन्ना ६५७)

भाव-नामदेव जी की पड़ोसनें पूछती हैं कि हे नामदेव ! बताओ तो सही, किससे झोंपड़ी बनवाई है ? यदि हमें बढ़ई (कारीगर) का पता दो तो तुम से दुगुनी मजदूरी देंगे।

नामदेव जी उत्तर देते हैं, 'हे बहन ! वह कारीगर बिल्कुल नहीं दिया जाता। वह तो हर जगह समाया हुआ है। मेरे तो वह प्राणों का सहारा है। हां, यदि कोई उस कारीगर से मजदूरी पर काम कराए तो उसकी मजदूरी प्रेम है। सारे परिवार, रिश्तेदारों तथा अन्य मित्रों से अलग हो तो वह कारीगर मिलता है। ऐसे कारीगर (बेढी) को

मैं ब्यान नहीं कर सकता। वह हर जगह उपस्थित है। जिस तरह गूंगा पुरुष किसी रस के स्वाद को नहीं बता सकता, वैसे मैं उसके गुणों को ब्यान नहीं कर सकता। हे माता ! सुनो, उस कारीगर ने सारे जगत को एक स्तर पर रखा है। सागर पर उसका राज है। तारे, आकाश, धरती तथा वनस्पति उसके हुक्म में हैं। जिस तरह श्री राम चन्द्र जी ने लंका पर चढ़ाई करके प्यारी सीता को पाया तथा सोने की लंका राजा रावण को मार कर विभीषण को दे दी। उसी तरह भगवान ने नामदेव जी के ऊपर कृपा की है। हे लोगो ! यह सब प्रभु का खेल है। उसने ऐसी खेल की है, मैं क्या बताऊं ?

यह चमत्कार देख कर सारे लोग दिल से भक्त जी के चरणों में गिर पड़ें तथा जान गए कि भक्त जी तथा भगवान में अब कोई अन्तर नहीं रह गया। जो प्रभु की भक्ति शुद्ध हृदय से करता है उसके कार्य सम्पूर्ण होते हैं तथा प्रभु उसकी स्वयं देखरेख करता है। 'हे श्रद्धालु जनो !' भक्त जी ने लोगों को उपदेश दिया–'प्रभु बीठुल का नाम जपो, उस पर भरोसा रखो। वह तुम्हारे सारे कार्य संवारेगा। राम नाम में ऐसी बरकतें हैं।'

भक्त नामदेव जी का परलोक गमन

परमात्मा की ऐसी लीला है, जो कोई जन्म लेता है, अंत : उसका शरीर नष्ट हो जाता है। आत्मा चोला छोड़ जाती है। आपके गुरुदेव ज्ञानेश्वर जी परलोक गमन कर गए तो आप कुछ उपराम रहने लगे। दो बार तीर्थ यात्रा की तथा साधू-संतों से भ्रम दूर करते रहे। ज्यों ज्यों आपकी आयु बड़ी होती गई त्यों–त्यों आपका यश फैलता गया। आप ने दक्षिण में बड़ा प्रचार किया।

अंतिम दिनों में आप पंजाब आ गए। उस समय पंजाब में सूफी फकीरों तथा सुल्तानियों का अधिकतर प्रचार था। पठानों का राज

था। हिन्दू धर्म कमज़ोर हो गया था। बारों में बाबा फरीद जी का प्रचार था। जंगली लोग धड़ाधड़ मुसलमान बनते जा रहे थे। नामदेव जी पंजाब में घूमे। लोगों को ईश्वर भक्ति की तरफ लगाया तथा आप ने बाणी उच्चारण की, जो बाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में भी मिलती है। बहुत सारी बाणी दक्षिण तथा महाराष्ट्र में गाई जाती है। ज़िला गुरदासपुर गांव घुमान में आपकी यादें हैं।

अंत में आप अस्सी साल की आयु में १४०७ विक्रमी को परलोक गमन कर गए। आपकी बाणी पढ़ने से मन को शांति आती है तथा भक्ति की तरफ मन लगता है। हे भक्त जनो ! यह भी शिक्षा मिलती है कि परमात्मा ने सब जीवों को एक-सा जन्म दिया है। माया की कमी या जीवन के धन्धों के कारण लोगों तथा कई चालाक पुरुषों ने ऐसी मर्यादा बना कर ऊंच नीच का अन्तर डाल दिया। उस अन्तर ने करोड़ों प्राणियों को नीचा बताया, पर जो भक्ति करता है वह नीच होते हुए भी पूजा जाता है।

परमात्मा भक्तों से प्यार करता है। भक्ति ही भगवान को प्रिय लगती है। भक्ति रहित ऊंचा जीवन शूद्र का जीवन है। भगवान राम जी ने भीलनी के बेर खाकर उसको मान प्रदान किया। उसी भीलनी ने जिसको पंपासर के ऋषि नीच जाति की समझ कर उसको जल नहीं पीने देते थे, पर जब जल में कीड़े पड़ गए तो भीलनी के पैर डालने से ही पंपासर का जल दोबारा पवित्र हुआ था। कभी किसी को नीचा न समझो, सब स्त्री-पुरुष ईश्वर की संतान हैं। नाम का सिमरन करो।

भक्त जै देव जी

प्रेम भगति जै देऊ करि गीत गोबिंद सहज धुनि गावै।
लीला चलित बखानदा अंतरजामी ठाकुर भावै।

अखर इक न आवड़ै पुसतक बंनि संधिआ करि आवै ।
गुन निधान घर आई कै भगत रूप लिख लेख बनावै ।
अखर पड़ प्रतीत करि हुई विसमाद न अंग समावै ।
वेखे जाई उजाड़ विच बिरख इक असचरज सुहावै ।
गीत गोबिंद संपूरनो पतु पतु लिखिआ अंत न आवै ।
भगत हेत प्रगास करि होई दइआल मिलै गल लावै ।
संत अनंत न भेद गनावै ।१०।

(भाई गुरदास जी)

भाई गुरदास जी ने जै देव भक्त जी का यश इस प्रकार गाया है। यह भक्त बंगाल में हुआ है तथा आपका जन्म गांव केंदल ज़िला बीर भूम (बंगाल) में हुआ। आपके माता-पिता गरीब थे। मां बाम देवी तथा पिता भोज देव थे। वह जाति से ब्राह्मण थे। गरीबी होने के साथ-साथ आपके पास समझदारी थी। इसलिए जै देव जी को उन्होंने पाठशाला में बंगला तथा संस्कृत पढ़ने के लिए भेज दिया। ग्यारहवीं सदी में बंगाल में हिन्दू राज था। संस्कृत साधारणता पढ़ाई जाती थी। एक ब्राह्मण के पुत्र के लिए संस्कृत पढ़ना ज़रूरी था। संस्कृत पढ़ने के साथ आप राग भी सीखते रहे और अपने आप गीत गाने लग जाते थे।

जै देव जी की विद्या पूरी भी नहीं हुई थी कि उनके माता-पिता का देहांत हो गया। उनके देहांत का जै देव जी के मन पर बहुत असर हुआ। दुःख को सहन न करते हुए वैराग भरे गीत रच-रच कर गाते रहते। उनके गीतों को सुन कर लोग भी वैराग में आ जाया करते थे।

जै देव विद्या पढ़ते गए और घर की पूंजी या रिश्तेदारों की सहायता मिलती गई। विद्या से मन उचाट न किया। इस तरह उनके दिन बीतते रहे। वह पाठशाला जाते रहे।

जै देव जी का पहला चमत्कार

सूझवान कहते हैं, चमत्कारी बालकों या भक्तों की भक्ति की निशानियां पहले ही प्रगट हो जाती हैं। उनके जीवन में कोई न कोई ऐसी घटना घटित होती है कि उनके महापुरुष होने का लोगों को आभास हो जाता है। लोग श्रद्धा रखने लग पड़ते हैं।

ऐसी ही अद्‌भुत चमत्कारी घटना जै देव जी के जीवन में भी घटित हुई, जब आप अभी साधारण बालकों की तरह थे। जवान हो चुके थे पर दुनिया के छल-बल का ज्ञान नहीं था। वह हरेक की बात को सच मान जाते थे तथा आगे कोई किन्तु नहीं करते थे।

भक्त जै देव जी के नगर केंदल का एक निरंजन ब्राह्मण था। वह बहुत मक्कार तथा झूठा आदमी था। हरेक के साथ धोखा करता रहता था। उसने देखा जै देव साधारण बालक है। वह जै देव जी के निकट निकट होता गया। एक दिन बुरा सा मुंह बना कर कहने लगा-'जै देव ! देखो न तुम्हारे माता-पिता कितने अच्छे थे-भलेमानुष, नेक तथा सत्य बोलने वाले थे। वह जिससे वचन करते, उसे ज़रूर पूरा करते। उन्होंने मुझसे रुपये लिये थे, पर वापिस देने से पहले ही परलोक गमन कर गए। उनके परलोक गमन का तो दुख है, पर अब मैंने सोचा है कि कागज पर हस्ताक्षर कर दो तो मकान दे कर पिता का कर्जा उतर जाए। पिता का कर्जा उतारना एक लायक पुत्र के लिए ठीक है।

निरंजन ने ऐसे मीठे वचन बोले कि जै देव उसकी चालाकी न समझ सका। उसने हस्ताक्षर करने के लिए हां कर दी। उसकी हां देखकर उसी समय निरंजन ने कागज निकाला जो उसने पहले ही छिपा कर रखा हुआ था। वह कागज निकाल कर उसके आगे रख दिया। भक्त जी ने हस्ताक्षर कर दिए।

निरंजन हस्ताक्षर किए देख कर खुश हो गया। कागज पकड़ कर एक हाथ से जै देव को शाबाश दे रहा था कि उसकी लड़की दौड़ती हुई आई तथा उसने रोते हुए कहा-'पिता जी ! घर को आग लग गई, जल गया।'

निरंजन घर की ओर दौड़ा। घर के पास गया तो अग्नि की लपटों से बांस और त्रिण, लकड़ी का घर जल रहा था। आग प्रचंड थी। वह आग बुझाने और घर के सामान को बचाने के लिए आगे बढ़ा तो जै देव से लिखवाया कागज आग में गिर पड़ा तथा जल कर राख हो गया। उसे पता न लगा।

सारा गांव इकट्ठा हो गया। निरंजन का घर जल रहा था, आग बुझाने से बुझती नहीं थी। लोग देख-देख कर हैरान खड़े थे कि जै देव जी वहां पहुंच गए। उनके वहां आते ही आग एक दम ठण्डी हो गई, धुआं भी न रहा। यह चमत्कार देख कर लोग बड़े हैरान हुए।

निरंजन को ज्ञान हो गया कि उसके पाप कर्म का फल था जो उसने झूठ कहकर जै देव ब्राह्मण का पक्का घर लेना चाहा। उसकी आत्मा ने उसको कोसा तथा वह जै देव जी के चरणों में गिर पड़ा। रो-रो कर कहने लगा, 'भक्त... भगवान भक्त मुझे क्षमा करें ! मैंने भूल की। मेरे पाप का फल मुझे बख्शो।'

निरंजन इस प्रकार रोता बिलखता रहा। जै देव जी ने उसको धैर्य दिया। प्यार से केवल इतना कहा-'भगवान जानता है।'

सारे नगर वासियों को निरंजन के कुकर्म का पता लग गया। वह जै देव जी पर श्रद्धा रखने लगे एवं सेवा करने लगे। निरंजन भी उनका सेवक बन गया।

जै देव राजकवि

सदियों से बंगाल रंगीनियों का देश है। राग, नाच, कविता और

भक्ति से छलकते दिल बंगाल में बसते हैं। वहां रागी, नृतकों और कवियों का बहुत आदर-सत्कार होता है। राजा भी रचना करते आए हैं। जै देव चढ़ती जवानी में था जब वह सूझवान कवि और गीतकार बन गया। उसके चेहरे पर लाली चमकती थी। सुन्दर तथा सुडौल शरीर था, उस पर उन्होंने भगवा धोती बांध ली। भगवा धोती से वह एक वैरागी साधू लगने लगे। अपनी रचित कविता को गाते फिरने लगे। जिधर वह जाते उधर ही लोगों की भीड़ जाती।

उस समय बंगाल का राजा लक्ष्मण सैन था। उसने जै देव की बहुत उपमा सुनी। उसने हुक्म किया वह (जै देव) जहां-कहीं भी हो उसे लाया जाए। लक्ष्मण सैन के आदमी जै देव को ढूंढ कर उसके दरबार में ले गए। राजा ने जै देव को राज कवि बना लिया तथा उसका बहुत आदर किया। बेशक उसके पास पहले भी विद्वान थे, यह भी उनके साथ रहने लगे पर साधू भेष का त्याग नहीं किया। वह उसी भेष में सुख से रहते रहे। उनकी शान बढ़ गई, कीमती वस्त्र पहनने को मिल गए, पर साधू वृति में परिवर्तन न आया। राज दरबार में रहते हुए आप ने संस्कृत साहित्य में बहुत सारी वृद्धि की और गीत रचे।

तीर्थ यात्रा पर भगवान के दर्शन

राज दरबार में रहते हुए जै देव वैरागी हो गए। वह पक्षियों की तरह खुले आकाश में उड़ना चाहते थे। राजा के दरबार में कैदियों की तरह रहना उनको अच्छा न लगा। एक दिन चुपचाप ही शहर से बाहर चले गए। ऐसे गए कि फिर न मुड़े। कहां जाना था ? यह कुछ पता नहीं। हां वह चलते ही गए। रात भी, दिन भी हृदय पर श्री कृष्ण और राधा का चित्र, आंखों में वही मूर्तियां रहीं। जुबान पर उनका ही नाम था। पशु, पक्षी तथा मनुष्य सारी वनस्पति राधा कृष्ण की स्तुति में ही व्यस्त

प्रतीत होती थी। जै देव जी की आत्मा ने आवाज़ दी, चलो जगन्नाथपुरी चलो। वहां तुम्हारा इंतजार है वहां आकाश है। रात को निर्मल आकाश के नीचे हंसते तारों को देखकर कुदरत के गुण गाते। एक दिन वह गीत गाते हुए गर्मी में चलते गए। रास्ता ऊबड़ खाबड़ तथा पहाड़ी था, पानी दूर था। प्यास लगी कोई परवाह न की। वह चलते ही गए। पर्वतों की ऊंची चढ़ाई और गर्मी ने उनको बौखला दिया। वह मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़े। उसी समय भगवान प्रगट हुए, श्री कृष्ण मुरारी। घट-घट की जानने वाले सर्वव्यापी गोपाल और दयाल उसी समय भक्त के पास आए। भगवान ने बालक का रूप धारण कर भक्त को दूध की गड़वी पिलाई। मूर्छित पड़े जै देव जी के मुंह में दूध गया तो उनको होश आई। बचा हुआ दूध भी गड़वी को मुंह लगा कर एक ही घूंट में पी गए। मौत से बचाने वाले बालक की तरफ देखा। वह आठ-दस साल का ग्वालों का बालक प्रतीत होता था। उसके कपड़े तो फटे-पुराने थे, पर मुख चांद जैसा था। जै देव जी को जब अच्छी तरह होश आ गई तो उन्होंने बालक से पूछा, 'बेटा ! तुम किसके पुत्र हो ? कहां से आए हो ?'

'जी ! उधर देखिए वह झोंपड़ियां दिखती हैं वहां का रहने वाला हूं।' बालक ने उत्तर दिया तथा साथ ही उंगली से ईशारा किया। जै देव जी उधर देखने लग पड़े। उनको कोई झोंपड़ी दिखाई न दी। वह फिर से बालक को पूछने ही लगे थे कि कौन-सी झोंपड़ियों की ओर ईशारा करते हो ? उनको बालक नज़र न आया। वह अदृश्य हो गया। भगवान स्वयं आया था। अपने सच्चे भक्त को दूध पिला कर चले गए। वह दुखियों तथा प्रेमियों का सहारा है। जै देव पुकारने लगे।

'ओ प्रभु ! हे गोकुल रत्न दयालु ! आए और दर्शन देकर चले गए ?' उधर झोंपड़ियों का ईशारा करके इधर से चले गए। 'वाह

मेरे कौतुकी प्रीतम मोहन मुरली मनोहर क्या गुण गाऊं तुम्हारे !' प्रभु ! श्री कृष्ण जी को याद करते हुए भक्त आगे जाने की जगह वहीं बैठ कर भगवान के यश में गीत गाने लग पड़ा। पक्षी तथा कुदरत उसके प्रेममयी गीत सुनने लगे।

भक्त जै देव की पद्‌मावती से शादी

भक्त जै देव जी पुरी पहुंच गए। उन्होंने किसी मंदिर में डेरा न लगाया बल्कि बाहर मार्ग पर बैठ कर प्रभु के गीत भजन गाने लगे। उनका कंठ सुरीला था। हृदय में प्यार तथा आंखों के आगे भगवान की तस्वीर थी। जो भी उनका भजन सुनता वहीं मुग्ध हो जाता तथा बैठ कर साथ ही दर्शन करता और भजन सुनता। जै देव जी सुन्दर नवयुवक थे। चेहरे पर भक्ति की रंगत थी।

प्रभु की ऐसी कृपा हुई कि उनको हर रोज दोनों समय कोई न कोई भोजन खाने को मिल जाता। माताएं दूध तथा फल दे जातीं तथा उनकी श्रद्धा बढ़ती गई। लोग आदर करते गए।

एक दिन अद्‌भुत ही खेल प्रभु ने रच दिया। पुरी के रहने वाले सुदेव ब्राह्मण को जै देव जी के दर्शनों की ओर भेजा। वह एक माह बाद पुरी में आया था तथा उसने सुना कि एक ब्राह्मण पुत्र अति सुन्दर बंगाल में से आया है तथा भजन गाता है। वह भी सुनने लग पड़ा। ऐसा आनंद आया कि वह बैठा रहा। जब उठा तो घर आया। घर से भोजन तैयार करवा कर लाया तथा खिलाया। वचन विलास करके कहा-'आप तो उच्च कुल के रत्न हो। परमात्मा ने कृपा करके अपनी भक्ति की ओर लगा लिया।

'ऐसा क्या है।' जै देव जी ने उत्तर दिया। वह बहुत कम बोला करते थे। मतलब का वचन करते। भगवान का नाम उसके तन-मन में एकसार हो गया।

सुदेव दो तीन दिन दोनों समय जै देव जी को भोजन खिलाता रहा तथा दर्शन करके चला जाता। वह घर पहुंचा। उसे नवयौवन कन्या पद्मावती दिखाई दी, जो विवाह के योग्य थी। उस रात वह सोचता रहा कि कन्या के हाथ पीले करने हैं। विवाह के योग्य है, क्यों न ऐसे भक्त से विवाह रचा दूं ? सुन्दर युवा, प्रभु भक्त ! और क्या चाहिए ? इस विचार ने रात भर उसे सोने न दिया। मन में यही विचार आता रहा, 'विवाह कर दे जै देव जी के साथ। सुन्दर नवयुवक है। भक्त है... इससे अच्छा वर और कौन हो सकता है। सुदेव वक्त न गंवाना।'

उसका मन जै देव के साथ जुड़ गया। वह सुबह ही उठकर गया। जै देव जी अपने आसन पर बैठे हुए भजन गा रहे थे। उनको जाकर कहने लगे, 'भक्त जी ! एक विनती है।'

जै देव ने उसकी तरफ देखकर पूछा–'जी !'

'मेरी विनती है कि मैं एक संकल्प कर चुका हूं। मेरी कन्या पद्मावती सुन्दर एवं सुशील है। वह अब विवाह के योग्य हो चुकी है। धर्मशास्त्र का कहना है कि यदि कन्या विवाह के योग्य हो जाए तो उसकी शादी करनी ठीक है।

'आप शादी कर दीजिए, आप तो समझदार हैं। ऐसी बातों का तो हमें ज्ञान नहीं आप लोग अच्छी तरह जानते हो।' यह भक्त जै देव जी का उत्तर था।

'पर मैं संकल्प कर चुका हूं कि मेरी कन्या के वर आप ही हो सकते हो। मैंने कन्या की शादी आप से करनी है, वह आपके चरणों की दासी बने।'

सुदेव के यह वचन सुन कर जै देव जी हैरान हुए। उन्होंने सुदेव की तरफ देखा। 'हे भक्त ! मैं एक साधू बन गया हूं। घर नहीं, घाट नहीं। मैं शादी करके आप की कन्या को कैसे सुखी रख सकता

हूं ? ऐसा सोचना ही ठीक नहीं ।'

'पर मैं संकल्प कर चुका हूं । एक ब्राह्मण का संकल्प भी टल नहीं सकता । आपको मेरी विनती स्वीकार करनी ही पड़ेगी ।' यह कह कर सुदेव घर को चला गया ।

अगले दिन सुदेव वापिस आया । उसके साथ उसकी कन्या पद्मावती थी । उस जैसी सुन्दर कन्या सारी पुरी नगरी में नहीं थी। भोजन खिला कर सुदेव ने फिर बात छेड़ दी तथा कन्या को कहा- 'पुत्री ! इनके चरणों पर प्रणाम करो ।' कन्या ने ऐसा ही किया । सुदेव ने जबरदस्ती पद्मावती की शादी जै देव के साथ कर दी । प्रभु की इस इच्छा पर जै देव जी स्वयं हैरान थे । 'प्रभु की कैसी लीला है ।' कह कर जै देव जी भजन गाने लग पड़े ।

जै देव जी का अपने गांव मुड़ना

भक्त जै देव जी भगवान की लीला पर हैरान थे। पहले घर से भेजा तीर्थ की ओर तथा फिर तीर्थ पर गृहस्थी बना दिया। सुन्दर पद्मावती बख्श दी। जिस ब्राह्मण कन्या से देवता, पुजारी तथा धनवान विवाह करने की इच्छा रखते थे, वह जै देव जी को बिना कुछ खर्च किए दान हो गई । सुदेव बड़ा प्रसन्न हुआ । वह भक्त जी को घर ले गया और कुछ दिनों पश्चात भक्त जी के मन में आया कि वह अपने नगर जा बसें ।

भक्त जी चल पड़े । मंजिल-मंजिल तय करते हुए अपने गांव पहुंचे। उनके गांव जाने के बाद गांव वासियों को उनके दर्शन हुए तो वह प्रसन्न हुए। हैरानी इस बात की हुई कि पद्मावती मिल गई। उनके पिता के घर में फिर चहल-पहल हो गई ।

भक्त जी का घर निरंजन ब्राह्मण के पास था। उसने उसी समय कहा कि मैं खाली कर देता हूं। आप रहो मैं झोंपड़ी डाल कर रहूंगा।

आप तो ब्राह्मण रूप हो।

'नहीं पंडित जी ! ' भक्त जी ने निरंजन को कहा, 'इतने बड़े मकान में क्या मैं अकेला रहूंगा ? एक तरफ आप रहो और एक तरफ मैं रहता हूं। रौनक बनी रहे।'

निरंजन पहले वाला निरंजन नहीं रहा था। उसका मन साफ हो चुका था। वह चोरी, धोखा, फरेब छोड़ कर भगवान का भजन करता था। किसी को बुरा नहीं कहता था। गांव वाले भी उसको अच्छा समझते थे। वह कई बार कहा करता-'मेरे मन में लालच आया। पक्का मकान लेने के लिए भक्त जै देव जी के आगे मैंने झूठ बोला। भगवान सुन रहा था। उसने उसी समय मेरे घर को आग लगा दी और घर जला दिया। नेक पुरुष के साथ कभी धोखा न करो, भगवान सजा देता है, नुक्सान होता है।'

जै देव जी गांव में रहने लगे। उनकी उपजीविका की चिन्ता भगवान को थी। पद्मावती अपने पति को देवता समझ कर उनकी सेवा करने लगी तथा जो मिलता वह खुशी से खा लेती। वह भी प्रभु का नाम सिमरन करने लगी। जो भी कोई दर्शन करने आता, वही कुछ न कुछ भक्त जी को भेंट कर जाता। भक्त जी तो गीत गोबिंद गाते रहते।

गीत गोबिंद की रचना

भक्त जै देव जी संस्कृत के विद्वान थे। वेद मंत्र तथा उपनिषदों के मंत्र, महाभारत और महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण के श्लोक इतने याद थे कि चाहे वह महीना गाते रहते खत्म न होते। पर उन्होंने स्वयं संस्कृत में गीत रचे , जो संस्कृत साहित्य की महान रचना है।

भक्त जै देव जी का ग्रंथ 'गीत गोबिंद' कृष्ण भक्ति का महान ग्रंथ है तथा इसकी रचना एक महीना या एक साल में नहीं हुई अपितु

कई सालों में हुई है। जै देव जी अपने नगर में विराज कर गीत गोबिंद की रचना करते रहे। पर रचना का आरंभ जगन्नाथ पुरी में ही हुआ था। उसके बारे में कहा जाता है कि एक दिन भक्त जी का भगवान श्री कृष्ण जी की याद में मन लगा हुआ था, मन तो वृंदावन की कुन्ज गलियों में घूम रहा था। अचानक उनकी आंखों के आगे एक झांकी स्वयंमेव आ गई। एक अनोखी झांकी जिसको भक्त जी कभी न भूले।

भक्त जी नदी किनारे एक बड़े वृक्ष के साथ सट कर खड़े थे। उनकी आंखों के सामने श्री कृष्ण जी दूर खड़े बांसुरी बजा रहे थे। दूर से राधा अपनी सखियों के साथ नाचती हुई आई। वह गीत गाती तथा नाचती श्री कृष्ण जी को मिली तो उस कौतुक को देखते ही जै देव जी के मुख से एक सलोक अक्समात ही निकल गया। वह सलोक 'गीत गोबिंद' का आरम्भिक चरण बना तथा रचना शुरू हुई।

भक्त जै देव जी का कीर्तन सुनने तथा दर्शन करने आए लोग हर रोज़ कुछ भेंट कर जाते थे। उससे भक्त जी के घर का निर्वाह चलता था। अन्न की कमी नहीं थी। आपकी धर्मपत्नी पद्मावती भी बहुत नेक तथा मेहनती स्वभाव की थी। वह पति सेवा करती हुई उसी में सुख संतोष से रहती। जो कुछ भी उसको खाने-पीने के लिए मिलता उसी में खुश रहती।

भक्त जै देव जी सुबह ही बाहर चले जाते। उनके नगर के पास ही निर्मल जल की नदी बहती थी। उसके किनारे बड़े ऊंचे वृक्ष थे। उनके नीचे बैठ कर जै देव जी गीत गोबिंद का उच्चारण करते रहते। भोजन के समय पद्मावती भोजन लेकर आ जाती तथा भोजन खिला कर अपने घर वापिस आ जाती।

एक दिन पद्मावती भोजन लेकर आई। आप जब श्री कृष्ण जी की स्तुति में गीत उच्चारण कर रहे थे तो एक छन्द की रचना की।

तीन चरण पर चौथा न सूझा। उधर से पद्मावती ने आकर कहा–

'स्वामी जी भोजन करने के लिए स्नान कर आओ।'

'पद्मो ! भक्त जी बोले, छन्द की रचना की है पर चौथा चरण पूरा नहीं होता। उसको पूरा करके खाता हूं।'

पद्मावती–हे स्वामी जी ! आप स्नान करो। भोजन कीजिए, फिर वृति लगा कर बैठोगे तो चरण ज़रूर पूरा हो जाएगा। भगवान की कुछ ऐसी इच्छा होगी, जिस कारण नहीं सूझता।

भक्त जै देव जी–अच्छा पद्मे ! आपका कहना भी मान लेते हैं। मेरे भगवान की शायद ऐसी इच्छा हो।

वह आसन से उठ बैठे तथा नदी की तरफ चले गए। पर उस समय पद्मावती बड़ी हैरान हुई, जब जै देव जी रास्ते से फिर मुड़ आए और कहते हैं–'पद्मो ! लाओ गीत–गोबिंद ! चरण पूरा करें।'

'आप रास्ते से मुड़ आए !' ग्रंथ पकड़ाते हुए पद्मावती ने कहा।

बिना उत्तर दिये चरण लिखने लग पड़े तथा पूरा कर दिया।

जब चरण पूरा हो गया तो उन्होंने पद्मावती की तरफ देख कर कहा–'हे पद्मे ! लाओ पहले भोजन कर लें, फिर स्नान कर लेंगे। आज कुछ ऐसी इच्छा है।

पद्मावती ने पत्तल पर भोजन परोस दिया। जै देव जी ने बड़े प्रेम से भोजन खाया। हाथ धोकर ज़रा दूर हुए तो पद्मावती उन जूठे पत्तलों पर भोजन करने लगी। वह पति के जूठे पत्तल पर भोजन करती थी। उसने अभी निवाला मुंह में नहीं डाला था कि जै देव जी आए तथा देख कर कहने लगे–

'हे पद्मो ! क्या बात है आज भोजन पहले कर लिया ? मेरा इंतजार नहीं किया, मैं स्नान करके आ रहा हूं। आज कुछ देर हो गई। भगवान की यही इच्छा है।'

पद्मावती ने अभी निवाला होंठों को नहीं लगाया था। उसके हाथ

से निवाला गिर पड़ा तथा हैरानी से देखती हुई कांपते होंठों से बोली- 'यदि आप अभी नहीं आए थे तो आपका रूप धारण करके कौन आया था, आपके छन्द का चौथा चरण पूरा हुआ, भोजन खाया। कहीं सीता की तरह मेरे साथ धोखा तो नहीं होने लगा था ?'

इसके बाद पद्मावती ने सारी वार्ता सुनाई। भक्त जी ने ग्रंथ का लिखा हिस्सा लेकर उठाया। जब देखा तो छन्द बिल्कुल पूर्ण हुआ-

सथल कमल गंजनं मम रिदय रंजनं जनि तर तिरंग पर भागमू।
भन सम्रिन वानि करवानि चरन द्वय सरस लस दलकत करागमू।
समर गरल खंडनं सम शिरसि खंडनं देह मो पट पदव मुराटरमू।

सारी वार्ता सुन कर तथा छन्द पूरा हुआ देख कर भक्त जै देव जी जान गए कि भगवान श्री कृष्ण जी ने उनकी सहायता की है। पद्मा से भोजन ग्रहण किया है। उन्होंने भगवान का शीत प्रसाद लिया और कपाट खुल गए। प्रसन्न होकर उसी दिन घर आ गए।

'गीत-गोबिंद' पुरी के मंदिर में भेजना

भगवान श्री कृष्ण जी के दर्शन देने के बाद शीघ्र ही 'गीत-गोबिंद' का ग्रंथ सम्पूर्ण हो गया। जब ग्रंथ सम्पूर्ण हुआ तो उसकी एक ओर प्रतिलिपि (नकल) तैयार की। सुन्दर कपड़े में बांध कर जै देव जी पद्मावती सहित पुरी के मंदिर में पहुंचे तथा एक गीत गाया। सारे गीत गा कर वह ग्रंथ भगवान के चरणों में रख दिया। उनके गीत लोगों को इतने मधुर लगे कि हर कोई याद करके गाने लगा। भक्त जै देव जी के नाम की बहुत चर्चा हुई।

जगन्नाथ पुरी का राजा ब्राह्मण था। वह स्वयं को कवि तथा महां विद्वान मानता था। उसने जब 'गीत-गोबिंद' की शोभा सुनी तो उसके हृदय में ईर्ष्या की आग जल उठी। उसने मन ही मन फैसला कर लिया कि वह 'गीत-गोबिंद' जैसा ग्रंथ लिखेगा तथा अपने ग्रंथ का

प्रचार करवाएगा, क्योंकि उसके पास माया बहुत थी। माया के सहारे पर मूर्ख भी पंडित समझा जाता है। जगत में हर जगह माया का ही प्रताप है। 'कउन बड़ा माया वडिआई' वाली बात है जगत पर।

उस राजा को माया का अभिमान हो गया तथा 'गीत-गोबिंद' ग्रंथ तैयार किया। ग्रन्थ तैयार होने पर ब्राह्मणों को बुला कर कहने लगा- 'देखो इस गीत ग्रन्थ की रचना मैंने की है। इसके गीतों का प्रचार करो। बहुत सारा धन दान करूंगा।' पर ब्राह्मण यह पाप नहीं करना चाहते थे कि वास्तविक गीत ग्रंथ की जगह नकली का प्रचार करें। उन्होंने राजा को उत्तर दिया-'हे राजन ! यह नहीं हो सकता कि हम स्वयं ही आपके ग्रन्थ का प्रचार करें। यह तो हो सकता है कि दोनों ग्रंथ श्री कृष्ण जी की हजूरी में रख देते हैं। वह जिस ग्रंथ को स्वीकार करें उसी का प्रचार होगा। पंडितों की इस सलाह को राजा भी मान गया। चलो इसी तरह ही सही। सुबह ही दोनों ग्रंथ मंदिर में चढ़ाए जाएं, अपने आप ही पता लग जायेगा कि किस ग्रंथ को भगवान चाहता है।

सारे शहर में यह खबर जंगल की आग की तरह फैल गई कि राजा और जै देव जी के गीत गोबिंद ग्रंथों का मुकाबला होगा। लोग यह सुन कर भगवान का चमत्कार देखने के लिए बढ़-चढ़ कर पहुंचे। राजा वजीरों सहित अहंकार में मस्त हो गया। उसे यह अभिमान था कि उसका गीत गोबिंद ग्रंथ अच्छा है। दोनों ग्रंथ श्री पुरुषोत्तम जी की मूर्ति के आगे रख दिए गए।

सारे लोग मंदिर से बाहर आ गए। पुजारी पंडित ने मूर्ति के आगे प्रार्थना की-'हे भगवान ! यह दो ग्रंथ आपके चरणों में रखे जाते हैं। इन में से जिस ग्रन्थ को आप स्वीकार करते हो उसको पास रख लो तथा दूसरे को मंदिर में से बाहर निकाल दें। हे प्रभु ! यह फैसला आप ही कर सकते हो।' ऐसी प्रार्थना करके मुख्य पुजारी

भी मंदिर से बाहर आ गया। अंदर सिर्फ ग्रंथ तथा भगवान की मूर्ति रही। मंदिर के पुजारी, राजा तथा शहर के साधारण लोग बड़ी उत्सुकता से देख रहे थे कि भगवान जी किसके हक में फैसला करते हैं तथा किस को मान देते हैं। भगवान की लीला भगवान ही जाने, मनुष्य क्या जान सकता है ? बाहर खड़े लोगों को ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे मंदिर में कोई पुरुष घूम रहा हो तथा चीज़ों का उल्ट-पुल्ट कर रहा था। उस हिलजुल के कुछ समय बाद ही एक ग्रंथ पटाक् करके मंदिर के द्वार से बाहर फर्श पर आ गया। उसके पन्ने बिखर गए। एक ग्रंथ के बाहर आने से लोगों ने खुशी में भगवान पुरुषोत्तम की जै जै कार की। मुख्य पुजारी ने आगे होकर बाहर गिरा हुआ ग्रंथ उठा कर देखा। उसने पुकारा, भगवान के भक्तो ! सुन लो ! भगवान ने राजा के ग्रंथ गीत गोबिंद को बाहर फैंक दिया है तथा जै देव जी का ग्रंथ स्वीकार है। राजा के ग्रंथ को स्वीकार नहीं किया। अब जै देव जी के ग्रंथ के गीत गाए जाएंगे। लोग खुश हो गए पर राजा बड़ा शर्मिंदा हुआ।

उसे धरती स्थान नहीं देती थी, लोग वहीं उसे शर्मिंदा करने लग पड़े। उसने अपना ग्रंथ उठा लिया। वजीरों, पंडितों तथा अन्य जानने वालों से आंख बचा कर समुन्द्र की ओर चल पड़ा। उसने फैसला किया कि वह प्राण त्याग देगा। मरने का विचार कर के वह समुन्द्र के किनारे पहुंचा। समुन्द्र में छलांग लगाने लगा तो भगवान की ओर से वचन हुआ–'हे राजन ! आत्महत्या करके दूसरा पाप न करो, पहला पाप तुमने ईर्ष्या करके किया है। तुम्हारे ग्रंथ को इसीलिए स्वीकार नहीं किया गया क्योंकि लिखते समय तुम्हारी आत्मा में श्रद्धा नहीं थी। ईर्ष्या की आग से जलते मन के साथ आप ने इसकी रचना की है। अहंकार को त्याग कर, मूर्खता छोड़ दो। जाओ कुछ सलोक जै देव जी के ग्रंथ में शामिल कर दो, स्वीकार हो जाएंगे। तुम्हारा

नाम अमर हो जाएगा। यह समुचा ग्रंथ समुन्द्र को भेट कर दो।' यह वचन सुन कर राजा के मन में कुछ शांति आई। उसने अपना ग्रंथ समुन्द्र में फैंक दिया तथा समुन्द्र के किनारे से भाग कर सीधा मंदिर में आ गया। मंदिर की मूर्ति के आगे डण्डवत हो कर भगवान से क्षमा मांगी। आगे से ईर्ष्या न करने की सौगन्ध उठाई। साथ ही यह प्रण किया कि जै देव जी के ग्रंथ गीत-गोबिंद में से वह यह गीत ज़रूर मंदिर में आकर पढ़ा करेगा। राजा इसी तरह ही करने लगा। इस बात ने जै देव जी की शोभा और बढ़ा दी। राजा ने जै देव जी को ढेर सारा धन दिया।

भक्त जी का लुटना

जब जगन्नाथ पुरी से जै देव जी चले तो राजा ने उनको बहुत सारा धन दिया तथा बड़े आदर से विदा किया। लोग भी दूर तक छोड़ने आए तथा प्रभु के गुण गाते रहे।

भक्त जी पद्मावती के साथ जब जंगल में से गुजर रहे थे तो उनको रास्ते में खतरनाक डाकू मिल गए। उन डाकुओं ने चाहे यह देख लिया कि एक ब्राह्मण आ रहा है, पर पद्मावती के सौंदर्य तथा रुपयों की पोटली ने डाकुओं का मन बेईमान कर दिया। उनमें से एक ने कहा, 'हे पंडित ! जो कुछ तुम्हारे पास है, वह हमारे हवाले कर दो। अगर टाल-मटोल की तो तुम्हारी खैर नहीं।'

मैं एक ब्राह्मण हूं। भगवान पुरुषोत्तम के दर्शनों से आ रहा हूं। मेरे पास यह मोहरें तथा रुपये हैं ले लो। यह धन शायद आपकी आवश्यकता पूरी कर देगा।

यह कह कर जै देव जी ने सारा धन धरती पर ढेर कर दिया, जब आगे चलने लगे तो डाकुओं ने पद्मावती को बांहों से पकड़ लिया और कहा, 'यह भी धन है यह नहीं जाएगी।' इस पर जै देव

जी ने मिन्नत की पर मूर्ख डाकुओं ने एक न सुनी तथा जै देव जी को उठा कर कुएं में फैंक दिया। दुष्ट लुटेरे पद्मावती को साथ लेकर भाग गए तथा दौलत भी ले गए। भगवान ने अनोखा ही कौतुक रचा दिया। बुरे पुरुष की दौलत ने भक्त तथा उसकी धर्म पत्नी को दुखों, कष्टों में डाल कर शायद परीक्षा लेनी चाही ।

जैसे पूरन भक्त को कुएं में उसके पिता ने गिरवा दिया था, उसी तरह मूर्ख डाकुओं ने महान विद्वान तथा ब्रह्म स्वरूप भक्त को कुएं में फैंक दिया। कुआं सूना तथा कम पानी वाला था। भक्त न डूबा तथा 'राधे श्याम ! राधे श्याम !' ऊंचे ऊंचे रटता रहा ।

जब भक्त इस तरह अपने भगवान को याद कर रहा था, तब एक नेक राजा लक्ष्मण सैन उधर आ निकला। उसने आवाज़ सुनी तो रुक गया। उसके सेवकों ने भी सुना, आवाज़ आ रही थी, 'राधे श्याम ! हरे राम राधे श्याम ! वह भी लय में मस्ती के साथ गाने की।

'हे बोलने वाले ! यह बताओ तुम कौन हो ? राजा ने आगे होकर आवाज़ दी ।

'मेरा नाम जै देव है। मैं पुरुष हूं। मुझे भगवान के आदमी कुएं में फैंक गए हैं । डरने वाली बात नहीं, मैं प्रभु का सुमिरन कर रहा हूं।' आगे से जवाब आया ।

उसी समय राजा ने रस्सा गिरवाया तथा भक्त को कहा कि वह रस्से की गोल गांठ बना कर पैर फंसा ले तथा साथ ही रस्से को पकड़ ले। उसको ऊपर उठाया जाएगा। भक्त ने कहा 'डोल के बिना नहीं आ सकता। मेरी बाजुओं को चोटें लगी हैं ।'

राजा ने डोल कुएं में फैंका तो भक्त जी को बाहर निकाला, जब बाहर आए तो उन्होंने सारी आपबीती सुनाई। राजा सुन कर बड़ा हैरान हुआ तथा भक्त की टूटी हुई बाजुएं देख कर उसको बहुत दुःख हुआ। वह सोचता रहा कि भक्त जी कैसे लिखेंगे ?

राजा लक्ष्मण सैन ने भक्त जै देव को साथ लिया तथा अपनी राजधानी ले आया। भक्त जी को पद्मावती की बहुत चिंता थी, पर विवेक यही था कि सब का रक्षक भगवान है। जो प्रभु की इच्छा है वही हो जाता है।

राजा ने पुण्य दान करने के साथ एक महा यज्ञ किया। उस यज्ञ का यह फल मिला कि जै देव जी की बाजुएं ठीक हो गईं। वह हरि यश करने लगा। दूसरी तरफ यज्ञ में आए साधू भेष में लुटेरे भी पकड़े गए तथा पद्मावती का पता लगा वह अपने गांव केंदल थी।

उसे भी राजा के पास बुला लिया गया। पद्मावती अपने पति को मिली।

भक्त जै देव जी का स्वर्गवास

राजा के पास भक्त जी लम्बे समय तक रहे तथा हरि नाम का कीर्तन किया करते। आपका बहुत यश होता था, कथा होती भक्त जी जो वचन करते थे, पूरे हो जाते, इस तरह काल बीत गया।

एक दिन जै देव जी ने राजा को कहा, 'हे महीष ! मेरी तीव्र इच्छा है कि अपने नगर की तरफ जाऊं। अब आज्ञा दीजिए। आप प्रभु का नाम सुमिरन करते रहो, किसी तरह की कमी नहीं आएगी। भगवान आपकी सहायता करेगा।

चाहे राजा की इच्छा नहीं थी कि भक्त जी उनसे कहीं दूर जाएं। वह चाहते थे कि उनके पास रहें। राजा के मन को शांति प्राप्त हो गई थी। फिर भी भक्त जी की इच्छा के विरुद्ध न जा सके। बहुत सारा धन देकर राजा ने आदर सहित विदा किया तथा साथ ही अपने आदमी भेजे जो रास्ते में रक्षा करते गए तथा भक्त को केंदल पहुंचा गए।

अपने नगर में आकर भक्त जी भगवान का यश करते रहे। गंगा उनके घर से दूर बहती थी, पर भक्त जी की ऐसी महिमा हुई कि एक बाढ़ से गंगा निकट आ गई।

केंदल नगर में रहते हुए भक्त जी आयु बहुत बढ़ जाने से वृद्ध हो गए। उनका अंतिम समय निकट आ गया तथा एक दिन भजन करते हुए ही ज्योति जोत समा गए। उनका ज्योति जोत समाना सुन कर पद्मावती भी परलोक गमन कर गई तथा दोनों की आत्माएं स्वर्गपुरी को चली गईं। जै जै कार होती रही।

उनकी समाधि उनके नगर में है, गंगा किनारे तथा गंगा का नाम 'जै दई गंगा' है। प्रत्येक माघी की संग्रांद को मेला लगता है तथा लोग स्नान करके मोक्ष प्राप्त करते जा रहे हैं। 'राधे श्याम' तथा गीत गोबिंद की धुनें गाई जाती हैं। धन्य-धन्य भक्त जै देव जी !

भक्त त्रिलोचन जी

यह भक्त जी भी दक्षिण देश की तरफ से हुए हैं तथा भक्त नामदेव जी के गुरु-भाई वैश्य जाति से थे और ज्ञान देव जी (ज्ञानेश्वर) के शिष्य थे। उन से दीक्षा प्राप्त की थी। दक्षिण में आप की ख्याति भी भक्त नामदेव जी की तरह बहुत हुई तथा जीव कल्याण का उपदेश करते रहे। आपको बड़े जिज्ञासु भक्तों में माना गया। आपके बारे में भाई गुरदास जी इस प्रकार उच्चारण करते हैं-

दरशन देखन नामदेव भलके उठ त्रिलोचन आवै।
भगति करनि मिल दोई जने नामदेउ हरि चलत सुनावै।
मेरी भी करि बेनती दरशन देखां जे तिस भावै।
ठाकुर जी नों पुछिओसु दर्शन किवै त्रिलोचन पावै।
हस के ठाकुर बोलिआ नामदेउ नों कहि समझावै।
हथ न आवै भेट सो तुसि त्रिलोचन मैं मुहि लावै।

हउ अधीन हां भगत दे पहुंच न हंघा भगती दावै ।
होई विचोला आन मिलावै ।१२।

(भाई गुरदास)

भक्त नामदेव जी तथा त्रिलोचन जी का आपस में अटूट प्रेम था। भक्त नामदेव जी के पास केवल नाम की बरकत थी, पर त्रिलोचन जी के पास माया भी बेअंत थी। वह सिमरन करने के साथ आने-जाने वाले अतिथि भक्तों की सेवा भरपूर करते थे। भोजन खिलाते तथा वस्त्र लेकर दे दिया करते थे। एक दिन त्रिलोचन जी उठ कर नामदेव जी के दर्शन करने चले गए। दोनों भक्त मिले। दर्शन किये, वचन विलास हुए तो भक्त नामदेव जी ने भगवान का यश, उनकी कीर्ति तथा दर्शन देने के बारे में कुछ वार्ताएं सुना दीं। वार्ताओं को सुनकर भक्त त्रिलोचन जी के मन में आया कि वह भी दर्शन करे। उन्होंने भक्त नामदेव जी के आगे प्रार्थना की कि मुझे भी प्रभु के दर्शन हो जाएं तो जन्म सफल कर लूं।

त्रिलोचन जी के मुख से ऐसी प्रार्थना सुनकर भक्त नामदेव जी ने वचन किया-'उनको पूछ लेते हैं यदि प्रभु की इच्छा हुई तो जरूर दर्शन हो जाएंगे। दर्शन देने वाले पर निर्भर है।'

भाई गुरदास जी वचन करते हैं कि नामदेव जी ने विनती की। नामदेव जी की विनती सुन कर भगवान हंस कर बोले, पुण्य दान, भेंटे करने पर हम नहीं प्रसन्न होते। तुम्हारी भक्ति तथा प्रेम भावना पर प्रसन्न हैं । तुम्हारे कहने पर दर्शन दे देते हैं। जो भगवान का हुक्म था, नामदेव जी को कहा और वह त्रिलोचन को सुना दिया। 'श्रद्धा भावना रख कर पुण्य दान करो, एक दिन दर्शन जरूर हो जाएंगे।'

यह सुन कर त्रिलोचन जी प्रसन्न हो गए।

त्रिलोचन जी की कोई संतान नहीं थी, केवल पति पत्नी दोनों ही प्राणी थे। संतों का आवागमन उनके घर असीम था। इसलिए उनको

तथा उनकी धर्म पत्नी को भगवान से बड़ा लगाव था और स्वयं काम करते रहते थे। उन्होंने सलाह की कि यदि कोई नौकर मिल जाए तो संतों की अच्छी सेवा हो जाया करेगी। बर्तन शीघ्र साफ न होने के कारण देरी पर कई बार संत भूखे ही चले जाते हैं, वे न जाए। नौकर रखने की सलाह पक्की हो गई।

एक दिन त्रिलोचन जी बाजार में जा रहे थे तो आप को एक गरीब-सा पुरुष मिला उसका चेहरा तंदरुस्त था, आंखों में चमक तथा तेज़ था, पर वस्त्र फटे हुए थे। उसको देख कर त्रिलोचन जी ने झिझक कर पूछा-'क्यों भाई ! तुम नौकरी करना चाहते हो ?'

उसने कहा-हां ! मैं नौकरी ढूंढता फिरता हूं, पर मेरी एक शर्त है, जिसे कोई नहीं मानता, इसलिए मुझे कोई नौकर नहीं रखता। यदि कोई मेरी शर्त माने तो मैं नौकरी करूंगा।

त्रिलोचन जी-'तुम्हारी शर्त क्या है बता सकते हो ?'

पुरुष-'जी मेरी शर्त मामूली है। मैं रोटी कपड़े के बदले नौकरी करता हूं, नकद रुपया कोई नहीं मांगता, पर घर का कोई सदस्य आपस में आस-पड़ोस में मेरी रोटी के बदले किसी से कोई बात न करे। यह बिल्कुल ही न कहा जाए कि मैं रोटी ज्यादा खाता हूं या कम, काम जो भी कहेंगे करूंगा, मैं सब काम जानता हूं। रात-दिन जागता भी रहूं तो भी कोई बात नहीं, यदि आपको यह शर्त मंजूर है तो मैं आपके घर नौकर रहने को तैयार हूं। जिस दिन मेरे खाने को टोका गया, उस दिन मैं नौकरी छोड़ दूंगा। मैं तो एक ही बात चाहता हूं घर सलाह कर लें।

भक्त त्रिलोचन जी ने उसकी शर्त मंजूर कर ली, यह जो सेवक भक्त जी के साथ चला, वास्तव में 'हरि जी' (भगवान) स्वयं थे। नामदेव जी के कहने पर त्रिलोचन को दर्शन देने के लिए आए थे। भगवान ने अपना नाम त्रिलोचन को 'अन्तर्यामी' बताया। 'अन्तर्यामी'

घर आ गया, घर के सारे काम उसको सौंप दिये गए। पर काम सौंपने से पहले त्रिलोचन जी ने अपनी पत्नी को कहा, 'देखो जी ! इस सेवक को एक तो जुबान से बुरा शब्द नहीं कहना, दूसरा यह जितनी रोटी खाए उतनी देनी होगी, चाहे तीन-चार सेर अन्न क्यों न खाए, खाने से न टोकना, न ही किसी को बताना। जो बताएगा, जो देखेगा या टोकेगा, उसको दुःख देगा।

संत आते-जाते रहे और सेवक अन्तर्यामी आने-जाने वाले अतिथि की सेवा मन से श्रद्धापूर्वक करता रहा। संत बड़े प्रसन्न हो कर जाते, साथ ही कहते यह सेवक तो भक्त रूप है बड़ा गुरमुख है। सब इस तरह महिमा करते ही जाते, त्रिलोचन जी की प्रशंसा सारे शहर तथा बाहर होने लगी। इस तरह सेवा करते हुए एक साल बीत गया। एक साल के बाद की बात है, एक दिन त्रिलोचन जी की पत्नी एक पड़ोसन के पास जा बैठी। नारी जाति का आम स्वभाव है कि वह बातें बहुत करती हैं। कई भेद वाली बातों को गुप्त नहीं रख सकतीं। कई बार एक स्त्री को जबरदस्ती जिद करके तंग करेगी कि वह मन की बात बताए।

इस स्वभाव अनुसार त्रिलोचन की पत्नी पड़ोसन के पास बैठी थी तो पड़ोसन ने उसको पूछा, बहन ! सत्य बात बताना, तुम उदास क्यों रहती हो ? चाहे आयु अधिक हो गई है, फिर भी चेहरे पर लाली रहती थी। हंस-हंस कर बातें तथा वचन विलास करती थी। अब क्या हो गया ? तुम्हारा रंग भी हल्दी जैसा हो रहा है, दुःख क्या है ?

त्रिलोचन की भोली पत्नी को पता नहीं था कि संतों की सेवा करने वाला उनके घर स्वयं भगवान है। वह तो उसे आम मनुष्य समझती रही, अपनी तरफ से पर्दे से उस पुरुष (अन्तर्यामी) से छिप कर पड़ोसन से बातें करने लगी, पर वह अन्तर्यामी था वह तो घट घट की जानता था, त्रिलोचन जी की पत्नी पड़ोसन को कहने लगी, 'बहन जी क्या

बताऊं, एक तो दिनों दिन बुढ़ापा आता जा रहा है, दूसरा संतों के रोज़ आने की संख्या बढ़ गई है। आटा पीस कर पकाना पड़ता है, मैं पीसती रहती हूं। तीसरा जो सेवक है न !' बात करती–करती वह रुक गई। उसकी पड़ोसन ने कहा, 'रुक क्यों गई ? बताओ न दिल का हाल, दुःख कम होता है, कहो।'

भक्त जी की पत्नी बोली–'बात यह है कि उन्होंने (त्रिलोचन जी) बहुत पक्का वादा किया है कि किसी से यह बात नहीं कहनी, पर मैं तुम्हें बहन समझ कर बताती हूं। तुम आगे किसी से बात न करना, वादा करती हो। बात यह है जो सेवक रखा है न, पता नहीं उसका पेट है या कि कुंआ, उसका पेट भरता ही नहीं, तीन–चार सेर अन्न तो उसके लिए चाहिए, मैं तो पकाती हुई उकता गई हूं। भक्त जी उसे कुछ नहीं कहते, मैं तो बहुत परेशान हूं, ऊपर से बुढ़ापा आ रहा है। वह घर उजाड़ते जा रहे हैं। यदि पास चार पैसे न रहे तो कल क्या खाएंगे ? जब नैन प्राण जवाब दे गए तो बिना पैसे के जानती हो कोई सूरत नहीं पूछता। रात-दिन सेवा करते रहते हैं।'

'यह तो भक्त जी (त्रिलोचन जी) भूल करते हैं, ऐसे सेवक को नहीं रखना चाहिए।' पड़ोसन ने कहा, उसे घर से निकाल दो। दूसरा सेवक रख लो। यह कौन–सी बात है।

त्रिलोचन जी की पत्नी इस तरह बातें करती तथा दुखड़े रोती हुई पड़ोसन के पास बहुत देर बैठी रही। दाल पकाने में अन्धेरा हो गया। उसका विचार था कि सेवक पका लेगा। पर सेवक अन्तर्यामी था। उसने सारी बातचीत दूर बैठे ही सुन ली। उसने जब अपनी निंदा सुनी तो उसी समय ही अपनी भूरी उठा कर घर से निकल गया। घर सूना छोड़ गया, दरवाज़े खुले थे। वह अदृश्य हो कर अपने असली रूप में आ गया। पड़ोसन के पास से उठ कर जब त्रिलोचन जी की पत्नी घर आई तो देखकर हैरान हुई कि घर के दरवाज़े खुले है, लेकिन

सेवक कहीं भी नहीं था। वह घर से बाहर नहीं जाता था। उसने आवाज़ें दी, अंदर-बाहर देखा, पर कोई दिखाई न दिया। रात को त्रिलोचन जी आ गए। उन्होंने भी आ कर पूछा कि 'अन्तर्यामी' किधर गया ? पर उनको कोई स्पष्ट और संतोषप्रद उत्तर न मिला। त्रिलोचन जी समझ गए कि उनकी पत्नी से अवश्य भूल हो गई है। 'अन्तर्यामी' की निंदा कर दी होगी। जिस कारण वह चला गया।

कई दिन त्रिलोचन जी उस सेवक को ढूंढते रहे, न वह मिला तथा न मिलना था। एक दिन उनको सोते हुए वाणी हुई, 'त्रिलोचन ! तुम्हारा सेवक अन्तर्यामी सचमुच अन्तर्यामी भगवान था, तुम्हें दर्शन देने आया था। पर पहचान न की, तुम्हारी पत्नी ने बात बता दी। नामदेव जी ने सिफारिश की थी।'

यह सुन कर त्रिलोचन जी तड़प उठे, बहुत पछतावा हुआ। पत्नी को कहने लगे, 'तुम ने बहुत बुरा किया, सेवक बन कर स्वयं भगवान घर आया, पर दो सेर आटे के बदले घर से निकाल दिया। यह सब कुछ उसका है। उसकी माया उपयोग कर रहे हैं। यह तुम्हारा लालची और नारी मन प्रभु के भेद को न समझ सका, खोटे भाग्य।

त्रिलोचन जी की पत्नी यह सुन कर विलाप करने लगी कि भगवान सारी उम्र उनसे नाराज़ रहा। संतान न दी जो बुढ़ापे में सहायता करती। यदि अब नौकर रखा तो वह भी न रहा। मैं ही बुरी हूं। विधाता ने मेरे ही लेख (कर्म) बुरे लिखे हैं, मैं बदकिस्मत हूं, मेरा जीना किस काम का अगर प्रभु ही रूठ गया। भगवान, भगवान ! इस तरह ऊंची ऊंची विलाप करती हुई प्रभु को बुलाने लगी। 'मुझे संतान न दी-यदि संतान दी होती तो आज मुझ से भूल न होती-भगवान सब......'

यह सुनकर भक्त त्रिलोचन जी ने अपनी पत्नी को समझाने का यत्न किया। वह भाव उनकी बाणी में से इस तरह मिलता है। आप फरमाते हैं :

नाराइण निंदसि काइ भूली गवारी ।। दुक्रितु सुक्रितु थारो करमु री ।।१।। रहाउ ।। संकरा मसतकि बसता सुरसरी इसनान रे ।।३।। कुल जन मधे मिल्यिो सारग पान रे ।। करम करि कलंकु मफीटसि री ।।१।। विस्व का दीपकु सवामी ता चे रे सुआर थी ।। पंखी राइ गरुड़ ता चे बाथवा ।। करम करि अरुण पिंगुला री ।।२।। अनिक पातिक हरता त्रिभवण नाथु री तीरथि तीरथि भ्रमता लहै न पारु री ।। करम करि कपालु मफीटसि री ।।३।। अंम्रित ससीअ धेन लछिमी कलप तर ।। सिखरि सुनागर नदी चे नाथं ।। करम करि खारु मफीटसि री ।।४।। दाधीले लंका गड़ु उपाड़ीले रावण बनु सलि बिसलि आणि तोखीले हरी ।। करम करि कछउटी मफीटसि री ।।५।। पूरबलो क्रित करमु न मिटै री ।। घर गेहणि ता चे मोहि जापीअले राम चे नामं ।। बदति त्रिलोचन राम जी ।।६।।

(पन्ना ६९५)

जिसका परमार्थ–हे भाग्यवान् ! ईश्वर पर दोष न लगाओ। दोष अपने कर्मों का है। हम जो अच्छे–बुरे कर्म करते हैं उनका फल वैसा ही पाते हैं। चन्द्रमा शिव के माथे में है। हर रोज़ गंगा में स्नान करता है। उसी चन्द्रमा की कुल में श्री कृष्ण जी हुए हैं। पर चन्द्रमा ने इन्द्र की सहायता की जो कामुक हो कर गौतम की अर्द्धांगिनी से पाप कर बैठा, जिस कारण उसे गौतम ने श्राप दे दिया। अभी तक चन्द्रमा का कलंक नहीं मिट सका। सूरज की तरफ देखो ! वह दुनिया को रोशनी देता है। दीये के समान है, अरूण रथवान है। अरूण का भाई गरूड़ है, गरूड़ को पक्षियों का राजा कहा जाता है। अरूण ने बींडे के पांव तोड़ कर लोहे की छड़ी पर मोड़ा था, जिसका परिणाम यह हुआ कि अरूण पिंगला हो गया। भगवान शिव जी की तरफ देखो, वह कई पापों को हरते हैं, लेकिन स्वयं तीर्थों पर भटकते फिरते

हैं। सरस्वती पर ब्रह्मा मोहित हो गए। शिव जी ने यह पाप समझ कर ब्रह्मा का सिर काट दिया, जिस कारण शिव को ब्रह्म हत्या का दोष लगा। ब्रह्मा का सिर उनके हाथ की हथेली से चिपक गया। इसको हाथ से उतारने के लिए शिव जी को कपाल मोचन तीर्थ पर जाना पड़ा। हे भाग्यवान ! सागर की तरफ देखो। कितना टेढ़ा तथा गहरा है, इसी सागर में से अमृत, चन्द्रमा, कमला, लक्ष्मी, कल्पवृक्ष, धन्वंतरि वैद्य आदि निकले, सब सागर में से मिलते हैं, यह उनका पति है। पर देख लो कर्मों का फल खारा है। इसलिए राम का सिमरन करते जाओ, जो भगवान करता है, ठीक करता है। अपने कर्मों का फल है कर्म की मेहनत जीव खाते हैं।

जै चंद को उपदेश

एक जै चंद नामक संन्यासी था, वह जाति का ब्राह्मण था। वह संन्यासी तो बन गया, पर उसकी मनोवृति ठीक न हुई। उसके पास लालच, अहंकार, ईर्ष्या तथा काम क्रोध की अग्नि ने घर किया हुआ था, इन बुराईयों का अन्त न किया। वह एक दिन त्रिलोचन जी से दान लेने के लिए गया। भक्त जी ने उसका सुधार करने के लिए उसको उपदेश देना शुरू किया। भक्त जी ने बाणी द्वारा फरमाया–

अंतरु मलि निरमलु नही कीना बाहरि भेख उदासी ॥ हिरदै कमलु घटि ब्रहमु न चीन्हा काहे भइआ संनिआसी ॥१॥ भरमे भूली रे जै चंदा ॥ नही नही चीन्हिआ परमानंदा ॥१॥ रहाउ ॥ घरि घरि खाइआ पिंडु बधाइआ खिंथा मुंदा माइआ ॥ भूमि मसाण की भसम लगाई गुर बिनु ततु न पाइआ ॥२॥ काइ जपहु रे काइ तपहु रे काइ बिलोवहु पानी ॥ लख चउरासीह जिन्हि उपाई सो सिमरहु निरबानी ॥३॥ काइ कमंडलु कापड़ीआ रे अठसठि काइ फिराही ॥ बदति त्रिलोचनु सुनु रे

प्रानी कन बिनु गाहु कि पाही ॥४॥

(पत्रा ५२५-२६)

उपरोक्त शब्द का भावार्थ इस तरह है-

हे संन्यासी पुरुष, आपने संन्यास तो धारण कर लिया है, पर अपनी आत्मा को निर्मल करने का यत्न नहीं किया। बाहरी भेष है। संन्यासी तो बने पर आत्मा मलीन है। इसको निर्मल करने का यत्न नहीं किया-भाव मोह-माया वासना को त्याग नहीं सके। हे जै चंद ! संन्यासी बन गए, पर कमल रूपी हृदय को ब्रह्म की रोशनी से चमकाया नहीं। भ्रम में लगे रहे तथा ब्रह्म को नहीं जाना। वचन नहीं किया। यह भला कहां का संन्यासीपन है कि घर-घर मांगते फिरे तथा शरीर को बढ़ा लिया, पेट पाल लिया। झोली में मुंदरें, सब का आसरा माया को जाना। धरती से उठा कर श्मशान की राख लगा ली, पर गुरु धारण करके ज्ञान का विचार न किया। ज्ञान ही तो जीवन है। आप का जप तप उस तरह है जैसे कोई सुबह पानी रिड़कता जाए तथा उसमें से कुछ न निकले। पानी रिड़कने से क्या निकलना है ? अच्छा तो है उस मालिक का नाम अजपा जपा करो, क्योंकि उसने चौरासी लाख योनियों को उत्पन्न किया है। वह जगत का मालिक है। बिना वाहिगुरु के नाम सिमरन के 68 तीर्थों पर करमण्डल पकड़ कर चलते फिरना भला किधर का साधू-पन है।

भक्त त्रिलोचन जी कहते हैं-'हे जै चंद संन्यासी ! तुम्हारा तीर्थों पर घूमना इस तरह है जैसे कोई पुरुष नाड़ को पकड़ कर दानों की आशा करता है। दाने तो फल में होते हैं। नाड़ में दाने नहीं होते, इसलिए आप का संन्यास असली संन्यास नहीं। यह तो झूठा आडम्बर है।'

भक्त जी का सच्चा उपदेश सुनकर जै चंद संन्यासी के कपाट खुल गए। वह भक्त जी के चरणों में गिर कर बोला, 'हे भक्त जी !

आप सत्य कह रहे हो। मैं दिल से संन्यासी नहीं बना हूं। अब मुझे ज्ञान हो गया। अपने चरणों में लगाओ और सत्य मार्ग दिखाएं।'

भक्त जी ने उस जै चंद संन्यासी को भक्ति मार्ग पर लगाया। वह दिल से संन्यासी बन कर त्यागी बना तथा नाम सिमरन से आत्मा को पवित्र करने लगा।

इस तरह भक्त त्रिलोचन जी भूले भटके जगत जीवों को उपदेश करते, हरि नाम का जाप जपाते हुए, इस संसार से लुप्त हो गए। उनके वचनों ने आज उनका नाम अमर रखा है। प्रभु की भक्ति करने वाले लोग सदा प्रभु चरणों में रहते तथा जगत के लिए प्रकाश का स्रोत होते हैं।

भक्त सूरदास जी

भक्त सूरदास जी विक्रमी सम्वत सोलहवीं सदी के अंत में एक महान कवि हुए हैं, जिन्होंने श्री कृष्ण जी की भक्ति में दीवाने हो कर महाकाव्य 'सूर सागर' की रचना की। आप एक निर्धन पंडित के पुत्र थे तथा 1540 विक्रमी में आपका जन्म हुआ था। ऐसा अनुमान है कि आप आगरा के निकट हुए हैं। हिन्दी साहित्य में आपका श्रेष्ठ स्थान है।

आपका जन्म से असली नाम मदन मोहन था। जन्म से सूरदास अन्धे नहीं थे। जवानी तक आपकी आंखें ठीक रहीं तथा विद्या ग्रहण की। विद्या के साथ-साथ राग सीखा। प्रकृति की तरफ से आप का गला लचकदार बनाया गया था तथा तन से बहुत सुन्दर स्वरूप था। बचपन में ही विद्या आरम्भ कर दी तथा चेतन बुद्धि के कारण आप को सफलता मिली। चाहे घर की आर्थिक हालत कोई पेश नहीं जाने देती थी।

भारत में मुस्लिम राज आने के कारण फारसी पढ़ाई जाने लगी थी। संस्कृत तथा फारसी पढ़ना ही उच्च विद्या समझा जाता था।

मदन मोहन ने भी दोनों भाषाएं पढ़ीं तथा राग के सहारे नई कविताएं तथा गीत बना-बना कर पढ़ने लगा। उसके गले की लचक, रसीली आवाज़, जवानी, आंखों की चमक हर राह जाते को मोहित करने लगी, उनका आदर होने लगा तथा उन्हें प्यार किया जाने लगा। हे भक्त जनो ! जब किसी पुरुष के पास गुण तथा ज्ञान आ जाए, फिर उसको किसी बात की कमी नहीं रहती। गुण भी तो प्रभु की एक देन है, जिस पर प्रभु दयाल हुए उसी को ही ऐसी मेहर बरदान होती है। मदन मोहन कविताएं गाकर सुनाता तो लोग प्रेम से सुनते तथा उसको धन, वस्त्र तथा उत्तम वस्तुएं भी दे देते। इस तरह मदन मोहन की चर्चा तथा यश होने लगा, दिन बीतते गए। मदन मोहन कवि के नाम से पहचाना जाने लगा।

सूरदास बनना

मदन मोहन एक सुंदर नवयुवक था तथा हर रोज़ सरोवर के किनारे जा बैठता तथा गीत लिखता रहता। एक दिन ऐसा कौतुक हुआ, जिस ने उसके मन को मोह लिया। वह कौतुक यह था कि सरोवर के किनारे, एक सुन्दर नवयुवती, गुलाब की पत्तियों जैसा उसका तन था। पतली धोती बांध कर वह सरोवर पर कपड़े धो रही थी। उस समय मदन मोहन का ध्यान उसकी तरफ चला गया, जैसे कि आंखों का कर्म होता है, सुन्दर वस्तुओं को देखना। सुन्दरता हरेक को आकर्षित करती है।

उस सुन्दर युवती की सुन्दरता ने मदन मोहन को ऐसा आकर्षित किया कि वह कविता लिखने से रुक गया तथा मनोवृति एकाग्र करके उसकी तरफ देखने लगा। उसको इस तरह लगता था जैसे यमुना किनारे राधिका स्नान करके बैठी हुई वस्त्र साफ करने के बहाने मोहन मुरली वाले का इंतजार कर रही थी, वह देखता गया।

उस भाग्यशाली रूपवती ने भी मदन मोहन की तरफ देखा। कुछ लज्जा की, पर उठी तथा निकट हो कर कहने लगी–'आप मदन मोहन हैं ? हां, मैं मदन मोहन कवि हूं। गीत लिखता हूं, गीत गाता हूं। यहां गीत लिखने आया था तो आप की तरफ देखा।'

'क्यों ?'

'क्योंकि आपका रूप सुन्दर लगा। आप !'

'क्या मैं बहुत सुन्दर हूं ?'

'सुन्दर, बहुत सुन्दर–राधा प्रतीत हो रही हो। यमुना किनारे–मान सरोवर किनारे अप्सरा–जो जीवन दे। मेरी आंखों की तरफ देख सकोगे।'

'हां, देख रही हूं।

'क्या दिखाई दे रहा है।'

'मुझे अपना चेहरा आपकी आंखों में दिखाई दे रहा है। मदन मोहन ने कहा, कल भी आओगी ?'

'आ जाऊंगी ! जरूर आ जाऊंगी ! ऐसा कह कर वह पीछे मुड़ी तथा सरोवर में स्नान करके घर को चली गई।

अगले दिन वह फिर आई। मदन मोहन ने उसके सौंदर्य पर कविता लिखी, गाई तथा सुनाई। वह भी प्यार करने लग पड़ी। प्यार का सिलसिला इतना बढ़ा कि बदनामी का कारण बन गया।

मदन मोहन का पिता नाराज हुआ तो वह घर से निकल गया और बाहर मंदिर में आया, फिर भी मन संतुष्ट न हुआ। वह चलता–चलता मथुरा आ गया। वृंदावन में इस तरह घूमता रहा। मन में बेचैनी रही। वह नारी सौंदर्य को न भूला।

एक दिन वह मंदिर में गया। मंदिर में एक सुन्दर स्त्री जो शादीशुदा थी, उसके चेहरे की पद्‌मनी सूरत देख कर मदन मोहन का मन मोहित हो गया। वह मंदिर में से निकल कर घर को गई तो मदन मोहन

भी उसके पीछे–पीछे चल दिया। वह चलते-चलते उसके घर के आगे जा खड़ा हुआ। जब वह घर के अंदर चली गई तो मदन मोहन ने घर का दरवाज़ा खट–खटाया। उसका पति बाहर आया। उसने मदन मोहन को देखा और उसकी संतों वाली सूरत पर वह बोला, बताओ महात्मा जी !

मदन मोहन–'अभी जो आई है, वह आप की भी कुछ लगती होगी।'

पति–'हां, महात्मा जी ! हुक्म करो क्या बात हुई ?

मदन मोहन–'हुआ कुछ नहीं बात यह है कि मैं विनती करना चाहता हूं।'

पति 'आओ ! अंदर आओ बैठो, सेवा बताओ, जो कहोगे किया जाएगा। सब आप महात्मा पुरुषों की तो माया है।

मदन मोहन घर के अंदर चला गया। अंदर जा कर बैठा तो उसकी पत्नी को बुलाया। वह आ कर बैठ गई तो मदन मोहन ने कहा–हे भक्त जनो ! दो सलाईयां गर्म करके ले आओ। भगवान आप का भला करेगा।

वे दम्पति समझ न सके कि क्या मामला है। स्त्री सलाईयां गर्म करके ले आई। मदन मोहन ने सलाईयां पकड़ ली तथा मन को कहता गया, 'देख लो ! जी भर कर देख लो ! फिर नहीं देखना !' यह कह कर सलाईयों को आंखों में चुभो लिया तथा सूरदास बन गया।

वह स्त्री–पुरुष स्तब्ध तथा दुखी हुए। उन्होंने महीना भर मदन मोहन को घर रख कर सेवा की। आंखों के जख्म ठीक किये तथा फिर सूरदास बन कर मदन मोहन वहां से चल पड़ा।

बादशाही कोप

सूरदास गीत गाने लगा। वह इतना विख्यात हो गया कि दिल्ली के बादशाह के पास भी उसकी शोभा जा पहुंची। अपने अहलकारों

द्वारा बादशाह ने सूरदास को अपने दरबार में बुला लिया। उसके गीत सुन कर वह इतना खुश हुआ कि सूरदास को एक कस्बे का हाकिम बना दिया, पर ईर्ष्या करने वालों ने बादशाह के पास चुगली करके फिर उसे बुला लिया और जेल में नज़रबंद कर दिया। सूरदास जेल में रहता था। उसने जब जेल के दरोगा से पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है ? तो उसने कहा-'तिमर।' यह सुन कर सूरदास बहुत हैरान हुआ। कवि था, ख्यालों की उड़ान में सोचा, 'तिमर......मेरी आंखें नहीं मेरा जीवन तिमर (अन्धेर) में, बंदीखाना तिमर (अन्धेरा) तथा रक्षक भी तिमर (अन्धेर) !' उसने एक गीत की रचना की तथा उस गीत को बार-बार गाने लगा।

वह गीत जब बादशाह ने सुना तो खुश होकर सूरदास को आज़ाद कर दिया, तथा सूरदास दिल्ली जेल में से निकल कर मथुरा की तरफ चला गया। रास्ते में कुंआ था, उसमें गिरा, पर बच गया तथा मथुरा-वृंदावन पहुंच गया। वहां भगवान कृष्ण का यश गाने लगा।

सूर-सागर की रचना

सूरदास भगवान श्री कृष्ण जी की नगरी में पहुंचा। अनुभवी प्रकाश से उसकी आंखों के आगे श्री कृष्ण लीला आई। उसने स्वामी 'वल्लभाचार्य' जी को गुरु माना तथा कहना मान कर 'गऊ घाट' बैठ कर 'श्री मद् भागवत' को भाषा कविता में उच्चारण करना शुरू किया। एक आदमी लिखने के लिए रखा। सूरदास बोलते जाते तथा लिखने वाला लिखता रहा। सूरदास जी ने 75000 चरण लिखे थे कि आप का देहांत हो गया।

'सूर-सागर' आप की एक अटल स्मृति है।

आपकी बाणी का एक शब्द है

हरि के संग बसे हरि लोक ॥ तनु मनु अरपि सरबसु सभु

अरपिओ अनद सहज धुनि झोक ॥१॥ रहाउ ॥ दरसनु पेखि भए निरबिखई पाए है सगले थोक ॥ आन बसतु सिउ काजु न कछूऐ सुंदर बदन अलोक ॥१॥ सिआम सुंदर तजि आन जु चाहत जिउ कुसटी तनि जोक ॥ सूरदास मनु प्रभि हथि लीनो दीनो इहु परलोक ॥२॥

(पन्ना १२५३)

परमार्थ–परमात्मा के भक्त परमात्मा के साथ ही रहते हैं। उन्होंने तो अपना सब कुछ हरि को अर्पण कर दिया है। वह सदा सहज प्यार तथा खुशी को अनुभव करते रहते हैं। भगवान के दर्शनों ने उनको ऐसा संयम वाला बना दिया है कि उन्होंने इन्द्रियों पर काबू पा लिया है। जिसका फल यह हुआ कि भगवान ने उनको सब पदार्थ दिए हैं। जब प्रभु का खिलता मुख देखते हैं, तो किसी के दीदार की आवश्यकता नहीं रहती। परमात्मा को छोड़ कर जो लोग अन्य तरफ घूमते हैं, वे अपने तन–मन को नष्ट करते हैं। सूरदास जी कहते हैं, मैं तो उनका हूं, वह मेरे हैं। भक्त प्रभु के हैं।

भक्त परमानंद जी

तै नर किआ पुरानु सुनि कीना ॥ अनपावनी भगति नही उपजी भूखै दानु न दीना ॥१॥ रहाउ ॥ कामु न बिसरिओ क्रोधु न बिसरिओ लोभु न छूटिओ देवा ॥ पर निंदा मुख ते नही छूटी निफल भई सभ सेवा ॥१॥ बाट पारि घरु मूसि बिरानो पेटु भरै अप्राधी ॥ जिहि परलोक जाई अपकीरति सोई अबिदिआ साधी ॥२॥ हिंसा तउ मन ते नही छूटी जीअ दइआ नही पाली ॥ परमानंद साधसंगति मिलि कथा पुनीत न चाली ॥३॥१॥६॥

(पन्ना १२५३)

भाव हे मनुष्य ! पुराणों (इतिहास) की कथा सुन कर तुम ने

क्या किया। यह जो कथा-कहानियां सुनी, वह नाशवान भक्ति है। अमर तथा सच्ची भक्ति तो तेरे अन्दर आई नहीं। डींगें मारता रहा, पर किसी भूखे को कमाई में से दान तो कभी नहीं किया। लिंग वासना, क्रोध, लोभ तथा पराई निंदा तो छोड़ी नहीं, यही बड़ी बीमारियां हैं। इसलिए जो थोड़ी बहुत भक्ति तुमने की भी वह भी व्यर्थ ही गई है। हे पुरुष ! तुम राह रोकते रहे, ताक लगाई रखी, ताले तोड़े, इन कामों ने परलोक में तुम्हारी निंदा तथा निरादर करवाया। तुम्हारे यह सारे कर्म मूर्खों वाले हैं। शिकार खेलना नहीं छोड़ा, जीव हत्या करते रहे। कभी पक्षी पर भी दया नहीं की। परमानंद जी कहते हैं सत्संग में जा कर हरि यश नहीं सुना, तो बताओ तुम्हारा कल्याण कैसे होगा ?

आप बड़े अतीत ज्ञानी, विद्वान, हरि भक्त तथा कवि हुए हैं। आप ने अधिकतर समय वृंदावन में गुजारा। आप मुम्बई की तरफ के रहने वाले थे। गांव बारसी जिला शोलापुर में आपका जन्म हुआ था। आपका समय 1606 विक्रमी के निकट का है, जब भक्ति लहर जोरों पर चल रही थी। श्री गुरु नानक देव जी, कबीर, रामानंद, नामदेव जी आदि भक्त हरि यश का प्रचार कर रहे थे। इनके लिखे यह ग्रंथ मिलते हैं-परमानंद सागर, परमादास पद, दान लीला तथा ध्रुव चरित्र।

भक्त बेणी जी

भक्तों की दुनिया बड़ी निराली है। प्रभु भक्ति करने वालों की गिनती नहीं हो सकती। इस जगत में अनेकों महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने प्रभु के नाम के सहारे जीवन व्यतीत किया तथा वह इस जगत में अमर हुए, जबकि अन्य लोग जो मायाधारी थे, मारे गए तथा उनका कुछ न बना। ऐसे पुरुषों में ही भक्त बेणी जी हुए हैं। आपका वास्तविक नाम ब्रह्म भट्ट बेणी था। आपका जन्म सम्वत 1670 विक्रमी में 'असनी' गांव में हुआ। आप जाति के ब्राह्मण थे और इतने निर्धन

थे कि जीवन से उदास हो गए थे। रात दिन यही विचार करते रहते थे कि मानव जीवन का अन्त कर लें, अगला जीवन क्या पता कैसे हो। हो सकता है कि यदि इस जन्म दुखी हैं तो अगले जन्म में सुखी हो जाएंगे। ऐसी ही दलीलें किया करते थे, क्योंकि भूखे बच्चों का रोना उनसे न देखा जाता। हर रोज़ पत्नी झगड़ा करती। वह इसी माया की कमी के दुखों से तंग आ गया तथा हर रोज़ मन ही मन क्लेश करने लगे।

वह उदास हो कर घर से चल पड़े। अचानक रास्ते में उनको एक महांपुरुष मिला। उनके साथ वचन-विलास हुए तो उन्होंने पूछा, 'हे बेणी ! किधर चले हो ?'

बेणी -'महाराज क्या बताऊं, घर में बहुत गरीबी है। इस भूखमरी की दशा ने दुखी किया है। समझ नहीं आता क्या करुं-यही मन करता है कि आत्मघात कर लूं। पत्नी तथा बच्चे अपने-आप भूख से मर जाएंगे। ऐसा सोच कर बाहर को चला हूं।

महांपुरुष-'मरने से दुःख दूर नहीं होते। आत्महत्या करेगा तो आत्मा दुखी होगी, नरकों का भागी बनेगा। मेहनत करो, यदि कोई और मेहनत नहीं करनी तो प्रभु भक्ति की ही मेहनत किया करो। जो भक्ति करता है, परमात्मा उसकी सारी कामनाएं पूरी करता है। जीवों की चिंता परमात्मा को है। कर्म गति है, कर्मों का फल भोगना पड़ता है। किसी जन्म में ऐसा कर्म हुआ है, जो यह दुःख के दिन देखने पड़े। अब तो प्रभु की भक्ति करो तो ज़रूर भला होगा।

उस महांपुरुष का उपदेश बेणी को अच्छा लगा। मन पर प्रभाव पड़ा तो जंगल की ओर चला गया। वह जा कर भक्ति करने लगा। इस तरह कुछ दिन बीत गए। भाई गुरदास जी ने यह शब्द उच्चारा-

गुरमुख बेणी भगति करि जाई इकांत बहै लिव लावै। करम करै अधिआतमी होरसु किसै न अलख लखावै। घर आइआ

जां पुछीऐ राज दुआरि गइआ आलावै। घर सभ वथू मंगीअनि वल छल करिकै झत लंघावै। वडा साग वरतदा ओहु इक मन परमेसर धिआवै॥ पैज सवारै भगत दी राजा होइकै घरि चलि आवै। देइ दिलासा तुसि कै अनगिनती खरची पहुंचावै। ओथहुं आइआ भगत पासि होइ दिआल हेत उपजावै। भगत जनां जैकार करावै।

(भाई गुरदास जी)

जिसका परमार्थ है–महांपुरुष के कथन अनुसार बेणी बाहर एकांत में समाधि लगा कर भक्ति करने के लिए मन एकाग्र कर लेता पर भक्ति गुप्त रखने लग पड़ा। किसी को उसने नहीं बताया था, जब वह घर आता तो पत्नी पूछती कहां से आए हो ?'

राज दरबार में कथा करता हूं। जब कथा समाप्त होगी भोग पड़ेगा तो अवश्य ही राजा दक्षिणा देगा। वह धन पदार्थ बहुत होगा, सारी ज़रूरतें पूरी हो जाएंगी।

यह सुन कर बेणी जी की पत्नी क्रोधित होकर आपे से बाहर हो गई। उसने कहा–'चूल्हे में पड़े तुम्हारा राजा !' कथा का क्या पता कब भोग पड़ेगा। आप मुझे भोजन सामग्री ला दो नहीं तो घर मत लौटना।

अपनी पत्नी के इस तरह के कटु वचन सुनकर बेणी चुपचाप जंगल को चला गया। भक्ति में जा लगा। ऐसी सुरति प्रभु से जुड़ी कि सब कुछ भूल गया। पत्नी का रोना याद न आया। भूखमरी तथा अपनी भूख याद न रही केवल परमात्मा को याद करता गया।

उधर अन्तर्यामी प्रभु ने सत्य ही भक्त की भक्ति सुन ली। अपने सेवक की लाज रखने के लिए, अपने नाम की महिमा व्यक्तकरने के लिए उन्होंने राजा का रूप धारण किया तथा भोजन सामग्री की गाड़ियां भर लीं। धन ढोया तथा जा कर बेणी की पत्नी को पूछा -

'ब्रह्म भट्ट बेणी का घर यही है ?'

बेणी की पत्नी 'जी, यही है। पता नहीं कहां उजड़ा है ? परमात्मा ने राजा के अहलकार के रूप में कहा, 'वह राज दरबार में कथा करते हैं। भोजन सामग्री भेजी है। अन्न है, वस्त्र, मीठा, घी, संभाल लो। कथा पूरी होने पर बहुत कुछ मिलेगा।' बेणी की पत्नी को लाज आई कि वह झूठ नहीं कहते थे, सत्यता ही राजा के दरबार में जाते थे, यूं ही क्रोध किया। उसने सारा सामान रख लिया तथा खुश हो कर बेणी जी को याद करने लगी, यह भी कह दिया, 'जी ! सुबह कुछ नाराज होकर गए हैं, उनको शीघ्र भेज देना।'

प्रभु यह लीला देखकर प्रसन्न हो गए तथा सीधे बेणी जी के पास पहुंचे, उनको जा कर होश में लाया तथा कहा-'होश करो तुम्हारी भक्ति स्वीकार हुई! जाओ, तुम्हारी सारी आवश्यकताएं पूरी हुईं। किसी बात की कमी नहीं रह गई।' बेणी जी ने साक्षात् दर्शन किए। वचन सुने पर जब आगे बढ़ कर नमस्कार करने लगे तो प्रभु अपनी माया शक्ति से अदृश्य हो गए।

सारा कौतुक देखकर भक्त बेणी भक्ति करने से उठे तथा खुशी से गद्‌गद् हो कर वापिस घर को चल दिए। जब घर आए तो उनकी पत्नी उनको प्रसन्नचित्त हो कर मिली। चरणों में माथा टेका, 'मुझे क्षमा करना नाथ ! मैं तो भूल गई भूख ने तंग किया था। अयोग्य बातें मुंह से निकल गईं। मुझे क्षमा कीजिए, आप तो सब कुछ जानते हो। राजा का अहलकार सब कुछ दे गया। अब किसी बात की कमी नहीं। प्रभु ने बात सुन ली।'

बेणी सुन कर प्रसन्न हो गया कि यह सब कुछ प्रभु भक्ति का फल है, जो माया आई तथा साथ ही घर की माया (स्त्री) भी खुश हो गई।

बेणी जी ने भक्ति करते रहने का मन बना लिया तथा प्रसिद्ध भक्त

बना। उनकी बाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में भी विद्यमान है। आप की बाणी का शब्द है-

तनि चंदनु मसतकि पाती ॥ रिद अंतरि कर तल काती ॥ ठग दिसटि बगा लिव लागा ॥ देखि बैसनो प्रान मुख भागा ॥१॥ कलि भगवत बंद चिरांमं ॥ क्रूर दिसटि रता निसि बादं ॥१॥ रहाउ ॥ नितप्रति इसनानु सरीरं ॥ दुइ धोती करम मुखि खीरं ॥ रिदै छुरी संधिआनी ॥ पर दरबु हिरन की बानी ॥२॥ सिल पूजसि चक्र गणेसं ॥ निसि जागसि भगति प्रवेसं ॥ पग नाचसि चितु अकरमं ॥ ए लंपट नाच अधरमं ॥३॥ म्रिग आसणु तुलसी माला ॥ कर ऊजल तिलकु कपाला ॥ रिदै कूड़ु कंठि रुद्राखं ॥ रे लंपट क्रिसनु अभाखं ॥४॥ जिनि आतम ततु न चीन्हिआ ॥ सभ फोकट धरम अबीनिआ ॥ कहु बेणी गुरमुखि धिआवै ॥ बिनु सतिगुर बाट न पावै ॥५॥१॥

(पन्ना १३५१)

जिसका परमार्थ-उपदेश देते हैं, पंडित को कहते हैं, हे पंडित ! जरा सुनो तो तुम्हारे हृदय में प्रभु भक्ति भी है। ...तभी तो ब्राह्मण भूखे मरते हैं, भक्ति नहीं करते अपितु आडम्बर करते हैं। आप फरमाते हैं-हे पंडित ! तन को चंदन से तथा माथे को चंदन के पत्ते लगा कर शीतल रखते हो, पर कभी सोचा है तुम्हारे हृदय में तो कटार है। भाव खोट है। हरेक से धोखा करने तथा बगुले की तरह बेईमानी की समाधि लगा कर बैठते हो कि कोई संदेह न करे जब मौका मिले तो खा पी जाए। उपर से तो विष्णु भक्त लगता है, जैसे जान नहीं होती तथा रात को सूरत कुत्ते की तरह हो जाती है। पाप कर्म की तरफ भागा फिरता हुआ काम क्रोध की तरफ जाता है। स्त्री का गुलाम बनता है। चोरी करके खाता है। दो धोती रखता, स्नान करता, ज़ुबान से मीठे बोल बोलता है। मन में बेईमानी, पराया माल लूटने तथा उठाने

की आदत है। आप का जीवन कैसा है ?

वाह रे पंडित ! द्वारिका, काशी आदि जा कर तन पर कष्ट उठाता, पत्थर की पूजा करता हुआ पत्थर रूप बन गया है। लाभ कुछ नहीं। लोगों से माया लेने तथा धोखा करने के लिए नाचता है, गाता है तथा कई प्रकार की लीला करता हैं। वाह ! तेरे ढोंग कभी मृगछाला बिछा कर बैठ गया, कभी तुलसी की माला, चंदन का तिलक, जुबान से जाप, पर कभी यह नहीं सोचा कि हृदय किधर दौड़ता है। ख्याल तो नारी भोग की तरफ दौड़ते हैं। हे पंडित ! यह दिखावा हैं। ज्ञान की आवश्यकता है। आवश्यकता है प्रभु को शुद्ध हृदय से याद किया जाए। मन की वासनाएं रोकी जाए तो प्रभु परमात्मा से मेल होता है।

ऐसा उपदेश देने लग पड़े। परमात्मा ने ऐसा भाग्य बनाया कि उनके घर में कोई भी कमी न रही। वह भजन बंदगी करते रहे। आज उनके नगर असनी में उनकी याद मनाई जाती है। प्रभु को जो स्मरण करते हैं, लोग उनको स्मरण करते हैं। ऐसी नाम की महिमा है। हे जिज्ञासु जनो ! भक्ति एवं नाम का सिमरन करो ताकि कलयुग में कल्याण हो।

भक्त भीखण जी

न्यौछावर जाए शहीदों के सिरताज, ब्रह्मज्ञानी, आप परमेश्वर सतिगुरु अर्जुन देव जी के, जिन्होंने हरेक महापुरुष तथा परमेश्वर भक्त का सत्कार किया। हिन्दू-मुसलमान के सत्कार के साथ उनका भी आदर सत्कार किया, जिनको ब्राह्मण समाज निम्न समझता था। मानव जाति का सत्कार किया।

भीखण जी मुसलमान फकीर थे। आप का संबंध सूफियों के साथ था तथा वह विख्यात फकीर सैयद पीर इब्राहीम के शिष्य थे। आपका जन्म गांव काकोरी ज़िला लखनऊ में 15वीं विक्रमी के पूर्व

मध्य में हुआ तथा एक महान फकीर व तपस्वी भक्त हुए हैं।

जब सतिगुरु जी श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की रचना कर रहे थे तो भक्त भीखण जी की बाणी भी प्राप्त हुई तथा दो शब्द श्री गुरु ग्रंथ साहिब में लिखवाए। बाणी बड़ी वैराग वाली तथा कल्याण मार्ग की ओर लगाने वाली है। नीचे आपका एक शब्द दिया जाता है, ताकि जिज्ञासु जन लाभ उठाएं।

भीखण जी का देहांत 1631 विक्रमी में हुआ माना जाता है। आप का शब्द श्रवण करो :

नैनहु नीरु बहै तनु खीना भए केस दुध वानी ॥ रूधा कंठु सबदु नही उचरै अब किआ करहि परानी ॥१॥ राम राइ होहि बैद बनवारी ॥ अपने संतह लेहु उबारी ॥१॥ रहाउ ॥ माथे पीर सरीरि जलनि है करक करेजे माही ॥ ऐसी बेदन उपजि खरी भई वा का अउखधु नाही ॥२॥ हरि का नामु अंम्रित जलु निरमलु इहु अउखधु जगि सारा ॥ गुर परसादि कहै जनु भीखनु पावउ मोख दुआरा ॥३॥१॥

(पन्ना ६५९)

मनुष्य के शारीरिक तीन जन्म होते हैं–बचपन, किशोरावस्था तथा बुढ़ापा। जीवन पहली दोनों अवस्थाओं में नेकी की तरफ नहीं दौड़ता, बल्कि बदी की तरफ बरबस दौड़ता है पर जब बुढ़ापे के दिन आते हैं तो पश्चाताप करता है। भक्त जी इस शब्द में बुढ़ापे के लक्षण तथा जीवन का पश्चाताप ब्यान करते हैं। आप फरमाते हैं बुढ़ापा आया, आंखों में पानी बहता है, शरीर दुर्बल तथा बाल दूध जैसे सफेद हो गए हैं। बुढ़ापे की ऐसी सूरत बन गई है। बोलने लगता है तो गले में बलगम आ जाती है, बोला नहीं जाता। उस समय प्रभु का नाम लेना चाहता है पर बताओ इस दशा में क्या करे ? बस ! निवेदन करने योग्य ही रह जाता है। वह कहता है–'हे प्रभु ! आप ही वैद्य

बनो। मेरा रोग निवृत करो। अपनी शक्ति से ही मेरा उद्धार करो, मुझ से तो कुछ नहीं हो सकता। माथे में दर्द है, शरीर में कंपकंपी आ गई, हृदय में पीड़ा है।'

भक्त जी आप उत्तर देते हैं-ऐसे रोगों की दवा दुनिया के पास से नहीं मिलती। इलाज है-हरि नाम ! प्रभु का नाम सिमरन करना, पर गुरु की कृपा से ही मन भक्ति की तरफ लगता है, अन्य किसी तरह नहीं लगता। जब गुरु की कृपा से मन भजन की तरफ लग जाए तो स्वयं ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है। अर्थात बुढ़ापे के समय तो भक्ति पश्चाताप ही रह जाती है-वास्तव में भक्ति करने का समय सदा ही है। बचपन से ही भक्ति की तरफ बढ़ना चाहिए। भक्ति ही ऊंचा बनाती है।

बाबा शेख फरीद जी

देखु फरीदा जु थीआ दाड़ी होई भूर ॥
अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूरि ॥१॥

(सलोक फरीद)

ज़िला मुल्तान में 'पाकपटन' एक धार्मिक स्थान है, जहां बाबा फरीद जी की गद्दी है। उनकी गद्दी पर विराजमान होने वालों को 'फरीद' ही कहा जाता है। सतिगुरु नानक देव जी के समय बाबा फरीद ब्रह्म थे पर जिस फरीद जी की कथा करने लगे हैं उनका पूरा नाम शेख फरीद मसऊद शकर गंज था। आप के पिता एक मशहूर सूफी थे तथा नाम था शेख जमान सुलेमान तथा माता का नाम मरियम था।

फरीद जी के पूर्वज सुल्तान महमूद गज़नवी के साथ संबंध रखते थे। आपके पिता सुल्तान महमूद गजनवी के भतीजे लगते थे। सुलेमान गजनी से चलकर हिन्द में आ गया था। यह पहले लाहौर आकर बैठा। वहीं सूफी मत का प्रचार करके हिन्दू फकीरों को मुसलमान

फकीर बनाया। सूफी फकीरों का जीवन ऊंचा होने के कारण इस्लाम का प्रचार होने लगा।

सुलेमान का फकीरी दायरा कायम हो गया। आप लाहौर से उठ कर जंगली इलाके मुलक की तरफ चले गए तथा अंत उन्होंने पाकपटन में अपना स्थान कायम कर लिया। वहीं बाबा फरीद शकरगंज ने जन्म लिया। आपका समय गुरु नानक देव जी के समय से पांच सौ साल पहले का माना जाता है। आप ऐसी भक्ति वाले पुरुष हुए हैं कि आपकी बहुत महिमा हुई। आप जी के जीवन की अनेक साखियां हैं। कुछ न कुछ गुरमुखों के लाभ के लिए लिखी जाती हैं। क्योंकि आपकी बहुत सारी बाणी श्री गुरु ग्रंथ साहिब में अंकित की गई है, इसलिए बड़े आदर-सत्कार से पढ़ी जाती है, वैरागमयी है।

बाबा फरीद शकरगंज का जन्म सम्वत ११७२ ईस्वी में गांव खोतवाल जिला मुल्तान में हुआ। जब भारत पर पश्चिम की तरफ से अरब के लोग हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करके आते तो वे भोली-भाली जनता को लूट कर चले जाते या राज करते थे। इस्लाम भारत में पैर टिकाने लग पड़ा था। भक्ति लहर का आरम्भ हो रहा था।

बाबा फरीद जी की माता बड़ी पक्की धर्मात्मा इस्लामी तालीम की ज्ञाता तथा शुद्ध हृदय वाली और ईमानदार थी। उसकी शिक्षा का प्रभाव फरीद जी पर बचपन में ही बहुत पड़ा। आप बारह साल से पहले ही कुरान मजीद अध्ययन कर गए। कहते हैं कि मौखिक याद कर लिया तथा धार्मिक परिपक्व हो गए।

एक दिन उनकी माता ने तपस्या के बारे में बताया तो आप ने विचार बना लिया कि युवा होकर घोर तपस्या करेंगे। युवा हुए, चेतना आई तो घर से तपस्या करने चल पड़े।

पहली घोर तपस्या

पाकपटन के चारों तरफ उस समय घना जंगल होता था। इस इलाके को 'नीली बार' कहा जाता था। बार के जंगल में वनस्पति, बबूल, किकर, टाहली आदि अधिकतर वृक्ष होते थे। किशोर आयु में ही शकरगंज जी ने फैसला कर लिया कि वह घोर तपस्या करेंगे तथा इस विचार से प्रेरित होकर घर से निकल गए। बारह साल जंगल में काटे। बाल बढ़ गए तथा जुड़ गए। प्रभु का सिमरन करते हुए गर्मी तथा सर्दी में रह कर वन की पीलू, करीरों के डेले, थोहर का पक्का फल आदि खा लेते। कई बार वृक्षों के पत्ते भी खा लेते। इस तरह तपस्या करते हुए बारह साल बीते तो सोचा हो सकता है कि बारह साल के बाद भक्ति पूरी हो गई हो। बारह साल की भक्ति का फल कमा लिया।

बाबा शकरगंज घर को चल दिए। वह चलने लगे, रास्ते में चिड़ियां आईं, उनकी तरफ खड़े देखने लग पड़े। मन में अहंकार आया, अहं था, भक्ति की परीक्षा का विचार आ गया, जो नहीं आना चाहिए था। उन्होंने चिड़ियों को कहा, 'मर जाओ।' सचमुच ही चिड़ियां मर गईं। 'उड़ जाओ।' सचमुच ही चिड़ियां उड़ गईं। वे प्रसन्न हो गए तथा जान गए कि भक्ति पूरी हो गई। तपस्या से रिद्धियां-सिद्धियां मिल गईं। अब क्या अन्तर। अच्छा हो गया।

अहंकार का सिर नीचा

बाबा शकरगंज फरीद जी जंगल में से निकल कर एक गांव के समीप आए। उन्हें प्यास लगी थी, प्यास बुझाने के लिए कुएं की तरफ हुए। कुएं पर एक स्त्री पानी निकाल रही थी, पर पानी का डोल निकालती तथा भर कर उल्टा देती थी। बाबा फरीद जी ने आगे

होकर उसको कहा, 'कन्या ! मुझे पानी पिलाओ। मैं फकीर दूर से आया हूं।'

पर उसने एक न सुनी। वह पानी के डोल निकालती गई और उल्टाती गई। फरीद जी देखते रहे। उन्होंने ऊब कर ज़रा क्रोधित होकर कहा, 'मैं कब से कह रहा हूं। पानी फैंकती जा रही हो, मुझे पिलाओ। ज़मीन पर पानी फैंकने से तुम्हें क्या लाभ ?'

ज़रा ठहरो, अभी पानी पिलाती हूं। मेरी बहन का घर जल रहा है, आग बुझा रही हूं। उस स्त्री ने आगे से उत्तर दिया और पानी फैंकती गई।

यह सुन कर बाबा फरीद जी बड़े हैरान हुए। उनको पानी पीने का ख्याल हट गया, मकान जलने का ख्याल आ गया। उन्होंने चारों तरफ देखा, कहीं आस-पास आग नहीं थी लगी। वह पूछने ही वाले थे कि स्त्री ने कहा-'मेरी बहन का घर यहां से बीस कोस दूर है। आग बुझ रही है ज़रा ठहर जाओ। जल्दबाजी करना ठीक नहीं। यहां चिड़ियां नहीं जिनको कहोगे 'मर जाओ' तो वह मर जाएंगी तथा कहोगे 'उड़ जाओ' तो उड़ जाएंगी। यहां यह नहीं।

यह सुन कर फरीद जी की प्यास बिल्कुल बुझ गई। वह हैरान हुए तथा पूछा-'मुझे चाहे पानी न पिलाओ, पर यह बताओ, यह सारी शक्ति जानने तथा आग बुझाने की कहां से प्राप्त की ?

उस औरत ने पानी फैंकना बंद कर दिया। बाबा जी को सम्बोधन करके कहने लगी, 'सेवा तथा पति प्रेम करती हूं। यही तपस्या है, अहंकार नहीं, भला आपने तो परीक्षा की, प्रभु की परीक्षा-मन में संदेह उत्पन्न किया। ऐसा हरगिज़ नहीं था करना चाहिए।'

उस स्त्री ने फरीद जी को पानी पिलाया तथा फरीद जी का ज्ञान एक तरफ हुआ तो क्या देखते हैं कि कुआं खाली है, न डोल, न फिरनी तथा न वह स्त्री। अकेले बाबा फरीद जी खड़े थे। चकित

हुए तथा बोध हुआ कि परमात्मा ने सारा खेल रचाया है। उनके अहंकार को दूर करने के लिए सारा जाल था। आंखें नीचे करके अपने नगर पाकपटन को आ गए। जब घर पहुंचे तो उनकी मां मिली, प्यार दिया, बिठाया तथा आदर किया।

मां ने देखा पुत्र के बाल जुड़े हैं। मां को तरस आया, वह बाल संवारने लगी तो फरीद जी को पीड़ा महसूस हुई। उस समय मां के मुंह से सहज स्वभाव निकल गया–'पुत्र ! जिन वृक्षों के पत्ते तोड़ कर खाता रहा है, उनको पीड़ा नहीं होती थी ? बाल जुड़े हैं, पीड़ा होती है। इसी तरह दूसरे को दुःख दें तो पीड़ा अनुभव होती है। अच्छा है किसी को दुख न दें। इससे शिक्षा लेनी चाहिए, पुत्र ! जैसे आत्मा और शरीर अपना है, वैसे ही दिल तथा शरीर दूसरे का समझो। दर्द -पीड़ा होती है, पक्षी, पशु, मनुष्य तथा वनस्पति सब में प्राण है। पुत्र ! सभी अल्लाह के उत्पन्न किए हुए हैं।

मां की बातें सुन–सुन कर बाबा फरीद जी को कुएं वाली घटना भी याद आई तथा उनको ज्ञान हुआ कि उन्होंने अभी भक्ति नहीं की। जो की थी चिड़ियों की परीक्षा में गंवा ली। अच्छा है फिर भक्ति करूं। इसी विचार में वह कई दिन घूमते रहे तथा उदास रहे। पश्चाताप करते रहते।

दूसरी बार तपस्या करना

फरीदा रोटी मेरी काठ दी लावनु मेरी भुख ॥
जिना खाधी चोपड़ी घने सहनिगे दुख ॥२८॥

बाबा फरीद जी ने दूसरी बार फिर घर छोड़ दिया। आप जंगलों को चले गए तथा घोर तपस्या करने लगे। खाना छोड़ दिया तथा वन की पीलू या कोई फल ही मुंह में डालते, वह भी धरती पर गिरा हुआ। किसी वृक्ष से पत्ता न तोड़ते। उनको ज्ञान हुआ था विनम्रता

ही भगवान को भाती है। इस तरह कई साल बीत गए तथा उनका शरीर कमज़ोर होने लगा। धीरे-धीरे दशा बिगड़ गई। भगवान के दर्शन की मन में लालसा थी, पर भगवान के दीदार नहीं होते थे। उस समय की शारीरिक, मानसिक अवस्था को बाबा जी ने स्वयं ब्यान किया। सलोक-

कागा करंग ढंढोलिआ सगला खाइआ मासु ॥
ऐ दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस ॥९१॥

भाव-शरीर इतना सूख गया कि केवल पिंजर ही नज़र आने लगा। जब आप लेटते तो मांस खाने वाले जानवर इस तरह देखा करते जैसे आप प्राणहीन हैं। आप उनको कहते, मांस तो भगवान का प्यार ही खा गया, पर भाग्य की बात अभी दीदार नहीं हुए, परमेश्वर नहीं आया, ऐसी विधाता की विधि है। कई साल बीत गए।

इस तरह अनेकों साल भक्ति करते रहे तथा फिर पाकपटन आ गए। प्रभु के दर्शन भी एक दो बार हुए, मन को संतुष्टि हुई, पर पूर्णता प्राप्त न हुई। विनम्रता, निरवैरता, निर्भयता आ गई। नया चाव उत्पन्न हुआ कि मुरशद (गुरु) के बिना मन को संतोष नहीं हो सकता। मुरशद धारण करना चाहिए।

मुरशद धारण करना

आज से लगभग सौ साल पूर्व तथा दस हज़ार साल पहले-लाखों साल पहले मुरशद अथवा गुरु की आवश्यकता रही है। पंजाब में तो मुहावरा है कि 'गुरु बिना गति नहीं।' आज भी गुरु या उस्ताद धारण करना पड़ता है, तभी किसी को गुण का बोध होता है। आत्मिक जगत में तो कल्याण प्राप्ति के लिए गुरु धारण करना अति आवश्यक है। सिक्ख धर्म में दस गुरु हुए हैं तथा गुरुबाणी भी गुरु है। भाव श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी की बाणी सुनना, पढ़ना, उस पर अमल करना

तथा उसके आगे सिर झुकाना। गुरु देहधारी होता था, आज सिक्ख धर्म में देहधारी गुरु की कोई मान्यता नहीं है।

बाबा फरीद जी मुरशद की तलाश के लिए बार में से चल पड़े तथा अजमेर पहुंचे। उस समय अजमेर में सूफी फकीर बड़ी करनी वाले थे। उनका नाम चिश्ती साहिब था।

आप अजमेर हज़रत चिश्ती साहिब के डेरे पहुंच गए और उनको मुरशद मान कर सेवा करने लगे। सेवा एवं श्रद्धा ही भक्ति का बहुमूल्य गुण है। इसे ही कर्म जानें। हे जिज्ञासु जनो ! जिन्होंने सेवा नहीं की, किसी पर श्रद्धा नहीं रखी वह कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। प्राप्ति के लिए सेवा एवं श्रद्धा दो ही गुण हैं। आप डट कर सेवा करते रहे।

सर्दी के दिन थे। सेवा यह मिली थी कि गर्म पानी से दो बार मुरशद को स्नान करवाना। स्वयं ही अग्नि जलानी और पानी गर्म करना। परमात्मा की विधि से ऐसा सबब बन गया कि दिन भर बारिश होती रही। बारिश भी ऐसी हुई कि प्रलय था। सुरक्षित अग्नि का सारा धूना बुझ गया। फरीद जी को चिंता लग गई कि वह सुबह अग्नि कहां से लेंगे ? उस काल में माचिस नहीं होती थीं। इसलिए अग्नि संभाल कर रखनी पड़ती थी।

बाबा फरीद जी डेरे से चल पड़े। वर्षा हो रही थी और बाहर बाज़ार में काफी कीचड़ था। उन्होंने वर्षा एवं कीचड़ की कोई परवाह न की। टिंड लेकर वह कम्बल ओढ़ कर चल पड़े। अग्नि उन्हें कहीं दिखाई न दी। उन्होंने बाजार में देखा कि 'वेश्या' की बैठक में अग्नि जल रही थी। बाबा फरीद जी निडरता से अंदर दाखिल हुए।

वासना एवं कुकर्मों की ज्वाला से जली हुई वेश्या ने देखा कि काले चोले वाला ऊंचा लम्बा साईं उसकी बैठक में आया है। वह उनके आगमन पर अपने आप को सौभाग्यशाली समझने लगी। वह

मन ही मन में कुछ और ही सोचती रही लेकिन उसका सोचना फरीद जी के विपरीत था।

बाबा फरीद जी ने जाकर कहा -'माता जी ! अग्नि चाहिए। खुदा की रज़ा से इस समय बारिश हो रही है। वली मुरशद चिश्ती जी का धूना इस समय ठंडा हो गया है। प्रातःकाल अग्नि की आवश्यकता है। यदि अग्नि न मिली तो स्नान कैसे होगा और चिश्ती जी खुदा की बंदगी कैसे करेंगे ? इसलिए यह ज़रूरी है कि अग्नि मिल जाए। कृपा कीजिए।'

यह वचन सुनकर बदकिस्मत और कुकर्मी वेश्या हंस पड़ी। वह बोली, पीर जी के धूने के लिए अग्नि की आवश्यकता है। यह तो ठीक है लेकिन मुझे भी आवश्यकता है।

बाबा फरीद जी 'माता जी ! आपको किस चीज की आवश्यकता है ?'

वेश्या–'साईं जी मुझे आपकी आवश्यकता है।'

बाबा फरीद जी-'आपको मेरी आवश्यकता क्यों है ?'

वेश्या-'आपका बदन बहुत सुन्दर है। आपकी आंखें मुझे बहुत प्यारी लगी हैं। एक शर्त पर आग मिल सकती है।'

बाबा फरीद जी-'किस शर्त पर ?'

वेश्या–'अपने शरीर का कोई अंग मुझे दे दें और नहीं तो एक आंख की पुतली देनी पड़ेगी।

बाबा फरीद जी–'आंख ले लीजिए। माता जी ! मुझे कोई इन्कार नहीं लेकिन अग्नि अवश्य मिल जाए।'

इतिहास में लिखा है कि बाबा फरीद जी की आंख वेश्या निकालने को तैयार हो गई। उसने तेज चाकू लिया और आंख पर लगाया। लेकिन उसका हौंसला न पड़ा। उसे धक्का लगा और पीछे गिर गई। लेकिन फरीद जी की आंख पर घाव हो गया। वेश्या ने कपड़ा फाड़

कर आंख पर पट्टी बांध दी और फरीद जी को अग्नि दे दी। वेश्या का हृदय थर-थर कांपने लग गया। उसने फरीद जी से अपनी भूल की क्षमा मांगी तब उसके जीवन में परिवर्तन आया।

बाबा फरीद जी आग टिंड में डालकर डेरे लौट आए। मार्ग में वह कई बार फिसलने से भी बचते रहे।

नियमानुसार उन्होंने प्रातःकाल उठकर अग्नि जलाई। अग्नि जलाकर पानी गर्म किया। गर्म पानी से फरीद जी ने मुरशद को स्नान करवाया। जब मुरशद ने वस्त्र आदि पहन लिए तो अन्तर्यामी मुरशद ने बाबा जी से कहा 'फरीद आंख पर पट्टी क्यों बांधी हुई है ?'

'आप कर्ता-धर्ता हैं। मैं क्या बताऊं ?' फरीद जी ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया। वह झूठ बोलना नहीं चाहते थे और सत्य कहने से झिझक रहे थे।

'पट्टी खोल दो।' मुरशद ने हुक्म दिया।

'फरीद जी ने पट्टी खोली तो आंख पर कोई घाव नहीं था। घाव मिल गया था और आंख ज्यों की त्यों ही थी। मुरशद ने वचन किया, 'फरीद तुम्हारी सेवा प्रवान हुई, तुम्हारी तपस्या पूर्ण हुई, अहंकार मत करना। नम्रता अपनाना और खुदा को सदैव याद रखना भूलना मत तथा अपने आप की परख मत करना। जाओ ! रिद्धियां-सिद्धियां सारी बरकतें आपके साथ रहेंगी। अपने घर जाकर खुदा की महिमा गाओ। भूले भटके लोगों को सच्चाई एवं ज्ञान मार्ग दिखाना। दुखियों के दुःखों को नाश करो।'

हज़रत चिश्ती साहिब प्रसन्नता पूर्वक वर देते गए और बाबा फरीद जी उनके चरण पकड़कर श्रवण करते हुए कृतार्थ हो गए। मुरशद ने सेवा, त्याग एवं श्रद्धा के फलस्वरूप बाबा फरीद जी को सब अजमतें बख्श दीं। सब अजमतें प्राप्त करके फरीद जी अपने मुरशद के चरणों पर नमस्कार करते हुए पाकपटन आ गए।

पाकपटन में उपदेश और गद्दी

बाबा फरीद जी अपने घर पाकपटन वापिस लौट आए और पीर बन कर उपदेश करने लगे। आप ने वहां पर सारी बार और जंगलों में इस्लाम का प्रचार किया। नेकी, सत्य और विनय का प्रकाश चारों तरफ जगमगाया तथा आपकी गद्दी की कीर्ति यश फैल गया। जो भी उस गद्दी पर विराजमान होता, उसका नाम फरीद रखा जाता। इस तरह गुरु नानक देव जी का समय आया तो इब्राहिम ब्रह्म फरीद जी की गद्दी पर विराजमान थे। अभी भी यह गद्दी एक करामाती गद्दी मानी जाती है।

फरीद शकरगंज तथा फरीद इब्राहीम की उच्चारी हुई बाणी मिलती है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में आप जी की बाणी के सलोक विद्यमान हैं, जिन्हें सलोक फरीद जी कहा जाता है। सारी बाणी कल्याणकारी एवं उपदेश प्रदान करती है। निम्नलिखित व्याख्या सहित कुछ बाणी दी गई है–

भिजउ सिजउ कंबली अलह वरसउ मेहु ॥
जाइ मिला तिना सजना तुटउ नाही नेहु ॥२५॥
फरीदा मै भोलावा पग दा मतु मैली होइ जाइ ॥
गहिला रूहु न जाणई सिरु भी मिटी खाइ ॥२६॥
फरीदा सकर खंडु निवात गुड़ु माखिओ मांझा दुधु ॥
सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु ॥२७॥
फरीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख ॥
जिना खाधी चोपड़ी घणे सहनिगे दुख ॥२८॥
रुखी सुखी खाइ कै ठंडा पानी पीउ ॥
फरीदा देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीउ ॥२९॥
अजु न सुती कंत सिउ अंगु मुड़े मुड़ि जाइ ॥

जाई पुछहु डोहागणी तुम किऊ रैणि विहाई ॥३०॥
साहुरै ढोई ना लहै पेईऐ नाही थाऊ ॥
पिरु वातड़ी न पुछई धन सोहागनि नाऊ ॥३१॥
साहुरै पेईऐ कंत की कंतु अगंमु अथाहु ॥
नानक सो सोहागनी जु भावै बेपरवाह ॥३२॥
नाती धोती संबही सुती आई नचिंदु ॥
फरीदा रही सु बेड़ी हिंङु दी गई कथूरी गंधु ॥३३॥
जोबन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाई ॥
फरीदा किंती जोबन प्रीति बिनु सुकि गए कुमलाई ॥३४॥
फरीदा चिंत खटोला वाणु दुखु बिरहि विछावन लेफु ॥
ऐहु हमारा जीवना तू साहिब सचे वेखु ॥३५॥
बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतानु ॥
फरीदा जितु तनि बिरहु न उपजै सो तनु जानु मसानु ॥३६॥
फरीदा ए विसु गंदला धरीआं खंडु लिवाड़ि ॥
इकी राहेदे रहि गए इकि राधी गए उजाड़ि ॥३७॥
फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइआ संमि ॥
लेखा रबु मंगेसीआ तू आंहो केरेह कंमि ॥३८॥

(सलोक फकीर)

भक्त सधना जी

मानव जीवन में सदा परिवर्तन आता रहता है। वह परिवर्तन किसी न किसी घटना पर होता है और जीवन को बदल कर रख देता है। भक्त सधना कसाई था लेकिन प्रभु भक्त बन गया। आपकी कथा श्रवण कीजिए।

भक्त सधना जी के माता पिता के नाम का पता कहीं नहीं मिलता। कर्म कसाई का था। आपका जन्म नगर सेवान (हैदराबाद, सिंध)

में हुआ और उसी नगर में ही वास रहा। सधना जी को बचपन से ही सन्तों फकीरों एवं महापुरुषों के पास बैठकर ज्ञान चर्चा सुनने की श्रद्धा थी। आप मूर्ति पूजक थे। इनको कहीं से सालगराम का पत्थर मिल गया था, जिसे मांस तोलने के लिए भार बना लिया। जिसे लोग बुरा मानते लेकिन लोगों को इस बात का पता नहीं था कि सधना जी सालगराम को देवता मानकर पुजते और उसके सहारे ही वह अपना मांस बेचने का कामकाज करते थे। सधना जी सालगराम से लाभ ही प्राप्त करते और वह उनके जीवन का सहारा था।

हिन्दू पंडित एवं संतों में बड़ी चर्चा हो रही थी कि सधना कसाई सालगराम से मांस क्यों तोलता है ? एक दिन एक संत सधना जी की दुकान पर आया और विनती की कि 'हे सधने ! यह काला पत्थर मुझे दे दो, मैं इसकी पूजा–अर्चना किया करूंगा। यह सालगराम है, तुम कोई अन्य पत्थर रख लो। यह तुम्हारे लिए भार तोलने के कार्य योग्य है।'

सधना जान गया कि यह सन्त सालगराम ले जाना चाहता है। सधना ने बिना झिझक सालगराम उठा कर सन्त को पकड़ा दिया। वह सालगराम लेकर अपने डेरे को चला गया। डेरे पहुंच कर उसने सालगराम को स्नान करवाया और धूप-दीप जलाकर चंदन का तिलक लगाया तथा पुष्प भेंट किए। सन्त ने पूजा की और रात होने पर सो गया। जब साधू सोया हुआ था, तब उसे एक स्वप्न में सालगराम ने कहा "तुम ने यह बहुत बुरा किया है, सधने के पास मैं बहुत खुश था क्योंकि वह हृदय से प्रेम एवं मेरी पूजा करता था, सच्ची श्रद्धा के साथ वह मेरा हो चुका था। वह मुझ से अटूट प्रेम करता है, मैं पूजा एवं सत्कार का भूखा नहीं, अपितु प्रेम का भूखा हूं, सधना मांस तोलते हुए भी मुझे याद करता था, मुझे उसके पास छोड़ आओ।"

यह वचन सुनकर संत की नींद खुल गई। वह सोचता हुआ और

अपने किए कर्म पर पछताता रहा। जब दिन उदय हुआ तो संत सधने के पास वापिस गया। उसने सधने को कहा 'सधना जी ! अपना सालगराम वापिस ले लो। यह आपके पास ही ठीक है। आप धन्य हो, जिसे परमेश्वर याद करता है।

'क्यों संत जी ?' सधने ने पूछा तो संत ने उसको रात के सपने की सारी बात कह सुनाई। यह बात सुन कर सधना के मन में और ज्यादा चाव तथा प्रेम उत्पन्न हो गया। वह प्रभु भक्ति करने लग गया। भक्त सधना उसी सालगराम के साथ मांस तोलता और उसकी पूजा-अर्चना करता। मन में सदा प्रभु का सुमिरन करता रहता।

भक्त सधना का मांस बेचने का कार्य छोड़ना

एक दिन की बात है, रात के समय एक साहूकार सधना जी के पास बकरे का मांस लेने के लिए आ गया। सधना ने बताया कि इस समय मांस नहीं है, क्योंकि जो बकरा बनाया था, वह समाप्त हो गया है। साहूकार स्नेही व्यक्ति था, जिस कारण सधना उसे मोड़ भी नहीं सकता था। इसलिए सधने ने जीवित बकरे के 'कोफ्ते' काटकर साहूकार को देने चाहे। जब सधना छुरी पकड़कर बकरे के निकट गया तो बकरा हंस पड़ा। हंस कर कहने लगा, 'हे सधना ! जगत से बाहरी करने लगे हो।' यह सुनकर सधना जी बहुत हैरान हुए कि यह जानवर बोल रहा है। उसी समय सधने के हाथ से छुरी भूमि पर गिर गई। सधने ने बकरे से पूछा-'हे बकरे ! यह बताओ मैं क्या नया खेल रचने लगा हूं। मेरा कर्म है तुझे मार कर बेचना।'

बकरा बोला, 'सुनो ! पहले यह सिलसिला चला आ रहा है कि कभी मैं बकरा और तुम कसाई और कभी मैं कसाई और तुम बकरा। इस जन्म में तुम मेरे शरीर का एक अंग साहूकार को काटकर देने लगे हो। यह नया खेल है। कल को मैं भी तुम्हारे साथ ऐसा ही

करूंगा क्योंकि हम कर्म के एक दूसरे के साथी हैं। यह अपना धर्म बन चुका है। एक-दूसरे का मांस काटकर बेचना।'

बकरे की बात ने सधने को एक नया ज्ञान करवा दिया। उस दिन से सधना ने साहूकार को स्पष्ट जवाब दे दिया और अगली सुबह मांस बेचने का धन्धा छोड़ दिया। वह प्रभु भजन करने लगा।

हत्या का आरोप लगना

भक्त सधना जी को जब पूर्ण ज्ञान हो गया कि प्रभु का नाम जपने में ही भला है तो वह पुरुषोतम जी के दर्शनों के लिए जगन्नाथ पुरी की यात्रा के लिए सिंध में से चल पड़ा। जगन्नाथ पुरी शहर पहुंचने से एक पड़ाव समीप ही उसको रात हो गई। उसने सोचा कि किसी गृहस्थी के घर से भोजन मांग कर खा लूं और रात्रि कहीं बिता दूं और फिर आगे चलेगा। यह सोचकर एक घर के द्वार के आगे खड़े होकर उसने आवाज़ दी। उस घर में दो ही सदस्य रहते थे। नारी की आयु लगभग २०-२२ साल थी। वह बड़ी सुन्दर एवं नवयौवना थी लेकिन उसका पति कुरुप और रोगी था। उस सुन्दरी ने जब सधना जी को देखा तो आगे बुला लिया। वह बड़ी नम्रता एवं प्रेम भरे शब्दों में बोली, 'अन्दर आइए ! गृह पवित्र करें, धन्य भाग्य हमारे जो आप पधारे हो। ईश्वर आए हो। भोजन लीजिए, बिस्तरा और चारपाई पर आराम करें। मैं सेवा करती हूं।'

उसकी यह श्रद्धा देखकर सधना जी उसके आंगन में पहुंच गए और चारपाई पर बैठ गए। उस सुन्दर स्त्री ने बड़े चाव और श्रद्धा के साथ भोजन तैयार किया। भोजन तैयार करके सधना जी के चरण धुलाए और चौंतरे में बिठा कर भोजन खिलाया। जितनी देर सधना जी भोजन करते रहे, उतनी देर वह स्त्री पंखा झलती रही। उसी तरह जैसे पति को एक पत्नी पंखा झलती है। साथ साथ वह प्रेम भरी

मीठी मीठी बातों से पूछती रही कि सधना जी किधर से आए हो और कहां जा रहे हैं तथा क्यों साधू बने हैं ।

जब सधना ने भोजन कर लिया तो उस सुन्दरी ने एक अच्छा बिस्तरा बिछा कर रात काटने के लिए सधना से विनती की। सधना ने उस स्त्री की विनती स्वीकार कर ली। प्रभु नाम का सिमरन करता हुआ भक्त सो गया। जब आधी रात का समय हुआ तो वह सुन्दर नवयुवती शृंगार करके सधना जी की चारपाई पर आ गई। उसके हृदय में कामवासना थी। वासना ने उसके रक्त को उबाल दिया। वह वासना में अन्धी हो गई थी। उसका यह पागलों वाला व्यवहार देखकर सधना जी ने कहा, 'बहन ! आप मेरे पास से जाइए। प्रत्येक स्त्री को पतिव्रता रहना चाहिए। मैं तो पहले ही पापों के कारण दर दर भटक रहा हूं, मुझे और पापों का भागी मत बनाओ। जाओ ! आप मेरी बहन हैं।'

उस स्त्री की विपरीत बुद्धि वासना के मंद कारण उसने उल्टा ही सोचा था। उसने ख्याल किया कि शायद संत उसके पति से डरता है। वह वापिस लौट गई और दस मिनट के पश्चात अपने पति का सिर काट कर सधना जी के पास ले आई। सधना जी को अपने पति का कटा सिर दिखलाकर बोली, 'हे प्रियतम ! यदि तुम्हें मेरे पति का भय था तो यह लो उसका सिर, मैं उसको अपना पति नहीं मानती थी, मेरे माता-पिता ने जबरदस्ती मेरा विवाह कर दिया। वह निकम्मा और रोगी था, इसको मरना ही चाहिए था। अब मैं आपको अपना पति मानती हूं। मुझे अपना बनाकर मुझसे प्रेम कीजिए। मेरे यौवन के नशे को लूटो। छोड़ें, शर्म-हया तथा सारी झिझकें, मैं आपके साथ संतनी होकर फिरूंगी। जीवन में भोग विलास ही तो सब कुछ है।'

सधना जी उसकी सारी बातें सुनते रहे। जब उसने मन में आई

सारी बकवास कर ली तो क्रोधित होकर बोले, 'चंडालन ! पापिन ! तुम ने महापाप किया है। इस पाप के फलस्वरूप तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा। मैं पाप करने के लिए तैयार नहीं। मैं तेरे घर से अभी जा रहा हूं। तुम विष की गंदल हो ! नागिन हो ! जिसने अपने पति का खून कर दिया वह पराए मर्द से कैसे प्यार करेगी। धिक्कार है, ऐसे प्यार को जिसके डंक का कोई ईलाज नहीं। सधना जी आपे से बाहर हो गए।

वह इतना कहते हुए उठने लगे तो यह देखकर वह महां पापिन हत्यारिन चिल्ला उठी, 'अरे मेरे पति को मार कर मेरे साथ कुकर्म करना चाहता है। तुम सन्त नहीं, हत्यारे हो। लोगों ! मैं लुट गई, अरे ! भागो ! मेरे प्यारे पति की सन्त ने हत्या कर दी है। पकड़ो दौड़ने लगा है। उस पापिन का यह शोर देखकर सधना जी हैरान अवश्य हुए, पर घबराए नहीं। उन्होंने सोचा कि देखा जाएगा, ईश्वर क्या करता है ? शायद मेरे किसी पाप का फल मिलना रह गया है, जो मैं इस पापिन के घर रात काटने के लिए रुक गया। यह सब प्रभु की लीला है।

उस स्त्री का शोर सुनकर लोग इकट्ठा हो गए। उसकी बात सुनकर उन्होंने सधना जी को घेर लिया और पकड़कर हाकिम के पास पेश किया। हाकिम भी ऐसा था कि उसने तुरंत सधना जी के हाथ काट देने का हुक्म दे दिया। उस समय सधना जी ने प्रभु के आगे प्रार्थना की-

न्रिप कंनिया के कारनै इकु भइआ भेखधारी ॥
कामारथी सुआरथी वा की पैज सवारी ॥१॥
तव गुन कहा जगत गुरा जउ करमु न नासै ॥
सिंघ सरन कत जाईऐ जउ जंबुकु ग्रासै ॥१॥ रहाउ ॥
एक बूंद जल कारने चात्रिकु दुखु पावै ॥

प्रान गए सागरु मिलै फुनि कामि न आवै ॥२॥
प्रान जु थाके थिरु नही कैसे बिरमावउ ॥
बूडि मूए नउका मिलै कहु काहि चढ़ावउ ॥३॥
मै नाही कछु हउ नही किछु आहि न मोरा ॥
अउसर लजा राखि लेहु सधना जनु तोरा ॥४॥

(पन्ना ८५८)

भाव–हे ईश्वर ! राजकन्या के साथ विवाह रचाने के लिए एक बढ़ई ने विष्णु का रूप धारण कर लिया था। वह कथा इस प्रकार थी कि एक राजकन्या ने प्रण किया कि वह भगवान विष्णु के अलावा किसी से विवाह नहीं करेगी। एक बढ़ई ने किसी तपोबल द्वारा विष्णु रूप तो धारण कर लिया लेकिन उसके पास भगवान विष्णु जी वाली शक्ति नहीं थी। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर उसने प्रार्थना की तो उसके पास शक्ति आ गई।

हे प्रभु ! उस कामुक एवं खुदगर्ज इन्सान की भी लाज रख ली, मेरी इज्जत क्यों नहीं बचाते ! हे जगत पालक ! हे भगवान ! तुम्हारी क्या प्रशंसा है कि तुम्हारी कृपा से मेरे कर्म न नाश हो। उस मनुष्य शेर को अपना गुरु क्यों मानना है, यदि गीदड़ों ने ही घेर कर रखना है। जल की एक बूंद के बदले पपीहा कूकता है। यदि वह प्यासा ही मर जाए, मृत को समुद्र में फैंक दिया जाए तो उसका क्या लाभ है ? प्रभु मेरे नैन प्राण काम नहीं करते। हृदय धड़क रहा है। मैं इनको कैसे सहारा दूं ? हे प्रभु ! डूब गए पुरुष के लिए नाव किस काम ? मैं तेरा हूं। इस समय मेरी लाज रखो। मेरे पिछले कर्मों को क्षमा कर दें। हे दाता ! दया कीजिए।

हाकिम का हुक्म और लोगों के शोर मचाने पर भक्त सधना जी को हत्यारा मान लिया गया और उसके हाथ काट देने का हुक्म हाकिम ने वापिस न लिया। सधना के हाथ काट दिए गए। हाथ काटे गए

तो परमात्मा ने हाकिम को बताया कि असली कातिल सधना नहीं अपितु एक नारी है।

एक पड़ोसन जिसने सारा तमाशा देखा था, उसको परमात्मा ने प्रेरणा दी और वह शोर मचाने लगी कि संत को बिना किसी दोष के सज़ा दे दी गई। यह कत्ल तो चंचल नारी ने आप किया है। असली कातिल यही है। यह सुनकर लोग उसको पकड़कर ले गए और हाकिम के आगे पेश किया। हाकिम ने उस स्त्री को धरती में दफना कर मरवा दिया। भक्त सधना जी बिना हाथों के अपंग घूमते रहे और प्रभु की भक्ति में लिवलीन रहे। प्रभु की अनुकंपा से सारी रिद्धियां-सिद्धियां प्राप्त हुईं। आपकी समाधि सरहंद नगर में है।

सत्ता और बलवंड

सत्ता और बलवंड दोनों सगे भाई थे। वह भाट जाति से थे और पांचवें पातशाह श्री गुरु अर्जुन देव जी के समय उनकी हजूरी में कीर्तन किया करते थे। रागों में निपुण होने के कारण वह अच्छे रबाबी बन गए। उनकी चारों तरफ कीर्ति थी और गुरु घर में उनको अच्छा मान-सम्मान प्राप्त था। उनका कीर्तन सुनकर सारी संगत का समां बंध जाता था। सत्ता की लड़की जवान हुई तो उसका विवाह करने का निर्णय किया गया। गुरु घर के रबाबी होने के कारण उन्होंने सलाह की कि लड़की का विवाह बड़ी धूमधाम के साथ किया जाएगा लेकिन सत्ता और बलवंड के पास इतना धन नहीं था कि जो अच्छा दहेज दे सकें और आए मेहमानों एवं बारातियों को अच्छा से अच्छा भोजन खिला सकें। सत्ता ने अपने भाई बलवंड से सलाह करके मन में सोचा कि वह सतिगुरु जी के आगे प्रार्थना करेंगे कि सतिगुरु जी एक दिन की सारी भेंट उन्हें देने की कृपा करें, वह भेंट अधिक होगी तथा उनके सारे कार्य संवर जाएंगे।

यह सोचकर दोनों भाई सतिगुरु जी के पास गए और विनती की, 'महाराज ! हमारी लड़की का विवाह है लेकिन विवाह का खर्च पूरा करने के लिए हमारे पास कुछ नहीं, इसलिए आप जी कृपा करके आज की सारी भेंट हमें देकर मेहर करें।'

रबाबियों की यह बात सुनकर सतिगुरु जी मुस्करा दिए और वचन किया, 'राय कन्या की शादी की चिन्ता न करो। गुरु घर में कीर्तनीए होने के कारण आपको कोई कमी नहीं आएगी। आवश्यकता अनुसार आपको धन मिल जाएगा।

लेकिन सत्ता और बलवंड सतिगुरु जी के वचनों का भावार्थ न समझ सके, उनके मन में लालच आ गया था। सतिगुरु जी उनके मन की बदली हुई दशा को जान गए थे। इसलिए गुरु जी अहंकार की अग्नि से उन दोनों को बचाना चाहते थे। लेकिन रबाबी अहंकार से न बच सके और उन्होंने अपनी जिद्द न छोड़ी। अन्त में सतिगुरु जी ने वचन किया, 'ठीक है, जो भेंट कल संगत चढ़ाएगी आप ले जाना और उससे अपनी पुत्री की शादी कर लेना।'

प्रातःकाल सत्ता और बलवंड ने कीर्तन करना शुरू किया लेकिन उनकी वृति कीर्तन की तरफ से उखड़कर भेंट की ओर लग गई। कीर्तन के समय जो भी सिक्ख या गुरु घर का श्रद्धालु आकर नमस्कार करता तो दोनों भाईयों की निगाह उसके चढ़ावे की तरफ लग जाती। इस तरह कीर्तन में रस न रहा, ताल की एकसुरता टूट गई और लै कांपने लगी। गुरुबाणी में भी कई भूलें होने लगीं तथा बेरसी छा गई।

उनके कीर्तन की बेरसी और संगत के कम आने के कारण ऐसा सबब बना कि एक सौ रुपए से अधिक चढ़ावा भेंट न हुआ। भेंट कम देखकर दोनों भाईयों के सिर में पानी फिर गया।

वह कुछ गुस्से और हैरानी के साथ बोले, 'महाराज ! संगत की ओर से भेंटें बहुत कम चढ़ाई गई हैं, इसलिए हमारी और सहायता

कीजिए, इतने से शादी नहीं हो सकती ।

यह सुनकर पांचवें पातशाह मुस्कराए और वचन किया, 'भाई आप ने चढ़ावे का फैसला किया था । इसलिए चढ़ावा ले जाओ । कन्या की किस्मत में जो कुछ होगा, वह उसको मिल जाएगा । लड़की की चिन्ता न करो पर अपना वचन निभाओ ।'

उस समय दोनों भाईयों की बुद्धि भ्रष्ट हो गई तथा उनको किसी बात की समझ ही नहीं आई । मन में अहंकार था कि वह कीर्तनीए हैं, यदि कीर्तन न करेंगे तो गुरु का दरबार कैसे लगेगा ? सतिगुरु महाराज जी की शक्ति का अनुभव भी भूल गया और अहंकार करके घर बैठने का फैसला कर लिया ।

अगली सुबह 'आसा की वार' का कीर्तन होना था लेकिन दोनों ही रबाबी हाजिर न हुए और घर में पलंग पर लेटे रहे । दरबार में संगत इंतजार करने लगी । सतिगुरु जी भी अपने नियम अनुसार दरबार में उपस्थित हुए और सिंघासन पर विराजमान हो गए । गुरु जी ने रबाबियों को दरबार में अनुपस्थित देखकर एक सिक्ख को कहा कि वह उन दोनों को बुला कर लाए । श्रद्धालु सिक्ख दौड़ कर गया । उसने दोनों भाईयों सत्ता और बलवंड को जाकर कहा, 'श्रीमान जी ! सच्चे पातशाह आपको याद कर रहे हैं, आप चलकर कीर्तन करो ।'

यह सुनकर सत्ते के तनबदन में आग लग गई और पागलों की तरह गुस्से से बोला, 'हमने कोई कीर्तन नहीं करने जाना । यदि हमने चढ़ावे के लिए कहा तो मसंदों द्वारा चढ़ावा रोक दिया गया । हमारे साथ भेदभाव किया गया है । इसलिए आज से हम गुरु घर में कीर्तन नहीं करेंगे । किसी और सोढी या बेदी के आगे कीर्तन करके उसको गुरु बना सकते हैं । गुरु बनाना या न बनाना हमारे वश में है ।

यह उत्तर सुनकर सिक्ख वापिस लौट आया और उसने सारी बात सतिगुरु महाराज जी के आगे व्यक्त कर दी ।

दया एवं विनय के सागर सच्चे पातशाह नाराज न हुए अपितु भाई गुरदास जी को यह कह कर भेजा कि वह रागियों को सत्कार सहित दरबार में ले आएं। उनकी कन्या का विवाह उसी तरह धूमधाम से हो जाएगा, जैसा वह चाहते हैं।

भाई गुरदास जी सत्ता और बलवंड के घर पहुंचे। उन्होंने बड़ी नम्रता से दोनों को समझाने का प्रयास किया लेकिन रबाबियों का गुस्सा शांत न हुआ। भाई बलवंड ने बड़े गुस्से और मूर्खता के साथ यह जवाब दिया, 'जाओ आप कीर्तन कर लो। गुरु यदि इतनी शक्ति रखते हैं तो वह आप ही कीर्तन करें। हम आगे से गुरु दरबार में कीर्तन नहीं करेंगे।' भाई गुरदास जी ने फिर भी इसका गुस्सा न किया अपितु सत्ता और बलवंड को समझा कर उनके मन को शांत करने का अथक प्रयास किया लेकिन वे टस से मस न हुए। दोनों भाई हठ करके बैठे रहे मगर गुरु दरबार में उपस्थित न हुए।

पांचवें पातशाह श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज स्वयं सिंघासन से उठकर रबाबियों के घर पहुंचे। संगत भी गुरु जी के साथ जाना चाहती थी लेकिन सतिगुरु जी ने भाई गुरदास जी के अलावा किसी अन्य को साथ न लिया। दीन दुनिया के वाली सत्ता और बलवंड के घर पधारे तो सबब से दरवाजा खुला हुआ था। गुरु साहिब आंगन में चले गए। आगे दोनों भाई चारपाई पर बैठे थे। उन्होंने इतना जिद्दीपन अपनाया कि न उठकर श्री सतिगुरु अर्जुन देव जी को नमस्कार की और न ही उनका स्वागत किया। अपितु आंखें झुकाकर बैठे रहे। सतिगुरु जी ने नम्रता से वचन किया, 'चलो, भाई ! गुरु घर में कीर्तन करो और सतिगुरु नानक देव जी की खुशियां प्राप्त करो। गुरु घर के साथ नाराज होना ठीक नहीं, गुरुबाणी संगत को सुनानी है। आपकी कन्या की शादी के लिए आपको पर्याप्त धन मिल जाएगा।'

राय बलवंड बड़ा गुस्सैल स्वभाव वाला साबित हुआ। उसने आगे

से बड़े अहंकार के साथ कहा, 'हमने नहीं कीर्तन करने जाना। हमने आपको गुरु बनाने का प्रयास किया लेकिन आपने हमारे साथ छल करके भेंटें न चढ़ने दीं, जिससे दिल चाहे कीर्तन करवा लें। हम किसी अन्य सोढी के पास चले जाएंगे। श्री गुरु नानक देव जी से लेकर गुरु रामदास जी तक हम ही गुरु बनाते आए हैं, यदि हम कीर्तन न करते तो आपको किसने गुरु मानना था ?'

श्री गुरु अर्जुन देव जी ने जब ऐसे कटु वचन सुने तो बड़े सतिगुरों की निंदा सुनी, तब वह सहन न कर सके और क्रोध में आकर वचन किया–'सत्ता और बलवंड आप कुष्ठी हो गए हो, यह कुष्ठ आपको तंग करेगा।' यह वचन करके गुरु जी अपने दरबार में आ गए।

दरबार में आकर गुरु जी ने अपनी आत्मिक शक्ति का एक महान चमत्कार दिखाया। वह चमत्कार इस प्रकार था कि उन्होंने दरबार में हुक्म कर दिया कि आज से गुरु घर के सिक्ख आप कीर्तन किया करेंगे। साज बजाएंगे और ऐसे अहंकारी गायकों की कभी आवश्यकता नहीं रहेगी। यह वचन करके सतिगुरु जी ने दो सिक्खों को इशारा किया कि वह साज पकड़कर कीर्तन करें। सिक्खों ने साज लेकर राग गाया। ऐसा चमत्कार हुआ कि गंधर्व रागियों की तरह कीर्तन का रस बंध गया तथा सचमुच ही रबाबियों की आवश्यकता न रही।

सत्ता और बलवंड को कुष्ठ रोग होना

सतिगुरु जी के वापिस आने के पश्चात सत्ता और बलवंड को सचमुच ही कुष्ठ रोग हो गया। वह जिधर को निकलते, लोग उनके दर्शन न करते और अपना द्वार बंद कर लेते, क्योंकि वह सतिगुरु जी के फिटकारे हुए थे। धीरे-धीरे रोग बढ़ गया। एकत्रित किया हुआ धन समाप्त हो गया और गुरु निंदकों को किसी सोढी या बेदी

ने मुंह न लगाया। दिन ब-दिन उनकी दशा खराब हो गई तथा वह दुःख पाने लगे।

दुखी हुए दोनों भाई चाहते थे कि सतिगुरु जी उन दोनों की भूल क्षमा कर दें लेकिन वह सतिगुरु जी के हजूर में किसी तरह भी नहीं जा सकते थे। गुरु जी ने हुक्म किया था कि जो भी कोई इन दोनों की फरियाद करेगा, उनका मुंह काला कर दिया जाएगा। जिस कारण कोई भी सिक्ख डरता हुआ सतिगुरु के समक्ष विनती न करता। सभी डरते थे कि सतिगुरु जी शायद उनको भी श्राप न दे दें।

दोनों भाई अपनी छत पर खड़े होकर अपने मुख पर आप तमाचे मारते थे और की हुई भूल पर रो-रोकर पछतावा करते। वह चिल्ला कर कहते, 'कोई हमारा दुःख सुने तथा गुरु जी के पास ले चले, हम पापी और महाकुष्ठी हैं। हमारी फरियाद सुनी जाए।' लेकिन कोई भी हां न करता जो उनकी फरियाद सुनता।

राय बलवंड को याद आया कि लाहौर में भाई लधा परोपकारी हैं। दुःख-तकलीफ उठाते हुए पैदल चलकर दोनों भाई लाहौर पहुंचे। भाई लधा जी के पास जाकर उन्होंने विलाप करके कहा, 'भाई लधा जी आप परोपकारी महापुरुष हो, यह तो आप ने सुन ही लिया है कि हमने सतिगुरु अर्जुन देव जी पातशाह के हजूर निंदा भरे वचन बोले हैं। अहंकार और लालच ने बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। हम अन्धे और बहरे हो गए थे। सतिगुरु के वचन अनुसार हमें कुष्ठ रोग हो गया है। हम अत्यंत दुःखी हैं। कृपा करें और सतिगुरु जी से भूल क्षमा करवा दें।'

इस तरह विनती करते हुए वह रोते तथा पीटते गए। तब भाई लधा परोपकारी के मन में दया आ गई। उन्होंने वचन किया, अब आप जाएं, मैं कल सतिगुरु जी के दरबार में स्वयं हाजिर होकर प्रार्थना करूंगा और आपके लिए क्षमा की भीख मांगूंगा। आशा है कि सतिगुरु

जी मेहर के घर में आएंगे ।

सत्ता और बलवंड भाई लधा जी से कुछ आशा भरे वचन सुनकर उसका यश करते हुए अपने घर लौट आए ।

भाई लधा जी लाहौर में सतिगुरु जी के श्रद्धालु सिक्ख थे । आप बड़े परोपकारी तथा दया धर्म और नाम के रसिया थे । जिस कारण हर कोई दुखिया उनके पास जाता और विनती करता था । उनको जब पता लगा कि सत्ता और बलवंड की जो सिफारिश करेगा उसको बदनाम होना पड़ेगा । उसकी हर तरफ बदनामी होगी, क्योंकि सतिगुरु का हुक्म है कि जो कोई सत्ता तथा बलवंड की सिफारिश करेगा उसका मुंह काला करके गधे पर बैठा कर घुमाया जाएगा । परोपकारी भाई लधा जी ने आप ही नशर होने का उपाय बना लिया । भाई लधा ने एक गधा मंगवा कर उसको चिथड़ों की लगाम डाली और फटी हुई गोदड़ी डालकर उसके ऊपर आप बैठ गए । भाई लधा ने अपने मुंह और बदन पर कालिख पोत ली और लोगों के लिए निकम्मा बन गए । वह लाहौर से अमृतसर की तरफ चल पड़े । भाई लधा जी एक महान परोपकारी गुरसिक्ख थे और अपनी हानि करके भी दूसरों का सदा भला करते थे। धीरे-धीरे चलते हुए वह अमृतसर पहुंच गए । सतिगुरु जी को पहले ही पता चल गया था । इसलिए सतिगुरु जी स्वयं आगे होकर मिले तथा हंसकर वचन किया-

'...भाई लधा जी ! यह कैसा सांग बनाया हुआ है ?'

'महाराज ! जिस तरह आपकी आज्ञा !' भाई लधा जी ने उत्तर दिया ।

'महाराज ! सत्ता और बलवंड कुष्ठ रोगी हो गए हैं तथा कुरला रहे हैं । दया कीजिए, आपका यश करेंगे, भूल अनुभव करते हैं, इन्हें क्षमा कर दें । बच्चे सदा भूलें करते रहते हैं और माता-पिता क्षमा करते रहते हैं । मेहर करें । फिर भी गुरु घर के कीर्तनीए हैं ।' इस

तरह भाई लधा जी ने विनती की।

सतिगुरु जी ने भाई लधा जी को गधे से नीचे उतारा और हाथ-मुंह धुलाया तथा वर दिया, 'भाई लधा परोपकारी।' यह भी वचन कर दिया, 'अच्छा ! जिस तरह इन्होंने सतिगुरु महाराज (गुरु नानक देव जी तथा बाकी के गुरु साहिबों की) निंदा की थी, तैसे ही यश करें, वह जैसे-जैसे यश करते जाएंगे, वैसे ही उनका कुष्ठ रोग दूर होता जाएगा।

सतिगुरु जी का यह हुक्म सत्ता और बलवंड को सुनाया गया। उन्होंने गुरु साहिब से अपनी भूल की क्षमा मांगी व फिर से दरबार में कीर्तन करने लगे। इनके द्वारा किया गया गुरु यश बाणी के रुप में श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में दर्ज है। आओ दर्शन करें -

रामकली की वार राइ बलवंडि तथा सत्तै डूमि आखी

१ओं सतिगुरु प्रसादि ॥

नाउ करता कादरु करे किउ बोलु होवै जोखीवदै ॥
दे गुना सति भैण भराव है पारंगति दानु पड़ीवदै ॥
नानकि राजु चलाइआ सचु कोटु सताणी नीव दै ॥
लहणे धरिओनु छतु सिरि करि सिफती अंम्रितु पीवदै ॥
मति गुर आतम देव दी खड़गि जोरि पराकुइ जीअ दै ॥
गुरि चेले रहरासि कीई नानकि सलामति थीवदै ॥
साहि टिका दितोसु जीवदै ॥१॥
लहणे दी फेराईऐ नानका दोही खटीऐ ॥
जोति ओहा जुगति साइ सहि काइआ फेरि पलटीऐ ॥
झुलै सु छतु निरंजनी मलि तखतु बैठा गुर हटीऐ ॥
करहि जि गुर फुरमाइआ सिल जोगु अलूणी चटीऐ ॥
लंगरु चलै गुर सबदि हरि तोटि न आवी खटीऐ ॥
खरचे दिति खसंम दी आप खहदी खैरि दबटीऐ ॥

होवै सिफति खसंम दी नूरु अरसहु कुरसहु झटीऐ ॥
तुधु डिठे सचे पातिसाह मलु जनम जनम दी कटीऐ ॥
सचु जि गुरि फुरमाइआ किऊ एदू बोलहु हटीऐ ॥
पुत्री कउलु न पालिओ करि पीरहु कंन्हि मुरटीऐ ॥
दिलि खोटै आकी फिरनि बंनि भारु ऊचाइन्हि छटीऐ ॥
जिनि आखी सोई करे जिनि कीती तिनै थटीऐ ॥
कउणु हारे किनि ऊवटीऐ ॥२॥
जिनि कीती सो मंनणा को सालु जिवाहे साली ॥
धरम राई है देवता लै गला करे दलाली ॥
सतिगुरु आखै सचा करे सो बात होवै दरहाली ॥
गुर अंगद दी दोही फिरी सचु करतै बंधि बहाली ॥
नानकु काइआ पलटु करि मलि तखतु बैठा सै डाली ॥
दरु सेवे उमति खड़ी मसकलै होई जंगाली ॥
दरि दरवेसु खसंम दै नाई सचै बाणी लाली ॥
बलवंड खीवी देक जन जिसु बहुती छाउ पत्राली ॥
लंगरि दउलति वंडीऐ रसु अंम्रितु खीरि घिआली ॥
गुरसिखा के मुख उजले मनमुख थीए पराली ॥
पए कबूलु खसंम नालि जां घाल मरदी घाली ॥
माता खीवी सहु सोइ जिनि गोइ उठाली ॥३॥
होरिंओ गंग वहाईऐ दुनिआई आखै कि किओनु ॥
नानक ईसरि जगनाथि उचहदी वैणु विरिकिओनु ॥
माधाणा परबतु करि नेत्रि बासकु सबदि रिड़किओनु ॥
चउदह रतन निकालिअनु करि आवा गउणु चिलकिओनु ॥
कुदरति अहि वेखालीअनु जिणि ऐवड पिड ठिणकिओनु ॥
लहणे धरिओनु छत्रु सिरि असमानि किआड़ा छिकिओनु ॥
जोति समाणी जोति माहि आपु आपै सेती मिकिओनु ॥

सिखां पुत्रां घोखि कै सभ उमति वेखहु जिकिओनु ॥
जां सुधोसु तां लहणा टिकिओनु ॥४॥
फेरि वसाइआ फेरुआणि सतिगुरि खाडूरु ॥
जपु तपु संजमु नालि तुधु होरु मुचु गरूरु ॥
लबु विणाहे माणसा जिउ पाणी बूरु ॥
वरिऐ दरगह गुरु की कुदरती नूरु ॥
जितु सु हाथ न लभई तूं ओहु ठरूरु ॥
नउ निधि नामु निधानु है तुधु विचि भरपूरु ॥
निंदा तेरी जो करे सो वंञै चूरु ॥
नेड़ै दिसै मात लोक तुधु सुझै दूरु ॥
फेरि वसाइआ फेरुआणि सतिगुरि खाडूरु ॥५॥
सो टिका सो बैहणा सोई दीबाणु ॥
पियू दादे जेविहा पोता परवाणु ॥
जिनि बासकु नेत्रै घतिआ करि नेही ताणु ॥
जिनि समुंदु विरोलिआ करि मेरु मधाणु ॥
चउदह रतन निकालिअनु कीतोनु चानाणु ॥
घोड़ा कीतो सहज दा जतु कीओ पलाणु ॥
धणखु चड़ाइओ सत दा जस हंदा बाणु ॥
कलि विचि धू अंधारु सा चड़िआ रै भाणु ॥
सतहु खेतु जमाइओ सतहु छावाणु ॥
नित रसोई तेरीऐ घिउ मैदा खाणु ॥
चारे कुंडां सुझीओसु मन महि सबदु परवाणु ॥
आवा गउणु निवारिओ करि नदरि नीसाणु ॥
अउतरिआ अउतारु लै सो पुरखु सुजाणु ॥
झखड़ि वाउ न डोलई परबतु मेराणु ॥
जाणै बिरथा जीअ की जाणी हू जाणु ॥

किआ सालाही सचे पातिसाह जां तू सुघड़ु सुजाणु ॥
दानु जि सतिगुर भावसी सो सते दाणु ॥
नानक हंदा छतु सिरि उमति हैराणु ॥
सो टिका सो बैहणा सोई दीबाणु ॥
पिऊ दादै जेविहा पोत्रा परवाणु ॥६॥
धंनु धंनु रामदास गुरु जिनि सिरिआ तिनै सवारिआ ॥
पूरी होई करामाति आपि सिरजणहारै धारिआ ॥
सिखी अतै संगती पारब्रहमु करि नमसकारिआ ॥
अटलु अथाहु अतोलु तू तेरा अंतु न पारावारिआ ॥
जिन्ही तूं सेविआ भाउ करि से तुधु पारि उतारिआ ॥
लबु लोभु कामु क्रोधु मोहु मारि कढे तुधु सपरवारिआ ॥
धंनु सु तेरा थानु है सचु तेरा पैसकारिआ ॥
नानकु तू लहणा तूहै गुरु अमरु तू वीचारिआ ॥
गुरु डिठा तां मनु साधारिआ ॥७॥
चारे जागे चहु जुगी पंचाइणु आपे होआ ॥
आपीन्है आपु साजिओनु आपे ही थंम्हि खलोआ ॥
आपे पटी कलम आपि आपि लिखणहारा होआ ॥
सभ उमति आवण जावणी आपे ही नवा निरोआ ॥
तखति बैठा अरजन गुरु सतिगुर का खिवै चंदोआ ॥
उगवणहु तै आथवणहु चहु चकी कीअनु लोआ ॥
जिन्ही गुरू न सेविओ मनमुखा पइआ मोआ ॥
दूणी चउणी करामाति सचे का सचा ढोआ ॥
चारे जागे चहु जुगी पंचाइणु आपे होआ ॥८॥१॥

(पन्ना ९६६-६७-६८)

इस तरह जब सत्ता तथा बलवंड ने गुरु महाराज की उस्तति की तो उनका कुष्ठ रोग दूर हो गया। भोग डाला गया तथा अमृत सरोवर

में स्नान किया तथा वे तरोताजा शुद्ध हो गए। वह पुनः गुरु दरबार में कीर्तन करने लग गए।

लेकिन सतिगुरु महाराज जी ने हुक्म दिया कि आगे से तमाम सिक्ख राग तथा साज विद्या की शिक्षा प्राप्त करें तथा गुरु घर में हर कोई श्रद्धालु कीर्तन कर सकता है। रबाबियों की अजारेदारी को समाप्त कर दिया गया। वह इसलिए कि कोई शिकायत देकर कीर्तन करने से आकी न हो। यदि रागी या रबाबी न भी मिले तो भी कीर्तन होता रहे।

बाबा सुन्दर दास जी

जब कोई प्राणी परलोक सिधारता है तो उसके नमित रखे 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' के पाठ का भोग डालने के पश्चात 'रामकली राग की सद्द' का भी पाठ किया जाता है। गुरु-मर्यादा में यह मर्यादा बन गई है। यह सद्द बाबा सुन्दर दास जी की रचना है। सतिगुरु अमरदास जी महाराज जी के ज्योति जोत समाने के समय का वैराग और करुण दृश्य पेश किया गया है।

सद्द का उच्चारण करने वाले गुरमुख प्यारे, गुरु घर के श्रद्धालु बाबा सुन्दर दास जी थे। आप सीस राम जी के सपुत्र और सतिगुरु अमरदास जी के पड़पोते थे। आप ने गोइंदवाल में बहुत भक्ति की, गुरु का यश करते रहे।

बाबा सुन्दर दास जी का मेल सतिगुरु अर्जुन देव जी महाराज से उस समय हुआ, जब सतिगुरु जी बाबा मोहन जी से गुरुबाणी की पोथियां प्राप्त करने के लिए गोइंदवाल पहुंचे थे। उनके साथ बाबा बुड्ढा जी और अन्य श्रद्धालु सिक्ख भी थे। उस समय बाबा सुन्दर दास जी ने वचन विलास में महाराज जी के आगे व्यक्त कर दिया कि उन्होंने एक 'सद्द' लिखी है। महाराज जी ने वह 'सद्द' सुनी। सुन कर इतने प्रसन्न हुए कि 'सद्द' उनसे लेकर अपने पास रख ली।

जब 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' जी की बीड़ तैयार की तो भाई गुरदास जी से यह 'सद्द' भी लिखवा दी। उस सद्द के कारण बाबा सुन्दर दास जी भक्तों में गिने जाने लगे और अमर हो गए। जो भी सद्द को सुनता है या सद्द का पाठ करता है, उसके मन को शांति प्राप्त होती है। उसके जन्म मरण के बंधन कट जाते हैं। यह 'सद्द' कल्याण करने वाली बाणी है।

साखी बारह तीर्थों की

जे ओहु दुआदस सिला पूजावै ॥
जे ओहु कूप तटा देवावै ॥
करै निंद सभ बिरथा जावै ॥१॥

(रविदास, पन्ना ८७५)

भक्त रविदास जी फरमाते हैं, १२ तीर्थों पर जाकर पूजा करने वाला यदि निंदा करता है तो उसका सारा फल व्यर्थ जाता है। निंदा करना ठीक नहीं। गुरु घर में निंदा को बहुत बुरा माना जाता है।

पर सबसे महत्वपूर्ण अर्थ जो है, वह १२ तीर्थ हैं जिनकी पूजा होती है। पुराणों के अनुसार उन १२ तीर्थों की कथा करनी है।

यह जो १२ तीर्थ हैं, इन तीर्थों पर भगवान शंकर जी 'लिंग' रूप में विराजमान हैं तथा उनकी पूजा-अर्चना होती है। सारे लिंग शिला में मूर्तिमान हैं। इन तीर्थों की यात्रा होती है। मेले लगते हैं। श्रद्धालुओं की श्रद्धाएं पूरी होती हैं। भक्त जनों के ज्ञान के लिए उन १२ तीर्थों की कथा श्रवण कराते हैं। जो कोई मन लगा कर कथा सुने या करेगा, उसकी सभी आशा-मुरादें पूरी होंगी, पर साथ में यह आवश्यक है कि वह कभी किसी की निंदा न करे। यदि यश नहीं करता तो निंदा भी न करे। चुप रहना ही बेहतर है। हे जिज्ञासु जनो ! आओ कथा श्रवण करो-

१. घुसमेश्वर तीर्थ

दक्षिण देश में हैदराबाद मुस्लिम रियासत थी (आजकल आंध्र प्रदेश की राजधानी है) उसके शहर दौलताबाद के पास यह तीर्थ है। इस तीर्थ की बहुत महानता है तथा भगवान शंकर ज्योति स्वरूप यहां विराजमान हैं। इस तीर्थ की कथा इस प्रकार है-

दौलताबाद देवगिरि पर्वतों का इलाका है। इस नगर में तालाब बना हुआ था। उस तालाब को बढ़ा कर घुसमेश्वर तीर्थ या मंदिर है। इस तीर्थ के प्रत्यक्ष होने की कथा पुराणों में इस तरह लिखी है- इस नगर का ब्राह्मण सुधर्मा था। उसकी पत्नी का नाम सुदेहा था। वह बहुत ही रूपवंती थी, पर उसके कोई संतान न हुई। वह इस कमी से बहुत दुखी हुई। उसने अपने पति सुधर्मा को कहा-'स्वामी जी ! आप अपनी दूसरी शादी करवा लो।'

सुधर्मा-'मैंने दूसरी शादी नहीं करनी। यदि भगवान ने पुत्र देना है तो तुम्हारी गोद से ही देगा। शादी करने के बाद आपने दुखी हो जाना है।

सुदेहा-'मैं दुखी नहीं होऊंगी। बालक खेलेगा, मैं खुश होऊंगी।

इस तरह पति-पत्नी में विचार-विमर्श होता रहा। भगवान की कृपा से ऐसा संयोग बना कि सुधर्मा का दूसरा विवाह हो गया। उसकी नई पत्नी का नाम 'घुसमां' था। वह युवा, सुन्दर तथा शिव शंकर भगवान की पूजा किया करती थी। उसने मायके में यह नियम बना लिया था कि १०१ शिवलिंग मिट्टी के बना कर पानी में प्रवाह कर देती थी। नियम उसका अटल था। वह सुबह उठती तथा भगवान का नाम लेती हुई शिवलिंग बना कर जल में प्रवाह कर दिया करती थी।

घुसमा स्वभाव की भी बड़ी उत्तम थी। वह किसी की न निंदा करती तथा न ही किसी से झगड़ा करती। जो कुछ पति से खाने

को मिलता, वह लेकर भगवान का धन्यवाद करती । वह जितनी रूपवती थी, उतना ही भक्ति भाव वाला स्वभाव था ।

भगवान की ऐसी अनुकंपा हुई कि घुसमा की गोद हरी-भरी हो गई। दस महीने बीतने पर पुत्र को जन्म दिया। उसका पुत्र देख कर सुदेहा को बहुत खुशी हुई। वह बच्चे को अपना पुत्र समझ कर प्यार करती, पालन-पोषण करती रही तथा दिन बीतते गए ।

पुत्र जवान हुआ। उसकी शादी की। जिस दिन शादी हुई तो सुदेहा के मन में ईर्ष्या आ गई । उसको एक तो सौतन की जलन हुई तथा दूसरा अपने आप पर क्रोध आया। उसकी आयु ढल चुकीथी तथा बुढ़ापा आ गया था । वह सोचने लगी, 'आज घुसमा कितनी खुश है, उसका पुत्र जो हुआ। वह नवयुवक है, पति उसकी बहुत इज्जत करता है। मैं बूढ़ी हो गई हूं। अब मैं बालक को जन्म नहीं दे सकती। क्या मैं संतानहीन मरूंगी तथा घुसमा औलाद वाली । इसकी पुत्रवधू आई, कल को पौत्रे होंगे... । यह कैसे हो सकता है ?'

सुदेहा के मन में जलन होने लगी । उसने धर्म छोड़ दिया, ईर्ष्या बढ़ा कर शत्रु बन गई । उसके अंदर से दैवी भाव समाप्त हो गए तथा चण्डाल भाव आ गए। उसने घुसमा के पुत्र का सिर काट कर धड़ तथा सिर दोनों ही उस तालाब में जा फैंके जिस तालाब में घुसमा शिवलिंग प्रवाह करती थी। सुदेहा स्वयं आकर सो गई। सुधर्मा तथा घुसमा को पता न लगा । वह सोए रहे ।

सुबह हुई, घुसमा उठी । पुत्र को जगाने गई तो पुत्र की चारपाई खाली थी, पर बिस्तर रक्त से लाल पड़ा था। सुधर्मा चीखें मारने लग पड़ा, सुदेहा भी रुदन में शामिल हो गई। मेरा पुत्र ! कह कह कर विलाप करने लगी पर घुसमा न रोई । उसने मिट्टी के शिवलिंग बनाए, तालाब पर गई । शिवलिंग प्रवाह करके जब आप स्नान करने लगी तो पानी में खड़का हुआ। जब देखा तो उसका पुत्र सरोवर में

से इस तरह बाहर निकला जैसे वह स्नान करता हुआ डुबकी लगा कर फिर ऊपर आया, 'जै शिव शम्भू !' उसके होंठों पर था। घुसमा ने भाग कर पुत्र को पकड़ लिया। प्यार किया तथा पूछा–

'पुत्र ! यह क्या भगवान की माया है ? आप तो... ।' घुसमा पूरी बात न कर सकी। वह मां थी इसलिए उसके मुंह से 'मर गया' शब्द न निकला, वह कोई और बात पूछती ।

उसके पुत्र ने कहा–'मौसी ने मुझे काट कर सरोवर में फैंका था, पर शिव शंकर भगवान ने मुझे बचा लिया है ।'

घुसमा भगवान शंकर का यश करने लगी तो उसी समय भोले शंकर ने साक्षात् दर्शन दिए। घुसमा की भक्ति तथा हौंसले पर भगवान बहुत खुश हुए तथा कहने लगे, 'घुसमा ! तुम्हारी सौतन को मार देते हैं । उस पापिन को दंड मिलना चाहिए ।'

'नहीं भगवान ! ऐसा मत करना, उसको रंजिश होगी । आप ही ने तो उसकी गोद हरी नहीं की । यह जानते हुए कि एक स्त्री पति प्यार के साथ संतान को कितना चाहती है । संतान के लिए कष्ट उठाती है, भगवान !'

घुसमा के इस निरवैरता वाले स्वभाव पर भगवान और खुश हुए तथा अपनी शक्ति से सुदेहा को पुत्र ढूंढने के बहाने तालाब किनारे बुला लिया तथा वर देकर उसकी आयु उन्नीस–बीस साल की युवती की कर दी। स्वयं को जवान देख कर उसने भगवान शंकर के चरणों पर माथा टेक कर कहा, 'हे नाथ ! मुझे जवान क्यों किया ?

भगवान -'सुदेहा ! तुम्हें जवान इसलिए किया है कि तुम दो पुत्रों को जन्म दो। तुम्हारी मां बनने की हसरत पूरी हो। जाओ ! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी । सुधर्मा भी तुम्हें नज़र आया करेगा ।

इसके बाद घुसमा ने विनती की, 'हे प्रभु ! अच्छा है कि यहां ज्योतिर्लिंग स्वरूप में रहो तो आपके दर्शन कर लिया करें तथा कलयुगी

जीव भी आपकी पूजा आराधना करके जीवन कल्याण तथा संसारिक सुख और आवश्यकताएं प्राप्त कर लिया करें।' उसकी विनती भगवान ने मान ली। तब से उस स्थान पर भगवान शंकर ज्योतिर्लिंग स्वरूप में रहते हैं तथा तीर्थ का नाम घुसमा के नाम पर घुसमेश्वर प्रसिद्ध हुआ। भाव यही कि घुसमा का बड़ा परमेश्वर है, उसका कल्याण करने वाला। यहां मेले लगते हैं तथा पूजा-पाठ होते हैं। भक्त जन तीर्थ यात्रा करते हैं।

२. नागेश्वर अथवा लंकेश्वर

यह तीर्थ दोनों द्वारिका गौतम द्वारिका तथा बेट द्वारिका के मध्य है। इसकी बहुत पूजा होती है। शिव पुराण के अनुसार इसकी कथा इस प्रकार बताई जाती है। एक वैश्य सुप्रिया शिव जी महाराज का भक्त था। वह रात-दिन शिव भक्ति में लीन रहता। एक दिन उसे दूर जाना पड़ा। मार्ग में भयानक जंगल था तथा दैत्यों का पहरा था। दरिया पार करके जाना था।

जहाज में बैठकर जब दरिया पार होने लगे तो सारे यात्रियों को दैत्यों ने आ घेरा। उनको देख कर मुसाफिर डर गए तथा वे उनको अपने जंगल में ले गए। उन्होंने हुक्म दिया, 'कोई शिव, परमात्मा या देवताओं की पूजा न करे।' पर सुप्रिया ने शिव पूजा न छोड़ी। जब उसे मारने लगे तो उस समय शिव शंकर प्रगट हुए। अपने भक्त की लाज रखी तथा ऐसा शस्त्र दिया कि यात्रियों की जानें बच गईं तथा फिर सुप्रिया ने भगवान शंकर के आगे विनती की, 'हे भोले नाथ ! आप ज्योतिर्लिंग स्वरूप यहीं पर विराजमान रहो ताकि जगत के जीवों का कल्याण होता रहे। सभी आपकी अनन्य भक्ति करेंगे। मैं आपके दिए जीवन के अनुसार सेवा करूंगा।

सुप्रिया की विनती भगवान शंकर ने स्वीकार कर ली तथा उस

स्थान पर विराजमान हो गए। वह स्थान तीर्थ बन गया।

३. सेतबंध रामेश्वर

इस ज्योति स्वरूप लिंग को रामेश्वर तीर्थ भी कहते हैं तथा यह तीर्थ दक्षिणी हिन्द सागर रास कुमारी के किनारे है, जहां से लंका को मार्ग जाता है। श्री राम चन्द्र जी की यादगार है। यहीं पर भगवान श्री राम चन्द्र जी ने शिव शंकर को याद किया था तथा उनके कहने पर ही भगवान 'ज्योति स्वरूप लिंग' बने। यह एक महान तीर्थ है।

४. श्री मल्लिकार्जुन तीर्थ

यह तीर्थ कृष्णा नदी के किनारे (चेन्नई) पर है। इसकी पूजा दक्षिण के मद्रासी लोग अधिकतर करते हैं। वह लोग इस तीर्थ की यात्रा करने से दो लाभ मिले समझते हैं, एक मन को शांति, दूसरा माता पिता का सत्कार। शिव पुराण में इस तीर्थ के प्रगट होने की कथा इस प्रकार है-भगवान शिव जी के दो पुत्र थे गणेश तथा कार्तिक। दोनों ही एक बार इस बात पर झगड़ पड़े कि पहले विवाह कौन करे तथा विवाह करना था बुद्धि तथा सिद्धि से। दोनों अत्यंत सुन्दर कन्याएं थीं। उनके रूप की चारों तरफ चर्चा थी। रूपवान सुन्दरियों से कार्तिक विवाह करना चाहता था। वह स्वयं भी सुन्दर था। गणेश का मुख हाथी का होने के कारण वह बुद्धिमान तो था, पर इतना सुन्दर नहीं था। झगड़ा बढ़ता गया तो जब लड़ कर मरने लगे तो शिव जी उनके मध्य आ गए। उन्होंने दोनों को कहा-यहां से पृथ्वी का चक्कर लगाने के लिए चलो, जो पहले आ जाएगा, वही बुद्धि तथा सिद्धि से विवाह कर लेगा। दोनों भाईयों ने यह शर्त मान ली तथा कार्तिक भाग उठा लेकिन गणेश न दौड़ा तथा उसने सोचा कि ग्रन्थों में लिखा हुआ है कि रुद्र खण्ड में वह पुरुष जो

माता-पिता की सात परिक्रमा कर ले तो संसार का चक्कर काटने का फल उसको मिल जाता है। उसने यह बुद्धिमानी की कि माता-पिता को बिठा कर सात परिक्रमा ले लीं तथा धरती के चक्कर का फल प्राप्त कर लिया।

यह देख कर पार्वती तथा शिव जी ने गणेश का विवाह बुद्धि तथा सिद्धि से कर दिया। दूसरी तरफ कार्तिक अकेला ही पृथ्वी का चक्कर लगाता रहा तथा कई वर्ष बीत गए। पर पार्वती तथा शिव जी ने उसको समझाया कि तुम्हारे भागने-दौड़ने का अब कोई लाभ नहीं, क्योंकि गणेश ने विवाह कर लिया है तथा उसके घर दो पुत्र भी हैं। तुम बाज़ी हार गए हो, तो वह क्रोध में आया पर फिर भी भागता गया, पर आगे से देवर्षि नारद ने कार्तिक को समझाया कि वह न भागे क्योंकि वह शर्त हार चुका है। यह सुन कर कार्तिक को बहुत गुस्सा आया तथा शैल पर्वत पर पहुंच कर समाधि लगा कर बैठ गया तथा यह प्रतिज्ञा की कि वह अपने मां-बाप के मुख नहीं लगेगा।

पर जब भगवान शिव शंकर को पता लगा तो वह कार्तिक के पास गए तथा कार्तिक को रोका। उस शिला का नाम मल्लिकार्जन ज्योतिर्लिंग तीर्थ है। इस तीर्थ पर बहुत सारे लोग जाते हैं तथा श्रद्धा रखते हैं।

५. सोमनाथ

यह मंदिर काठियावाड़ (गुजरात) में एक महान विशाल तथा पूजनीय मंदिर है। इस मंदिर को हीरे-जवाहरात, सोने से भरपूर देख कर दसवीं सदी में महमूद गजनवी ने लूटा था, मंदिर में करोड़ों के हीरे-जवाहरात जड़ित थे। यह मंदिर भी शिव ज्योति स्वरूप लिंग मंदिर है तथा इसकी कथा पुराणों में इस तरह लिखी है-दक्ष प्रजापति की सत्ताईस लड़कियां थीं। उसने अपनी सत्ताईस लड़कियों

का विवाह चन्द्रमा से ही कर दिया। लेकिन चन्द्रमा ने केवल रोहिणी को स्वीकार किया। शेष स्वीकार न हुईं तो उन्होंने अपने पिता के पास रोष प्रगट किया, उसको बहुत दुख हुआ। उसने चन्द्रमा को श्राप दिया कि तुम्हें क्षय रोग हो जाएगा। ऋषि के श्राप देने से चन्द्रमा को सत्यता ही क्षय रोग हो गया। उसमें जो शीतल किरणें थी, वह गर्म हो गईं। जिस कारण लोक-परलोक में परेशानी महसूस की गई तो देवता घबरा कर बड़े देव ब्रह्मा के पास पहुंचे। उन्होंने मिल कर पूछा, 'महाराज चन्द्रमा का क्षय रोग कैसे खत्म होगा। उनको दक्ष प्रजापति ने श्राप दे दिया है।

ब्रह्मा तीन कालों का ज्ञान रखने वाले थे। उन्होंने दिव्य-दृष्टि से देख कर उत्तर दिया-'हे देवताओ ! चन्द्रमा के लिए अब यही उचित है कि वह प्रभास तीर्थ पर जाकर तपस्या करे तथा महां मृतओं महां मंत्र का जाप कराए। वह जाप दस करोड़ बार होना चाहिए। चन्द्रमा ने इस तरह छः माह घोर तपस्या की। आखिर भगवान शंकर ने दर्शन दिए। 'उन्होंने चन्द्रमा को अमर होने का वर दे दिया पर साथ ही कहा, पन्द्रह दिन घटता तथा पन्द्रह दिन बढ़ता रहा करोगे तथा जिस दिन पूरा होगा उस दिन तुम्हें पूर्ण शीतल किरणें मिल जाया करेंगी। उस समय चन्द्रमा तथा देवताओं ने भगवान शंकर के आगे विनती की कि वह धरती के जीवों के लिए ज्योतिर्लिंग स्वरूप सोमनाथ के स्थान पर विराजमान हों। इस मंदिर की बहुत पूजा होती है।

६. श्री महांकलेश्वर

यह तीर्थ शिरपा नदी के किनारे है। इसकी कथा भी इस तरह लिखी है कि यहां शिव शंकर का भक्त ब्रह्म रहता था। उसके चार लड़के थे। उनकी उपमा चारों तरफ फैली तो शिव जी की उपमा को सुन कर दूखण दैत्य क्रोध में आया तथा उसने दैत्यों से मिल

कर ब्राह्मण पर हमला बोल दिया। उस दैत्य को रोकने के लिए महां शंकर प्रगट हुए। दैत्य को मारा तथा ब्राह्मण को बचाया। इस ज्योति स्थान को महांकाल या महां कलेश्वर कहते हैं।

७. केदारनाथ बद्रीनाथ

यह दोनों तीर्थ कैलाश पर्वत की चोटी तथा बर्फानी इलाके में हैं। इन दोनों तीर्थों की बहुत पूजा होती है। यहां नर तथा नारायण ने घोर तपस्या की थी। भगवान ने प्रगट होकर दर्शन दिए तथा शिला रूप में अपनी महांकाल शक्ति को शिव शंकर यहां छोड़ गए।

८. भीम शंकर

यह तीर्थ आसाम देश में है। यह ब्रह्मपुत्र दरिया की पहाड़ियों में है। पुराण कथा में इस प्रकार बताया जाता है कि एक राजा था। वह राज-भाग त्याग कर शिव शंकर की भक्ति करने लग पड़ा।

उस पहाड़ी इलाके में एक भयानक दैत्य भीमा रहता था। वह शिव भक्तों को जीने नहीं देता था। उनसे शत्रुता रखता। वह दैत्य राजा कामरूपेश्वर के पास आया तथा उसने कहा, 'बताओ किसकी पूजा करते हो ?' राजा ने उसको उत्तर दिया-'मैं शिव शंकर की पूजा करता हूं और न किसी से डरता हूं न जानता हूं।' यह सुन कर भीमा क्रोधित हुआ तथा उसने राजा को मारना चाहा पर शिव शंकर ने प्रगट होकर भीमा दैत्य का वध कर दिया तथा उस जगह अपना ज्योति स्वरूप छोड़ा। इसका नाम भीम शंकर लिंग है।

९. ओंकारेश्वर जी

यह मंदिर ओंकार नाथ की भक्ति के कारण कायम हुआ तथा नर्मदा नदी के किनारे है। इसकी शोभा व पूजा भी बेअंत है।

१०. श्री विशेषवर जी

यह ज्योतिर्लिंग बनारस में है। बनारस काशी को भी कहा जाता है। कहते हैं कि यह नगरी अटल तथा अस्थिर रहने वाली है। किसी तूफान प्रलय का इस पर कोई असर नहीं होता। शिव जी इस नगरी पर बहुत प्रसन्न हैं। जब कभी कयामत आती है तब शिव जी अपने त्रिशूल पर उठा कर इस नगरी को बचा लेते हैं। इसी स्थान पर विष्णु जी ने घोर तपस्या की। सृष्टि की उत्पत्ति के समय इसी स्थान पर ही नाभि कमल से ब्रह्मा जी पैदा हुए थे। अन्य भी इस नगरी की बहुत महिमा है, जो पुरुष इस नगरी में परलोक सिधारे वह सीधा स्वर्ग को जाता है। यम उसको कुछ नहीं कहते, क्योंकि शिव जी महाराज यहां विराजमान हैं।

११. त्रियंबकेश्वर जी

यह तीर्थ गोदावरी नदी के किनारे है। दक्षिण में गोदावरी उत्तरी हिन्द की गंगा की तरह पूजी जाती है। कहते हैं गौतम ऋषि घोर तपस्या करके गोदावरी नदी को धरती पर लेकर आए थे। इसकी महिमा बहुत बढ़ गई। शिव जी महाराज प्रगट हुए तथा गौतम को प्रत्यक्ष दर्शन दिए। गोदावरी तथा गौतम ने विनती की कि शिव शंकर ज्योति स्वरूप में यहां रहें ताकि कलयुगी जीवों का उद्धार हो सके। गोदावरी के उद्‌गम स्थान के पास त्रियंबकेश्वर ज्योतिर्लिंग के स्वरूप में विराजमान हैं।

१२. वैद्यनाथ

यह ज्योतिर्लिंग ई० आई० रेलवे आसी छीह स्टेशन के पास है। इस इलाके को पुरातन काल में मंथाल देश भी कहा जाता था। इस

लिंग के प्रगट होने की कथा इस तरह बताई जाती है–लंका के राजा रावण ने हिमालय के बर्फानी घर में कठिन तपस्या की। भगवान शंकर प्रसन्न न हुए। आखिर तपस्या की नौबत यहां तक पहुंच गई कि रावण ने अपने दसों सिरों को काट कर शिवलिंग पर चढ़ाने का विचार कर लिया। विचार करने के शीघ्र ही बाद एक सिर काटा। उसके छोटे टुकड़े किये तथा शिवलिंग पर चढ़ा दिये। इस तरह नौ सिर काट कर चढ़ा दिये। जब रावण दसवां सिर काटने लगा तो भगवान शंकर जी ने साक्षात् दर्शन दिए तथा उसको दसवां सिर काटने से रोक लिया। रावण के नौ सिर पहले के जैसे ही उसके धड़ से जोड़ दिये। उसे भगवान शंकर ने कहा-'कोई वर मांग लो, यह सुन कर रावण बहुत खुश हुआ तथा बहुत सारे वर मांगे पर यह भी वर मांग लिया कि इस शिवलिंग में यदि ज्योति स्वरूप होकर विराजमान हो जाएं तो इस लिंग को लंका ले जाऊं। शिव शंकर ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, पर यह शर्त रखी कि रावण लंका पहुंचने से पूर्व शिवलिंग को धरती पर न रखे, धरती पर रखेगा तो इसकी शक्ति दूर हो जायेगी। शंकर जी की आज्ञा लेकर रावण शिवलिंग को उठा कर लंका की तरफ चल दिया। भगवान शिव शंकर ने अपनी ज्योति शिवलिंग में स्थापित तो कर दी पर वह खुश नहीं थे कि रावण उस शक्ति को लंका ले जाए। क्योंकि रावण दैत्य था, वह मानवता का भला नहीं कर सकता था। उसका मन अहंकारी था। वह चाहता था कि शक्ति हासिल करके स्वयं ब्रह्मा बने तथा अपनी मनमर्जी करे। भगवान शंकर ने नया ही कौतुक रच कर रावण से अपनी शक्ति छीन ली। वह कौतुक यह था कि रावण जिस समय 'चिता भूमि' स्थान पर पहुंचा तो उसको पेशाब ने बहुत ज़ोर डाला। शिवलिंग उठा कर पेशाब नहीं कर सकता था। यदि धरती पर रखता तो शिवलिंग ने धरती से जुड़ जाना था। वह आगे नहीं जा सकता था। वह खड़ा

हो गया तथा उसने चारों तरफ नज़र मारी। अंतः उसे एक चरवाहा गाय चराता हुआ दिखाई दिया। उस चरवाहे को पास बुला कर कहने लगा, 'ऐ लड़के ! यदि तुम इस शिला को उठा कर रखो तो मैं पेशाब कर लूं, यह शिला भगवान शंकर की पूजनीय ज्योति है, इसलिए इसको धरती पर रखना उचित नहीं।' रावण का यह वचन सुनकर लड़का मान गया तथा उसने शिवलिंग को उठा लिया। भगवान शंकर ने ऐसी खेल रची कि शिवलिंग लड़के को बहुत भारी प्रतीत हुआ तथा उधर रावण का पेशाब लम्बा कर दिया। उसे पेशाब करते हुए काफी देर हो गई। चरवाहे लड़के को जब शिवलिंग का भार अधिक लगा, उसकी जान तंग हुई तो उसने शिवलिंग को धरती पर रख दिया। उसी समय शिवलिंग धरती में जुड़ गया। रावण पेशाब करके उठा, हाथ साफ करके जब शिवलिंग उठाने लगा तो उससे शिवलिंग हिला भी न। रावण बहुत बली था। वह बहुत हैरान हुआ कि एक छोटी-सी शिला जिसको वह आसानी से उठा कर आ रहा था, अब उससे हिल नहीं रही है, न उठाई जा रही है। आखिर जब वह अपना सारा बल लगा कर थक गया तो मायूस होकर चलने लगा। चलते हुए ने शिवलिंग शिला में अपना अंगूठा दबा दिया। उस दबाव से गहरा खड्ढा पड़ गया जो अभी तक कायम है। शिला वहीं रहीं, रावण लंका चला गया। रावण के जाने के पश्चात देवता आए तथा उन्होंने ज्योतिलिंग स्वरूप भगवान शंकर की पूजा की।

हे जिज्ञासु जनो ! इन तमाम तीर्थों की यात्रा करने का फल तभी मिल सकता है यदि कोई स्त्री-पुरुष तीर्थों से वापिस आकर किसी की निंदा न करे, चोरी चकारी का त्याग करके हरि नाम का सिमरन करे। पूर्व समय में जो इन तीर्थों की यात्रा करना चाहता था वह गृहस्थ तथा घर का त्याग करके संन्यास धारण कर लेता था। मोह माया, ममता तथा लालच, मान अपमान सबको त्याग कर हरि चरणों से

वृति जोड़ लेता था। वह फिर तीर्थों की यात्रा पूरी करने के बाद किसी न किसी तीर्थ पर ही समाधि लगा कर बैठ जाता तथा वहीं प्राण त्याग कर हरि के द्वार जा विराजता।

राजा जनमेजे को कुष्ठ होना

राजा जनमेजा दे मंती बरजि बिआसि पढ़ाइआ ॥
तिन्हि करि जग अठारह घाए किरतु न चलै चलाइआ ॥८॥

(पन्ना १३४४)

महाभारत के युद्ध के पश्चात राजा जनमेजे एक प्रतापी राजा हुआ है। सतिगुरु नानक देव जी वचन करते हैं कि जनमेजे को ब्यास ऋषि ने विद्या दी, कथा करवाई तथा १८ पुराणों की कथा सुनने वाले, यज्ञ करने वाले को भी कुष्ठ हो गया, जो लिखा है वह मिटता नहीं। उसने महाभारत की कथा सुनी तो उसका कुष्ठ निवृत हुआ।

राजा जनमेजे का स्वभाव था कि वह हर बात पर शंका करता था। शंका करने के कारण ही उसकी नाक पर कुष्ठ रह गया। अन्यथा ठीक हो जाना था।

ब्यास ऋषि यादव कुल की कथा कर रहा था। कथा सुनते हुए राजा जनमेजे ने कथा पर संदेह करके पूछा-हे मुनिवर ! मेरी शंका है, यदि कृष्ण जी स्वयं भगवान थे तो उनके होते हुए पांचों पांडवों को क्यों दुःख उठाने पड़े ? वह स्वयं जरासंध से हार क्यों खाते रहे ? यह क्या भेद है ? इस पर प्रकाश डालो। ज्ञानी भी कई बार अन्धेरे की तरफ ले जाता है।

ब्यास बड़ा विद्वान पंडित तथा त्रिकालदर्शी था। वह मन एवं जन्मों की बातें जानता था। उसने राजा की तरफ देखा और कहा-'हे महीष ! यह सत्य है कि श्री कृष्ण जी स्वयं परमेश्वर थे। यह भी सत्य है कि वह पांचों पांडवों की सहायता करते थे। द्रौपदी की लाज उन्होंने

रखी थी पर होनी होकर रहती है। जो कर्म रेखा है, वह मिटती नहीं। होनी को रोकने वाला कोई नहीं। होनी कई बार स्वयं अवतारों पर भी घटित हो जाती है, वह टलती नहीं।

जनमेजे–'मैं यह समझता हूं कि मनुष्य को जो भी ज्ञान हो, वह कभी भूल नहीं सकता। यदि मैं देखूं कि आगे कुंआ है उसमें गिर कर डूब मरूंगा, मैं कदापि कुएं के निकट नहीं जाऊंगा। आग को पकड़ने के लिए समझदार पुरुष कभी हाथ आगे नहीं बढ़ाता। मैं कहता हूं कि यदि श्री कृष्ण जी पांडवों को उनके भविष्य के बारे में बता देते तो उनसे इतनी भूलें नहीं होनी थीं। मनुष्य फिर भी पशु से ज्यादा सूझ-बूझ रखता है।'

यह सुनकर ब्यास हंस दिए। उन्होंने एक बार राजा के मस्तिष्क की तरफ देखा तथा कहने लगा, 'हे राजन ! सुनो तुम्हारे भविष्य के बारे मैं तुम्हें बताता हूं कि तुम्हारी मृत्यु कुष्ठ से होगी। अत्यंत दुख झेलकर मृत्यु होगी। उस समय मैं भी कुछ नहीं कर सकता पर यदि मृत्यु टलेगी तो भरोसा करने से।'

जनमेजे (हैरान होकर)–'मुझे कुष्ठ क्यों होगा ? मैंने क्या पाप किया है ? यह आप क्या कह रहे हो ?'

ब्यास (हंस कर)–'पाप किया नहीं; करोगे। तुम्हारे कर्म में लिखा है। ज्ञान करवाने पर नहीं समझोगे, ऐसा समय आ जाएगा।'

जनमेजे–'यह कभी नहीं हो सकता कि मुझे मेरे जीवन के खतरों का ज्ञान हो जाए तथा मैं फिर भूल करूं। मैं कभी भूल नहीं कर सकता।

ब्यास 'आपका यह कहना भी भूल है। मनुष्य को कभी किसी बात का अहंकार नहीं करना चाहिए। अहंकार बुरा है, परमात्मा को भी अच्छा नहीं लगता।'

जनमेजे 'मै तो अहंकार नहीं करता। मैं तो स्वाभाविक ही अपनी

समझ की बात करता हूं कि यदि मेरे जीवन के बारे मुझे पता लग जाए तो खतरों के मोड़ से बचने का यत्न ज़रूर करूंगा।'

ब्यास–'सुनो राजन ! एक समय आएगा, आप एक सुन्दर राजकुमारी को पहले दासी बनाएंगे। फिर उस दासी के सौंदर्य तथा यौवन पर मोहित होकर विवाह किए बिना ही उसे अपनी रानी बना लोगे। दूसरी रानियों को भूल जाओगे, सिर्फ उसके साथ ही प्यार करोगे। एक दिन घोड़ी पर सवार होकर आखेट के लिए जाओगे, सरोवर के किनारे घोड़ी बांध कर सो जाओगे। जब आप सोए हुए होंगे तो पानी में से एक घोड़ा निकलेगा। उस घोड़े से आपकी घोड़ी का मेल हो जाएगा। घोड़ी से मेल के बाद वह घोड़ा फिर सरोवर में अदृश्य हो जायेगा। कुछ समय बाद उस घोड़ी के पेट से श्याम रंग का घोड़ा पैदा होगा। उस घोड़े का आप प्यार से पालन करेंगे। जब घोड़ा जवान होगा तो अश्वमेध यज्ञ करोगे। उस यज्ञ के समय दासी रानी आपके पास आएगी। उसने हल्के वस्त्र पहने होंगे। वह सभा में नग्न हो जाएगी। उसको देख कर ब्राह्मण लड़के हंस पड़ेंगे। आप क्रोध में आकर ब्राह्मणों को मार डालेंगे। ब्राह्मण हत्या के कारण आपके शरीर में कुष्ठ हो जाएगा। उस कुष्ठ को हटाने के लिए आपको यज्ञ करना पड़ेगा। महाभारत की कथा सुनोगे। कथा सुनते-सुनते एक समय ऐसा आएगा कि जब नाक चढ़ा कर कथा पर किन्तु करोगे। उस किन्तु पर नाक चढ़ाने के कारण नाक पर कुष्ठ रह जाएगा। उस कुष्ठ से जीवन समाप्त होगा। यह अटल सच्चाई है, होनी होकर रहेगी, चाहे आप लाख यत्न करो।'

जनमेजे–'मैंने आप से सब कुछ सुन लिया है। न मैं दासी से प्यार करूंगा, न घोड़ी पर चढ़ कर दक्षिण की तरफ आखेट के लिए जाऊंगा। यदि जाऊंगा तो पानी के किनारे घोड़ी नहीं बांधूंगा। यदि यज्ञ करूंगा तो दासी रानी को पास नहीं बुलाऊंगा। यदि आ भी जाए तो उसके

नग्न होने पर मैं क्रोध नहीं करूंगा तथा न क्रोध में आकर ब्राह्मणों को मारूंगा। यदि सब कुछ हो जाए तो कथा सुनने के समय मैं कथा पर किन्तु नहीं करूंगा तथा न नाक चढ़ाऊंगा, क्योंकि मुझे ज्ञान हो गया है। यह मोड़ खतरे वाले हैं। इनसे बचूंगा।'

ब्यास-'मैं भी यही चाहता हूं, आप बचो, पर बचना कठिन है। अच्छा जो भगवान को भाए।'

कुछ समय बीत गया। ब्यास जी कथा करके चले गए। राजा जनमेजे के जीवन में खतरे वाले मोड़ आने शुरू हो गए। किस्मत ने राजा को भुला ही दिया कि ब्यास ने उसको किसी खतरे का ज्ञान करवाया था।

जनमेजे जितना समझदार था, उतना ही कामी था। उसको पता लगा कि काशी के राजा की दो सुन्दर राजकुमारियां हैं। उनके रूप की शोभा सुन कर राजा ने काशी नरेश पर हमला कर दिया। राजा को जब लड़ाई के कारण का पता लगा तो उसने शीघ्र ही समझौता कर लिया। अपनी दोनों राजकुमारियों का विवाह राजा से कर दिया। उन राजकुमारियों के साथ एक दासी भी आई। वह बहुत सुन्दर तथा नवयौवना थी। राजा उसके रूप पर मुग्ध हो गया। वह दासी से प्यार करने लग पड़ा। जो बातें ब्यास ने बताई थीं उनमें से पहली बात पूरी हो गई। राजा ने दासी को विवाह किए बिना ही पटरानी बना दिया।

इसी भाव को लेकर गुरु जी ने फरमाया,

'रोवै जनमेजा खुई गइआ ॥ ऐकी कारनि पापी भइआ ॥

जनमेजे रोने लगा कि उसको पता नहीं लगता कि वह पापी क्यों हुआ है ? कैसे पापी हुआ ? आगे कथा इस प्रकार है-

राजमहलों में दासी का बोलबाला हो गया। वह रानियों से अच्छ खाने और अच्छा पाने लगी। वह काम को हाथ न लगाती बल्कि

रानियां उसकी सेवा करने लगीं। दासी प्रतिदिन रात को राजा की सेज पर सोने लगी। वे राजकुमारियां दासियों जैसी हो गईं। उनके दुःख-सुख को कोई न टटोलता। वे छोड़ी हुई स्त्रियों के जैसी हो गईं।

राजा के वजीर ने सौदागरों से सुन्दर घोड़ी खरीद ली। घोड़ी नहीं अपितु वह होनी थी, जो घोड़ी का रूप धारण करके राजा के शहर में आई। वजीर ने राजा को घोड़ी दिखाई तथा कहा कि एक बार इस घोड़ी पर सवार हो कर ज़रूर आखेट के लिए जाएं, यह हवा की तरह चलती है। पानी का बर्तन भर कर रख दें तो वह भी नहीं गिरता। ऐसी तेज चाल वाली घोड़ी कभी नहीं सुनी, देखी। राजा वजीर की बातों में आ गया। सुबह का शिकार के पीछे लगा, दोपहर हो गई शिकार हाथ न आया। सूर्य की गर्मी राजा को व्याकुल करने लगी। उस व्याकुलता को दूर करने के लिए एक जल के किनारे बरगद के नीचे राजा घोड़ी से उतर बैठा। घोड़ी को बरगद की जड़ों से बांध दिया, लम्बे रास्ते के सफर से राजा थक गया। वह लेट गया। लेटते ही उसको नींद आ गई। राजा सो गया। उसके सोते ही सचमुच जल में से कौतल घोड़ा निकला। वह धीरे-धीरे चल कर घोड़ी के पास आ गया। घोड़ी उसे देख कर डरी नहीं। उछली नहीं, बल्कि उसके साथ लगी। प्यार करते-करते घोड़ा घोड़ी पर चढ़ गया। घोड़ी काम क्रीड़ा करने लग गई। काम-क्रीड़ा के बाद घोड़ा जल में छिप गया। वह फिर बाहर न आया। जैसे कोई फरिश्ता या आदमी शक्ति वाला था। सायंकाल को राजा की नींद खुली तो अपने राजमहल में आ गया। दिन पूरे होने पर घोड़ी ने श्याम रंग के घोड़े को जन्म दिया। राजा ने उसको अश्वमेध यज्ञ के लिए खुला छोड़ दिया। किसी ने भी उसको बांधने का प्रयास न किया। राजा जनमेजे को खुशी हुई कि वह चक्रवर्ती राजा बन गया है। हर तरफ उसकी महिमा हो रही थी। उस ने अश्वमेध यज्ञ करने की तैयारी कर दी।

जब राजा अश्वमेध यज्ञ की पूजा करने के लिए सभा में बैठा था तो उसकी दासी रानी आई, जो उसको बहुत प्यारी थी। उसने हल्के वस्त्र पहने हुए थे। वह उठ कर जाने लगी तो हवा के झोंके से उसके वस्त्र ऊपर हो गए। वह अर्द्ध-नग्न हुई तो ब्राह्मण हंस पड़े। दासी रानी शर्म से पानी-पानी होकर बैठ गई। ब्राह्मणों की हंसी पर राजा को बहुत क्रोध आया। उसने उसी समय हुक्म दिया कि सारे ब्राह्मण कत्ल कर दिये जाएं।

राजा जनमेजे ब्यास ऋषि के भविष्य के वाक भूल गया तथा यज्ञ पर आए सभी ब्राह्मणों का वध करवा दिया। ब्राह्मणों के वध से उसको ब्रह्म हत्या का दोष लग गया। पर उसे क्रोध ने पागल किया था, समझ न सका। उसे कुष्ठ हो गया तथा इस बीमारी से राजा दुखी होता गया। राजा ने सारे वैद्य, हकीम बुलाए पर वह रोग श्राप का था। ब्राह्मण हत्या का श्राप था, ठीक न हुआ तथा मुनि ब्यास जी को बुलाया गया। उसने राजा को कहा 'हे राजन ! यह कर्मगत है। ऐसा होना ही था सो हो गया। अब तो आपकी मृत्यु शायद इसी रोग से हो।'

यह सुन कर राजा निराश हो गया पर ब्यास ने उसको विश्वास दिलाया कि यदि वह महाभारत की कथा मन लगा कर सुने तो उसका कुष्ठ रोग हट सकता है। राजा ने यह बात मान ली तथा महाभारत की कथा करवाने का यत्न किया। महाभारत की कथा आरम्भ हुई।

'महाभारत की कथा सुनाओ' ब्यास जी ने विनती स्वीकार कर ली तथा राजा को 'महाभारत' की कथा सुनाने लगे-

हे राजन ! इस देश में सूर्यवंशी राजा भरत हुआ है। यह बड़ा प्रतापी राजा था। उस राजा के नाम पर इस देश का नाम 'भारत खण्ड' या 'भारत देश' रखा गया है। इसी कुल में राजा 'रघु' हुआ था। यह श्री राम चन्द्र जी की कुल थी। रघु कुल में राजा 'यदु' हुआ। उस

यदु की संतान में राजा 'शांतनु' हुआ है। उस शांतनु ने देव कन्या गंगा से विवाह किया। उस देव कन्या ने यह शर्त रखी हुई थी कि राजा शांतनु उसके पैदा हुए किसी पुत्र का मुंह नहीं देखेगा। यदि देखेगा तो गंगा उसे छोड़ कर अदृश्य हो जाएगी। समय आने पर गंगा की गोद से सात पुत्रों ने जन्म लिया। जैसे-जैसे शिशु पैदा होते गए वैसे-वैसे गंगा उनको जल प्रवाह करके खत्म करती रही।'

राजा को बोध हुआ कि पुत्र हरेक को अच्छे लगते हैं। पुत्र जगत में पुरुष का निशान होता है। गंगा की गोद से जब आठवां पुत्र पैदा हुआ तो राजा ने वह पुत्र नदी में बहाने न दिया। उसको गंगा से ले कर पालना शुरू कर दिया पर गंगा सचमुच गंगा नदी में अलोप हो गई। राजा शांतनु को गंगा की जुदाई ने बहुत दुखी किया। वह रोज सुबह गंगा किनारे जाकर गंगा का जाप करता रहता। इस तरह ब्यास जी राजा जनमेजे को कथा सुनाते गए तथा वह 'सत्य वचन', 'हां जी' शब्दों में हामी भरता रहा। वह सचमुच एकाग्रचित्त होकर कथा सुन रहा था। यहां तक कि कथा सुनने के साथ उसके तन के कोढ़ के घाव सूखने शुरू हो गए तथा जलन भी कम होने लगी।

'जिस पुत्र को शांतनु ने पाला।' ब्यास जी कथा सुनाते गए-उसका नाम भीष्म था क्योंकि उसने भीष्म प्रतिज्ञा की थी। जीवन भर विवाह न करवाने तथा ब्रह्मचारी रहने का प्रण किया था। वह इसलिए कि राजा शांतनु रोज़ गंगा पर जाया करता था, वहां मल्लाह की लड़की सत्यवती भी जाया करती थी। उससे राजा को प्यार हो गया। जब विवाह के लिए लड़की से कहा तो लड़की के पिता ने यह शर्त रखी-'हे राजन ! शादी तभी हो सकती है यदि दो शर्तें मानो-एक शर्त यह है कि आपका पहला लड़का सारी उम्र कुंआरा रहे। दूसरी आपकी मृत्यु के बाद राज-गद्दी पर केवल सत्यवती की गोद से पैदा हुए लड़कों में से ही कोई विराजमान होगा।' राजा यह शर्तें सुन कर घबरा गया,

पर जब भीष्म को पता लगा तो उसने यह दोनों शर्तें मान लीं तथा राजा शांतनू का दूसरा विवाह सत्यवती से हो गया। उसके घर दो पुत्र हुए-चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य। युवा होने पर दोनों का विवाह कर दिया गया। लेकिन दोनों की शीघ्र ही मृत्यु हो गई। इनकी कोई संतान न हुई। जिस समय सत्यवती (जोजन गंधारी) ने देखा कि उसका कोई पोता नहीं है तथा राज भाग किसी और के पास चला जाएगा तो उसने सौतन के पुत्र भीष्म को मिल कर कहा-'हे पुत्र ! मेरी एक बात मानो।' यह सुन कर भीष्म ने पूछा, 'कौन-सी बात माता जी ?'

'तुम्हारे दोनों भाई शीघ्र परलोक गमन कर गए। तुम्हारी भाभियां अम्बिका तथा अंबालिका दोनों पुत्रहीन हैं। वह अभी जवान हैं। तुम उनको पुत्र दान बख्शो ताकि तुम्हारे पिता का नाम रहे, वंश नष्ट न हो।'

सत्यवती की यह बात सुन कर भीष्म उदास भी हुआ तथा मुस्कराया भी। उसने उत्तर दिया, 'हे माता ! इस बारे में तो आप मुझ से पहले प्रतिज्ञा ले चुके हो, किसी कीमत पर प्रतिज्ञा भंग नहीं कर सकता। मैं ब्रह्मचार्य धारण कर चुका हूं।'

सत्यवती मायूस होकर चली आई। उसको याद आया कि शांतनु से विवाह करने से पहले उस ने नाव में पराशर से मेल (भोग) किया था। उस मेल का फल यह हुआ कि वह कुंआरी ही गर्भवती हो गई थी तथा उसकी गोद से एक लड़का पैदा हुआ था। वह ब्यास था। सत्यवती उस पुत्र के पास गई तथा उसको जाकर यही बात बताई। वह मान गया। ब्यास आकर सत्यवती की पुत्रवधुओं अम्बिका तथा अंबालिका के पास रहने लगा। अम्बिका के पेट से धृतराष्ट्र पैदा हुआ जो जन्म से अंधा था। उसके अंधे होने का कारण यह था कि अम्बिका ब्यास को अच्छा नहीं समझती थी। वह उसकी सूरत नहीं देखना

चाहती थी। इसलिए मेल (भोग) के समय उसने आंखें बंद कर ली थीं। जिस कारण धृतराष्ट्र अंधा पैदा हुआ। अंबालिका के पेट से जो लड़का पैदा हुआ उसका नाम पांडव था। ब्यास ने भोग विलास के लिए अम्बिका को फिर पास बुलाया। वह ब्यास को पसन्द नहीं करती थी इसलिए वह स्वयं तो ब्यास के पास न गई पर अपनी दासी को भेज दिया। उस दासी के पेट से विदुर ने जन्म लिया, जिस विदुर को सदा 'दासी सुत' कहा जाता रहा।

धृतराष्ट्र, पांडव तथा विदुर का पालन-पोषण भीष्म ने किया। तीनों को शस्त्र विद्या सिखलाई। जब जवान हुए तो धृतराष्ट्र का विवाह गंधारी से हुआ तथा पांडव का विवाह कुन्ती और मादरी से किया। धृतराष्ट्र के घर सौ पुत्रों तथा एक कन्या ने जन्म लिया। धृतराष्ट्र का बड़ा पुत्र दुर्योधन था। पांडव के पांच पुत्र थे। तीन कुन्ती के पेट से व दो मादरी के गर्भ से पैदा हुए। उन पांचों पुत्रों के नाम थे युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल तथा सहदेव। इन पांचों भाईयों को पांडव तथा धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों को 'कौरव' कहा जाता था। राजा पांडव तीर्थ पर मादरी से भोग करने के कारण शीघ्र संसार छोड़ गया। उसकी मृत्यु के पश्चात राज सिंघासन पर अंधा धृतराष्ट्र बैठा। पांचों पांडव मासूम बच्चे थे। इनका पालन कुन्ती ने किया। जब ज़रा जवान हुए तो धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने पांचों भाईयों को मार देने की साजिश रची ताकि वह राज का हिस्सा न मांगें। लाख के घर में जलाने का यत्न किया पर वे सुरंग बना कर निकल गए। कई साल ब्राह्मणों के भेष में फिरते रहे। राजा द्रुपद की नगरी में चले गए। सबब से वहां राजा द्रुपद की कन्या कृष्णा (द्रौपदी) का स्वयंवर था। उस स्वयंवर में अर्जुन ने द्रौपदी को जीत लिया। कुन्ती के वचन अनुसार पांचों भाईयों ने उसके साथ विवाह किया। राजा द्रुपद तथा कृष्ण के समझाने पर धृतराष्ट्र ने आधा राज पांडवों को दे दिया। अपनी राजधानी इन्द्रप्रस्थ में पांडवों ने अश्वमेध यज्ञ किया। उस यज्ञ

में दुर्योधन तथा उसके भाई भी गए। पांडवों ने एक महल ऐसा बनाया हुआ था जो माया जाल था। जहां पानी दिखाई देता था, वहां सूखी जगह थी तथा जो सूखी प्रतीत होती थी वह असल में पानी था। उस महल को देखते हुए दुर्योधन चकमा खा गया और सूखी जगह के भ्रम में तालाब में गिर पड़ा। द्रौपदी अपनी सखियों तथा दासियों सहित देख रही थी। उसने अहंकार में आकर व्यंग्य किया तथा मुंह से ऊंची कहा 'अंधे की संतान अंधी।' यह वाक दुर्योधन ने सुन लिया। सुनते ही मन को आग लग गई। उसने मन ही मन में प्रण किया कि मैं भी अपने पिता का पुत्र नहीं, अगर द्रौपदी तुम्हें पूरा नग्न करके भरी सभा में अपनी जांघों पर न बिठाया।' यह कह कर वह अपने महल वापिस आ गया।

कथा के इस हिस्से में पहुंचते समय राजा जनमेजे के आधे शरीर का कुष्ठ ठीक हो गया। उसका आधा शरीर कुन्दन की तरह साफ हो गया। वह मन ही मन में खुश हुआ। उसकी रानियां भी उसे देख-देख कर प्रसन्न हो रही थीं।

ब्यास एकाग्रचित्त होकर कथा करता गया। दुर्योधन बड़ा चतुर था, अपने मामा शकुनि की सहायता से उसने युधिष्ठिर को बुला कर जुआ खेलते हुए, चालाकी से जुए में सारा राज भाग जीत लिया। यहां तक कि पांचों पांडव तथा द्रौपदी को भी जुए में जीत लिया। जब द्रौपदी को जीत लिया तो दुशासन को भेज कर द्रौपदी को राज सभा में बुलवाया। दुशासन द्रौपदी को केशों से पकड़ कर सभा में ले आया। दुष्ट उसको नग्न करने लगे तो श्री कृष्ण जी ने द्रौपदी की लाज रखी। वह नग्न न हो सकी। वस्त्रों का अम्बार लग गया। पांडवों को बारह साल का वनवास भोगना पड़ा। तेरहवें साल पश्चात उन्होंने राज का आधा हिस्सा मांगा तो दुर्योधन ने देने से इन्कार कर दिया।

श्री कृष्ण जी ने समझौता करवाने का बहुत यत्न किया पर उनकी कोशिशें असफल गईं, परिणामस्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ। उस

युद्ध में दुर्योधन तथा उसके समस्त भाई मारे गए। दुशासन को मार कर भीम ने उसके रक्त की अढ़ाई चुल्लियां पीं। युद्ध में भीम ने ऐसे कौतुक किए जो आश्चर्यजनक थे। उसने शत्रुओं के हाथियों को टांगों से पकड़ कर घुमा कर ऐसा ऊपर फैंका कि वह अभी तक आकाश में घूम रहे हैं, नीचे नहीं आए।

यहां कथा पहुंची तो राजा जनमेजे हैरान हुआ कि उसके शरीर को शांति आ गई। शीतलता के साथ ही शरीर कुन्दन जैसा हो गया। उसके मन को खुशी हुई। पर नाक पर थोड़ा-सा कोढ़ रह गया। उसके रहने का कारण राजा ने पूछा तो ब्यास ने कहा-'हे राजन ! आपको पहले ही कहा था कि कथा पर किन्तु तथा शंका न करना। यदि ऐसा करोगे तो कुष्ठ रोग नहीं हटेगा। जब कथा यहां आई थी कि भीम ने हाथी आकाश में फैंके तो आपने नाक चढ़ा कर शक किया, ऐसे कैसे हो सकता है। सो यह ठीक नहीं होगा।

कथा समाप्त हुई पर राजा के नाक का कोढ़ रह गया। इसलिए हे जिज्ञासु जनो ! जब कथा श्रवण करें तो कभी किन्तु न करें। यदि किन्तु करना हो तो उस ग्रंथ की कथा श्रवण नहीं करनी चाहिए।

जरासंध का वध

राजा बिहदर्थ की दो रानियां थीं। दोनों रानियों के घर पुत्र पैदा हुए। एक पुत्र बिल्कुल तन्दरुस्त था। पर दूसरी रानी का पुत्र दो टुकड़े था। एक तरफ एक टांग, एक बाजू तथा आधा सिर। दूसरी तरफ भी इसी तरह। इस तरह का बालक पैदा हुआ देख कर दाई ने उसे बाहर फैंक दिया।

जरा नाम की डायन आई। उसने बालक के दोनों हिस्से जोड़ कर एक किए तथा आवाज़ दी, इनमें प्राण आ जाए तथा रोने-हंसने लग पड़े। उस डायन के इस बोल पर वह बच्चा जीवित हो गया तथा

वह उसे उठा कर घर ले गई। तदुपरांत उसका नाम जरासंध रखा। वह राक्षस के पास पलता रहा। एक दिन ऐसा आया कि उसने राक्षसों की सेना इकट्ठी करके मगध देश धावा बोलकर जीत लिया और वहां का सम्राट बन गया। उसकी बहादुरी तथा राज की धूम मच गई तो एक दिन वह राजा कंस का ससुर बना।

राजा कंस जब अपने भांजे श्री कृष्ण के हाथों मारा गया तो कंस की जगह श्री कृष्ण जी ने उग्रसैन को राज दिया। अपने दामाद का बदला लेने के लिए जरासंध ने उग्रसैन के राज पर हमला कर दिया। इस तरह जरासंध ने अठारह बार मथुरा तथा उग्रसैन के राज पर हमले किये, न ही श्री कृष्ण जी उसका संहार कर सके तथा न ही श्री कृष्ण की शक्ति से जरासंध को क्षर्ति पहुंची। उनकी आपस में घोर शत्रुता हो गई।

पांडवों ने जब अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा घुमाया तो जरासंध ने उस घोड़े को पकड़ कर बांध लिया। घोड़े को पकड़ने का मतलब था कि जरासंध पांडवों को चक्रवर्ती होना स्वीकार नहीं करता। यदि उन्होंने स्वीकार करवाना है तो युद्ध करके देखें।

अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को जब पकड़ा सुना तो अर्जुन ने भीम और श्री कृष्ण जी को साथ लेकर मगध देश पर हमला किया।

राजधानी गिरीबरज में भयानक युद्ध हुआ। दोनों तरफ की सेनाएं आपस में जूझती रहीं। अंत में जरासंध तथा भीम का बाहु युद्ध हुआ। भीम तथा अर्जुन से जरासंध न मरता देख कर श्री कृष्ण जी ने दोनों को इशारा किया। साथ ही लकड़ी को चीर कर भीम को समझाया कि जरासंध को चीर फैंके।

भीम ने जरासंध की दाईं जांघ पर पैर रख कर बाईं को ऊपर किया तो उसके जोड़ खुल गए। एक डायन का पाला हुआ जरासंध मर गया। गुरु महाराज का वचन है

जरासंध कालजमुन संघारे ॥

(पन्ना २२४)

श्री कृष्ण जी ने हाथी को मारना

राजा कंस चाहे श्री कृष्ण जी का मामा था, पर वह सदा श्री कृष्ण जी को मरवाने के यत्न करता रहा, क्योंकि उसको आकाशवाणी हुई थी कि तुम्हारी मृत्यु देवकी-सुत अपने भांजे के हाथों होगी।

कंस को पता लगा कि मुझे मारने वाला कृष्ण ग्वालों के साथ रहता है। उसने ग्वालों के बालकों को मथुरा पुरी में बुलाया। एक बाहुयुद्ध होना था, तो श्री कृष्ण जी अक्रूर, बलराम तथा अन्य ग्वाले लड़कों के साथ मथुरा गए। पर कंस ने कुवलीया नाम का हाथी अखाड़े के आगे खड़ा कर दिया ताकि वह श्री कृष्ण जी को मार सके।

जब श्री कृष्ण जी हाथी के पास गए तो उन्होंने महावत को कहा कि वह हाथी को पीछे कर ले, पर महावत ने हाथी पीछे न किया तो श्री कृष्ण जी उसकी सूंड पर मुक्कियां मारने लगे क्योंकि भगवान कृष्ण अवतार थे। इसलिए उनकी मुक्कियों की मार हाथी सहन न कर सका तथा न ही सूंड के साथ श्री कृष्ण जी को ऊपर उठा सका। श्री कृष्ण जी ने ऐसे दांव-पेच हाथी के साथ खेले कि वह धरती पर गिर कर चित्त हो गया। कृष्ण तथा बलराम अखाड़े में पहुंचे तथा कंस की इहलीला समाप्त की। श्री गुरु रामदास जी कुवलीया हाथी बाबत फरमाते हैं-

कुवलीआ पीड़ु आपि मराइदा पिआरा करि बालक रूपि पचाहा ॥२॥

(पन्ना ६०६)

श्री कृष्ण तथा चंडूर की कुश्ती

आपि अखाडा पाइदा पिआरा करि वेखै आपि चोजाहा ॥

करि बालक रूप उपाइदा पिआरा चंडूरु कंसु केसु माराहा ॥

(सोरठि, पन्ना ६०६)

श्री कृष्ण तथा बलराम जी जब अखाड़े में खड़े थे तो कंस का पहलवान चंडूर आगे होकर व्यंग्य करने लगा। उसने कहा–'राजा का हुक्म है कि मैं और आप बाहुयुद्ध करें। महाराज बहुत खुश होंगे।

चंडूर बहुत बड़ी आयु का था तथा उसके मुकाबले पर श्री कृष्ण जी तथा बलराम जी बच्चे लगते थे। 'हम अपने साथियों के साथ बाहुयुद्ध करेंगे' श्री कृष्ण जी ने उत्तर दिया, पर चंडूर अहंकार में था तथा कंस की साजिश में शामिल था।

'आप बच्चे थोड़े हो ! हाथी को आपने मारा है। आओ आनाकानी मत करो तथा बाहुयुद्ध द्वारा अपने पराक्रम का प्रदर्शन करो।' इस तरह चंडूर अखाड़े में ललकारने लगा।

चंडूर के साथ श्री कृष्ण जी ने बाहुयुद्ध शुरू कर दिया। चंडूर समझता था कि वह श्री कृष्ण जी को उठा कर मारेगा पर जब वह बाहुयुद्ध करने लगे तो श्री कृष्ण जी उसको अपने से भी बड़े पहलवान नज़र आने लगे तथा लोगों को बालक दिख रहे थे। बाहुयुद्ध होता रहा, मुक्का-मुक्की का दंगल शुरू हो गया। स्त्री-पुरुष श्री कृष्ण जी से हमदर्दी करने लगे। बाहुयुद्ध होता गया। आखिर ऐसी नौबत आई कि चंडूर आगे आगे चल पड़ा। कंस तथा उसके आदमी बहुत हैरान हुए। उन्होंने चंडूर को कहा, 'साहस करो ! बालक के आगे घुटने मत टेकना। इसको उठा कर मार गिराओ। यह तुम्हारे आगे क्या है ? पर चंडूर ने बोलने वालों को कोई उत्तर न दिया। वह डर गया। जो भी चोट उसको लगती वह भयानक होती। चंडूर को टंगड़ी मार कर धरती पर गिरा लिया तथा पहले उसकी छाती पर ऐसा बोझ डाला कि वह घबरा गया। उस घबराए हुए को श्री कृष्ण जी ने उठा लिया तथा अखाड़े में घुमाया। देखने वाले दंग रह गए तथा कृष्ण

की वीरता की भूरि–भूरि प्रशंसा करने लगे।

जो समझदार थे, उन्होंने सोचा कि यह शायद वही बली होगा जिसके हाथों राजा कंस ने मरना है जो बड़ा पापी है। श्री कृष्ण जी ने चंडूर को उठा लिया तथा धरती पर फैंका। उसकी हड्डियां टूट गईं तथा वह नरक को चला गया। उसकी मृत्यु ने कंस के अखाड़े को उजाड़ दिया। ग्वाले लड़कों ने एक-एक को पकड़ कर मारा। तदुपरांत श्री कृष्ण जी ने कंस को भी नरक पहुंचाया। श्री कृष्ण सच्चे थे, इसलिए उनकी रक्षा स्वयं परमात्मा करता था।

चंद्रावली से छल करना

जुज महि ओरि छली चंद्रावलि कान्ह क्रिसनु जादमु भइआ ॥

(पन्ना ४७०)

यह बात विख्यात है कि श्री कृष्ण जी के चारों ओर तीन सौ साठ गोपियां थीं। उन गोपियों में एक से बढ़ कर एक अत्यंत सुन्दर थी। नाचती तथा गाती, रास में काम करती। पर सबसे प्यारी 'राधा' थी।

उन गोपियों में एक ग्वाले की लड़की चंद्रावली भी थी। वह नाचती गाती पर सदा श्री कृष्ण जी से दूर रहने का यत्न करती। भरसक यत्न करने पर भी श्री कृष्ण उसको अपने नजदीक न ला सके। भगवान अपनी माया से अद्‌भुत लीला किया करते थे। संसारिक के लोग माया के चक्र को नहीं समझ सकते थे। तीन सौ साठ गोपियों के होते हुए भी माया रहित भगवान श्री कृष्ण जती सती तथा ब्रह्म ज्ञानी थे। जगत के लोग माया के रहस्य को नहीं जानते।

चंद्रावली भगवान से दूर-दूर रही। वह डरा करती थी। थोड़े दिनों के बाद उसका विवाह हो गया तो वह ससुराल चली गई। उसके ससुराल जाने पर भगवान श्री कृष्ण जी ने अपनी माया का उसको चमत्कार दिखाना चाहा, क्योंकि नारी भी माया का अंश है।

श्री कृष्ण जी ने अपनी माया के बल पर अपना रूप बदल लिया। देखने वाले को वह स्त्री प्रतीत होने लगे। उसी तरह आभूषण तथा स्त्रियों जैसा लिबास हो गया। वह स्त्री रूप में तथा स्त्री की आवाज़ में चंद्रावली के ससुराल पहुंच गए। अपना नाम कांता रख लिया।

'बहन चंद्रावली' ! कांता रूप भगवान ने कहा।

चंद्रावली पहचान न सकी। उसने सिर से पैरों तक देखा तथा हैरान होकर, पर प्यार के साथ कहने लगी, मैं आप को पहचान नहीं सकी। आप मेरी बहन कैसे ? मेरी तो कोई सगी बहन नहीं, मैं अकेली ही अपने माता-पिता की पुत्री हूं।'

'बहन चंद्रावली ! मैं तुम्हारी बुआ की लड़की हूं, छोटी थी तभी विवाह हो गया। हम मिल नहीं सके। अब मैं तुम्हें मिलने के लिए आई हूं।'

चंद्रावली कोई उत्तर न दे सकी। उसको मानना पड़ा कि शायद कांता उसकी सखी या बहन होगी। उस समय चंद्रावली का पति कहीं बाहर गया हुआ था। उसकी सास ही घर पर थी। सास को भी मौसी कहकर माथा टेक दिया। बातें करती रही।

चंद्रावली नदी से पानी लेने गई तो कांता ने मथुरा-वृंदावन, राधा-कृष्ण लीला आदि साखियों पर बातें करनी शुरू कर दीं। वह बहुत खुश थी, पर चंद्रावली हैरान थी कि कांता सारी बातें कैसे जानती थी। कांता रूप भगवान ने कहा-'चंद्रावली बहन तुम तो भगवान के चरणों में नहीं लगी, दूर-दूर ही रही, कितने अच्छे हैं मुरली मनोहर।'

भगवान माया शक्ति से अपनी बातें आप ही करते रहे। वह सुनती गई, मुस्कराती गई पर कोई उत्तर न दिया। भगवान ने माया शक्ति से उसके दिल-दिमाग पर ऐसा चक्र चलाया कि उसे ऐसे प्रतीत हुआ जैसे वह वृंदावन में यमुना किनारे थी तथा गोपियों के साथ नाच रही है। गागर एक तरफ रख कर नाचने लग पड़ी। भगवान जी मुरली

बजाने लग पड़े। वह नाचती तथा गाती रही। इस तरह कितनी देर हो गई। वापिस घर आ गई।

देर से आई देख कर उसकी सास ने पूछा-'चंद्रावली ! इतनी देर क्यों करके आई ?'

'मां जी ! बहन से बातें करने लग गई। काफी देर बाद मिले हैं अन्य कोई बात नहीं।'

कांता रूप भगवान ने चंद्रावली के साथ बैठ कर भोजन खाया। जब रात हुई तो ज़ोर दिया कि दोनों बहनें इकट्ठी ही बिस्तर पर सोएंगी। चंद्रावली की सास ने कह दिया, 'क्या हर्ज है ? दोनों बहनें एक बिस्तर पर सो जाओ। लम्बे समय बाद तो आई हैं।'

चंद्रावली की भोली-भाली सास को कुछ अनुमान नहीं था कि घर भगवान आए हैं तथा माया का चमत्कार कर रहे हैं। वह तो चंद्रावली का अभिमान तोड़ने आए थे। उसने एक बार गोपियों के पूछने पर अभिमान से कहा था, 'मुरली मनोहर तुम्हारे साथ रहता होगा, मेरे साथ नहीं, मैंने तो उनको निकट नहीं आने देना। आज भगवान आए हैं, उनकी रहस्य रूपी माया शक्ति को मनुष्य क्या जाने ?

कांता के रूप में भगवान चंद्रावली के साथ सो गए। जब सोए तो चंद्रावली को ऐसा लगा जैसे उसके साथ स्त्री नहीं अपितु स्त्री रूप में मर्द है, उसको बाहों में जकड़ा तो वह जकड़न मर्दाना थी। वह डर गई तथा उसने पूछा

'सत्य बताओ मेरे साथ धोखा करने वाले तुम कौन हो ?'

'मैं आपका बाल सखा कृष्ण काहन !' भगवान ने उत्तर दिया तथा उसी समय उसका शरीर मर्दाना हो गया। चंद्रावली ने घबरा कर धीरे से कहा-'आप ने धोखा किया। मेरी सास, रात, आभूषण छनकेंगे। आप...?

उस समय भगवान ने छः महीने की रात कर दी तथा उसकी सास

को बहरा कर दिया। इस तरह श्री कृष्ण जी ने चंद्रावली को छला।

यादव कुल का कृष्ण हुआ है, जिसने द्वापर में माया शक्ति से चंद्रावली को छला था। पर वही अवतार है। उसके अवतार होने की भी महिमा है।

देवी का तीर्थ थापना

अठसठि तीरथ देवी थापे पुरबी लगै बाणी ॥

(पन्ना १५०)

भारतवर्ष धर्मों तथा परमात्मा के भक्तों का देश है। तीर्थों की दुनिया है। कई हज़ार तीर्थ तथा ३३ करोड़ देवताओं के मंदिर (जैसे रघुनाथ मंदिर जम्मू में) हैं पर अठसठ तीर्थ मशहूर हैं। गुरुबाणी में आता है कि इन तीर्थों को पार्वती की विनती पर भगवान शिव जी ने स्थापित किया था। उन तीर्थों पर पर्व लगते हैं। भगवान की ऐसी अद्‌भुत लीला तथा कथा है।

६८ तीर्थों के थापना की कथा पुराणों में मिलती है तथा लिखा है कि एक बार शिव जी तथा पार्वती जी ने सारा मृत्यु लोक घूम कर देखा। मृत्यु लोक में सारे लोग दुखी ही नज़र आए। किसी को ईर्ष्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, लालच तथा भूख आदि ताप मनुष्य को आराम नहीं लेने देते थे। दुखी पुरुष तथा भविष्य को सोच कर देवी पार्वती जी ने भगवान शिव जी से पूछा–"हे नाथ ! इस मृत्यु लोक के जीवों का उद्धार कैसे हो सकता है ? यह तो माया के जाल में फंसे हुए स्वाभाविक ही अनेक तरह के पाप किए जा रहे हैं। यदि इस तरह के कुकर्म करते रहे तो धर्मराज के नरकों में स्थान नहीं रहेगा। उसे कोई अन्य स्थान ढूंढना पड़ेगा। नरक बड़ा करना पड़ेगा। आखिर यह क्या भेद है ?

भगवान शिव जी उस समय मन की मौज में थे। उन्होंने धतूरा

खाया हुआ था। नशे का दौर था, पार्वती की तरफ़ प्रेम भरी निगाह से देख कर बोले-'प्रिय ! तुम्हें पृथ्वी की चिंता क्यों है ? इस लोक के जीवों की चिंता करने के लिए मैंने ब्रह्मा आदि देवता बनाए हैं। सृष्टि में पाप तथा पुण्य दोनों हैं। बुरे तथा अच्छे जीव हैं। ऐसी बातों की तरफ ध्यान देना तुम्हारा काम नहीं। बस आपका काम है मेरे चरण दबाना।

'मृत्युलोक के जीवों को देख कर ख्याल आ ही जाता है।' पार्वती ने कहा।

मृत्युलोक के जीवों के उद्धार के लिए धरती पर दस करोड़ तीर्थ हैं। उन तीर्थों की यात्रा करने वाला जीव दुखों से निवृत हो जाता है। शिव ने उत्तर दिया

यह सुन कर पार्वती हैरान हो गई। वह आश्चर्य से पूछने लगी, 'हे प्रभु ! जरा सोचो ! मृत्युलोक के जीवों की आयु कलयुग में बहुत कम है। माया का विस्तार बहुत है। छोटी-सी आयु में वह भला उन दस करोड़ तीर्थों की यात्रा और स्नान किस तरह कर सकेंगे ? दस करोड़ तीर्थों पर पैदल चल कर जाने के लिए कितना समय लगता है, यह सोचा है या भंग के नशे में तो नहीं बोलते जाते ? कलयुग के स्त्री, पुरुष तो कम तीर्थों पर ही पहुंच सकते थे। उन तीर्थों के बारे बताओ।

'प्रिय ! बात तो तुम्हारी कुछ ठीक प्रतीत होती है। दस करोड़ तीर्थों पर कलयुग के जीव नहीं पहुंच सकेंगे। यदि वह न पहुंचे तो उनका कल्याण नहीं होगा। अच्छा, मैं सोचता हूं कि इस बात का और क्या साधन हो सकता है। हां या तुम कोई साधन बताओ।'

'पार्वती बोली- स्वामी जी ! मैं तो समझती हूं कि दस करोड़ तीर्थों में से कुछ तीर्थ चुन लिये जाएं। इन तीर्थों की यात्रा कलयुगी जीव शीघ्र कर लें। यही हो सकता है।'

शिव जी–'यह ठीक है। फिर तुम ही यत्न करो। योग शक्ति से सारे तीर्थों की यात्रा करके बताओ। इनमें से कौन–से अच्छे तीर्थ हैं; जिनके स्नान करने से दस करोड़ तीर्थों का फल प्राप्त हो जाए। यह चुनाव करके जगत जीवों को बताओ।

पार्वती ने यह बात स्वीकार कर ली। उसने शिव जी से योग शक्ति हासिल करके थोड़े समय में दस करोड़ तीर्थों की यात्रा की। उनमें से अच्छे तीर्थ चुने जो गिनती में ६८ हैं। इन तीर्थों का स्नान करने वाला दुःख से मुक्त हो जाता है।

१. मुकंदा २. गंगा ३. नर्मदा ४. घनी ५. सवेचर ६. सिंधू ७. सोवीरा ८. कोदेरी ९.कपला १०. पारा ११. पुण्य १२. देव नदी १३. हंस वेगा १४. संस पादा १५. सहंसी १६. शकौशकी १७. लोक कंपिआ १८. चरमनवती १९. महेश्वरी २०. सपूंनिया २१.सुपदमनी २२. भद्रा वेना २३. बेना २४. सुरनू २५. सुरथा २६. मनोरथा २७. हेला २८. पुलिंदका २९. सुपरीचा ३०. नारली ३१. जुआला ३२. उदसंक्रमा ३३. चक्रका ३४. मनोरथ देवया ३५. देव दराची ३६. वीमवाहनी ३७. गंभीरा ३८. लिंगा ३९. सूचकला ४०. कपिंजला ४१. काला ४२. सुआहा ४३. हुतासनी ४४. पुष्कर ४५. प्रयाग ४६. सुपुत्रका ४७. सुभद्रा ४८. हेमगर्भा ४९. परासरी ५०. अघाहा ५१. लकमेहा ५२. बीरबाहा ५३. महां तरन ५४. दण्डक ५५. नैमख्यारन ५६. आवती ५७. प्रभास ५८. बवारावपी ५९. वाराणसी ६०. अर्ध दीर्घा ६१. कांती ६२. माया ६३. नरारहन ६४. असवोहमा ६५. ब्रह्म क्षेत्र ६६. कालिंजर ६७. कलेश्वर ६८. महेश्वर।

यह तीर्थ चुन कर देवी पार्वती ने कहा–हे भोले जी ! आपकी सेवा तथा शक्ति अनुसार मैं वर देती हूं जो इन ६८ तीर्थों की यात्रा तथा स्नान कर लेगा उसको दस करोड़ तीर्थों के स्नान का फल मिलेगा। इन तीर्थों की स्थापना की तरफ ही इशारा करके 'गुरु' जी ने कहा

है कि ६८ तीर्थ देवी ने स्थापित किए हैं। एक जगह और आता है–

'जितने तीर्थ देवी थापे सभ तितने लोचहि धूरि साधू की ताई ।।'

जितने तीर्थ पार्वती देवी ने स्थापित किए हैं वह सारे ही तीर्थ व्याकुलता के साथ अच्छे साधुओं की धूरी लोचते हैं।

भाई मेहरू जी

चलणु हुकमु रजाई गुरमुखि जाणिआं ।
गुरमुख पंथ चलाई चलणु भाणिआं ।
सिदक सबूरी पाई करि शुकराणिआं ।
गुरमुख अलख लखाई चोज विडाणिआं ।
वरतण बाल सुभाई आदि वखाणिआं ।
साध संगति लिवलाई सचु सुहाणिआं ।
जीवन मुकति कराई सबद सिञाणिआं ।
गुरमुखि आपु गवाई आपु पछाणिआं ।१६।

(भाई गुरदास जी)

भाई गुरदास जी अपनी बाणी में गुरमुख पुरुष के लक्ष्ण बताते हैं। गुरमुख पुरुष वह है जिस ने भगवान के हुक्म अथवा रज़ा में चलना स्वीकार कर लिया। जो मार्ग गुरमुख को चलने के लिए बताया जाए उसी मार्ग पर स्वयं चले तथा दूसरों को उस पर चलना बताए। विवेक तथा साहस में रहे। गुरमुख पुरुष परमात्मा के भेद को जान जाता है। संगत में पहुंच कर सच्चे का ध्यान करते हैं, जीवन मुक्त हो जाते हैं। गुरमुख पुरुष स्वयं की पहचान कर लेता है। गुरमुख गुरु के वचनों पर चलता है।

ऐसे गुरमुखों की अनेक साखियां हैं, जो गुरमुख पुरुष पहले मनमर्जी वाले थे। फिर वह गुरु चरणों से जुड़ कर बड़े भाग्यशाली बने। ऐसे ही पुरुषों में भाई मेहरू जी हुए हैं, जो पहले चोर थे तथा

चोरी करके जीवन व्यतीत करते थे। उनके माता-पिता नहीं थे। वह बचपन में ही अनाथ हो गए तथा बुरे कर्मों में व्यस्त हो गए। बुरे कर्मों में रहते हुए बहुत सारा समय व्यतीत हो गया।

एक दिन संगत के साथ श्री गुरु अमरदास जी के चरणों में पहुंच गए। गोइंदवाल रह कर गुरु जी का उपदेश सुना, सेवा होती देखी तो उनको कुछ ज्ञान हुआ कि वह जो कुछ पीछे करते रहे वह पाप था। कई महीने गुरु जी की सेवा करते हुए नाम बाणी सुनते रहे।

कुछ समय पश्चात वापिस घर आए। घर वापिस आकर उनको प्रत्येक वस्तु अजीब तथा बुरी लगी। उनके पास भैंस भी चोरी की थी, उसको चोरी किए चार पांच साल हो गए थे। उस भैंस ने दो कटड़ियां दी थीं। वह भैंस नस्ल से अच्छी थी तथा कटड़ियां भी बढ़िया थीं। उन्होंने भैंस दोही पर दूध पीने का साहस न पड़ा।

यह भैंस चोरी की है। चोरी करना पाप है। नरकों का भागी बनना है। मेहरू सोच में पड़ गया। आखिर उन्होंने दूध न पिया। उनके घर चोरी के बर्तन तथा चोरी का ही राशन था, शराब थी। उन्होंने सब कुछ घर से बाहर रख कर लोगों को बांटना शुरू किया।

सुबह हुई तो मेहरू ने भैंस को खोल कर साथ में कटड़ियां भी लीं तथा उस गांव की ओर चल पड़ा। जिस गांव में से चोरी करके लाया था। वह भाई नौध का घर था। कटड़ियों सहित भैंस उनके घर के अंदर ले आया। भैंस खुरली पर आ खड़ी हुई तो भाई नौध ने जब अपनी भैंस देखी तो हैरान हुआ। उसने अपनी धर्म पत्नी को आवाज़ दी। वह अंदर से बाहर आई तो भैंस को देख कर हैरान हो गई।

भाई नौध जी का ध्यान मेहरू की तरफ गया। पति-पत्नी दोनों आगे बढ़े तो भाई मेहरू ने दोनों को नमस्कार करके नम्रता से कहा - हे माता तथा पिता ! अपने इस बालक को क्षमा करना, बड़ा पापी है बालक ! भूल हुई। आपकी दुधारू भैंस मैं कभी खोल कर ले

गया था। उस समय मूर्ख तथा अज्ञानी था। अब मुझ पर सतिगुरु जी ने कृपा कर दी है। मुझे ज्ञान हो गया है। मैंने इस भैंस को दोहा नहीं, आप इसे संभालो और यह लीजिए रुपया जो मैंने दूध पिया है।

इस तरह बोलते हुए भाई मेहरू ने चांदी के रुपए दोनों के आगे ढेर कर दिए। भाई नौध तथा उसकी पत्नी बड़े आश्चर्य-चकित हुए। उन्होंने पूछा–'भाई तुम हो कौन ? भाई मेहरू ने अपनी सारी व्यथा सुनाई तथा अंत में कहा-'सब सतिगुरु महाराज की कृपा है। उन्होंने मोड़ लिया, बुरे काम मुझ से छुड़वा दिए।'

भाई नौध तथा उसकी पत्नी ने भाई मेहरू को प्रसाद छकाया तथा दोनों ही उसके साथ सतिगुरु जी के पास गोइंदवाल पहुंचे तथा गुरु चरणों से प्रीत लगाई। भाई मेहरू जी एक अच्छे गुरसिक्ख हुए तथा सिक्खी का प्रचार भी करते रहे। सतिगुरु जी की कृपा से चोर से गुरसिक्ख बन गया।

श्री अमृतसर जी का इतिहास

अमृतसर, जालंधर शहर के रेलवे स्टेशन पश्चिमोत्तर ब्यास नदी का रेलवे पुल पार करने पर ३३ मील पर ब्यास स्टेशन मिलता है। ब्यास नदी हिमालय के दक्षिण कांगड़ा ज़िला में से निकल कर आई है। २९० मील चलने के बाद हरीके पत्तन के पास सतलुज नदी में जा मिलती है। महाभारत (बनपर्व १३०वां अध्याय) में लिखा है कि वशिष्ठ मुनि पुत्र के शोक में व्याकुल होकर ब्यास नदी पर पृथ्वी में गिर गए और बिपासे होकर उठे थे। इस कारण इसका नाम बिपासा (ब्यासा) है।

महाभारत (अनुसासन पर्व पच्चीसवां अध्याय) बताता है कि ब्यास नदी में स्नान करने पर मनुष्य पापों से मुक्ति प्राप्त करता है। (ऐसा पवित्र जल है।)

ब्यास स्टेशन से २६, जालंधर शहर से ४९ मील, लाहौर से ३३

मील, कोलकात्ता से १२३२, मुम्बई से १२६० मील, कराची से ८७६ मील और बटाला से २४ मील दूर अमृतसर स्टेशन है।

पंजाब की ब्यास और रावी दोनों नदियों के अन्दर (३१ अंश, ३७ कला, १५ विकला उत्तर अख्यांश और ७४ अंश ५५ पूर्व देशांतर में) श्री गुरु रामदास जी महाराज का बसाया हुआ सुन्दर नगर अमृतसर बसता है।

तीसरे पातशाह श्री गुरु अमरदास जी ने आरम्भ सम्वत १६२० में टक लगवाया था। उसी जगह सतिगुरु जी ने सम्वत १६२१ में तुंग, सुल्तानविंड, गुमटाला आदि गांवों के बीच तालाब खुदवाया। यही तालाब श्री गुरु अर्जुन देव जी ने सम्वत १६४५ में पूरा किया।

अर्थात तीसरे गुरु जी की आज्ञा से सम्वत १६३१ में गांव बना। इस गांव का नाम 'गुरु का चक्क' रखा गया। अपने रहने के लिए भी मकान बनाए जो कि आजकल 'गुरु के महल' नाम से प्रसिद्ध है। फिर पूर्व की ओर 'दुख भंजनी बेरी' के पास सम्वत १६३४ में तालाब खुदवाया, जो उस समय अधूरा ही रह गया। पांचवें पातशाह सतिगुरु अर्जुन देव जी ने गद्दी पर विराजमान होकर इस तालाब की खुदवाई आरम्भ की तथा व्यवसायी व्यापारी लोग प्रेम से बुला कर बसाए। शहर आबाद किया और फिर इसका नाम 'रामदासपुरा' रखा गया। सम्वत १६४३ में सरोवर को पक्का करना शुरू किया और इसका नाम अमृतसर प्रसिद्ध हो गया। इस तालाब की लम्बाई ५०० फुट, चौड़ाई ४९० और गहराई १७ फुट है। फिर १ माघ १६४५ को तालाब के मध्य में श्री हरिमंदिर साहिब की नींव रखी और इसको पूरा करके श्री गुरु ग्रंथ साहिब मध्य में विराजमान किए गए। इस हरिमंदिर साहिब की परिक्रमा चौड़ी २५ फुट और हर एक बाही ५०० फुट है। दर्शनी ड्योढी से हरिमंदिर साहिब तक पुल २४० फुट लम्बा और २१ फुट चौड़ा है। जिसके नीचे ३७ सुरंग द्वारियां हैं। पुल के

चारों ओर २० लालटेन सुनहरी चोटियों वाली हैं। मंदिर की लम्बाई पश्चिम की ओर से पूर्व तक ५५ फुट से कुछ कम और चौड़ाई लगभग ३५ फुट है। पुल का फर्श सफेद संगमरमर का सुन्दर बना हुआ है। विभिन्न रंग-बिरंगे नगीनों आदि के साथ जड़ी हुई इमारत है, जिसकी लागत और कला का अंत नहीं आ सकता। यह मंदिर और स्थल बड़ा पवित्र है और इसके स्नान दर्शन का महान पुण्य है।

यथा-

जिन स्री हरि मंदर देख लयो, जगनाथ दिदार कीया न कीया ।।
जिन कीन सनान सुधासर मैं तिन गंग शनान कीया न कीया ।।
जिन लीन सुआद त्रिहावल को, तिन आबिहयात पीया न पीया ।।
इह बातन से जोऊ बेमुख है नर, सो भव माहि जीया न जीया ।।

सन १८९७ की जनगणना के समय अमृतसर में १३६७६६ लोग थे, जिनमें से ७८७८६ पुरुष और ५७९८० औरतें थीं। इनमें से ६३३६६ मुसलमान, ५६६५२ हिन्दू, १५२०१ सिक्ख, ८४८ ईसाई, १४३ जैन, ५ पारसी और एक अन्य था। जनगणना के अनुसार यह भारत में से १९वां और पंजाब में तीसरा शहर है। रेलवे स्टेशन से आधा मील दक्षिण की ओर अमृतसर शहर है।

शहर के बीच अमृतसर नामक तालाब है, जिसके नाम पर अमृतसर शहर विख्यात है। महाराजा रणजीत सिंघ जी ने सम्वत १८५९ में इस शहर पर कब्जा किया। हरिमंदिर साहिब को सोने से विभूषित किया। अमृतसर सरोवर में जल हंसली के जरिए पड़ता था जो बावा प्रीतम दास जी और बावा संतोख दास जी के द्वारा सम्वत १८३८ में गांवों-गांव रावी से लाया गया। तदुपरांत सम्वत १९२३ में बारी दुआब वाली नहर में से लेकर हंसली द्वारा तालाब में डाला जाता रहा, हंसली सारी पक्की कर दी गई है। यह संत गुरमुख सिंघ जी के साहस द्वारा ही सारा सम्पन्न हुआ। यह तालाब (सरोवर) ४५७ फुट लम्बा और

इतना ही चौड़ा है। जिसकी चारों ओर परिक्रमा संगमरमर, काले तथा भूरे पत्थर के चौकन्ने (टलां) काट काट कर बनाई हुई है। सरोवर के चारों ओर परिक्रमा खुली करके बरामदे बना दिए गए हैं। करीब ही निकल साहिब द्वारा निर्मित कमेटी का घण्टाघर है, जो सन १८७० में बना था। उसके स्थान पर दर्शनी दरवाज़ा बना दिया गया है। परिक्रमा के पास तक जूता नहीं जा सकता, न कोई स्नान करके तेड़ का कपड़ा ही तालाब में निचोड़ सकता है और न ही कुल्ला कर सकता है। सरोवर के मध्य में श्री दरबार सहिब जी का मंदिर शोभा दे रहा है। (अमृतसर शहर में और भी अनेक गुरुद्वारे हैं, जिनका वर्णन अमृतसर में देख सकते हैं।)

श्री दरबार साहिब में कई मेले लगते हैं। गुरु साहिबों के सारे गुरुपर्व धूमधाम से मनाए जाते हैं। एक वैसाखी का, दूसरा दीवाली का तथा तीसरा परलोक झांकी का जो नित्य प्रातःकाल नजारा नजर आता है। वह वास्तव में परलोक झांकी है। उस समय प्रेमियों के मन आनंद भक्ति में मग्न होते हुए गुरु साहिब के चरणों में जुड़े होते हैं। किसी ने सत्य ही कहा है–

हे मन ! सुन आसा की वार।
होए निरमल कर शनान सर देखो गुर दरबार।
कर डंडौत सगल अघ खंड लेहु परिकरमा चार।
पुषप प्रसाद प्रीत युत लेकर स्री गुरु ग्रंथ निहार।
ब्रहम महूरत वाक कथा सुण, सुख युत दिवस गुजार।
धरम क्रित कर मधुर वचन रच कलि मै इह तप सार।
दान सनान संत के दरसन इह अमोल फल चार।
बुधि म्रिगिंद बाग चंदन तरु मिलत न बारं बार।

अमृतसर की पवित्रता

सुना जाता है कि यहां पुरातन काल में रावी तथा ब्यास नदी इस

स्थान के निकट ही बहती थीं। यहां अब दरबार साहिब है वहां एक ढाब स्वच्छ पानी की भरी और आसपास घना जंगल था। इसका दृश्य अद्‌भुत एवं ऐसा होता था कि मृत हृदय को दर्शन मात्र से सजीव करने वाला था।

इसी कारण यहां बड़ी चहल-पहल थी। ऋषि-मुनि, साधू-संत यहां आकर ईश्वर के ध्यान में लिवलीन हुए प्रभु कीर्तन करते रहते थे। वेद व्यास का जन्म यहां ही हुआ, क्योंकि पराशर ऋषि यहां आकर निवास रखते थे।

रामासवमेध में से वृतांत मिलता है कि ब्रह्म ऋषि वाल्मीकि भी यहां ही रहते थे। इस स्थान पर ही सत्यवंती सीता जी ने अपने वनवास के दिन इसी महर्षि के सहारे व्यतीत किए थे। यहां ही श्री राम चन्द्र के दोनों पुत्र लव-कुश पैदा हुए थे। जो कि महर्षि वाल्मीकि की कृपा से दोनों कुमार प्रत्येक विद्या में उच्चकोटि के चतुर गिने जाते थे। अन्त में लव ने अपने बाहुबल द्वारा लाहौर और कुश ने कसूर बांध कर अपना राज कायम किया।

इधर इस पवित्र स्थान को श्री गुरु नानक देव जी ने प्रगट किया। इससे पूर्व इसकी पवित्रता और इसका महत्व किसी ऋषि-मुनि को स्मरण नहीं आया। केवल ढाब का जल पीकर वृक्ष की ठंडी छाया के नीचे कुछ देर आराम करके और जंगली फल-फूल खाकर चले जाया करते थे।

साखी अमृतसर नाम पड़ने की

एक बार श्री गुरु नानक देव जी महाराज सुलतानपुर लोधी की तरफ जा रहे थे तो यहां अब हरिमंदिर साहिब है, उस समय यहां एक जल से भरपूर पूर्व की तरफ ढाब थी। अत्यंत रमणीय स्थान

देखकर सतिगुरु यहां विराजमान हो गए और श्री गुरु जी ने वचन किया-

पाकी नाई पाक थान

1. अचानक ही सुलतानविंड ग्राम का वासी सुलताना जाट खीर लेकर उपस्थित हुआ। हिस्से आई खीर जब मरदाने ने खाई तो उंगलियां चाटते हुए बोला-महाराज ! यह तो अमृत रूप भोजन है। श्री गुरु नानक देव जी ने प्रसन्न होकर कहा-भाई ! हमेशा ही ऐसा अमृत* बांटा जाया करेगा।

अन्य प्रसंग-

2. एक बार श्री गुरु नानक देव जी महाराज तलवंडी से गंगा जी की तरफ जा रहे थे तो मार्ग में यहां आ ठहरे, जहां अब श्री दरबार साहिब जी का मंदिर है और सायं:काल शब्द उच्चारण किया जिसे मरदाना ने राग द्वारा पढ़ा

प्रभाती महला १ ॥

अंम्रितु नीरु गिआनि मन मजनु अठसठि तीरथ संगि गहे ॥ गुर उपदेसि जवाहर माणक सेवे सिखु सुो खोजि लहै ॥१॥ गुर समानि तीरथु नही कोई ॥ सरु संतोखु तासु गुर होइ ॥१॥ रहाउ ॥ गुरु दरीआउ सदा जलु निरमलु मिलिआ दुरमति मैलु हरै ॥ सतिगुरि पाइऐ पूरा नावणु पसू परेतहु देव करै ॥२॥ रता सचि नामि तल हीअलु सो गुर परमलु कहीऐ ॥ जा की वासु बनासपति सउरै तासु चरण लिव रहीऐ ॥३॥ गुरमुखि जीअ प्रान उपजहि गुरमुखि सिव घरि जाईऐ ॥ गुरमुखि नानक सचि समाईऐ गुरमुखि निज पदु पाईऐ ॥४॥६॥

(पन्ना १३२८-२९)

इस प्रकार जब शब्द समाप्त हुआ तो श्री गुरु नानक देव जी जल

---

* इसलिए यह अब सत्य है कि प्रतिदिन कड़ाह प्रसाद बंटता है, संगतें प्रसन्न होकर ग्रहण करती हैं।

रूप हो गए, अदृश्य हो गए तो भाई बाला और भाई मरदाना बड़े हैरान तथा परेशान हुए। इधर-उधर झांकते रहे। इतने में भाई बाला ने कहा-

भाई मरदाना ! हम साथ रहकर देखते आए हैं जहां कहीं किसी को दुःख-दर्द हुआ वहां टका (पैसा) रखकर अरदास पर ही फल प्राप्त होता फरमाते थे।

इस पर हम भी प्रार्थना करें और जब टका खोजा तो पास है नहीं। इतने में सलाह की गई कि एक पैसा तेरे सिर का मूल और एक पैसा बाले ने कहा मेरे सिर का मूल। दोनों ने सिर गिरवी रखकर प्रार्थना की तो श्री सतिगुरु जी प्रगट हो गए। सो यह सब इस स्थान का प्रभाव है तथा फरमाया कि यहां कौआ हंस हुआ करेंगे तथा मनवांछित फल प्राप्त होंगे।

3. सम्वत १६०६ विक्रमी को गुरु अमरदास जी महाराज संगतों सहित भ्रमण करते हुए गुरु अंगद देव जी महाराज से यहां की उपमा सुनकर यहां पधारे तथा इस कच्चे तालाब पर जो इस समय 'ढाब' कारण प्रसिद्ध था, बैठकर दुनिया को अर्थात् संसार के जीवों को कई प्रकार का उपदेश देकर कृतार्थ करते थे। बताया जाता है कि गुरु अंगद देव जी के अंगूठे पर जो सदा दर्द रहा करता था, इसको दूर करने के लिए जो जड़ी-बूटी खोज कर मिली थी, उसका नाम 'अमृती' था। (इसे लगाने से गुरु जी को आराम आ गया था।) इस कारण भी इस स्थान का नाम अमृतसर प्रसिद्ध हुआ।

4. श्री गुरु अमरदास जी को अपने सतिगुरों की ओर से इस स्थान के पवित्र होने का महत्व सुन कर* दृढ़ विश्वास हो गया था। इसलिए आप यहां एक कस्बा बसाने के कार्य में जुट गए थे, क्योंकि गुरु

* बोलै गुरु तहां आदि कीनो तप संभु मन, तप को प्रभावत मैं बेअंत कला धर है। नृप जो इखवाक तिन कीनो पुन तहां यग, हवन के थान सो प्रमानो मोदकर है। कहयो गुरु अंगद जी सुनयो सिख अमर ने, तहां इशनान की सु इछा फुरी वर है। समो औ समाज पाई रचेंगे तहां ही सर, जहां अब दीसत प्रतछ सुधासर है।

रामदास जी सोढी का घर जो लाहौर शहर मुहल्ला सोढियों में था, वह ज़ालिम काजियों ने अपने कब्जे में कर लिया और गांव गोइंदवाल में तीन पुत्रों तथा बीबी भानी के रहने के लिए थोड़ी-सी भूमि कुछ चहल-पहल न देखकर यहां एक नया कस्बा बसाने की योजना सोची। अन्त में जमींदारों से भूमि खरीद कर आषाढ़ वदि एकादशी सम्वत १६१९ विक्रमी को रामदासपुरा की नींव रखी, जो बाद में 'अमृतसर' प्रसिद्ध हुआ। इसके अलावा कई और मकान भी बनवाए जो गुरुओं के नाम से प्रसिद्ध हैं।

5. लोगों में प्रसिद्ध है कि गुरु रामदास जी ने अपने सतिगुरु अमरदास जी के नाम पर इस सरोवर का नाम 'अमृतसर' रखा जो बाद में अमृतसर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस सरोवर को पवित्र समझ कर गुरु रामदास जी महाराज हमेशा सुबह के समय बेर के नीचे (जो दुख भंजनी साहिब वाली जगह पर विद्यमान है) सूर्य उदय होने तक स्नान ध्यान करके ईश्वर के भजन में मग्न रहा करते थे, फिर महलों में जाते और लंगर बांट कर संगत को धर्म उपदेश करते थे। सम्वत १६३३ विक्रमी को सरोवर की खुदाई आरम्भ हुई। मुगल बादशाह अकबर ने गुरु अमरदास की महिमा सुनी तो बड़े प्रेम से दर्शनों के लिए उपस्थित हुआ। वह सतिगुरु के लंगर से प्रसाद लेकर आनंदित हो गया। उसने गुरु जी को एक सौ मोहरें भेंट कीं जो सतिगुरु ने उसी समय निर्धनों में बांट दीं।

यह देखकर बादशाह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने सतिगुरु जी से विनती की कि लंगर के लिए कोई सेवा बताएं तो सतिगुरु ने वचन किया कि बादशाह का धर्म अपनी प्रजा का पालन करना होता है। इस समय अकाल के कष्ट से लोग भूखे मर रहे हैं, यदि कुछ हो सकता है तो इनकी सहायता करो। जिस पर बादशाह ने एक वर्ष का लगान (मामला) माफ कर दिया। इससे गुरु साहिब का यश दूर-दूर तक

फैल गया तो बहुत सारे लोग आपके सेवक बन गए। इससे बहुत सारा धन लंगर में भेंट आना शुरू हो गया।

गुरु रामदास जी तो सदैव यहां ही रहा करते थे लेकिन गुरु अमरदास जी महाराज, बीबी भानी तथा गुरु रामदास जी को देखने के लिए कभी-कभी यहां आया करते थे। उस समय इस स्थान पर हर प्रकार के मेवेदार और जंगली फल-फूलों के वृक्ष होने के कारण यह स्थान बहुत सुन्दर और रमणीक था। सम्वत १६३४ विक्रमी को गुरु अमरदास जी महाराज के सेवक भाई सालो, चंद्रभान, रूप राम तथा गौरा जी आदि सिक्खों ने ७२ जातियों के लोग पट्टी, कसूर तथा कलानौर आदि स्थानों से लाकर यहां बसाए थे जो अब तक गुरु के महलों के आसपास आबाद हैं।

जब यह कस्बा बसने लग गया तो फिर दूर-दूर से लोग आकर अपने आप ही आकर बसने लग गए। तब इस जगह का नाम 'गुरु का चक्क' प्रसिद्ध हो गया। दफ्तरों में भी यही नाम है। अभी सरोवर और गुरु का बाजार का निर्माण कार्य चल ही रहा था कि इतने में अकस्मात श्रावण वदि ३ सम्वत १६३८ विक्रमी को श्री गुरु रामदास जी महाराज गोइंदवाल में ज्योति-ज्योत समा गए।

इनके पश्चात श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज गुरुगद्दी पर विराजमान हुए। इन्होंने चक्क की उन्नति के लिए भरपूर कार्य किए। गुरु जी ने पहले गुरु बाजार तथा मकान पक्के बनवाए और एक दरवाज़ा 'चक्क' का बनवाया जो इस समय दर्शनी ड्योढ़ी के नाम से प्रसिद्ध है। मगर इस कार्य में जितनी मुश्किलें गुरु साहिब को आईं, वह सब उनके बड़े भाई पृथी चंद के कारण ही आईं। उसने शहर के तीर्थ को उजाड़ने में कोई कसर न छोड़ी। वह हमेशा कोई न कोई विवाद खड़ा कर देता लेकिन ईश्वर की इच्छा को कोई रोक न सका।

सत्य है कि-

आपे ही प्रभु राखता भगतन की आनि ॥

जो जो चितवहि साध जन सो लेता मानि ॥१॥

(पन्ना ८१७)

जब इस तरह भी पृथी चंद अपने मकसद में असफल रहा तो इसने गांव हेहर (जो इसको सुलही खां सूबा लाहौर की बाबत अकबर बादशाह से जागीर में मिला हुआ था) में एक सरोवर का वैसा ही निर्माण किया और अपने आपको गुरु कहलाने लगा।

परन्तु गुरुवाक-

कूड़ निखुटे नानका ओड़कि सच रही ॥

के अनुसार 'हेहर' की प्रसिद्धि न हुई। लाख यत्न करने पर भी वह सरोवर सूखा* ही रहा। इसके बिना अपने आदमियों द्वारा गुरु साहिब की बदनामी करने के लिए कई प्रकार के झूठे नाटक करने आरम्भ कर दिए। दीवान चन्दू लाल शाही खत्री से मिलकर 'जो गुरु साहिबों से रिश्ता न होने के कारण वैर रखता था गुरु साहिब को बहुत कष्ट और दुःख दिए। जिसे लिखते हुए शरीर कांप उठता है। इन नीच, अयोग्य और निंदनीय कार्यों में मसंद अक्सर इसके सहायक बने रहे और कई वर्षों तक गुरु साहिबों की कार भेंट स्वयं ही हड़प जाते रहे, क्योंकि सारा लेन देन अर्थात् घर का खज़ाना और बाहर की आमदन पृथी चन्द के ही हाथ में रहती थी। जिसका परिणाम यह हुआ कि एक बहुत भारी रकम के सतिगुरु जी ऋणी हो गए लेकिन फिर भी लंगर जैसे का वैसा ही चलता रहा।

जब पृथी चंद को इस पर भी संतोष न आया तो मसंदों के साथ मिलकर हर किसी को लंगर में प्रसाद ग्रहण करने की प्रेरणा करने लगा फिर लोग बेथौहे पंगत** में आकर जा बैठें तो भी यह वाक सफल हुआ

---

* अब इसमें उल्लू घर किए बैठे हैं। ** जैसा कि अब आम रिवाज है कि गुरुद्वारा धर्मशाला को गृहस्थी व्यवसायी और प्रसिद्ध व्यक्ति भी उठ भागते हैं और पंगत में बैठते हैं। यह लंगर शरणार्थी भिक्षुक निर्धनों के लिए होते थे।

निखुटि न जाई मूलि अतुल भंडारिआ ।। (पत्रा ३२०)

मगर इसका यह ख्याल था कि ऊब कर स्वयं ही लंगर बंद करेंगे तथा फिर इनकी बदनामी होगी परन्तु श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज बड़े दयालु और धर्म मूर्त थे। उन्होंने अपने घर का बहुत सारा सामान बेच दिया पर लंगर को बन्द न होने दिया। लंगर में निर्धन धनी, पीर-फकीर सभी को हर समय भोजन प्राप्त होता। लोग उनका अभिनन्दन करते जिससे गुरु जी का और भी यश बढ़ गया। गुरु जी ने अपनी मुश्किल को किसी के आगे व्यक्त न किया। गुरु साहिब के पवित्र ख्यालों तथा नेक कर्म का फल यह हुआ कि भाई गुरदास जी जो आप जी के मामा जी थे, ने सारा हाल मालूम किया और बाबा बुड्ढा जी, भाई संधू जी आदि के साथ मिलकर मसंदों और पृथी चंद की करतूत को सारी संगत में प्रगट किया। यह सुन कर संगत हैरान परेशान हुई चरणों में गिर गई। तदुपरांत पहले की तरह आगे से भी बढ़ कर कार भेंट चढ़ने लग गई। उसके बाद गुरु जी ने श्री अमृतसर और संतोखसर की खुदाई शुरू कर दी।

सम्वत १६४० विक्रमी में श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज ने सरोवर के बीच हरिमन्दिर बनवाया। यहां बैठ कर श्री गुरु अमरदास जी और श्री गुरु रामदास जी महाराज संगतों को उपदेश किया करते थे। वहां आने-जाने के लिए एक फर्श का निर्माण शुरू किया। इसके पश्चात विक्रमी १६४५-४६ को सतिगुरों ने श्री रामसर, संतोखसर बनवाए। जिनकी उपमा में सतिगुरु ने निम्नलिखित शब्द उच्चारण किए। जो श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में अंकित हैं-

राग सोरठि महला ५ ।।

रामदास सरोवरि नाते ।। सभि उतरे पाप कमाते ।।

(पत्रा ६२५)

तथा शहर की उपमा में-

डिठे सभे थाव नही तुधु जेहिआ ॥

इसके अलावा कुछ कुएं खुदवाए जो अब तक गुरुओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। चाहे इस शहर का वास उपमा योग्य है लेकिन जो बात 'दरबार साहिब' में है, इसकी मिसाल कहीं नहीं मिलती। इसकी जितनी उपमा की जाए कम है, क्योंकि यहां हर समय भजन पाठ, पुण्य दान तथा कथा-कीर्तन होता ही रहता है। यदि इसको स्वर्ग कहा जाए तो कोई असत्य नहीं।

अगर फरदोश, बरूए जिमी असत ॥
हमीं असत, हमीं असत, हमीं असत ॥

अर्थात-यदि पृथ्वी पर कोई स्वर्ग है तो वह यही है। यही है, यही। अधिक उपमा करने से पुस्तक बड़ी होने का डर है, इसलिए प्रेमी जनों के लिए कुछ कारण लिखे जाते हैं-

१. इस तरह का मंदिर दुनिया के किसी तख्त पर नहीं जो इतनी कीमत का हो या इतनी प्रशंसा 'महिमा' वाला नहीं होगा।

२. जितना सफाई का यहां ख्याल रखा जाता है और कहीं नहीं।

३. यहां दूसरे मत के लोगों को बुरी दृष्टि के साथ नहीं देखा जाता। चाहे किसी धर्म का व्यक्ति हो। कोई रोक-टोक नहीं, दर्शन कर सकता है।

४. इस दरबार से धनी-निर्धन दोनों एक जैसा लाभ प्राप्त करते हैं और मंदिर नियत समय खोले जाते हैं। परन्तु यह हर समय खुला रहता है। केवल ३-४ घण्टे रात को सफाई के कारण बंद कर दिया जाता है।

५. हरिमंदिर साहिब के खुलने के समय स्त्री-पुरुष गुरबाणी का पाठ करते हुए रात के एक बजे से आने आरम्भ हो जाते हैं। कोई पहरेदार इनको रोक नहीं सकता और इस समय से लेकर फिर रात तक चहल पहल ही रहती है।

प्रातःकाल ढाई बजे से किवाड़ खुलते हैं तो अन्दर आना-जाना शुरू हो जाता है। बारी-बारी शब्द कीर्तन करने वाले रागी सिंघ दिन भर बल्कि रात के १० बजे तक कीर्तन लगातार करते रहते हैं।

यही सच्चखंड है जैसा कि

अमृतसर पर यथा कबित

हांसी गई भूल यमदूतन उदासी भई,
पाप की कलासी न तलासी करै डर के।
सतय की अटासी जहा धरम की घटा सी दान,
पुंन की छटासी शोक नासी दीन तर के।
जलवा कवि खासी धुनि बेद की प्रकासी महा,
नारी कमलासी रूपवासी मैनसर के।
कासी की ना चाह अबिनासी हवै मवासी रहैं,
दासी कर राखी मोखवासी सुधासर के।

६. इस पवित्र स्थान की जाहरा करामात यह है कि अन्य कहीं भी इस तरह की महिमा वाला मंदिर नहीं, क्योंकि अधिकतर लोगों ने काफी मंदिर बनवाए लेकिन बे-रौनक रहे, अंत उजड़ गए। जैसा कि-

१. फतेह सिंघ घड़ियालिए ने गिलवाली दरवाजे के बाहर ऐसा मंदिर ही बनवाया और वह सूखे तालाब के नाम पर अंत में मलियामेट हो गया।

२. अकबर बादशाह के ख्वाजा शमशेर खां ने बटाला में धार्मिक स्थल बनवाया पर वह भी फीका रहा।

३. बटाला के निकट अचल गांव में ऐसा ही मंदिर बना लेकिन वह भी सूना है।

४. पृथी चंद ने गांव हेहर में सरोवर का निर्माण किया उसमें उल्लू के घौंसले ही हैं।

५. हरनमुनारा जिला शेखूपुरा में यहां पर एक रात भी प्राणी नहीं ठहर सकता।

६. बाग कृपा राम चोपड़ा जो वजीराबाद में पड़ा सांय-सांय करता है।

७. दुख निर्वाण तहसील तरनतारन में है। वहां पर कोई भी नहीं जाता।

८. नेपाल के काठमांडु शहर में ऐसे नमूने का है । वहां स्वयं जाकर देखा पर खाली पड़ा है। इस प्रकार और भी होंगे लेकिन रौनक कहीं भी नहीं देखी। इस हरिमन्दिर साहिब की नकल के और भी चाहे कई मन्दिर होंगे लेकिन स्वर्ग यही है।

९. कोई चाहे कितना भी उदास एवं चिंतातुर हो लेकिन श्री दरबार साहिब जाते ही सब चिंता एवं फिक्र दूर हो जाते हैं।

१०. श्री दरबार साहिब जी की प्रतिष्ठा इतनी है कि चाहे गवर्नर या वायसराय आदि भी क्यों न हो, जूते उतार कर अंदर प्रवेश करना पड़ता है। जूते परिक्रमा में नहीं ले जा सकते तथा न ही मदिरा पीकर कोई अंदर जा सकता है। अमीर-गरीब सबको चरण धोकर अन्दर जाना पड़ता है।

११. ग्रीष्म में ठंडे जल तथा शीत ऋतु में अग्नि की अंगीठी स्थान-स्थान पर रखी जाती है। जमीन पर बोरे सतरंगी कंबल आदि बिछाए जाते हैं ताकि संगतों के चरणों को सर्दी न लगे। यहां कई-कई लोग गरीब बीमार व्यक्तियों को निःशुल्क दवाईयां देते हैं। कई धनवान श्री दरबार साहिब में अपने हाथों से सफाई करते हैं।

१२. दीपावली और वैसाखी पर्व पर हजारों साधू-संतों में प्रसाद बांटा जाता है। धनवान स्वयं अपने हाथ प्रसाद बांटते है।

१३. अन्य तीर्थों से यहां के स्त्री-पुरुष गरीब, दुखी एवं बीमार साधुओं की अटूट सेवा करते हैं।

१४. भूले भटके तथा जुदा साथी दरबार साहिब की परिक्रमा में

मिल जाते हैं।

१५ इस स्थान की शोभा केवल बाहरी ही नहीं अपितु प्राकृतिक नूर है और जब तक यह पृथ्वी अटल रहेगी तब तक इस दरबार की शोभा दिनों-दिन बढ़ती जाएगी। यहां अन्य मंदिरों की तरह मन में बुरे ख्याल लाने वाले दृश्य नग्न तस्वीरें आदि नजारे नहीं जिनको देखकर आदमी का मन बुरे कार्य की तरफ आकर्षित हो जाए, जैसा कि जगन्ननाथ के मन्दिर या नेपाली मन्दिरों में होता है। लेकिन श्री दरबार साहिब में सुन्दर रचना की बराबरी नहीं कर सकते। श्री दरबार साहिब में रात-दिन इतनी भीड़ रहती है कि अंदर दर्शन करने तक के लिए पर्व में नहीं जाया जा सकता।

विशेष बात यह है कि पंजाब में तथा सारी दुनिया में यह शहर काशी, द्वारिका, मक्का-मदीना आदि से भी कई दर्जे बढ़ा हुआ है क्योंकि इस ढंग का संसार में अन्य कोई मन्दिर नहीं है। इसकी प्रशंसा कलम तथा जुबान द्वारा कभी भी नहीं हो सकती, जिसने एक बार दर्शन कर लिए है, फिर उम्र भर इसकी शोभा को दिल से नहीं भूल सकता। लोग इसको कल्प वृक्ष तथा कामधेनु आदि की तुलना देते हैं तथा कोई झूठ नहीं, सचमुच ही स्वर्ग है।

बैकुंठ नगरु जहा संत वासा ॥

(पत्रा ७४२)

शहर की अवस्था

महाराजा *रणजीत सिंघ साहिब शेरे पंजाब ने श्री अमृतसर को सम्वत १८६१ विक्रमी में विजय किया था। इस शहर की फसील को महाराजा रणजीत सिंघ ने सम्वत १८७८ विक्रमी में मार्फत गणेश दास अधिकारी द्वारा इमारत बनवाना आरम्भ किया, जो कटड़ा महां

* महाराजा रणजीत सिंघ का जन्म १७८० ई० में गुजरांवाला में हुआ।

सिंघ से कारीगर मुहम्मद यार खां के विचार से बननी आरम्भ हुई। फिर यह कार्य सरदार देसा सिंघ मजीठीए ने किया। फिर १८८१ को यह कार्य सरदार लहणा सिंघ सपुत्र सरदार देसा सिंघ के सुपुर्द हुआ। बाद में यहां के एक साहूकार रामानंद जिसको महाराजा साहिब बाबा कहा करते थे, की मृत्यु के पश्चात इसकी पत्नी से सात लाख रुपया वसूल हुआ जो इसी इमारत पर खर्च किया गया।

पक्का कोट पर — *धूड़ कोट जिस पर तोप चल सकती थी*

५८२००० रुपए — ११८००० रुपए

कुल ७००००० रुपए

सम्वत १८७८ से सम्वत १८९५ विक्रमी तक महाराजा साहिब के जीवन तक इस इमारत का कार्य चलता रहा। फिर सम्वत १८९६ में महाराजा शेर सिंघ के गद्दी पर विराजमान होने पर पुनः शुरू हुआ जिस पर

पक्का कोट ५७०४६०, १२ दरवाज़े ७२००
१२ जोड़ी तख्त, १२ दरवाज़े १८००
७ तख्त लकड़ी के धूड़ कोट १०००
कुल खर्चा लागत ६७०४६०
महाराजा रणजीत सिंघ के समय का ६३३००० रुपए,
कुल जोड़ १२४०४६०
धूड़ कोट की पक्की दीवार की चौड़ाई २ गज
☆धूड़ कोट कच्ची की लम्बाई चौतरफी ८७३४ गज
चौड़ाई १० गज

इस प्रकार सारी फसील तैयार हुई, जिसमें २० २० बुर्ज हरेक दरवाजे के बीच तैयार किए गए जो कुल ४० थे। सम्वत १९२२ में ब्रिटिश राज के समय इस धूड़ कोट व फसील को ध्वस्त करके इसकी

☆ इसके अलावा धूड़कोट १० गज चौड़ा, ६ गज ऊंचा, २ इमारती १२ गज

मिट्टी और ईंटों को बेच दिया गया और इसके स्थान पर पक्की दीवार डेढ़ गज चौड़ी १२ गज ऊंची शहर के चारों तरफ सम्वत १९४१ में तैयार करवाई गई व पहले दरवाजों में से बहुत सारे दरवाजे ध्वस्त कर दिए गए, जिसका नमूना राम बाग वाला दरवाजा अब तक है। खाई को इसमें मिट्टी डालकर पूर दिया गया तथा जमीन के बराबर कर दी गई। जिस पर कृषिपालन तथा बाग बगीचे लगा दिए गए। फसील के साथ-साथ शहर की सुरक्षा के लिए कुछ पुलिस की चौकियां भी बनवा दी गई। अब कुछ दरवाजों के बाहर बाग-बगीचे भी लग रहे हैं। जनसंख्या शीघ्र बढ़ रही है। शहर का रंग-ढंग दिनों-दिन बदलता जा रहा है जो सब सतिगुरु की महिमा की बात है।

बाबा अट्टल साहिब

बाबा अट्टल साहिब छठे पातशाह श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब जी महाराज के चौथे पुत्र थे। इन्होंने मोहन क्षत्रिय को जीवित किया जो कि मर गया था। यह करामात 'शक्ति' को देखकर श्री गुरु जी ने 'एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं, कहा। इतना सुनते ही बाबा अट्टल साहिब तुरन्त वापिस लौट आए। उस समय आपकी आयु ९ वर्ष की थी। जहां बाबा जी का मंदिर है, यह जगह उस समय जंगल थी। यहां लेट कर शरीर त्याग कर गुरुपुरी जा विराजे।

यह अद्‌भुत बात सुनकर गुरु जी बहुत हैरान हुए और आकर अनेक वरदान दिए और कहा यह गुरु घर में थानेदार माने जाएंगे। शहर में सबसे ऊंचा मंदिर इनका ही होगा। जो इस मंदिर की पूजा-अर्चना करेगा। वह मनवांछित फल प्राप्त करेगा और उसकी सेवा गुरु घर में स्वीकार होगी। गरीब लोगों को यहां हर समय भोजन मिलेगा, इसलिए लोक कथा प्रसिद्ध है।

'बाबा अटल पकीआं पकाईआं घल'

पहले इस जगह छोटा मंदिर 'समाधि' मंदिर बना था। फिर संगत ने सम्वत १८०७ में चंदा एकत्रित करके रामगढ़िए सरदारों की बाबत फर्श तैयार किया। इसकी ३ मंजिलें, ८ गुठे (कोने) तैयार हुईं।

बाद में सम्वत १८७८ में शेर-ए पंजाब ने बाबत सरदार देसा सिंघ ९ मंजिलें 'छत्तें' बनवाईं, ऊपरली छत्त का गुम्बद सोने का बनवाया। इसकी तीन छत्तों तक एक मंजिल की हर एक गुठ में दो-दो दरीचे है तथा चौथी-पांचवी छत्त में दरीचों के अतिरिक्त एक एक बुखारचे की वृद्धि की गई।

यह इमारत मीनार की तरह बनाई गई है जो १२५ फुट मुरब्बा गोल हरेक तरफ ११-११ फुट तथा ऊंचाई १५० फुट है, जिस में ३ छत्तें छोटी तथा ६ छत्तें बड़ी हैं। सोने के क्लश सहित सारी ११ छत्तें हैं। चाहे इसकी इमारत ईंट चूने की ही है पर पक्की तथा मजबूती में पत्थरों से भी ज्यादा मजबूत है। धन्य बाबा साहिब !

गुरु के बाग का हाल

बाबा साहिब की तरफ से आते ही जिस जगह कुछ बगीचा है, इसका नाम गुरु का बाग है।

पहले यहां बेर, बरगद तथा पीपल आदि के घने वृक्ष होते थे। जिनकी घनी छाया नीचे बैठ कर कई बार गुरु अर्जुन देव जी आनंदित हुआ करते थे तथा संगतों को उपदेश प्रदान करते थे और यहां एक कुंआ इस बाग में तथा दूसरा बाबा अट्टल जी के पास है। यह दोनों कुएं शहर बसने से पहले सुलतानविंड के जिमींदारों ने अपने खेतों में लगवाए हुए थे। बाग वाले कुएं के पास पंडित भक्त सिंघ निर्मला शिष्य भाई मनी सिंघ रहा करता था तथा श्रद्धा सिंघ साधू इनका शिष्य भिक्षा मांग कर लंगर चलाता तथा संगत को कथा सुनाता था।

सत्य है कि-देवे को रोटी भली, लेवे को हरिनाम ॥

कहते हैं कि उसका लंगर कभी धीमा नहीं होता था। हर समय लोह तवा-तपती अर्थात् गर्म रहती थी। सिक्ख सरदार लूटमार का हिस्सा भी कुछ लंगर में दे कर सहायता करते रहते थे। इसका शिष्य सरूप सिंघ १२ सालों तक इसी तरह भिक्षा मांग कर लंगर की सेवा करता रहा, जिसे सेवा के फलस्वरूप सिद्धि प्राप्त हो गई अर्थात् वह सिद्ध-महात्मा हो गए।

पठानों की चढ़ाई के समय चाहे वह मकान बिल्कुल टूट-फूट गया था, पर भाई साहिब सिंघ, रण सिंघ (जिनका बुंगा परिक्रमा में बना हुआ है) निर्मले साधू, उसी जगह बैठे रहे। बेशक सिक्ख सरदारों ने इनको जागीर आदि का लालच दिया पर इन्होंने लालच की परवाह तक न की, जगह न छोड़ी बल्कि त्यागी बने रहे। भाई सद सिंघ (जिसने काशी में चेतन मठ एक संगत बनवाई है) भाई मान सिंघ (जिन्होंने थानेसर के बाहर कलेर तथा मकान बनवाया है, दूसरे मान सिंघ ने (फूल पराची पर) इनके शिष्य भाई गुलाब सिंघ, जिस ने अध्यात्म रामायण आदि बहुत सारे ग्रंथों की रचना की है, पंडित निहाल सिंघ जी टीका जपुजी साहिब, संस्कृत के कर्त्ता आदि सब इसी मण्डली में से हुए हैं। यह सभी एकजुट थे।

महाराजा रणजीत सिंघ के समय ज्ञानी संत सिंघ ने जो अंदर ही अंदर इनके साथ विरोध करता था, जोर डाल कर अंत में इन से बाग छीन लिया तथा गुरुद्वारे के नाम करवा दिया। जहां १८७२ संः में आम आदि

नोट-१. ऊपरले हाल वाला भाई मुक्ता सिंघ जी यह कौलसर में रहता था, ११३ साल की आयु भोग कर सम्वत १९४२ में परलोक सिधार गया।

२. भाई हजूरी जो सम्वत १९३४ में १२६ साल की आयु भोग कर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

३. भाई सम्पूर्ण सिंघ जी सोढी के शिष्य मोहर सिंघ जी योगीराज यह बिबेकसर में निवास करते थे, १४५ साल आयु भोग कर स्वर्ग सिधारे।

इन सबसे कर्त्ता ने यह हाल सुन कर लिखे हैं। इन सबकी आयु विद्वान डाक्टरों ने तसदीक की थी।

के पौधे लगा कर इसको बिल्कुल बाग के रूप में बदल दिया।

इस बाग में जहां गुरु अर्जुन देव जी विराजमान हुआ करते थे, अब वहां संगमरमर का मंजी साहिब तथा बंगला अति सुन्दर बना हुआ है, वहां टुकड़ी का मेला लगता है तथा अब हर रविवार जोड़ मेला होता है। मंजी साहिब के पूर्व दिशा की तरफ ७ फव्वारे सफेद संगमरमर के बने हुए हैं, जहां बैठ कर अक्सर महात्मा ज्ञान चर्चा किया करते थे। पश्चिम दिशा की तरफ एक तीन दरी या मुसाफिरखाना है जहां कथा तथा श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी का पाठ होता रहता है। अब* इसके साथ सम्वत १९८४ विक्रमी को दरबार साहिब जाने के लिए एक रास्ता बड़ा सा निकला** है, जो १९२१ में दरबार साहिब की कार भेंट के साथ तैयार हुआ था। मंजी साहिब की दक्षिण की बाही में एक कुंआ सम्वत १९२१ में खुदवाया गया। इसके आगे दक्षिण की तरफ एक बंगला संगमरमर तथा संग लाल दोनों १९१५ में राम बाग से खोद कर डिप्टी कोपर साहिब ने यहां लगाए थे और एक चबूतरा बड़ा जिस की सीढ़ियों पर लाल पत्थर का बंगला बना हुआ है तथा मध्य में एक फव्वारा लगा हुआ है, यहां लगाया था, फव्वारे के निकट एक पत्थर की चादर पर निर्मल जल पड़ता दिखाई देता है जो बहुत सुन्दर लगता है। थड़ा साहिब की दक्षिण की बाही शहीद साहिबों की मंजी तथा एक फव्वारा संगमरमर का बना हुआ है, जहां हरेक पूर्व की पंचमी को मेला लगता था। इस के पूर्व की तरफ एक बारांदरी लाल संगमरमर की तथा एक हौज जिस में फव्वारे हैं राम बाग में से लाकर लगाए हैं।

---

* अब यहां की अदला-बदली में जमीन आसमान का अंतर है, सामने धर्मशाला 'श्री गुरु रामदास निवास' तथा 'गुरु नानक निवास' दिखाई दे रहे हैं। पानी कला द्वारा ऊपर जाता है। संगमरमर का कारखाना पास आ गया है, बड़े दरवाजे में कमेटी का कार्यालय है, बनावट अच्छी है।

** यह मार्ग निर्मलों के चुंगे में से निकला है।

एक हौज तथा बारांदरी लाल संगमरमर की महाराजा रणजीत सिंघ की समाधि के सामने है। (जिसको महाराजा शेर सिंघ ने १८९६ सम्वत में बनवाया था, यहां से गुजर कर बाबा अट्टल को रास्ता जाता है) तथा यहां कुंआ है जिस को १९३० सम्वत में कोटू मल क्षत्रिय ने तैयार करवाया था, अब यहां का पहले वाला रास्ता बंद हो कर नया रास्ता निकल आया है।

संध्या को यहां हर रोज मेला लगा रहता है, जगह-जगह साधू-संत, पंडित, महात्मा, गुणी तथा ज्ञानी कथा-कीर्तन तथा उपदेश सुनाते रहते हैं। इसके चार दरवाजें हैं जो दो बाबा अट्टल साहिब तथा दो दरबार साहिब की तरफ हैं।

महाराजा रणजीत सिंघ जी ने सम्वत १८८७ विक्रमी में श्री हरिमंदिर साहिब की सेवा करवाई, सोना लगवाया तथा परिक्रमा में संगमरमर लगवाया। सिक्ख राज के समय जहां बुंगे बने, वहां शहर में भी प्रगति हुई। बाबा अट्टल, कटड़ा कर्म सिंघ तथा बिबेकसर की तरफ आबादी बढ़ी। सब से ज्यादा आबादी तो बुंगों, अखाड़ों, धर्मशालाओं तथा डेरों की हुई क्योंकि तीर्थ था।

सम्वत १८२२ के बाद बने सारे पुराने बुंगे १९३५ से १९६० ई० तक तोड़ दिये गए तथा श्री मान संत बाबा गुरमुख सिंघ जी पटियाला वाले तथा श्री मान संत भूरी वाले जी के यत्नों से नई योजना अनुसार लगभग तीन करोड़ रुपया खर्च हो कर अमृत सरोवर के चारों तरफ आलीशान बुंगे तैयार हुए हैं। अब सभी बुंगे किसी की निजी मलकीयत नहीं बल्कि महाराज जी की मलकीयत हैं तथा सिक्ख संगतों के आराम करने के लिए है जिस कारण श्री दरबार साहिब की शोभा बढ़ गई है।

श्री अमृतसर की आज आबादी काफी बढ़ गई है। कालेज, स्कूल, मंदिर, धार्मिक स्थानों के अतिरिक्त कई सौ कारखाने हैं। गुरु की नगरी की शोभा दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। सतिगुरु महाराज की

अपार कृपा है।

भाई तिलकू जी

ऐसा जोगी वडभागी भेटै माइआ के बंधन काटै ॥
सेवा पूज करउ तिसु मूरति की नानकु तिसु पग चाटै ॥५॥

(पन्ना २०८)

गुरु अर्जुन देव जी महाराज फरमाते हैं कि योगी वहीं सच्चा योगी है तथा उसी को मिलो जो माया के बंधन काटे, जो बंधन काटने वाला है, ऐसे पुरुष अथवा ज्ञानी की सेवा तथा पूजा करने के अतिरिक्त उसके चरण भी छूने चाहिए। चरणों की पूजा करनी चाहिए। सतिगुरु जी बहुत आराधना करते हैं।

पर पाखण्डी योगी संत आदि जो केवल भेषधारी हैं उनके चरणों पर माथा टेकने से वर्जित किया है। आजकल भेष के पीछे बहुत लगते हैं सत्य को नहीं जानते। ऐसे सत्य को परखने तथा गुरमति पर चलने वाले भाई तिलकू जी हुए हैं जो एक महांपुरुष थे।

भाई तिलकू जी गढ़शंकर के वासी तथा पंचम पातशाह जी के सिक्ख थे। उनका नियम था कि रात-दिन, हर क्षण मूल मंत्र का पाठ करते रहते थे। कभी किसी को बुरा वचन नहीं कहते थे, सत्य के पैरोकार तथा कार्य-व्यवहार में परिपूर्ण थे। गुरु महाराज के बिना किसी के चरणों पर सिर नहीं झुकाते थे। नेक कमाई करके रोटी खाते थे। देना-लेना किसी का कुछ नहीं था, ऐसी उन पर वाहिगुरु की अपार कृपा थी।

गढ़शंकर में एक योगी रहता था। एक सौ दस साल की आयु हो जाने तथा घोर तपस्या करने पर भी उसके मन में से अहंकार नहीं निकला था, वह अभिमानी हो गया तथा अपनी प्रशंसा करवाता था। लोगों को पीछे लगा कर अपना यश सुनता।

उसने अपने जीवित रहते एक बहुत बड़ा भंडारा किया। जब भंडारा तैयार हुआ तो उसने सारे नगर में तथा बाहर ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध, नवयुवक भंडारे में भोजन करेगा, उसको दो साल के लिए स्वर्ग हासिल होगा, उसको परमात्मा के दर्शन होंगे।

उस योगी का यह संदेश सुनकर नगर के लोग बाल-बच्चों सहित पधारे तथा भंडारा लिया, योगी का यश किया। जब सभी ने भोजन कर लिया तो योगी ने अपने मुख्य शिष्य को कहा-

'पता करो कोई स्त्री-पुरुष भंडारे में आने से रह तो नहीं गया। यदि रह गया हो तो उसे भी बुलाओ।'

योगी का ऐसा हुक्म सुनकर उसके मुख्य शिष्य ने नगर में सेवक भेजे। उन्होंने पता किया तथा कहा-'महाराज ! भाई तिलकू नहीं आया, शेष सब भोजन कर गए हैं। वह कहता है मुझे स्वर्ग की जरूरत नहीं, वह नहीं आता।'

योगी ने उसके पास दोबारा आदमी भेजे तथा कहा, उसे कहो कि तुम्हें दस साल के लिए स्वर्ग मिलेगा, आ जाओ। मेरा भंडारा सम्पूर्ण हो जाए। हुक्म सुनकर वे पुनः भाई तिलकू जी के पास गए, उसको दस साल स्वर्ग के बारे में बताया तो वह हंस पड़ा। इतने सस्ते में स्वर्ग जीवन देने वाले योगी के माथे लगना ही पाप है। मुझे स्वर्ग नहीं चाहिए। मेरे स्वर्ग मेरे जीवन को लेने-देने वाला मेरा सतिगुरु है, मैं तो उसकी पनाह में बैठा हूं। जाओ, योगी को बता दो।

शिष्य हार कर चले गए तथा योगी को जाकर बताया। योगी सुनकर आपे से बाहर हो गया और क्रोध से बोल उठा। उसने कहा-'मैं देखता हूं उसका गुरु कौन है ? उसकी कितनी शक्ति है ? अभी वह आएगा तथा पांव में पड़ेगा। तिलकू तिलक कर ही रहेगा।'

इस तरह बोलता हुआ योगी लाल-पीला हो गया तथा आसन से उठ बैठा। उसके हृदय में अहंकार तथा वैर भावना आ गई। वैर भावना

ने योगी की सारी तपस्या तथा भक्ति को शून्य कर दिया। योगी को अपने योग बल पर बहुत अभिमान था। उसने समाधि लगाई। योग बल से भूत-प्रेत, बीर बुलाए तथा उनको आज्ञा की-'जाओ तिलकू को परेशान करो, वह मेरे भंडारे में आए।'

योगी का हुक्म सुनकर बीर तथा भूत-प्रेत भाई तिलकू के घर गए। पहले तो आंधी की तरह उसके घर के दरवाजे खुले तथा बंद हुए। धरती डगमगाई तथा भाई तिलकू जी के मुख से निकला-'सतिनाम सति करतार !' आंधी रुक गई। फिर भाई तिलकू जी मूल मंत्र का पाठ करने लग पड़ा। जैसे-जैसे वह पाठ करता गया वैसे-वैसे सारे खतरे दूर हो गए।

योगी के सारे भूत-प्रेत तथा बीर उसके पास गए। उन्होंने हाथ जोड़ कर बुरे हाल योगी के आगे विनती की-

हे मालिक ! हमारी कोई पेश नहीं जाती। उसकी रक्षा हमसे ज्यादा कोई महान शक्तिशाली आदमी कर रहे हैं, उनसे तो थप्पड़ और धक्के लगते हैं। घुल-घुल कर हांफ कर आ गए हैं। वह तिलकू कोई कलाम पढ़ता जाता है। हम चले, हम सेवा नहीं कर सकते। यह कह कर सारी बुरी आत्माएं चली गईं। योगी की सुरति कायम न रह सकी। वह बुरी आत्माओं को काबू न रख सका, वह सारी चली गईं।

योगी ने निराश हो कर समाधि भंग की बैठा तथा भाई तिलकू के पास गया तथा उसके घर का दरवाजा खटखटाया। आवाज़ दी-'भाई तिलकू जी दरवाजा खोलो।' योगी आप के दर्शन करने आया है।'

यह सुन कर भाई तिलकू जी ने दरवाजा खोला तथा देखा योगी बाहर खड़ा था। उसके पीछे उसके शिष्य तथा कुछ शहर के लोग थे।

'भाई जी ! यह बताओ आपका गुरु कौन है ?' योगी ने पूछा।

भाई तिलकू जी–'मेरे गुरु, सतिगुरु नानक देव जी हैं। जिन्होंने पांचों चोरों को मारने की शिक्षा दी है।

योगी–'मंत्र कौन-सा पढ़ते हो ?'

भाई तिलकू 'सति करतार १ ओ सतिनामु करता पुरखु......।' भाई जी ने मूल मंत्र का पाठ शुरू कर दिया। यह मंत्र ही कल्याणकारी है। आपकी तरह साल-दो साल मुक्ति नीलाम नहीं की जाती। यह आपकी गलती समझो। इसलिए मैं नहीं गया, मेरे गुरु ही भव-सागर से पार उतारते हैं।'

भाई तिलकू जी के वचनों का प्रभाव योगी के मन पर बहुत पड़ा तथा अंत में भाई तिलकू योगी को साथ लेकर सतिगुरु जी की हजूरी में पहुंचे। सतिगुरु जी ने योगी को उपदेश दे कर भक्ति भाव के सच्चे मार्ग की ओर लगाया।

भाई समुन्दा जी

अनदिनु सिमरहु तासु कउ जो अंति सहाई होइ ।। इह बिखिआ दिन चारि छिअ छाडि चलिओ सभु कोइ ।। का को मात पिता सुत धीआ ।। ग्रिह बनिता कछु संगि न लीआ ।। ऐसी संचि जु बिनसत नाही ।। पति सेती अपुनै घरि जाही ।। साधसंगि कलि कीरतनु गाइआ ।। नानक ते ते बहुरि न आइआ ।।१५।।

(पन्ना २५३)

परमार्थ–उस परमात्मा का रात-दिन सिमरन करो जो कि अंत समय सहायक होता है। यह जो माया से पैदा की हुई खुशियां, विषय विकार आदि हैं यह साथ नहीं जाते। ये तो थोड़े दिन के मेहमान हैं। मां, बाप, स्त्री, पुत्र, पुत्री यह भी साथ नहीं जाते। ऐसा धन इकट्ठा करना चाहिए जो साथ चले, वह है वाहिगुरु का सिमरन। वाहिगुरु के सिमरन के अतिरिक्त कोई राह साथ नहीं जाती। जिस पुरुष ने

सत्संग में बैठ कर हरि कीर्तन गाया तथा वाहिगुरु का सिमरन किया है गुरु जी कहते हैं वह फिर जन्म मरण के चक्र में नहीं पड़ता। उसका जन्म मरण कट जाता है अतः वह मुक्त हो जाता है। ऐसे नाम सिमरन वाले गुरसिक्ख सेवकों में भाई समुन्दा गुरु के सिक्ख बने थे। सिक्ख बनने से पहले उनका जीवन मायावादी था। वे धन इकट्ठा करते, स्त्री से प्यार करते। स्त्री के लिए वस्त्र, आभूषण तथा खुशियों का सामान लाते। पुत्र, पुत्री से प्यार था। कभी किसी तीर्थ पर न जाते। परमात्मा है कि नहीं ? यह प्रश्न उनके मन में उठता ही नहीं था, यदि कहीं चार छिलके गुम हो जाते तो उनकी आत्मा दुखी होती। वह दो-दो दिन रोटी न खाते। माया इकट्ठी करना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। माया के बदले यदि कोई जान भी मांगता तो देने के लिए तैयार हो जाते।

एक दिन वह भूल से गुरमुखों की संगत में बैठ गए। एक ज्ञानी ने उपरोक्त शब्द पढ़ा तथा साथ ही शब्द की व्याख्या की। शब्द के अंदरुनी भाव ने भाई समुन्दा जी की आत्मा पर गहन प्रभाव डाला। उनकी बुद्धि जाग पड़ी। वह सोचने लगे कि जो कुछ मैं कर रहा हूं, यह अच्छा है या जो कुछ गुरमुख कहते है, वह अच्छा है ? वह असमंजस में पड़ गए। उठ कर घर आ गए, रोटी खाने को मन नहीं किया। रात को सोए तो नींद नहीं आई। रात्रि के बारह बज गए पर नींद न आई। जहां पहले पहल रात को गहरी नींद सो जाते थे, अब सोच में डूब गए। माया इकट्ठी करना अच्छा है या नहीं ? स्त्री, पुत्र, पुत्री का सम्बंध कहां तक है ? उसकी आंखों के आगे कई झांकियां आईं। एक यह झांकी भी आई कि कोई मर गया है। उसके पुत्र, पुत्रवधू, पुत्री तथा पत्नी उसका दाह-संस्कार करके घर आ गए है। चार दिन के बाद उसका किसी ने नाम न लिया, वह भूल गया। समुन्दे को अपने माता-पिता भी याद आए वे उसके पास से चले गए। वे

चार दिन के दुःख के बाद उन्हें भूल गए। वह विचारों में खोए रहने लगे। ऐसे ही विचारों में सोए उनको स्वप्न आया जो बहुत भयानक था। उन्होंने देखा-वह बीमार हो जाते हैं। बीमारी के समय उनके पुत्र, पुत्री, पत्नी तथा सम्बन्धी उनके पास आते हैं। पहले-पहल सभी उससे सहानुभूति तथा प्यार करते पर धीरे-धीरे जैसे जैसे बीमारी बढ़ती जाती है, वैसे वैसे सभी का प्यार घटता जाता है। अंतिम समय आ जाता है, यमदूत उसकी जान निकालने के लिए आते हैं, उनकी भयानक सूरतें देख कर वह भयभीत हो जाता है। पत्नी को कहता है, मेरी सहायता करो, मुझे यमों से बचाओ, पर वह आगे से रोती हुई न में सिर हिला देती है कि वह उसे बचा नहीं सकती, यम उसकी आत्मा को मारते-पीटते हुए धर्मराज के पास ले जाते हैं। धर्मराज कहता है, 'यह महां पापी है। इसने जीवन भर कभी भगवान का सिमरन नहीं किया, नेकी नहीं कमाई, इस महां पापी को आग के नरक में फैंको। जहां यह कई जन्म जलता रहेगा। फैंको ! फैंको ! महां पापी है।' धर्मराज का यह हुक्म सुन कर यम उसको आग-नरक की तरफ खींच कर ले चले। जब नरक के निकट पहुंचे तो समुन्दे ने देखा-बहुत भयानक आग जल रही थी जिसका ताप दूर तक जाता था। निकट पहुंचने से पहले ही सब कुछ जल जाता था। समुन्दे ने देखा तथा सुना कि कई महां पापी उस नरक की भट्ठी में जल कर चिल्ला रहे हैं। समुन्दा-दहल गया, जब यम उसको उठा कर आग में फैंकने लगे तो उसकी चीख निकल गई, उस चीख के साथ ही उसकी नींद खुल गई वह तपक कर उठ बैठा, आंखें मल कर उसने देखा, वह नरकों में नहीं बल्कि अपने घर बैठा है। वह मरा नहीं जीवित है। पर उसका हृदय इतनी जोर से धड़क रहा था कि सांस आना भी मुश्किल हो रहा था, सारा शरीर पसीने से भीग गया।

समुन्दा जी चारपाई से उठ गए। अभी रात्रि थी, आकाश पर तारे

हंस रहे थे। परिवार वाले तथा पड़ोसी सभी सो रहे थे। चारों तरफ खामोशी थी। उस खामोशी के अन्धेरे में समुन्दा जी घर से निकले। जिस तरह किसी के घर से चोर निकलता है, दबे पांव, धड़कते दिल, जल्दी-जल्दी समुन्दा जी उस स्थान पर पहुंचे जहां गुरमुख आए हुए थे, वह गुरमुख जाग रहे थे। पिछली रात समझ कर उठे थे तथा स्नान कर रहे थे। स्नान करके उन्होंने भगवान का भजन करना शुरू कर दिया। घबराए हुए समुन्दा जी उनके पास बैठे रहे, बैठे-बैठे दिन निकल गया, दिन उदय होने पर उन गुरमुखों के चरणों में गिर कर इस तरह बिलखने और विनती करने लगे, 'मुझे नरक का डर है। मैं कैसे बख्शा जाऊं। मुझे स्वर्ग का मार्ग बताओ ! नरक की भयानक आग से बचाओ ! संत जगत के रक्षक होते हैं। भूले-भटके का मार्गदर्शन करते हैं। मेरी पुकार भी कोई सुने। आप ही तो सब कुछ हो। सोई हुई आत्मा जाग पड़ी।'

वह गुरमुख श्री गुरु अर्जुन देव जी के सिक्ख थे। श्री हरिमंदिर साहिब के निर्माण के लिए नगरों में से सामान इकट्ठा कर रहे थे। उन्होंने भाई समुन्दा जी की विनती सुनी। उनको धैर्य दिया और कहा, 'भाई ! सुबह हमारे साथ चलना वहां जगत के रक्षक गुरु जी हैं उनके दर्शन करके तभी उद्धार होगा।'

अगले दिन भाई समुन्दा जी सिक्खों के साथ 'चक्क रामदास' पहुंचे, आगे दीवान लगा हुआ था। गुरगद्दी पर विराजमान सतिगुरु जी सिक्खों को उपदेश कर रहे थे। समुन्दा जी भी जा कर चरणों पर गिर पड़े, रो कर विनती की, 'दाता दया कीजिए ! मुझे भवसागर से पार होने का साधन बताओ। नरक की आग से मुझे डर लगता है, बहुत सारी आयु व्यर्थ गंवा दी। अच्छी तरह जीने का ढंग बताओ ! हे दाता ! दयालु तथा कृपालु सतिगुरु मुझ पर कृपा करो।

अंतर्यामी सतिगुरु जी ने देखा, समुन्दे की आत्मा पश्चाताप कर

रही है। यह नेकी तथा धर्म के मार्ग पर चलने के लिए तैयार है। इस को गुरमति बख्शनी योग्य है। सतिगुरु जी ने फरमाया-'हे सिक्खा ! तुम्हें वाहिगुरु ने इस संसार पर नाम सिमरन तथा लोक सेवा के लिए भेजा है, इसलिए उठकर वाहिगुरु का सिमरन करना, धर्म की कमाई करना, गुरुबाणी सुनना, निंदा चुगली से दूर रहना। यह जगत तुम्हारे लिए जीवन नहीं, बल्कि मार्ग का आसरा है। जीवन का मनोरथ है, प्रभु से जुदा हुए हो, उस के पास जाना तथा उसके साथ इस तरह घुल-मिल जाना जैसे पानी से पानी मिल जाता है। जैसे दो दीयों का प्रकाश एक लगता है। सच बोलना, गुरुद्वारे जाना तथा भूखे सिक्खों को भोजन खिलाना। यह है जीवन युक्ति।'

साधू रणीया जी

जहां सरोवर रामसर है, सतिगुरु हरिगोबिंद साहिब जी के समय एक साधू शरीर पर राख मल कर वृक्ष के नीचे बैठा हुआ शिवलिंग की पूजा कर रहा था। वह घण्टियां बजाए जाता तथा जंगली फूल अर्पण करता था, वह कोई पक्का शिव भक्त था।

जब वह शिवलिंग की पूजा में मग्न था तो अचानक उसके कानों में यह शब्द गूंजे 'ओ गुरमुखा ! एक चोरी छोड़ी, दूसरा पाखण्ड शुरू किया। कुमार्ग से फिर कुमार्ग मार्ग पर चलना ठीक नहीं।'

यह वचन सुनकर उसने आंखें ऊपर उठा कर देखा तो सतिगुरु हरिगोबिंद साहिब जी घोड़े पर सवार उसके सामने खड़े हुए मुस्करा रहे थे। जैसे कि कभी उसने दर्शन किए थे। कोई बादशाह समझा था। जीवन की घटना उसको फिर याद आने लगी।

वह साधू उठ कर खड़ा हो गया, हाथ जोड़ कर विनती की, 'महाराज ! आप के हुक्म से चोरी और डकैती छोड़ दी। साधू बन गया, और बताएं क्या करूं ?'

उसकी विनती सुनकर मीरी पीरी के मालिक ने फरमाया–'हे गुरमुखा ! पत्थर की पूजा मत करना–आत्मा को समझो। उसकी पूजा करो, उसका नाम सिमरन करो, जिसने शिव जी, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं की सृजना की है। करतार का नाम सिमरन करो, सत्संगत में बैठो, सेवा करो, यह जन्म बहुत बहुमूल्य है।'

"कबीर मानस जनमु दुलंभु है होइ न बारै बार ॥"

इस तरह वचन करके मीरी–पीरी के मालिक गुरु के महलों की तरफ चले गए तथा साधू सोच में पड़ा रहा।

वह साधू भाई रणीयां था जो पहले डाकू था। अकेले स्त्री–पुरुष को पकड़ कर उस से सोना- चांदी छीन लिया करता था। एक दिन की बात है, रणीयां का दो दिन कहीं दांव न लगा किसी से कुछ छीनने का। वह घूमता रहा तथा अंत में एक वृक्ष के नीचे बैठ गया तथा इन्तजार करने लगा। उसकी तेज निगाह ने देखा एक स्त्री सिर पर रोटियां रख कर खेत को जा रही थी, उसके पास बर्तन थे। बर्तनों की चमक देख कर वह उठा तथा उस स्त्री को जा दबोचा। उसके गले में आभूषण थे। बर्तन छीन कर आभूषण छीनने लगा ही था कि उसके पास शरर करके तीर निकल गया। उसने अभी मुड़ कर देखा ही था कि एक ओर तीर आ कर उसके पास छोड़ा। वह डर गया, उसके हाथ से बर्तन खिसक गए तथा हाथ स्त्री के आभूषणों से पीछे हो गया।

इतने में घोड़े पर सवार मीरी पीरी के पातशाह पहुंच गए। स्त्री को धैर्य दिया। वह बर्तन ले कर चली गई तथा रणीये को सच्चे पातशाह ने सिर्फ यही वचन किया

'जा गुरमुखा ! कोई नेकी करो। अंत काल के वश पड़ना है।' रणीयां चुपचाप चल पड़ा। उस ने कुल्हाड़ी फैंक दी तथा वचन याद करता हुआ वह घर को जाने की जगह साधुओं के पास चला गया। एक साधू ने उसको नांगा साधू बना दिया। घूमते -फिरते गुरु की नगरी

में आ गया।

सतिगुरु जी जब गुरु के महलों की तरफ चले गए तो साधू रणीये ने शिवलिंग वहीं रहने दिया। वह जब दुःख भंजनी बेरी के पास पहुंचा तो सबब से गुरु का सिक्ख मिला, वह गुरमुख तथा नाम सिमरन करने वाला था, उसकी संगत से रणीया सिक्ख बन गया, उसने वस्त्र बदले, सतिगुरु जी के दीवान में पहुंचा तथा गुरु के लंगर की सेवा करने लगा। रणीया जी बड़े नामी सिक्ख बने।

भाई भाना परोपकारी जी

जिऊं मणि काले सप सिरि हसि हसि रसि देइ न जाणै।
जाणु कथूरी मिरग तनि जींवदिआं किउं कोई आनै।
आरन लोहा ताईऐ घड़ीऐ जिउ वगदे वादाणै।
सूरणु मारनि साधीऐ खाहि सलाहि पुरख परवानै।
पान सुपारी कथु मिलि चूने रंगु सुरंग सिञानै।
अउखधु होवै कालकूटु मारि जीवालनि वैद सुजाणै।
मनु पारा गुरमुखि वसि आणै।

(भाई गुरदास जी)

भाई गुरदास जी फरमाते हैं, जैसे काले नाग के सिर में मणि होती है पर उसको ज्ञान नहीं होता, मृग की नाभि में कस्तूरी होती है। दोनों के मरने पर उत्तम वस्तुएं लोगों को प्राप्त हो जाती हैं। इसी तरह लोहे की अहिरण होती है। जिमीकंद धरती में होता है। उसकी विद्वान उपमा करते तथा खाते हैं लाभ पहुंचता है। ऐसे ही देखो पान, सुपारी कत्था, चूना मिलकर रंग तथा स्वाद पैदा करते हैं। काला सांप जहरीला होता है, समझदार उसे मारते हैं तथा लाभ प्राप्त करते हैं।

इसी तरह जिज्ञासु जनो ! मन जो है वह पारे की तरह है तथा सदा डगमगाता रहता है। उस पर काबू नहीं पाया जा सकता। यदि

कोई मन पर काबू पा ले तो उसका कल्याण हो जाता है। ऐसे ही भाई भाना जी हुए हैं, जिन्होंने मन पर काबू पाया हुआ था। उनको कोई कुछ कहे वह न क्रोध करते थे तथा न खुशी मनाते। अपने मन को प्रभु सिमरन तथा लोक सेवा में लगाए रखते।

ग्रंथों में उनकी कथा इस तरह आती है-

भाना प्रयाग (इलाहाबाद) का रहने वाला था। यह छठे सतिगुरु जी के हजूरी सिक्खों में था, वह सदा धर्म की कमाई करता। जब कभी फुर्सत मिलती तो दरिया यमुना के किनारे जा कर प्रभु जी का सिमरन करता, किसी का दिल न दुखाता, किसी की निंदा चुगली करना, जानता ही नहीं था, कोई उसे अपशब्द कहे तो वह चुप रहता।

एक दिन भाई भाना यमुना किनारे बैठा हुआ सतिनाम का सिमरन करता बाणी पढ़ रहा था, पालथी मार कर बैठे हुए ने लिव गुरु चरणों से जोड़ी हुई थी। मन की ऊंची अवस्था के कारण उसकी आत्मा श्री अमृतसर में घूम रही थी तथा तन यमुना किनारे था, अलख निरंजन अगम अपार ब्रह्म के निकट होने तथा उसके भेद को पाने का प्रयत्न करता रहा था वह जब गुरु का सिक्ख बना था तब वह युवावस्था में था, व्यापारी आदमी था व्यापार में झूठ बोलना नहीं जानता था।

हां, भाई भाना गुरु जी की बाणी पढ़ रहा था। संध्या हो रही थी। डूबता हुआ सूरज अपनी सुनहरी किरणें यमुना के निर्मल जल पर फैंक रहा था। उस समय एक नास्तिक (ईश्वर से विमुख) मूर्ख भाई जी के पास आ बैठा। भाई जी को कहने लगा-'हे पुरुष ! मुझे यह समझाओ कि तुम प्रतिदिन हर समय परमात्मा को बे-आराम क्यों करते हो। क्या तुम्हारा परमात्मा परेशान नहीं होता ? एक दिन किसी को यदि कोई बात कह दी तो वह काफी है, रोज़ बुड़-बुड़ करते रहते हो।'

भाई भाना ने नास्तिक के कटु वचनों का क्रोध नहीं किया, प्रेम से कहने लगा-सुनो नेक पुरुष मैं बहुत ज्ञानी तो नहीं पर जो कुछ

मैं समझता हूं तुम्हें समझाने का यत्न करता हूं। ध्यान से सुनो, जैसे किसी को चोर मिले तो वह राजा के नाम की पुकार करता है, वह चोर भाग जाते हैं क्योंकि चोरों को डर होता है कि राजा उनको दण्ड न दे। इसी तरह मनुष्य के इर्द-गिर्द काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार पांच चोर हैं। वह जीव को सुख से बैठने नहीं देते। जीव का भविष्य लूटते हैं। पाप कर्म की ओर प्रेरित करते हैं, उन पांचों चोरों से छुटकारा पाने के लिए जरूरी है कि सतिगुरों के बताए ढंग से राजाओं के राजा परमेश्वर के नाम का सिमरन किया जाए, साथ ही यदि हम परमेश्वर को याद रखे तो वह भी हमें याद रखता है। सांस-सांस नाम याद रखना चाहिए। भगवान को भूलने वाला अपने आप को भूल जाता है जो अपने आप को भूल कर बुरे कर्म करता है, बुरे कर्मों के फल से उसकी आत्मा दुखी होती है। वह संसार में बदनाम हो जाता है, उस को कोई अच्छा नहीं समझता।

जैसे खाली बांस में फूंक मारने से दूसरी ओर निकल जाती है बांस पर कोई असर नहीं होता, वैसे भाने के शुभ तथा अच्छे वचनों का असर मूर्ख पर बिल्कुल न हुआ। एक कान से सुना तथा दूसरे से बाहर निकाल दिया, साथ ही क्रोधित हो कर भाई भाने को कहने लगा, 'मूर्ख ! क्यों झूठ बोलते जा रहे हो। न कोई परमात्मा है तथा न किसी को याद करना चाहिए।' यह कह कर उसने भाई साहिब को एक जोर से थप्पड़ मारा, थप्पड़ मार कर आप चलता बना, रास्ते में जाते-जाते भाई जी तथा परमात्मा को गालियां निकालते हुए चलता गया।

भाई भाना जी धैर्यवान पुरुष थे। उन्होंने क्रोध न किया, बल्कि उठ कर घर चले गए। घर पहुंच कर सतिगुरों के आगे विनय की, 'सच्चे पातशाह ! मैं तो शायद कत्ल होने के काबिल था, आप की कृपा है कि एक थप्पड़ से ही मुक्ति हो गई है। पर मैं चाहता हूं, उस नास्तिक का भला हो, वह सच्चाई के मार्ग पर लगे।'

इस घटना के कुछ समय पश्चात एक दिन भाई भाना जी फिर यमुना किनारे पहुंचे। आगे जा कर क्या देखते हैं कि वहीं नास्तिक वहां बैठा हुआ था, उसका हुलिया खराब था, तन के वस्त्र फटे हुए थे। तन पर फफोले ही फफोले थे। जैसे उसकी आत्मा भ्रष्ट हो रखी थी वैसे उसका तन भी भ्रष्ट हो गया। वह रो रहा था, उसके अंग-अंग में से दर्द निकल रहा था। उसका कोई हमदर्द नहीं बनता। भाई भाने जी को देखते ही वह शर्मिन्दा-सा हो गया, आंखें नीचे कर लीं। भाई साहिब की तरफ देख न सका। उसकी बुरी दशा पर भाई साहिब को बहुत रहम आया। उन्होंने दया करके उसको बाजु से पकड़ लिया तथा अपने घर ले आए। घर ला कर सेवा आरम्भ की, सतिनाम वाहिगुरु का सिमरन उसके कानों तक पहुंचाया। उसको समझाया कि भगवान अवश्य है। उस महान शक्ति की निंदा करना अच्छा नहीं। धीरे-धीरे उसका शरीर अरोग हो गया। आत्मा में परिवर्तन आ गया। वह परमात्मा को याद करने लगा, ज्यों-ज्यों सतिनाम कहता गया, त्यों-त्यों उसके शरीर के सारे रोग दूर होते गए।

उसने भाई भाना जी के आगे मिन्नत की कि भाई साहिब उसको अपने सतिगुरों के पास ले चले, गुरों के दर्शन करके वह भी पार हो जाए क्योंकि उसने अपने बीते जीवन में कोई नेकी नहीं की थी।

यह सुन कर भाई भाना जी को खुशी हुई। उन्होंने उसी समय तैयारी की तथा मंजिल-मंजिल चल कर श्री अमृतसर पहुंच गए, आगे सतिगुरों का दीवान लगा हुआ था, दोनों ने जा कर सतिगुरों के चरणों पर माथा टेका। गुरु जी ने कृपा करके भाई भाने के साथ उस नास्तिक को भी पार कर दिया, वह गुरु का सिक्ख बन गया, फिर वह कहीं न गया। गुरु के लंगर में सेवा करके जन्म सफल करता रहा। इस तरह मन पर काबू पाने वाले भाई भाना जी बहुत सारे लोगों को गुरु

घर में लेकर आए।

भाई साईयां जी

गुरमुख मारग आखीऐ गुरमति हितकारी।
हुकमि रजाई चलना गुर सबद विचारी।
भाणा भावै खसम का निहचउ निरंकारी।
इशक मुशक महकार है होइ परउपकारी।
सिदक सबूरी साबते मसती हुशिआरी।
गुरमुख आपु गवाइआ जिणि हउमै मारी।३।

(भाई गुरदास जी)

भाई गुरदास जी महाज्ञानी थे। आप अपनी रचना द्वारा गुरमुखों या सच्चे सिक्खों के बारे में बताते हैं कि सच्चा सिक्ख या गुरमुख वह है, जो गुरमति गुर की शिक्षा से प्यार करता है। गुरु के शब्द का विचार करता हुआ करतार के हुक्म में चलता है। विश्वास के साथ प्रभु का नाम सिमरन करता तथा उनकी रजा मानता है, वह उसी तरह परोपकारी होता है जैसे कपूर, सुंगधि, कस्तूरी आदि होती है। दूसरे को महक आती है। वह गुरमुख अपने गुणों, परोपकारों तथा सेवा से दुनिया को सुख देता है, किसी को दुःख नहीं देता। सहनशील होता है, सबसे विशेष बात यह है कि वह अपने आप अहंकार को खत्म करके गुरु या लोगों का ही हो जाता है।

गुरु घर में ऐसे अनेक गुरसिक्ख हुए हैं, जिन्होंने अहंकार को मारा तथा अपना आप न जताते हुए सेवा तथा परोपकार करने के साथ-साथ नाम का सिमरन भी करते रहे।

ऐसे विनम्र सिक्खों में एक भाई साईयां जी हुए हैं। आप नाम का सिमरन करते तथा अपना आप जाहिर न करते। रात-दिन भक्ति करते रहते। आप ने गांव से बाहर बरगद के नीचे त्रिण की झोंपड़ी

बना ली। खाना-पीना भूल गया। नगरवासी अपने आप कुछ न कुछ दे जाते। इस तरह कहें कि उन्होंने रिजक की डोर भी वाहिगुरु के आसरे छोड़ दी। मोह, माया, अहंकार, लालच सब को त्याग दिया था। उसको भजन करते हुए काफी समय बीत गया।

एक समय आया देश में वर्षा न हुई। आषाढ़ सारा बीत गया। श्रावण का पहला सप्ताह आ गया पर पानी की एक बूंद न गिरी, टोए, तालाब सब सूख गए। पशु तथा पक्षी भी प्यासे मरने लगे। धरती जल गई, गर्म रोशनी मनुष्यों को तड़पाने लगी। हर एक जीव ने अपने इष्ट के आगे अरदास की, यज्ञ लगाए गए। कुंआरी लड़कियों को वृक्षों पर बिठाया गया, पर आकाश पर बादलों के दर्शन न हुए। इन्द्र देवता को दया न आई।

उस इलाके के लोग बड़े व्याकुल हुए क्योंकि वहां कुआं नहीं था। छप्पड़ों तथा तालाबों का पानी पीने के लिए था, पर पानी सूख गया। आठ आठ कोस से पीने के लिए पानी लाने लगे। भाई साईयां के नगर वासी तथा इर्द-गिर्द के नगरों वाले इकट्ठे हो कर भाई साईयां के पास गए। सब ने मिल कर हाथ जोड़ कर गले में दामन डाल कर भाई साईयां के आगे प्रार्थना की।

'हे भगवान के भक्त ! हम गरीबों, पापियों तथा निमाणे लोगों, बेजुबान पशुओं के जीवन के लिए भगवान के आगे प्रार्थना करो, वर्षा हो। कोई अन्न नहीं बोया, पशु-पक्षी तथा मनुष्य प्यासे मर रहे हैं। इतना दुःख होते हुए भी उस भगवान को हमारा कोई ख्याल नहीं। क्या पता हमने कितने पाप किए हैं। हमारे पापों का फल है कि वर्षा नहीं हो रही दया करें ! कृपा करें ! मासूम बच्चों पर रहम किया जाए।

भाई साईयां ने मनुष्य हृदय का रुदन सुना, उसके नैनों में भी आंसू टपक आए। उसका मन इतना भरा कि वह बोल न सका। उसने आंखें बंद की, आधा घंटा अन्तर्ध्यान हो कर अपने गुरुदेव (श्री गुरु

हरिगोबिंद साहिब जी) के चरण कंवलों में लिव जोड़ी। कोई आधे घंटे के पश्चात आंखें खोल कर कहने लगे–'भक्तों ! यह पता नहीं किस के पापों का फल है जो भगवान क्रोधित है। अपने-अपने घर जाओ, परमात्मा के आगे प्रार्थना करो। यह कह कर भाई साईंयां अपनी झोंपड़ी में से उठा तथा उठ कर बाहर को चला गया। लोग देखते रह गए। वह चलता गया तथा लोगों की नज़रों से ओझल हो गया। लोग खुशी-खुशी घरों को लौट आए कि अब जब वर्षा होगी, भाई साईंयां अपने गुरु के पास पहुंचेगा। हम गरीबों के बदले अरदास की जाएगी। लोग घर पहुंचे तो उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर से आंधी उठी। धीरे-धीरे वह आंधी लोगों के सिर के ऊपर आ गई, उसकी हवा बहुत ठण्डी थी।

आंधी के पीछे महां काली घटा छिपी थी, आंधी आगे चली गई तथा मूसलाधार वर्षा होने लगी। एक दिन तथा एक रात वर्षा होती रही तथा चारों ओर जलथल हो गया। छप्पड़, तालाब भर गए, खेतों के किनारों के ऊपर से पानी गुजर गया। पशु-पक्षी, कीड़े-मकौड़े तथा मनुष्य आनंदित हो कर नृत्य करने लगे। उजड़ा तथा मरा हुआ देश सजीव हो गया, जिन लोगों ने भाई साईंयां जी के आगे प्रार्थना की थी या प्रार्थना करने वालों के साथ गए थे, वे सभी भाई साईंयां के गुण गाने लगे, कोई कहे-भाई साईंयां पूरा भगवान हो गया है। किसी ने कहा, उसका गुरु बड़ा है, सब गुरुओं की रहमतें हैं। हम कंगालों की खातिर उसने गुरु के आगे जाकर प्रार्थना की। गुरु जी ने अकाल पुरख को कहा, बस अकाल पुरुष ने दया करके इन्द्र देवता को हुक्म दिया। इन्द्र देवता दिल खोल कर बरसे। बात क्या, साईंयां जी तथा उनके सतिगुरों की उपमा चारों तरफ होने लगी।'

जब वर्षा रुक गई। नगरवासी इकट्ठे हो कर भाई साईंयां जी की तरफ चले। भाई जी को भेंट करने के लिए वस्त्र, चावल, गुड़ तथा

नगद रुपए थालियों में रखकर हाथों में उठा लिए। जूह के बरगद के पेड़ के नीचे टपकती हुई छत्त वाली झोंपड़ी में साईयां बैठा वाहिगुरु का सिमरन कर रहा था, संगतों को आता देख कर पहले ही उठ कर दस कदम आगे हुआ। उसने दोनों हाथ ऊपर उठा कर चीख मारी, 'ठहर जाओ ! क्यों आ रहे हो, क्या बात है ?'

'आप गुरुदेव हो, हम आप का धन्यवाद करने आएं हैं। उजड़ा हुआ देश खुशहाल हो गया। हमने दर्शन करने हैं, चरण धूल लेनी है, लंगर चलाने है। आप के लिए पक्की कुटिया बनवानी है। आप ही हमारे परमेश्वर हो।'

इस तरह उत्तर देते हुए लोग श्रद्धा से आगे बढ़ आए। जबरदस्ती साईयां जी के चरणों पर माथा टेकने लग पड़े जो सामग्री साथ लाए थे उसके ढेर लग गए। जब सबने माथा टेक लिया तो भाई साईयां जी ऊंची ऊंची रोने लग पड़ा, आए हुए लोग देखकर हैरान हो गए। मौत जैसा सन्नाटा छा गया। भाई साहिब रोते हुए कहने लगे, 'मेरे सिर पर भार चढ़ाया है, मैं महां पापी हूं, मेरे यहां बैठने के कारण ही वर्षा नहीं होती थी। मुझ पापी के सिर पर और पाप चढ़ाया है मुझे माथा टेक कर, मुझे गुरुदेव कहा है मैं जरूर नरकों का भागी बनूंगा मुझे क्षमा कीजिए, मैंने त्रिण की झोंपड़ी में ही रहना है। मेरा दूसरा कोई ठिकाना नहीं, यह वर्षा सतिगुरों की कृपा है। धन्य छठे पातशाह मीरी-पीरी के स्वामी सच्चे पातशाह ! मैं आप से बलिहारी जाऊं, वारी जाऊं, दुःख भंजन कृपालु सतिगुरु ! जिन्होंने जलती हुई मानवता को शांत किया है। मैं कहता हूं यह सारी सामग्री, सारा कपड़ा, सारे रुपए इकट्ठे करके मेरे सतिगुरु के पास अमृतसर ले जाओ। मुझे अपने पाप माफ करवाने दें !' मैंने जीवन भर त्रिण की झोंपड़ी में रहना है। मैं पहले ही पापी हूं, मेरे बुरे कर्मों के कारण वर्षा नहीं हुई। अब मुझे गुरु कह कर और नरकों का भागी न बनाओ, जाओ बुजुर्गों जाओ !

समझदार लोग भाई साईयां जी की नम्रता पर बहुत खुश हुए तथा उनकी स्तुति करने लगे, दूसरों को समझा कर पीछे मोड़ दिया। सारी सामग्री बांध कर श्री अमृतसर भेज दी, सभी जो पहले देवी-देवताओं के पुजारी थे, वे श्री गुरु नानक देव जी के पंथ में शामिल हुए। श्री गुरु हरगोबिंद साहिब जी को नगर में बुला कर सब ने सिक्खी धारण की, गुरु जी ने भाई साईयां को कृतार्थ किया। उसका लोक-परलोक भी संवार दिया। धन्य है सतिगुरु जी तथा धन्य है नेक कमाई करने वाले सिक्ख।

माई सरखाना जी

मान सरोवर हंसला खाई मानक मोती।
कोइल अंब परीत है मिठ बोल सरोती।
चंदन वास वणासपति हुइ पास खलोती।
लोहा पारस भेटिऐ हुइ कंचन जोती।
नदीआं नाले गंग मिल होन छोत अछोती।
पीर मुरीदां पिरहड़ी इह खेप सिओती।६।

(भाई गुरदास जी)

आज की दुनिया में प्यार तथा श्रद्धा की बेअंत साखियां हैं। गुरु घर में तो अनगिनत सिक्ख हुए हैं, जिन्होंने गुरु चरणों से ऐसी प्रीति की है, जिस की मिसाल अन्य धर्मों में कम ही मिलती है। ऐसी प्रीति की व्याख्या करते हुए भाई गुरदास जी फरमाते हैं कि सिक्ख गुरु से ऐसी प्रीति करते हैं जैसे मान सरोवर के हंस मोतियों के साथ करते हैं, भाव मोती खाते है। कोयल का प्यार आमों के साथ है तथा उनके वैराग में मीठे गीत गाती रहती है। चंदन की सुगन्धि से सारी वनस्पति झूम उठती है। लोहा पारस के साथ मिल कर सोना हो जाता है। नदियां तथा नाले गंगा से मिल कर पवित्र हो जाते हैं। अंत में

भाई साहिब कहते हैं, सिक्खों का प्यार ही उनकी पवित्र रास पूंजी है।

जब इतिहास को देखे तो माई सरखाना का नाम आदर से लिया जाता है। आप गुरु घर में बड़ा आदर प्राप्त कर चुकी थीं। उसके प्यार की कथा बड़ी श्रद्धा दर्शाने वाली है। वह प्यारी दीवानी श्रद्धालु तथा अमर आत्मा हुई। जिसका यश आज भी गाया जाता है।

किसी गुरु-सिक्ख से माई ने गुरु घर की शोभा सुनी। उस समय बुढ़ापा निकट था तथा जवानी ढल चुकी थी। बच्चों का विवाह हो गया था। जिम्मेवारियां सिर से उतर गई थीं। उसे अब जन्म-मरण के चक्र का ज्ञान हो गया था। पर यह पता नहीं था कि चौरासी का चक्र कैसे खत्म होता था।

गुरसिक्ख ने माई सरखाना को गुरसिक्खी का ज्ञान करवाते हुए यह शब्द पढ़ा-

मनु मंदरु तनु वेस कलंदरु घट ही तीरथि नावा ॥
एकु सबदु मेरै प्रानि बसतु है बाहुड़ि जनमि न आवा ॥१॥

यह शब्द जो हृदय में बसता है, वह शब्द सतिगुरु जी से प्राप्त होता है। सतिगुरु त्रिकालदर्शी थे। सतिगुरु नानक देव जी की गुरुगद्दी पर छठे पातशाह हैं मीरी-पीरी के मालिक ! उनको याद कर उनके चरणों में सुरत लगा कर मन में श्रद्धा धारण करो।

अच्छा ! मैं श्रद्धा करूंगी। मुझे बताओ सेवा के लिए भेंट क्या रखूंगी, जब दर्शन करूं। माई सरखाना ने पूछा था।

गुरसिक्ख-सतिगुरु जी प्रीत पर श्रद्धा चाहते हैं। कार भेंट जो भी हो। पहुंच से ऊपर कुछ नहीं मांगते। एक टके से भी प्रसन्न होते हैं। उनके दरबार में सेवक हाथी, घोड़े, दुशाले, रेशमी वस्त्र, सोना, चांदी बेअंत भेंट चढ़ाते हैं। नौ निधियां तथा बारह सिद्धियां हैं। सतिगुरु जी अवश्य आपका जन्म-मरन काटेंगे, वह कृपा के सागर हैं :

हरिगोविंद गुरु अरजनहुं गुरु गोबिंद नाउं सदवाया ।

गुर मूरति गुर शबद है साध संगति विच प्रगटी आया।
पैरीं पाइ सभ जगत तराया।२५।

(भाई गुरदास जी)

इस तरह गुरु घर की शोभा सुन कर माई सरखाना गुरु घर की श्रद्धालु बन गई। उसने ध्यान कर लिया तथा गुरसिक्ख द्वारा सुने मूल मंत्र का जाप करने लगी। उसके मन में प्रेम जाग पड़ा। मन के साथ हाथ भी सेवा के लिए उत्साहित हुए। अपनी फसलों में से मोटे-मोटे गुल्लों वाली कपास चुनी। कपास चुन कर पेली तथा फिर रुई पिंजाई, रुई पिंजाई गई तो सतिगुरु जी का ध्यान धर कर कातती रही। रुई कात कर जुलाहे से श्रद्धा के साथ कपड़ा तैयार करवाया। बुढ़ापे में लम्बी आयु के तजुर्बे के साथ बारीक तथा सूत का कपड़ा रेशमी कपड़े जैसा था। उसने अपने हाथ से चादरा तैयार किया तथा मन में श्रद्धा धारण की, 'सतिगुरु जी के दर्शन हो।'

पर गुरसिक्खों से सुनती रही कि गुरु जी के दरबार में राजा, महाराजा तथा वजीर आते हैं। फिर वैराग के साथ मन में सोचती मैं तो एक गुरसिक्ख हूं, जिसके पास एक चादरा है वह भी खादी का। कैसे सतिगुरु जी स्वीकार करेंगे ? इस तरह मन में वैराग आया तथा मन में उतार चढ़ाव रहा।

मीरी-पीरी के मालिक सतिगुरु हरिगोबिंद साहिब जी मालवे की धरती को पूजनीय बनाने तथा सिक्ख सेवकों का उद्धार करने गए थे। डरोली भाई दीवान लगा था, सिक्ख संगतें आतीं तथा दर्शन करके वापिस जातीं। घरों तथा नगरों में जा कर गुरु यश को सुगन्धि की तरह फैलातीं।

माई सरखाना को भी खबर मिल गई कि सतिगुरु जी निकट आ गए हैं। वह भी सतिगुरु जी के दर्शन के लिए तैयार हो गई। देशी चीनी में घी मिलाया। मक्खन के परांठे बनाए तथा चादरे को जोड़

कर सिर पर रखकर चल पड़ी। चार-पांच कोस का रास्ता तय करके गुरु दरबार के निकट पहुंची तो माई के पैर रुक गए। वह मन ही मन विचार करने लगी, मैं निर्धन हूं, मेरा खादी का चादरा, चीनी, घी तथा परांठे क्या कीमत रखते हैं ? जहां राजाओं, महाराजाओं के क़ीमती दुशाले आए होंगे।......छत्तीस प्रकार का भोजन खाने वाले दाता यह भारी परांठे क्या पता खाए कि न खाएं यह तो......

वह दीवार के साथ जुड़ कर खड़ी हो गई। आंखें बंद कर लीं तथा अंतर आत्मा में सतिगुरु जी को याद करने लगी। वह दुनिया को भूल गई, अटल ध्यान लग गया, सुरति जुड़ गई।

उधर सच्चे पातशाह सतिगुरु हरिगोबिंद साहिब जी महाराज, मीरी पीरी के मालिक, भवसागर से पार करने की समर्था रखने वाले दाता, दयावान, अन्तर्यामी जान गए। माता सरखाना ध्यान लगा कर खड़ी है। उसके आगे भ्रम की दीवार है। वह दीवार पीछे नहीं हट सकती, जितनी देर कृपा न हो।

अन्तर्यामी दाता ने हुक्म दिया 'घोड़ा लाओ।' यह हुक्म दे कर पलंग से उठ गए। जूता पहना तथा शीघ्र ही दीवान में से बाहर हुए। सिक्ख संगत चोजी प्रीतम के चोज को देख कर हैरान हुई, जो उनका भेद जानते थे, वह समझ गए कि किसी जीव को पार उतारने के लिए महाराज चले हैं तथा जो नए थे वे हैरान ही थे। उनकी हैरानी को दूर करने वाला कोई नहीं था।

उधर माई सरखाना की आंखें बंद थीं तथा वह प्रार्थनाएं किए जा रही थीं। उसकी आत्मा कहती जा रही थी-'हे सच्चे पातशाह ! मैं निर्धन हूं। कैसे दरबार में आऊं, डर लगता है। अपनी कृपा करो, मैं दर्शन के लिए दूर खड़ी हूं। कोई रास्ता नहीं, डर आगे चलने नहीं देता, दाता जी कृपा करो ! दया करो !'

इस तरह आंखें बंद करके सतिगुरु जी को याद किए जा रही थी।

उधर सतिगुरु जी घोड़े पर सवार हुए, घोड़े को दौड़ाया तथा उसी जगह पहुंचे जहां माई सरखाना दीवार से सहारा लगा कर खड़ी थी। सतिगुरु जी ने आवाज दी-

'माता जी देखो ! आंखें खोल कर देखो ! सतिगुरु जी के यह शब्द सुन कर माई ने आंखें खोलीं, देखा दाता घोड़े पर सवार खड़े थे। माई शीघ्र ही आगे हुई, चरणों पर शीश झुका कर प्रणाम किया। खुशी में इतनी मग्न हो गई कि उसकी जुबान न खुली, वह कुछ बोल न सकी। बहती आंखों से सतिगुरु की तरफ देखती दर्शन करती गई।'

सच्चे पातशाह ने कहा-'अच्छा माता जी ! रोटी दें हम खाएं, हमें बहुत भूख लगी है।...... परांठे......। आपका हम इन्तजार करते रहे आप तो रास्ते में ही खड़े रहे।'

माई ने झोली में से घी, चीनी वाला डिब्बा तथा परांठे निकाल कर सतिगुरु को पकड़ा दिए। सतिगुरु ने प्रसन्न हो कर भोजन किया। भोजन करने के बाद सतिगुरु जी ने चादरे की मांग की। माई ने चादरा गुरु जी को भेंट कर दिया। माई ने जी भर कर दर्शन कर लिये एवं मन की श्रद्धा पूरी हो गई। माई कृतार्थ हो गई। उसका जन्म मरन का चक्र खत्म हो गया। दाता ने अपनी कृपा से माई सरखाना को अमर कर दिया।

सतिगुरु जी माई सरखाना का उद्धार कर ही रहे थे कि पीछे सिक्ख आ गए। हजूरी सिक्ख को सतिगुरु जी ने हुक्म दिया-'माता जी को दरबार में ले आओ। यह हुक्म करके आप दरबार की तरफ चले गए। माई सरखाना दो दिन दरबार में रह कर दर्शन करती रही। उसका कल्याण हो गया। उस माई के नाम पर आज उसका गांव सरखाना मालवे में प्रसिद्ध है।

भाई सुजान जी

मंनै पावहि मोखु दुआरु ॥ मंनै परवारै साधारु ॥

मंनै तरै तारे गुरु सिख ॥ मंनै नानक भवहि न भिख ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ ॥ जे को मंनि जाणै मनि कोई ॥१५॥

....

गुर का बचनु जीअ कै साथ ॥ गुर का बचनु अनाथ को नाथ ॥

उपरोक्त महां वाक का भावार्थ यह है कि जो परमात्मा के नाम का सुमिरन करते, उसको मानते, अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं वह सदा मोक्ष प्राप्त करते हैं। जो स्वयं भक्ति भाव पर चलते हैं, वह दूसरों को भी पार उतार देते हैं। साथ ही दाता का फरमान है कि गुरु जी का वचन, जिन्दगी भर न भूले, हृदय में बसाया जाए। गुरु जी का वचन, यह तो सब का आसरा है। उसके आसरे ही जीवन व्यतीत करते हैं भाव यह कि गुरु घर में हुक्म मानना, नाम का सुमिरन तथा सेवा ही महत्व रखती है। यही सिक्खी जीवन सर्वश्रेष्ठ है।

सेवा और नाम सिमरन करने वाले सिक्खों में एक सिक्ख वैद्य सुजान जी भी आते हैं। श्री कलगीधर जी की आप पर दया दृष्टि हुई थी। जन्म मरन के चक्र कट गए थे।

वैद्य सुजान जी लाहौर के रहने वाले थे। फारसी पढ़ने के साथ वैद्य हकीम भी बने थे तथा फारसी की कविता किया करते थे। वह हिकमत करते तो उनका मन अशांत रहता। मन की शांति ढूंढने के लिए एक कवि मित्र के साथ श्री आनंदपुर जा पहुंचे। उस समय श्री आनंदपुर में सतिगुरु जी के पास 52 कवि थे। आप कवियों का बहुत सम्मान करते थे। उनकी महिमा सारे उत्तर भारत में थी।

भाई सुजान जी आए। दो दिन तो श्री आनंदपुर शहर की महिमा देखते रहे। जब सतिगुरु जी के दरबार में पहुंचे व दर्शन किए तो सतिगुरु जी ने अद्भुत ही खेल रचा।

जब दर्शन करने गए भाई सुजान ने सतिगुरु जी के चरणों पर माथा टेककर नमस्कार की तो उस समय सतिगुरु जी ने एक अनोखा वचन

किया।

हे सुजान ! तुम तो वैद्य हो। दीन-दुखियों की सेवा करो। चले जाओ, दूर चले जाओ तथा सेवा करो। उसी में तुम्हें शांति प्राप्त होगी, पार हो जाओगे। दौड़ जाओ।'

'महाराज ! कहां जाऊं ?' भाई सुजान ने पूछा।

'दौड़ जाओ ! तुम्हारी आत्मा जानती है कि कहां जाना है अपने आप ले जाएगी। बस आनंदपुर से चले जाओ !'

फिर नहीं पूछा, चरणों पर नमस्कार की, सारी भूख मिट गई, पानी पीने की तृष्णा नहीं रही। जूते पहनना भूल गया, नंगे पांव भाग उठा, कीरतपुर पार करने के पश्चात, सरसा पार कर गया, वह भागने से न रुका, एक सैनिक की तरह भागता गया। सूर्य अस्त होने वाला था, चरवाहे पशुओं को लेकर जा रहे थे। वह भागता जा रहा था, उसकी मंजिल कब खत्म होगी ? यह उसको पता नहीं था। हां, सूर्य अस्त होने के साथ ही एक नगर आया। वहां दीवारों के पास जा कर उसको ठोकर लगी। जिससे वह मुंह के बल गिर पड़ा, गिरते हुए उसके मुंह से निकला–वाहिगुरु तथा मूर्छित हो गया।

नगर की स्त्रियों ने देखा भागता आता हुआ राही गिर कर मूर्छित हो गया है। उन्होंने शोर मचा कर गांव के आदमियों को बुला लिया। मर्दों ने भाई सुजान चंद को उठाया। चारपाई पर लिटा कर उसकी सेवा की, नंगे पांव में छाले थे, रक्त बह रहा था, पैरों को गर्म पानी से धोया, उसे होश में लाया गया। जब होश आई तो पास मर्द-स्त्रियों को देख कर उसके मुंह से सहज ही निकल गया 'धन्य कलगी वाले पिता।'

'आपने कहां जाना है ?' गांव के मुखिया ने पूछा

'कहीं नहीं, जहां जाना था वहां पहुंच गया हूं। मेरा मन कहता है मैंने यहीं रहना है। मैं वैद्य हूं रोगियों-दुखियों की सेवा तन मन से करूंगा। बताओ जिन को रोग है, मैंने कोई शुल्क नहीं लेना, मैंने

यहां रहना है भोजन पान तथा सेवा करनी है। सुजान चंद जी ने उत्तर दिया था।

सुनने वाले खुश हुए कि परमात्मा ने उन पर अपार कृपा की। वह गरीब लोग थे, गरीबी के कारण उनके पास कोई नहीं आता था। उनके धन्य भाग्य जो हकीम आ गया, एक माई आगे बढ़ी। उसने कहा– मेरा बुखार नहीं उतरता इसलिए मुझे कोई दवा दीजिए।

'अभी उतर जाएगा ! यह......चीज़ खा लो। चीज़ खाते समय मुंह से बोलना, धन्य कलगीधर पातशाह !' वह माई घर गई उस ने वैद्य जी की बताई चीज़ को खाया व मुंह से कहा, 'धन्य गुरु कलगीधर पातशाह सचमुच उसका बुखार उतर गया, वह अरोग हो गई। वैद्य की उपमा सारे गांव में फैल गई। एक त्रिण की झोंपड़ी में उस ने चटाई बिछा ली, बाहर से जड़ी बूटियां ले आया और रोगियों की सेवा करने लगा। चटाई पर रात को सो जाता तथा वाहिगुरु का सिमरन करता। आए गए रोगी की सेवा करता। इस तरह कई साल बीत गए। पत्नी, बच्चे तथा माता–पिता याद न आए। अमीरी लिबास तथा खाना भूल गया, वह एक संन्यासी की तरह विनम्र होकर लोगों की सेवा करने लगा। शाही मार्ग पर गांव था, जब रोगियों से फुर्सत मिलती तो राहगीरों को पानी पिलाने लग जाता। हर पानी पीने वाले को कहता– कहो धन्य गुरु कलगीधर पातशाह ! यात्री ज्यादातर श्री आनंदपुर जाते–आते थे। जो जाते वह श्री आनंदपुर जी जाकर बताते कि मार्ग में एक सेवक है, वह बहुत सेवा करता है। हरेक जीव से कहलाता है, 'धन्य गुरु कलगीधर पातशाह।' यह सुन कर गुरु जी मुस्करा देते।

एक दिन ऐसा आ पहुंचा। जिस दिन भाई सुजान की सेवा सफल होनी थी। उसके छोटे–बड़े ताप–संताप और पाप का खण्डन होना था। खबर आई कि सच्चे सतिगुरु जी आखेट के लिए इधर आ रहे हैं। यह खबर भाई सुजान को भी मिल गई। हृदय खुशी से गद्‌गद्

हो गया, दर्शन करने की लालसा तेज हो गई, व्याकुल हो गया पर डर भी था कहीं दर्शन करने से न रह जाए। भाग्य जवाब न दे जाए। आखिर वह समय आ पहुंचा, गुरु जी गांव के निकट पहुंच गए। नगरवासी भाग कर स्वागत के लिए आगे जाने लगे, पर उस समय एक माई ने आकर आवाज़ दी–'पुत्र ! जल्दी चलो, मेरी पुत्रवधू के पेट में दर्द हो रहा है। उसकी जान बचाओ। उसे उदर–स्फीति हो गई है। गरीब पर दया करो, चलो सतिगुरु तुम्हारा भला करे जल्दी चलो।'

भाई सुजान के आगे मुश्किल खड़ी हो गई, एक तरफ रोगी चिल्ला रहा है। दूसरी तरफ कलगीधर पिता जी आ रहे हैं। गुरु जी के दर्शन करने भी अवश्य हैं, पर रोगी को भी छोड़ा नहीं जा सकता। यदि माई की पुत्रवधू मर गई तो हत्या का भागी भाई सुजान होगा। उसकी आत्मा ने आवाज़ दी।

भाई सुजान ! क्यों दुविधा में पड़े हो ? रोगी की सेवा करो, तुम्हें सेवा करने के लिए दाता ने हुक्म किया है। उस प्रीतम का हुक्म है, गुरु परमेश्वर के दर्शन लोक सेवा में है।

उसी समय भाई सुजान दवाईयों का थैला उठा कर माई के घर को चल दिया। लोग उत्तर दिशा की तरफ दौड़े जा रहे थे, भाई सुजान दक्षिण दिशा की तरफ जा रहा था। लोगों को गुरु जी के दर्शन करने की इच्छा थी तथा भाई सुजान को रोगी की हालत देखने की जल्दी थी। लोग गुरु जी के पास पहुंचे तथा भाई सुजान माई के घर पहुंच गया। उसने जा कर माई की पुत्रवधू को देखा, वह सचमुच ही कुछ पल की मेहमान थी। उसने उसे दवाईयां घोल कर पिलाई। वैदिक असूलों के अनुसार देखरेख की हिदायतें दीं, पर पूरा एक घण्टा लग गया। माई की रोगी पुत्रवधू खतरे से बाहर हो गई। उसकी उदर–स्फीति अब धीमी हो गई। पेट का दर्द नरम हो गया। भाई सुजान

जी दवाईयां दे कर वापिस मुड़े। जल्दी-जल्दी आए तो क्या देखते हैं कि उनकी झोंपड़ी के आगे लोगों की बहुत भीड़ है। घुड़सवार खड़े हैं, सारा गांव इकट्ठा हुआ है। भाई सुजान भीड़ को चीर कर आगे चले गए। झोंपड़ी के अन्दर जा कर क्या देखते हैं कि नीले पर सवार सच्चे पातशाह गरीब की चटाई पर बैठे हुए छत्त की तरफ देख रहे हैं। जाते ही भाई सुजान सतिगुरु जी के चरण कंवलों पर गिर पड़ा। आंखों में खुशी के आंसू आ गए, चरण पकड़ कर विनती की 'करामाती प्रीतम ! दाता कृपा की जो गरीब की झोंपड़ी में पहुंच कर गरीब को दर्शन दिए, मेरे धन्य भाग्य।'

'भाई सुजान निहाल !' सच्चे सतिगुरु जी ने वचन किया। सचमुच तुमने गुरु नानक देव जी की सिक्खी को समझा है। गरीबों की सेवा की है यही सच्ची सिक्खी है। उठो ! अब श्री आनंदपुर को चलो, हम तुम्हें लेने के लिए आए है।'

गुरु के वचनों को मानना सिक्ख का परम धर्म है। उसी समय उठ कर भाई सुजान गुरु जी के साथ चल पड़ा तथा श्री आनंदपुर पहुंचा। गुरु जी ने आप को अमृत पान करवा कर सिंघ सजा दिया। नाम 'सुजान सिंघ' रखा। लाहौर से परिवार भी बुला लिया। परिवार को भी अमृत पान करवाया गया। सारा परिवार भाई सुजान सिंघ को मिल कर बहुत खुश हुआ। भाई सुजान सिंघ की धर्म पत्नी जिसने कई साल पति की जुदाई सहन की तथा पति के हुक्म में सती के समान रही, उसके हृदय को कौन जान सकता है।

जटू तपस्वी

प्रेम पिआला साध संग शबद सुरति अनहद लिव लाई।
धिआनी चंद चकोर गति अंम्रित द्रिशटि स्रिसटि वरसाई ।।
घनहर चात्रिक मोर ज्यों अनहद धुनि सुनि पाइल पाई।

चरण कमल मकरंद रस सुख संपट हुइ भवर समाई।
सुख सागर विच मीन होइ गुरमुख चाल न खोज खुजाई।
अपिउ पीअन निझर झरन अजरजरण न अलख लखाई।
वीह इकीह उलंघि कै गुरसिखी गुरमुख फल खाई।
वाहिगुरु वडी वडिआई ।८।

आध्यात्मिक दुनिया में परमात्मा के दर्शन प्राप्त करने के लिए अनेक मार्ग अपनी-अपनी समझ के अनुसार अनेक महां पुरुषों तथा अवतारों ने बताए हैं। जिन को ज्ञान ध्यान, जप तप आदि नाम दिए जाते हैं। पुण्य, सेवा सिमरन भी है। भारत में ज्ञान पर बहुत जोर रहा है। ज्ञान के बाद ध्यान आया, मूर्ति पूजा के रूप में तथा जप आया मंत्रों के रूप में ग्यारह हजार करोड़ बार किसी मंत्र का जाप कर लेना तथा कहना बस अन्य कुछ करने की जरूरत नहीं समझें कि रिद्धियां-सिद्धियां या करामातें आ गईं। जप का फल प्राप्त करने के बाद अहंकार हो जाता है। उस अहंकार का उपयोग जादू, टोने, मंत्र, लोगों को अपने वश करने में होता रहा। जप के साथ ही योगी लोगों का शरीर जो पंचभूतक का बना है पुरुष का सुन्दर घर। योगी समझते रहे शरीर में जो शक्ति है, उसको निर्मल किया जाए तो मन स्वयं ही काम, क्रोध, मोह की तरफ नहीं भागेगा। भाव कि शारीरिक शक्तियों को कमजोर करते थे।

भारत में योगियों तथा साधुओं की कई सम्प्रदाएं हैं जो तपस्या पर भरोसा रखती थीं। पंजाब में अनेक तपस्वी हुए हैं। उन तपस्वियों में एक जटू तपस्वी था। उसके तप की बहुत चर्चा थी। पर उसकी तपस्या ने उसे न भगवान के निकट किया था तथा न मन को शांति मिली थी।

उस तपस्वी की साखी इस तरह है कि वह करतारपुर (ब्यास) में रहता था तथा तपस्या किया करता था। उसके तप करने का यह ढंग था कि वह अपने चारों तरफ पांच धूनियां जला लेता तथा स्वयं

मध्य में बैठा रहता। सर्दी होती या गर्मी वह धूना जला कर तपस्या करता रहता। उसकी तपस्या की बड़ी चर्चा थी।

करतारपुर नगर को पांचवे पातशाह ने आबाद किया था। गुरु की नगरी का नाम प्राप्त हो गया। जब जटू तपस्या करता था, तब सतिगुरु हरिगोबिंद साहिब जी महाराज करतारपुर में विराजमान थे तथा वहां धार्मिक कार्यों के साथ सैनिक कार्य भी होते थे। नित्य शिकार खेले जाते तथा शत्रुओं से मुकाबला करने का प्रशिक्षण दिया जाता। देश की सेवा का भी मनोरथ था।

जटू तपस्वी को प्रभु ज्ञान बता कर उसको शारीरिक कष्ट से मुक्त करने के लिए सतिगुरु जी ने ध्यान किया। तपस्वी की दशा बड़ी दयनीय थी। वह व्याकुल रहता तथा अहंकार और लालच में आ गया था। उसकी मनोवृति ठीक नहीं रहती थी। ऐसी दशा में फंसा होने पर कभी-कभी गुरु घर की निंदा कर देता। उसके मन को फिर भी चैन न आता, क्योंकि शरीर दुखी रहता । पर सतिगुरु जी ऐसे दुखियों के दुःख दूर करते थे। सतिगुरु जी शिकार को जाते हुए तपस्वी के पास पहुंचे, उस समय तपस्वी धूना जला कर तप कर रहा था। उसका ध्यान कहीं ओर था, बैठा कुछ सोच रहा था।

सतिगुरु जी घोड़े पर सवार ही रहे, जटू तपस्वी की तरफ सतिगुरु जी ने कृपा दृष्टि से उसकी आंखों में आंखें डाल कर देखा। कोई चार-पांच मिनट तक देखकर गुरु साहिब जी ने उसके तप तथा श्रम की शक्ति को खींच लिया तथा वह वचन करके कि-तपस्वी ! खीझा न करो। कहो 'सति करतार।' साहिब जी घोड़े को एड़ी लगाकर आगे निकल गए।

सतिगुरु जी के जाने के बाद जटू तपस्वी के दिल दिमाग में खलल पैदा हो गया। वह स्वयं ही जबरदस्ती कहता गया-तपस्वी खीझा न करो। तपस्वी खीझा न करो। कहो सति करतार, सति करतार।'

यह भी चमत्कार हुआ कि उसकी पांचों धूनियां ठण्डी हो गई। उस

की हिम्मत न रही कि वह उठ कर फूंकें भी मार सके, उसने किसी को आवाज़ न दी। आसन से उठ गया, उसने कहा 'सति करतार।'

'सति करतार' कहता हुआ नाचता रहा। उसकी ऐसी दशा हो गई, नाम की ऐसी अगंमी शक्ति आई कि वह सिमरन करने लग गया। वह पागलों के जैसे घूमने लगा तथा बच्चे और साधारण लोग जिन्हें आत्मिक दुनिया का ज्ञान नहीं था, वह व्यंग्य क़रने लगे। 'तपस्वी खीझा न करो ! तपस्वी खीझा न करो।' पर वह क्रोध न करता, बल्कि कहता–कहो भाई ! सति करतार।' इस तरह कोई उसे पागल समझने लग पड़ा। उसको गुरु दर्शनों की लिव लग गई। वह दर्शन के लिए तड़पने लगा। उतनी देर में सतिगुरु जी भाग्यवश श्री अमृतसर जी को चले गए।

पीछे से तपस्वी की बैचेनी और बढ़ गई तथा वह 'सति करतार' का सिमरन करता हुआ बिल्कुल पागल हो गया। उसके इर्द–गिर्द के कपड़े फट गए तथा कभी ढंका हुआ और कभी नग्न फिरने लगा। उसकी दशा बिगड़ती गई।

उसको यह ज्ञान हो गया कि सतिगुरु जी श्री अमृतसर को चले गए हैं तो वह ब्यास से पार हो कर पीछे गया तथा अमृतसर पहुंचा।

वह शहर में तथा श्री हरिमंदिर साहिब जी के इर्द–गिर्द घूमता रहा। पर उसे सतिगुरु जी के दरबार में दाखिल होने की आज्ञा न मिली।

'ले आओ।' सतिगुरु जी ने एक दिन हुक्म दिया कि यह गुरमुख है। तपस्वी पहले खीझा रहता था, अब तपता है, नाम अभ्यासी हो गया है।

भाई जटू को सतिगुरु जी के दरबार में हाजिर किया गया। सतिगुरु जी के चरणों में गिर पड़ा तथा बिलख–बिलखकर विनती करने लगा-- हे दाता! जैसे पहले कृपा की है अब भी दया करो ! सुधबुध रहे, सिमरन करूं।'

सतिगुरु जी ने कृपा करके गुरु–मंत्र प्रदान किया, उसके मन को

शांत किया तथा अंतर–आत्मा को ज्ञान कराया। उसको वस्त्र पहनाए तथा गुरु घर में सेवा पर लगाया। उनकी लिव लगी तथा सच्चा प्यार पैदा हो गया। धूनियों का ताप जो अहंकार पैदा करता था, वह समाप्त हो गया।

सतिगुरु नानक देव जी ने सिमरन तथा सिक्खी मार्ग को प्रगट करके कलयुगी जीवों को कल्याण के साधन सिर्फ नाम सिमरन, सच्चा प्यार तथा सेवा ही बताया। वैसे ही भाई गुरदास जी फरमाते हैं कि गुरु घर में प्यार का प्याला मिलता है वह भी अनहद की धुनी बजती है। वह प्यार चांद चकोर जैसा होता है। ध्यान लगा रहता है। सिक्ख को सच्चे प्यार की कृपा होती है, गुरमुखों को ऐसा सुख मिलता है, सतिगुरु की प्रशंसा है।

इसलिए हे जिज्ञासु जनो ! नाम का सिमरन करो ! धर्म की कमाई तथा सेवा करो। झुठे आडम्बर करके शरीर को कष्ट देने की जरूरत नहीं। सच्ची तपस्या तो नाम सिमरन है।

छज्जू झीवर

श्री हरिक्रिशन धिआईऐ जिस डिठै सभि दुखि जाइ ॥

सतिगुरु हरिकृष्ण साहिब जी दिल्ली को जा रहे थे। आप को बालक रूप में गुरुगद्दी पर विराजमान देखकर कई अज्ञानी तथा अहंकारी पंडित मजाक करते थे। उनके विचार से गुरु साहिब के पास कोई आत्मिक शक्ति नहीं थी। ऐसे पुरुष जब निकट हो कर चमत्कार देखते हैं तो सिर नीचे कर लेते हैं। पर हर एक गुरु साहिब में सतिगुरु नानक देव जी अकाल पुरुष से प्राप्त की शक्ति थी, जो चाहें कर सकते थे।

एक नगर में पड़ाव किया। जीव दर्शन करके आनंदित होते तथा जन्म मरन कटते और दुःख दूर करते थे। सतिगुरु जी की उपमा सुन

कर अनेक लोग आए थे तथा दीवान सज गया था। उसी समय एक पंडित आया। उसका नाम लाल जी था। उसने दर्शन किए।

अहंकार से भरा मन में विचार आया-'मैं चार वेदों, गीता तथा उपनिषदों का कथा वाचक हूं मेरी बराबरी कौन कर सकता है। यदि गुरु हो तो गीता के अर्थ करें। ऐसी मन की बात उसने व्यक्त कर दी। इस समय जो उसके पास थे उनको शंका हुई।

ज्योति स्वरूप कृपा के दाता, अंतर्यामी सतिगुरु जी पंडित लाल के मन की बात जान गए। उन्होंने ऊंचे स्वर में वचन किया-'पंडित जी ! आप के मन में जो शंका है निवृत कर लो सतिगुरु नानक देव जी सर्वज्ञाता हैं।

पंडित लाल कुछ शर्मिन्दा हुआ, फिर भी उस को विद्या तथा आयु का अभिमान था। उठ कर आगे हुआ तथा कहने लगा-

'गीता के अर्थ सुनाओ।'

'यदि हमने अर्थ बताए तो आप सोचेंगे शायद अर्थ याद किए हैं, इसलिए कोई आदमी बाहर से ले आओ। आप ने सतिगुरु महाराज के घर पर भी संदेह किया है, इसलिए उसको दूर करो।' सतिगुरु जी ने पंडित को फरमाया।

पंडित लाल बहुत अहंकार में आ गया।

वह दीवान में से उठ कर बाहर गया तथा एक अनपढ़ छज्जू झीवर को पकड़ कर ले आया। सतिगुरु जी ने छज्जू को अपने पास बिठाया तथा उसके सिर पर छड़ी रखी तथा वचन किया-

'हे पंडित ! जिस को ले आए हो, ठीक है, कर्मों की गति न्यारी है यह तो पूर्व जन्म में पंडित था। चार वेद तथा गीता की कथा किया करता था। पर इस समय दाने भुनता है तथा आप लोग अज्ञानी मूर्ख समझ रहे हो। इसका ज्ञान किसी को नहीं।

यह सुन कर पंडित लाल बहुत हक्का-बक्का हुआ तथा उधर छज्जू

की भी पूर्व जन्म की चेतना जाग पड़ी। उसके सामने गीता आई। गीता के सारे श्लोक आए तथा श्लोकों के भाव अर्थ ! उसने हाथ जोड़ कर सतिगुरु जी के पास विनती की–'महाराज ! आपकी अपार कृपा दृष्टि हुई है, जो आप ने पूर्व जन्म का ज्ञान करा दिया है। मुझे अहंकार हो गया था, इसलिए मैं जितना विद्वान तथा ज्ञानी था उतना ही फिर मूर्ख, अनपढ़ तथा अज्ञानी हुआ। यह जन्म मेरे अहंकार का दण्ड है। परमात्मा की लीला है कि संयोग बना दिया तथा आपके चरणों में हाजिर हो गया हूं। जैसे हुक्म करोगे वैसा ही होगा। आप तो त्रिलोकी के मालिक हो, ज्ञानी हो, ब्रह्म ज्ञान का पता है। कृपा करो तथा यह पुतली नाचती रहेगी।

पंडित लाल ने छज्जू से यह कुछ सुना तो उसके पैरों के नीचे की मिट्टी निकल गई, उसको प्रत्यक्ष दिखाई दिया, छज्जू पंडित की तरह तिलकधारी बैठा था तथा उसके गले में जनेऊ था। उसने आंखें मली तो हैरान हुआ पर उसकी अहंकारी आत्मा इस भेद को न जान सकी तथा उसी समय कहने लगा–'यह भी देख लेता हूं कैसा तुम्हारा ज्ञान है।'

हे पंडित लाल जी ! आप श्लोक पढ़ो तथा पंडित छज्जू जी कथा करेंगे। व्याख्या भी हर श्लोक की होगी।

सतिगुरु जी ने पंडित लाल को कहा तथा उस ने एक श्लोक पड़ा जिसे वह बहुत कठिन पाठ तथा अर्थ भाव वाला श्लोक समझता था।

'पंडित लाल जी !' छज्जू बोला–आपने श्लोक अशुद्ध पढ़ा है, वास्तविक पाठ इस तरह है–

छज्जू संस्कृत का श्लोक मौखिक पढ़ने लग पड़ा तथा श्लोक का पाठ करने के बाद उसने अर्थ करने शुरू किए। भगवान श्री कृष्ण जी उच्चारण करते हैं 'मैं परमात्मा माया रूप भी हूं तथा निरंजन भी, जीव आत्मा अमर है। इसके बाद व्याख्या की। व्याख्या को सुन कर पंडित लाल को पसीना आ गया। वह बड़ा लज्जित हुआ कि उसने

सतिगुरु नानक देव जी की गुरुता पर शक क्यों किया ? जैसे सतिगुरु नानक देव जी महान थे, उसी तरह पिछले गुरु महाराज।'

पंडित लाल के अहंकार का सिर झुक गया, उसको इस तरह प्रतीत हुआ जैसे उसकी विद्या सारी छज्जू के पास चली गई थी। वह तो शुद्ध पाठ भी करने के योग्य नहीं रह गया था। उठ कर सतिगुरु जी के चरणों पर नतमस्तक हो गया। आंखों से आंसू आ गए। दिल में पश्चाताप तथा वैराग। वह विनती करने लगा-

'हे दातार ! आप तो प्रत्यक्ष अवतार हो। मुझे क्षमा कीजिए। मेरी विद्या मुझे लौटा दें। मैं मूर्ख न बन जाऊं। छज्जू पंडित है कि नहीं पर आप तो अवश्य पंडितों के भी पंडित हो महां विद्वान।'

सतिगुरु महाराज जी दया के घर में आए। बख्शनहार दाता ने पंडित लाल की भूल क्षमा की। उसका अहंकार खत्म करके उसको सुखी जीवन का सही मार्ग बताया। वह गुरु घर में रह कर सेवा करने लगा तथा कहा, 'मैं आप के चरणों में ही रहूंगा।'

सतिगुरु महाराज जी ने उसकी यह विनती स्वीकार कर ली तथा उसको हुक्म किया, गुरु चरणों से ध्यान जोड़ कर प्रभु नाम का सिमरन किया करो। आप का कल्याण होगा। अनपढ़ जीवों को अक्षर ज्ञान करवाया करो। गांव में धर्मशाला कायम करो। नाम ज्ञान तथा हरि कीर्तन की मण्डली तैयार करके भजन बंदगी में लगो। गुणों का लोगों को लाभ पहुंचा।

पण्डित लाल ने सब वचन आदर सहित स्वीकार किये। छज्जू का भी जन्म मरन कट गया और भजन करने लगा।

सतिगुरु महाराज की विशाल तथा अपार महिमा के बारे भाई गुरदास जी फरमाते हैं-

धंन गुरु गुरसिख धंन आदि पुरख आदेस कराया।
सतिगुर दरशन धंन है धंन द्रिशटि गुर धिआन धराया।

धंन धंन सतिगुर शबद धंन सुरति गुर गिआन सुनाया।
चरनकवल गुर धंन धंन धंन मसतक गुर चरणी लाया।
धंन धंन गुर उपदेश है धंन रिदा गुरमंत्र बसाया।
धंन धंन गुर चरनांम्रितो धंन मुहत जित अपिओ पीआया।
गुरमुख सुख फल अजर जराया ॥१९॥

भाई साहिब जी फरमाते हैं कि सतिगुरु जी भी धन्य हैं, उनकी महिमा ब्यान नहीं की जा सकती तथा सतिगुरु जी के सिक्ख भी, जिन्होंने अनेक कुर्बानियां दीं। सेवा करते तथा हुक्म मानते हुए कोई कमी बाकी न छोड़ी। सतिगुरु जी ने सिक्खों को अकाल पुरुष के आगे डण्डवत कराई अथवा नाम सिमरन में लगाया। सतिगुरु जी के दर्शन भी धन्य उपमा योग्य है क्योंकि दर्शन करने से जन्म मरन के बंधन कट जाते हैं, मन एक तरफ लग जाता है। धन्य हैं सतिगुरु जी के चरण कंवल, जिन पर जब शीश झुकाते हैं तो जंगाल लगे हुए पाप भी दूर हो जाते हैं। सतिगुरु जी का बख्शा हुआ चरणामृत (पाहुल) आजकल खण्डे का अमृत ऐसा नशा होता है कि जीवन भर नहीं उतरता तथा सदा–

नाम खुमारी नानका चढ़ी रहै दिन रात।

जैसी बात होती है। सतिगुरु महाराज ने गुरमुखों को ऐसा बना दिया कि वह विनम्र हो गए। अहं खत्म हो गया।

ऐसी ही कृपा सतिगुरु हरिकृष्ण जी ने आठवीं देह रूप में पंडित लाल तथा भाई छज्जू पर की।

भाई जोगा सिंघ जी

अखीं वेख न रजीआं बहु रंग तमासे।
उसतति निंदा कंन सुन रोवण ते हासे।
सादीं जीभ न रजीआ कर भोग बिलासे।

नक न रजा वास लै दुरगंध सुवासे।
रज न कोई जीविआ कूड़े भरवासे।
पीर मुरीदां पिरहड़ी सची रहरासे।१।

(भाई गुरदास जी)

गुरु इतिहास में भाई जोगा सिंघ जी की कथा आती है। आप गुरु घर के महान सिक्ख हुए हैं तथा सेवा सिमरन ऐसा किया कि आपका गुरुद्वारा पेशावर में अभी तक कायम है। जिंदादिली वाले सिक्ख थे। उनकी जीवन कथा बड़ी शिक्षा देने वाली है। भाई गुरदास जी के कथन अनुसार शारीरिक इन्द्रियां भोग विलास करती हुई थकती नहीं। कोई गुरमुख ही इन पर काबू पा सकता है। वह भी यदि सतिगुरु महाराज की अपार कृपा हो, नहीं तो मन डगमगा जाता है, आंखें देखते हुए नहीं थकती। जिह्वा छत्तीस प्रकार के भोजन खाती हुई नहीं थकती तथा कान निंदा चुगली सुनने को तैयार रहते हैं। जिन पुरुषों की सौ-सौ साल आयु हुई, वह मरते समय रोये तथा पछताए। रावण तथा सुलेमान पैगम्बर भी राज करते तथा भोग विलास करते हुए भूखे के भूखे ही रहे। चक्रवर्ती राजा हुए, करोड़पति माया इकट्ठी करते न थके।

पर जो गुरु घर में आ गए उनकी तृष्णा खत्म हो गई। वह सब्र-संतोष में ऐसे आए कि मृगतृष्णा न रही। ऐसे ही संतोषियों में भाई जोगा सिंघ जी भी हुए हैं, जिन की एक बार परीक्षा भी हुई। कलगीधर पिता ने कौतुक किया था -

'ते गुर सांग पलटदा सिक्ख सिदक न हारे।' की तरह परीक्षा ली थी। पर सिक्ख का मन डगमगाया, तो सतिगुरु जी ने स्वयं कृपा करके उनको बचा लिया। धन्य हैं सतिगुरु कलगीधर पिता जी अपने सिक्खों का ख्याल रखते हैं।

भाई जोगा सिंघ के माता पिता जी पेशावर के रहने वाले गुरु घर के प्रेमी थे। संगत के साथ श्री आनंदपुर साहिब सतिगुरु जी के दर्शन

करने अक्सर जाया करते थे।

भाई जोगा जी बाल अवस्था में थे कि माता-पिता के साथ श्री आनंदपुर साहिब पहुंचे। सतिगुरु जी के चरणों पर माथा झुकाया तो महाराज ने पूछा 'पुत्र तुम्हारा क्या नाम है ?'

'जोगा !' बाल रूप सहज स्वभाव भाई जोगा सिंघ ने गुरु जी को उत्तर दिया।

'किस जोगा ?' सतिगुरु जी का दूसरा प्रश्न था।

'गुरु जी ! आप जोगा !' भाई जोगा सिंघ ने उत्तर दिया।

बालक जोगा सिंघ से ऐसा वचन सुन कर सतिगुरु जी प्रसन्न हो गए तथा उन्होंने सिर पर आशीष देकर बालक को आनंदित कर दिया। अच्छा ! फिर यहीं रहो।

सतिगुरु जी ने वचन कर दिया। भाई जोगा सिंघ गुरु जी की हजूरी में रह कर सेवा करने तथा विद्या ग्रहण करने लगा।

कुछ समय गुरु घर में सेवा करके जब पेशावर की संगत वापिस पेशावर को जाने लगी तो भाई जोगा सिंघ के माता-पिता भी वापिस जाने को तैयार हो गए। उन्होंने जोगा सिंघ को साथ चलने के लिए कहा तो उसने उत्तर दिया-

मैंने नहीं जाना, मैं तो गुरु घर में रहूंगा। सतिगुरु जी की सेवा करूंगा, मैंने नहीं जाना, पढ़ना है।

माता-पिता सुन कर स्तब्ध हुए कि स्वाभाविक बात की थी कि बच्चे के मन को छू गई। उन्होंने बहुत जोर लगाया पर भाई जोगा सिंघ उनके साथ वापिस जाने के लिए तैयार न हुआ। वह श्री आनंदपुर में ही रहने लगा।

जोगा सिंघ के माता-पिता की इच्छा

समय अपनी चाल चलता जाता है, यह रोकने से नहीं रुकता, समय

के साथ ही मनुष्य की आयु बढ़ती जाती है। आज का बालक कल का युवक और परसों का बूढ़ा। इस तरह काल चक्र चलता रहता है। जोगा सिंघ महाराज की हजूरी में रहते हुए जवान हो गया, विद्या ग्रहण कर गया तथा दाढ़ी मूंछ भी आ गई, सुन्दर शरीर बना, ऊंचा लम्बा कद। जो भी देखता वह बड़ा प्रसन्न हो जाता।

सतिगुरु महाराज की उस पर बड़ी कृपा-दृष्टि हुई। अक्षरों की विद्या के साथ-साथ शस्त्र विद्या भी प्राप्त की। अच्छा घुड़सवार तथा बहादुर संत-सिपाही बन गया। रात-दिन सेवा में जुटा रहने लगा।

एक दिन पेशावर की संगत आई, संगत के द्वारा जोगा सिंघ के माता-पिता की तरफ से एक चिट्ठी पहुंची। वह चिट्ठी सतिगुरु जी के आगे रखी गई, चिट्ठी में लिखा था-

महाराज ! सेवकों की नम्रता सहित विनती है कि जोगा सिंघ के लिए एक सुन्दर तथा सुशील कन्या का योग बनता है। जोगा सिंघ का विवाह करने की तीव्र इच्छा है। आप कृपा करो तथा जोगा सिंघ को एक बार पेशावर भेज दीजिए। महाराज जी ! विवाह होने के बाद तुरन्त ही आप के पास पहुंच जायेगा। हमारी आयु बड़ी हो रही है। यही विचार है कि इसका विवाह कर दें, श्वासों का पता नहीं कितना समय रहे या न रहे। महाराज कृपा करें तथा जोगा सिंघ को एक बार भेज दें। बार-बार विनती है।

सतिगुरु जी ने जब चिट्ठी देखी तो उन्होंने भाई जोगा सिंघ को अपने पास बुलाया। पास बुला कर वचन किया-

'जोगा सिंघ ! तुम्हारे माता-पिता जी ने चिट्ठी भेजी है

जोगा सिंघ 'पिता जी !' यह दर छोड़ कर कहीं जाने का मन नहीं करता। अपने चरणों में रहने दें, क्या लेना है घर जा कर।'

सतिगुरु जी-'तुम्हारे पिता जी ने चिट्ठी में बताया है कि वह तेरी शादी करना चाहते हैं। पुत्र ! माता पिता का कहना मानना चाहिए।

उनके मन की मुराद भी पूरी करके खुशियां हासिल करनी चाहिएं।

जोगा सिंघ-पिता जी ! हुक्म मान लेता हूं पर यहां से जाने को मन नहीं करता। तन मन सब आपके चरणों में रखना चाहता हूं। यह आनंदपुरी सत्य ही आनंदपुरी है, स्वर्गपुरी है।

सतिगुरु जी-'जब तुम्हारी आवश्यकता समझेंगे, उसी समय चिट्ठी भेज देंगे, चिट्ठी देखते ही आ जाना।'

जोगा सिंघ ने सतिगुरु जी का हुक्म मान लिया तथा घर जाने को तैयार हो गया। सतिगुरु जी ने कृपा-दृष्टि करके उसके मन में घर तथा मां बाप, रिश्तेदारों आदि के लिए मोह भी पैदा कर दिया। खुशी से जाने को तैयार हुआ तथा संगत के साथ मिल गया। आनंदपुर से पैदल रास्ता बड़ा लम्बा था। रास्ते में खतरे थे तथा साथ बिना जाना बहुत कठिन था। भाई जोगा सिंघ जवानी में होने के कारण उत्साह से चलता गया।

भाई जोगा सिंघ का विवाह

आखिर संगत के साथ रास्ता खत्म करके भाई जोगा सिंघ पेशावर पहुंच ही गया। पुत्र को घर आया देख कर उसके मां-बाप बहुत प्रसन्न हुए। उनकी खुशी की कोई सीमा न रही रिश्तेदार मिले तथा शीघ्र ही विवाह की तैयारी कर दी, जैसे सतिगुरु जी ने कौतुक करना था वैसे सारे रिश्तेदार तथा अपने संबंधी बुलाए। खुशियों का साजो-सामान इकट्ठा किया गया, उसी शहर में बारात जानी थी, बारात तैयार हुई। भाई जोगा सिंघ को सुन्दर पोशाक पहना कर तथा सिर पर सेहरा बांध कर दुल्हा बनाया। घोड़ी पर सवार होकर दुल्हा विवाह करने चला, बहनों ने वांग पकड़ी, शगुन के रूप में काफी रुपए लिये। आतिशबाजी तथा बाजों की गुंजार में बारात अगले घर पहुंची। प्यार तथा चाव से आदर हुआ। अगले दिन सुबह ही लावां फेरों का समय

था। आसन बिछा कर दुल्हा–दुल्हन को बिठाया गया। गुरु यश करने वाले रागियों ने कीर्तन किया तथा लावां पढ़नी शुरू हुई, पहली लांव पढ़ी गई व दूसरी शुरू हुई–

'अंतरि बाहरि हरि प्रभु ऐको मिलि हरि जन मंगल गाए ।।
जन नानक दूजी लाव चलाई अनहद सबद वजाए ।।'

(पन्ना ७७४)

दूसरी लांव की अंतिम तुक अभी भाई जी के होठों पर थी, दुल्हे ने माथा टेका, दुल्हन अभी माथा टेक रही थी कि सतिगुरु जी के सेवक ने सतिगुरु जी का हुक्मनामा भाई जोगा सिंघ जी के हाथ में पकड़ाया। भाई जोगा सिंघ वहीं रुक गए तथा शीघ्र ही उसको देखना आरम्भ कर दिया। सतिगुरु जी ने लिखा था–

'जिस समय हुक्मनामा मिले उसी समय चल कर श्री आनंदपुर पहुंचना जितनी जल्दी हो।'

गुरु चरणों के भंवरे ने गुरु का हुक्मनामा पढ़ा, तुरंत तैयार हो गया, मैं चला हूं, मैं नहीं रुक सकता। मैंने बाकी लावें नहीं लेनी, मेरे सतिगुरु जी का हुक्म है। मैं कैसे रुक जाऊं, सतिगुरु जी क्या कहेंगे मेरे सतिगुरु जी।

माता–पिता, बहन–भाई, रिश्तेदार ससुराल वाले तथा रागी विद्वान सभी रोक रहे थे कि और पांच सात मिनट लगेंगे, अरदास के बाद चले जाना, इतनी देर में गुरु नाराज नहीं होते।

पर भाई जोगा सिंघ न रुका, आखिर भाई तथा घर वालों ने उसका तौलिया तथा कृपाण छीन ली, उसी के साथ बाकी की लावां पढ़ कर विवाह की रस्म को पूरा किया। उसकी नई नवेली दुल्हन बड़ी हैरान हुई। सब ने कहा कैसा प्यार है गुरु जी के साथ। भाई जोगा सिंघ इतने में पेशावर की बाहरी आबादी भी पार कर चुका था, वह तो पल में ही दूरी को तय करने पर तुला था, श्री कलगीधर पिता

जी ने अपनी प्रेम डोरी फैंकी थी, खींच लिया सिक्ख को कौतुक कोई करना था। वाह मेरे दाता !

होशियारपुर रुकना

पेशावर से चल कर रावलपिंडी, रावलपिंडी से लाहौर तथा लाहौर से भाई जोगा सिंघ अमृतसर पहुंचे। अपने प्यारे सतिगुरु को मिलने की तड़प हृदय में थी। हुक्म की पालना पूरी करने की चाहत थी। जल्दी-जल्दी रास्ता खत्म करके होशियारपुर पहुंचा, कुदरत के खेल, सच्चे सतिगुरु जी ने सिक्ख का इम्तिहान लेना था। होशियारपुर में अन्य ही कौतुक रच कर रोक लिया।

भाई जोगा सिंघ जिस बाजार में से गुजरने लगा, वह वेश्याओं का बाजार था। रूप माया ही मर्द को भुला लेती है। इसके आकर्षण से बचना असम्भव है, बचता वही है जिस को सच्चा सतिगुरु स्वयं बचाए।

उस बाजार में एक सुन्दर वेश्या थी, उस की मनमोहनी सूरत को देखकर मर्द हैरान रह जाते थे। उसने आवाज़ देकर भाई जोगा सिंघ को रोका। आंखों में आंखें डाल कर हाथ से इशारा किया। भाई जोगा सिंघ उसके नैनों के जाल में फंस गया, उस सुन्दरी की तरफ देखने लग पड़ा, पर जल्दी ही ध्यान आ गया कि वह गुरु का सिक्ख है। उसके हाथ में कड़ा तथा सिर पर दस्तार व तेड़ कच्छरा पहना है, यदि कोई उस को देखेगा तो क्या कहेगा ?

यह विचार करके कुछ शर्मिन्दा-सा हुआ। दस कदम आगे गया। आगे जा कर फिर खड़ा हो गया, उस सुन्दरी का चित्र आंखों में था, स्वप्न की तरह उस को इशारे करती प्रतीत होती थी। भाई जोगा सिंघ फिर रुक गया, सूर्य की रोशनी में वह वेश्या की बैठक पर कैसे जाए ? लोग उस को क्या कहेंगे, उसे गुरु तथा गुरु का हुक्मनामा

भूल गया। सिर्फ दिमाग आंखों में याद रहे लोग, शर्म तथा वेश्या उसके हृदय में एक अद्‌भुत ही दंगल करने लगे। कर्त्ता के खेल कहीं कचरौल जैसी सुन्दर स्त्री को घर छोड़ कर भाग आया, उसके साथ पूरे फेरे भी न लिये, पर वेश्या के रूप में फंस गया जहां धर्म तथा सद्-व्यवहार ने नष्ट होना था। तन को रोग लगने का भय था, घर पर छोड़ी स्त्री देवी तथा धर्म थी। उसका मेल तथा वेश्या का मेल जमीन-असमान का अन्तर था। भाई जोगा सिंघ को आनंद्पुर का रास्ता भूल गया। वह शहर से बाहर जा बैठा। इस इंतजार में कि अंधेरा होने पर वह वेश्या की बैठक पर जायेगा, उस रूपवती को अवश्य मिलेगा।

गुरु का सिंघ डगमगा गया। सच्चा गुरु अपने सिक्ख की रक्षा करता है। चोजी प्रीतम को पता लग गया अपनी आत्मिक शक्ति से सिक्ख को बचाने लगे। एक द्वारपाल का रूप धारण करके वेश्या की सीढ़ियों के आगे जा खड़े हुए, घना अंधेरा हो गया था, भाई जोगा सिंघ पीछे मुड़ा। लोग अभी भी बाजारों में घूम रहे थे। वह वेश्या की बैठक के नीचे बैठ गया। वह क्या देखता है कि बैठक की सीढ़ियों के निकट एक आदमी खड़ा है। उसके हाथ में डंडा है तथा उसके वस्त्र धनवानों के सेवकों जैसे थे। भाई जोगा सिंघ दबे पांव सीढ़ियां चढ़ने लगा तो उस ने डांटा, 'ओए ! कहां जाता है, उधर मत जाना, ऊपर सेठ साहिब गए हैं, चल अपना रास्ता नाप।'

भाई जोगा सिंघ लज्जित-सा हो कर पीछे हो गया। सड़क की दूसरी तरफ हो कर बैठक की ओर देखा तो वेश्या की बैठक में दीये की रोशनी तो थी, पर वह सुन्दरी बैठी नजर न आई। उसने विश्वास कर लिया कि जरूर ही कोई न कोई सेठ ऊपर होगा, अगर ऊपर कोई न होता तो वह सुन्दरी खिड़की पर बैठी किसी न किसी का इंतजार कर रही होती। भाई जोगा सिंघ जिधर से आया था, उधर

ही वापस हो गया। उसके दिल में हिचकिचाहट लगी हुई थी। बेचैनी से समय गुजार रहा था। कभी यह भी याद आ रहा था कि बहुत जल्दी की घर से चलने की, अपनी दुल्हन का मुंह देख कर आता। कामवासना के उबाल ने उसके शरीर के रोम-रोम खड़े कर दिए। दो घण्टे बेचैनी में काट कर वह फिर पीछे मुड़ कर आया। वह वेश्या की बैठक के पास पहुंचा तो उसके कदम रुक गए। दिल को मायूसी हुई क्योंकि वह द्वारपाल अभी भी खड़ा था। बैठक में रोशनी थी, पर वेश्या खिड़की के आगे नहीं थी। आगे हो कर पूछने लगा-'तुम्हारा सेठ कब घर को जाएगा ?'

'मुझे क्या पता, मुझे तो हुक्म है, ऊपर किसी को न जाने देना, जितनी देर सेठ साहिब नीचे न उतर आए। तुम कौन हो ? द्वारपाल ने उत्तर दिया तथा पूछा।'

'मैं कोई भी हूं, इससे तुम्हें क्या ?' भाई जोगा सिंघ का उत्तर था।

'दौड़ जाओ फिर सिर पर पैर रख कर, आज रात तुम्हारा दांव नहीं लगना, तुम समझदार तथा भद्रपुरुष लगते हो, देखने को मर्यादा वाले। क्या मिलेगा, इस बुरे काम में तुम्हें ? चले जाओ। रक्षक ने बड़े क्रोध तथा ताने वाले स्वभाव में कहा।'

पर उस समय भाई जोगा सिंघ का मन डोल चुका था। वह तो वासना में अंधे हो रहे थे। वह इंतजार में थे कि ऊपर गया आदमी नीचे आए। पर उस समय होनी ओर की ओर हो गई। सिक्ख की लाज सतिगुरु जी ने रखनी थी। अपनी अपार शक्ति से सतिगुरु जी ने वेश्या को सूल दिया। वह दर्द से तड़पने लगी तथा सारे दरवाजे एवं खिड़कियां बंद हो गए। भाई जोगा सिंघ हैरान हुआ, उस समय रात काफी बीत गई थी। द्वारपाल ने फिर डांट कर कहा

'जाओ दूर हो जाओ ! मुर्गा बांग देने वाला है। तुम तो गुरु के सिक्ख लगते हो। क्यों आग की तरफ बढ़ते हो। यह नरक की आग है।'

द्वारपाल के इन शब्दों ने भाई जोगा सिंघ जी का दिल हिला दिया। वह कांपा तथा उसको ऐसा लगा जैसे उसकी खोई बुद्धि वापिस आ गई। जैसे वह सोया हुआ जाग पड़ा। उस को ज्ञान हुआ उसकी जुबान से निकला–

'मेरे सतिगुरु जी !' यह कह कर वह भाग उठा जैसे चोर भागता है। वह डर गया, उसका शरीर कांपता गया। डर के कारण भागने से वह दो चार बार गिर पड़ा। 'बख्शीं दाता ! यह क्या होनी हुई।' उसकी आत्मा पश्चाताप करने लगी। वह भागता गया।

भाई जोगा सिंघ पश्चाताप करता हुआ चला गया, रोता गया। उसकी आत्मा कहती जा रही थी–

मेरा सतिगुरु क्या कहेगा ? मैंने बहुत बुरा किया। धिक्कार है ऐसे जीवन पर ! फिर नारी रूप में चल कर रुक गया, धिक्कार है तुम्हें जोगा ! जोगा !' इस तरह पश्चाताप करता, दुःख अनुभव करता हुआ दरिया सतलुज के किनारे जा पहुंचा, उस समय काफी दिन निकल चुका था। गुरु की नगरी नजर आई तो दरिया में छलांग मार दी। मरने का ख्याल न किया। नाव का इंतजार न किया। उसको जल्दी थी, शीघ्र श्री आनंदपुर पहुंचने की।

भाई जोगा सिंघ श्री आनंदपुर पहुंच गया पर भय तथा सहम ने उसकी मानसिक दशा बिगाड़ दी। वह डरते-डरते सतिगुरु जी की हजूरी में उपस्थित हुआ। डंडवत हो कर प्रणाम करने लगा। मुंह के बल गिर पड़ा तथा रोने लगा। दीवान में बैठी हुई सिक्ख संगत बड़ी हैरान हुई, सतिगुरु जी मुस्कराते रहे तथा अपने सिक्ख की तरफ देखते रहे।

'मुझे क्षमा कीजिए दाता।' भाई जोगा बोला, हाथ बढ़ा कर सतिगुरु जी के चरणों को लगाए। सहनशील सिक्ख देखते रहे।

सतिगुरु जी दया के घर में आए, अपने सिक्ख पुत्र की भूल को

एक सच्चे पिता की तरह भूलने लगे। फिर गले लगाने को तैयार हुए, गुरु साहिब जी ने एक ही वचन किया–

'भाई जोगा सिंघ ! तुम्हें रुकना नहीं चाहिए था।' फिर पिता जी ने जोगा सिंघ को उठाया। वचन किया–जोगा सिंघ ! 'देख पराई स्त्री - माताएं, बहनें, पुत्रियां समझो, गले लगा कर क्षमा कर दिया तथा भाई जोगा सिंघ को एक सच्चा सिंघ बनाया।

बीबी बसन्त लता जी

श्री कलगीधर पिता जी की महिमा अपरम्पार है, श्री आनंदपुर में चोजी प्रीतम ने बड़े कौतुक किए। अमृत तैयार करके गीदड़ों को शेर बना दिया। धर्म, स्वाभिमान, विश्वास, देश–भक्ति तथा प्रभु की नई जोत जगाई। सदियों से गुलाम रहने के कारण भारत की नारी निर्बल हो कर सचमुच ही मर्द की गुलाम बन गई तथा मर्द से बहुत डरने लगी। सतिगुरु नानक देव जी ने जैसे स्त्री जाति को समानता तथा सत्कार देने का ऐलान किया था, वैसे सतिगुरु जी ने स्त्री को बलवान बनाने के लिए अमृत पान का हुक्म दिया। अमृत पान करके स्त्रियां सिंघनी बनने लगीं तथा वह अपने धर्म की रक्षा स्वयं करने लगी। उनको पूर्ण ज्ञान हो गया कि धर्म क्या है ? अधर्मी पुरुष कैसे नारी को धोखा देते हैं विश्वास के जहाज पार होते हैं।

ऐसी बहुत–सी सहनशील नारियों में से एक बीबी बसन्त लता थी, वह सतिगुरु जी के महल माता साहिब कौर जी के पास रहती और सेवा किया करती थी। नाम बाणी का सिमरन करने के साथ–साथ वह बड़ी बहादुर तथा निडर थी। उसने विवाह नहीं किया था, स्त्री धर्म को संभाल कर रखा था। उसका दिल बड़ा मजबूत और श्रद्धालु था।

बीबी बसन्त लता दिन रात माता साहिब कौर जी की सेवा में ही जुटी

रहती। सेवा करके जीवन व्यतीत करने में ही हर्ष अनुभव करती थी।

माता साहिब कौर जी के पास सेवा करते हुए बसन्त लता जी की आयु सोलह साल की हो गई। किशोर हुई देख कर माता पिता उसकी शादी करना चाहते थे। पर उसने इंकार कर दिया। अकाल पुरुष ने कुछ अन्य ही चमत्कार दिखाए। श्री आनंदपुर पर पहाड़ी राजाओं और मुगलों की फौजों ने चढ़ाई कर दी। लड़ाई शुरू होने पर खुशी के सारे समागम रुक गए और सभी सिक्ख तन-मन और धन से नगर की रक्षा और गुरु घर की सेवा में जुट गए।

बसन्त लता ने भी पुरुषों की तरह शास्त्र पहन लिए और माता साहिब कौर जी के महल में रहने लगी और पहरा देती। उधर सिक्ख शूरवीर रणभूमि में शत्रुओं से लड़ते शहीद होते गए। बसंत लता का पिता भी लड़ता हुआ शहीद हो गया। इस तरह लड़ाई के अन्धेरे ने सब मंगलाचार दूर किए, बसन्त लता कुंआरी की कुंआरी रही।

जैसे दिन में रात आ जाती है, तूफान शुरू हो जाता है वैसे सतिगुरु जी तथा सिक्ख संगत को श्री आनंदपुर छोड़ना पड़ा, हालात ऐसे हो गए कि और ठहरना असंभव था। पहाड़ी राजाओं तथा मुगल सेनापतियों ने धोखा किया। उन्होंने कुरान तथा गायों की कसमें खाई पर मुकर गए। प्रभु की रज़ा ऐसे ही होनी थी।

सर्दी की रात, रात भी अन्धेरी । उस समय सतिगुरु जी ने किला खाली करने का हुक्म कर दिया। सब ने घर तथा घर का भारी सामान छोड़ा, माता साहिब कौर तथा माता सुन्दरी जी भी तैयार हुए। उनके साथ ही तैयार हुए तमाम सेवक। कोई पीछे रह कर शत्रुओं की दया पर नहीं रहना चाहता था। अपने सतिगुरु के चरणों पर न्यौछावर होते जाते। बसन्त लता भी माता साहिब कौर के साथ-साथ चलती रही। अपने वीर सिंघों की तरह शस्त्र धारण किए। चण्डी की तरह हौंसला था। वह रात के अन्धेरे में चलती गई। काफिला चलता गया। पर जब

अन्धेरे में सिक्ख संगत झुण्ड के रूप में दूर निकली तो शत्रुओं ने सारे प्रण भुला दिए और उन्होंने सिक्ख संगत पर हमला कर दिया। पथ में लड़ाईयां शुरू हो गईं। लड़ते-लड़ते सिक्ख सरसा के किनारे पहुंच गए।

वाहिगुरु ने क्या खेल करना है यह किसी को क्या पता ? उस के रंगों, कौतुकों और भाग्यों को केवल वह ही जानता है और कोई नहीं जान सकता। उसी सर्दी की पौष महीने की रात को अंधेरी और बादल आ गए। बादल बहुत जोर का था। आंधी ने राहियों को रास्ता भुला दिया। उधर शत्रुओं ने लड़ाई छेड़ दी सिर्फ बहुमूल्य सामान लूटने के लिए। इस भयानक समय में सतिगुरु जी के सिक्खों ने साहस न छोड़ा तथा सरसा में छलांग लगा दी, पार होने का यत्न किया। चमकती हुई बिजली, वर्षा और सरसा के भयानक बहाव का सामना करते हुए सिंघ-सिंघनियां आगे जाने लगे।

बसन्त लता ने कमरकसा किया हुआ था और एक नंगी तलवार हाथ में ले रखी थी। उस ने पूरी हिम्मत की कि माता साहिब कौर की पालकी के साथ रहे, पर तेज पानी के बहाव ने उसे विलग कर दिया, उन से बह कर विलग हो गई और अन्धेरे में पता ही न लगा किधर को जा रही थी, पीछे शत्रु लगे थे। नदी से पार हुई तो अकेली शत्रुओं के हाथ आ गई। शत्रु उस को पकड़ कर खान समुन्द खान के पास ले गए। उन्होंने बसन्त लता को नवयौवना और सौंदर्य देखकर पहले आग से शरीर को गर्मी पहुंचाई फिर उसे होश में लाया गया। शत्रुओं की नीयत साफ नहीं थी, वह उसे बुरी निगाह से देखने लगे।

समुन्द खान एक छोटे कस्बे का हाकिम था। वह बड़ा ही बदचलन था, किसी से नहीं डरता था और मनमानियां करता था। वह बसन्त लता को अपने साथ अपने किले में ले गया। बसन्त लता की सूरत ऐसी थी जो सहन नहीं होती जाती थी। उसके चेहरे पर लाली चमक

रही थी। समुन्द खान को यह भी भ्रम था कि शायद बसन्त लता गुरु जी के महलों में से एक थी। जैसे कि मुगल हाकिम और राजा अनेक दासियां बेगमें रखते हैं। उसने बसन्त लता को कहा-'इसका मतलब यह हुआ कि तुम पीर गोबिंद सिंघ की पत्नी नहीं।'

बसन्त लता-' नहीं ! मैं एक दासी हूं, माता साहिब कौर जी की सेवा करती रही हूं।'

समुन्द खान-'इस का तात्पर्य यह हुआ कि स्वर्ग की अप्सरा अभी तक कुंआरी है, किसी पुरुष के संग नहीं लगी।'

बसन्त लता-'मैंने प्रतिज्ञा की है कुंआरी रहने और मरने की। मैंने शादी नहीं करवानी और न किसी पुरुष की सेविका बनना है। मेरे सतिगुरु मेरी सहायता करेंगे। मेरे धर्म को अटूल रखेंगे। जीवन भर प्रतिज्ञा का पालन करूंगी।'

समुन्द खान-'ऐसी प्रतिज्ञा औरत को कभी भी नहीं करनी चाहिए। दूसरा तुम्हारा गुरु तो मारा गया। उसके पुत्र भी मारे गए। कोई शक्ति नहीं रही, तुम्हारी सहायता कौन करेगा ?'

बसन्त लता-'यह झूठ है। गुरु महाराज जी नहीं मारे जा सकते। वह तो हर जगह अपने सिक्ख की सहायता करते हैं। वह तो घट-घट की जानते हैं, दुखियों की खबर लेते हैं। उन को कौन मारने वाला है। वह तो स्वयं अकाल पुरुष हैं। तुम झूठ बोलते हो, वह नहीं मरे।'

समुन्द खान-'हठ न करो। सुनो मैं तुम्हें अपनी बेगम बना कर रखूंगा, दुनिया के तमाम सुख दूंगा। तुम्हारे रूप पर मुझे रहम आता है। मेरा कहना मानो, हठ न करो, तुम्हारे जैसी सुन्दरी मुगल घरानों में ही शोभा देती है। मेरी बात मान जाओ।'

बसन्त लता-'नहीं ! मैं भूखी मर जाऊंगी, मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दो, जो प्रतिज्ञा की है वह नहीं तोड़ूंगी। धर्म जान से भी प्यारा है। सतिगुरु जी को क्या मुंह दिखाऊंगी, यदि मैं इस प्रतिज्ञा को तोड़ दूं ?'

समुन्द खान–'अगर मेरी बात न मानी तो याद रखो तुम्हें कष्ट मिलेंगे। उल्टा लटका कर चमड़ी उधेड़ दूंगा। कोई तुम्हारा रक्षक नहीं बनेगा, तुम मर जाओगी।'

बसन्त लता–'धर्म के बदले मरने और कष्ट सहने की शिक्षा मुझे श्री आनंदपुर से मिली थी। मेरे लिए कष्ट कोई नया नहीं।'

समुन्द खान–'मैं तुम्हें बन्दीखाने में फैंकूंगा। क्या समझती हो अपने आप को, अन्धेरे में भूखी रहोगी तो होश टिकाने आ जाएंगे।'

बसन्त लता–'गुरु रक्षक।'

समुन्द खान ने जब देखा कि यह हठ नहीं छोड़ती तो उसने भी अपने हठ से काम लिया। उसको बंदीखाने में बंद कर दिया। उसके अहलकार उसे रोकते रहे। किसी ने भी सलाह न दी कि बसन्त लता जैसी स्त्री को वह बन्दीखाने में न डाले। मगर वह न माना, बसन्त लता को बन्दीखाने में डाल ही दिया। परन्तु बसन्त लता का रक्षक सतिगुरु था। गुरु जी का हुक्म भी है:

राखनहारे राखहु आपि ॥ सरब सुखा प्रभ तुमरै हाथि ॥

बसन्त लता को बन्दीखाने में फैंक दिया गया। बन्दीखाना नरक के रूप में था, जिस में चूहे, सैलाब मच्छर इत्यादि थे। मौत जैसा अंधेरा रहता। किसी मनुष्य के माथे न लगा जाता। ऐसे बन्दीखाने में बसन्त लता को फैंक दिया गया। पर उसने कोई दुःख का ख्याल न किया।

वाह ! भगवान के रंग पहली रात बसन्त लता के सिर उस बन्दीखाने में आई। दुश्मन पास न रहे। उसे अन्धेरे में अकेली बैठी हुई को अपना ख्याल भूल गया पर सतिगुरु जी व सतिगुरु जी के परिवार का ख्याल आ गया। आनंदपुर की चहल–पहल, उदासी, त्याग तथा सरसा किनारे अन्धेरे में भयानक लड़ाई की झांकियां आंखों के आगे आईं उसका सुडौल तन कांप उठा। सिंघों का माता साहिब कौर की पालकी उठा

कर दौड़ना तथा बसन्त लता का गिर पड़ना उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि वह बन्दीखाने में नहीं अपितु सरसा के किनारे है, उसके संगी साथी उससे बिछुड़ रहे हैं। वह चीखें मार उठी 'माता जी ! प्यारी माता जी ! मुझे यहां छोड़ चले हो, किधर जाओगे ? मैं कहां आ कर मिलूं ? आपके बिना जीवित नहीं रह सकती, गुरु जी के दर्शन कब होंगे ? माता जी ! मुझे छोड़ कर न जाओ ! तरंग के बहाव में बही हुई बसन्त लता इस तरह चिल्लाती हुई भाग कर आगे होने लगी तो बन्दीखाने की भारी पथरीली दीवार से उसका माथा टकराया। उसको होश आई, वह सरसा किनारे नहीं बल्कि बंदीखाने में है, वह स्वतंत्र नहीं, कैदी है। उफ ! मैं कहां हूं ? उसके मुंह से निकला।

पालथी मार कर नीचे बैठ गई तथा दोनों हाथ जोड़ कर सतिगुरु जी के चरणों का ध्यान किया। अरदास विनती इस तरह करने लगी- 'हे सच्चे पातशाह ! कलयुग को तारने वाले, पतित पावन, दयालु पिता ! मुझ दासी को तुम्हारा ही सहारा है। तुम्हारी अनजान पुत्री ने भोलेपन में प्रण कर लिया था कि तुम्हारे चरणों में जीवन व्यतीत करूंगी। माता जी की सेवा करती रहूंगी। गुरु घर के जूठे बर्तन मांज कर संगतों के जूते साफ कर जन्म सफल करूंगी......दाता ! तुम्हारे खेल का तुम्हें ही पता है। मैं अनजान हूं कुछ नहीं जानती, क्या खेल रचा दिया। सारे बिछुड़ गए, आप भी दूर चले गए। मैं बन्दीखाने में हूं, मेरा रूप तथा जवानी मेरे दुश्मन बन रहे हैं। हे दाता ! दया करो, कृपा करो, दासी की रक्षा कीजिए। दासी की पवित्रता को बचाओ। यदि मेरा धर्म चला गया तो मैं मर जाऊंगी, नरक में वास होगा। मुझे कष्ट के पंजे में से बचाओ। द्रौपदी की तरह तुम्हारा ही सहारा है, हे जगत के रक्षक दीन दयालु प्रभु !

'राखनहारे राखहु आपि ।। सरब सुखा प्रभ तुमरै हाथि ।।'

विनती खत्म नहीं हुई थी कि बन्दीखाने में दीये का प्रकाश उज्ज्वल

हुआ। प्रकाश देख कर उसने पीछे मुड़ कर देखा तो एक अधेड़ उम्र की स्त्री बन्दीखाने के दरवाजे में खड़ी थी।

आने वाली स्त्री ने आगे हो कर बड़े प्यार, मीठे तथा हंसी वाले लहजे में बसन्त लता को कहना शुरू किया-

पुत्री ! मैं हिन्दू हूं, तुम्हारे लिए रोटी पका कर लाई हूं, नवाब के हुक्म से पकाई है। रोटी खा लो बहुत पवित्र भोजन है।'

बसन्त लता-'मुझे तो भूख नहीं।'

स्त्री-'पुत्री ! पेट से दुश्मनी नहीं करनी चाहिए। यदि सिर पर मुसीबत पड़ी है तो क्या डर, भगवान दूर कर देगा। यदि दुखों का सामना करना भी पड़े तो तन्दरुस्त शरीर ही कर सकता है। रोटी तन्दरुस्त रखती है, जो भाग्य में लिखा है, सो करना तथा खाना पड़ता है, तुम समझदार हो।'

बसन्त लता-'रोटी से ज्यादा मुझे बन्दीखाने में से निकाल दो तो अच्छा है, मैंने तुर्कों के हाथ का नहीं खाना, मरना स्वीकार,जाओ ! तुम से भी मुझे डर लग रहा है, खतरनाक डर, मैंने कुछ नहीं खाना, मैं कहती हूं मैंने कुछ नहीं खाना।'

स्त्री-'यह मेरे वश की बात नहीं। खान के हुक्म के बिना इस किले में पत्ता भी नहीं हिल सकता। हां, खान साहिब दिल के इतने बुरे नहीं है, अच्छे हैं, जरा जवान होने के कारण रंगीले जरूर हैं। वह तुम्हारे रूप के दीवाने बने हुए हैं। मैं हिन्दू हूं, चन्द्रप्रभा मेरा नाम है। डरो मत, रोटी खा लो।'

बसन्त लता-'क्या सबूत है कि तुम हिन्दू हो ?'

स्त्री-'राम राम, क्या मैं झूठ बोलती हूं। मेरा पुत्र खान साहिब के पास नौकर है। हम हिन्दू हैं। यह हिन्दुओं को बहुत प्यार करते हैं, अच्छे हैं।'

बसन्त लता-'पर मुझे तो कैद कर रखा है, यह झूठ है ?'

स्त्री–'मैं क्या बताऊं, यह मन के बड़े चंचल हैं। तुम्हारे रूप पर मोहित हो गए हैं। वह इतने मदहोश हुए हैं कि उन को खाना–पीना भी भूल गया। कुछ नहीं खाते–पीते, बस तुम्हारा फिक्र है।'

बसन्त लता–'इसका मतलब है कि वह मुझे......।'

स्त्री–(बसन्त लता की बात टोक कर) नहीं, नहीं ! डरने की कोई जरूरत नहीं, वह तुम्हारे साथ अन्याय नहीं करेंगे। समझाऊंगी मेरी वह मानते हैं, तुम्हारे साथ जबरदस्ती नहीं करेंगे। यदि तुम्हारी मर्जी न हो तो वह तुम्हारे शरीर को भी हाथ नहीं लगाएंगे। बहुत अच्छे हैं, यूं ही डर कर शरीर का रक्त मत सुखाओ।

बसन्त लता–'माई तुम्हारी बातें अच्छी नहीं, तुम जरूर......।'

स्त्री–'राम राम कहो पुत्री। तुम्हारे साथ मैंने कोई धोखा करना है, फिर तुम्हारा मेरा धर्म एक, रोटी खाओ। राम का नाम लो। जो सिर पर बनेगी सहना, मगर भूखी न मरो। भूखा मरना ठीक नहीं।'

चन्द्रप्रभा की प्रेरणा करने और सौगन्ध खाने पर बसन्त लता ने भोजन कर लिया। वह कई दिनों की भूखी थी, खाना खा कर पानी पिया और सतिगुरु महाराज का धन्यवाद किया।

वह दिन बीत गया तथा अगला दिन आया। समुन्द खान की रात बड़ी मुश्किल से निकली, दिन निकलना कठिन हो गया। वह बंदीखाने में गया तथा उसने जा कर बसन्त लता को देखा।

बसन्त लता उस समय अपने सतिगुरु जी का ध्यान लगा कर विनती कर रही थी। जब समुन्द खान ने आवाज़ दी तो वह उठ कर दीवार के साथ लग कर खड़ी हो गई तथा उसकी तरफ ऐसे देखने लगी, जिस तरह भूखी शेरनी किसी शिकार की तरफ देखती है कि शिकारी के वार करने से पहले वह उस पर ऐसा वार करे कि उसकी आंतड़ियों को बाहर खींच ले, पर वह खड़ी हो कर देखने लगी कि समुन्द खान क्या कहता है।

'बसन्त लता !' समुन्द खान बोला। 'यह ठीक है कि तेरा मर्द धर्म नहीं मिलता, मगर स्त्री–पुरुष का कुदरती धर्म तो है। तुम्हारे पास जवानी है, यह जवानी ऐसे ही व्यर्थ मत गंवा। आराम से रहो। तुम्हारे साथी नहीं रहे। उनको लश्कर ने चुन–चुन कर मार दिया है। तुम्हारा गुरू......।'

पहले तो बसन्त लता सुनती रही। मगर जब समुन्द खान के मुंह से 'गुरु' शब्द निकला तो वह शेरनी की तरह गर्ज कर बोली, 'देखना ! पापी मत बनना ! मेरे सतिगुरु के बारे में कोई अपशब्द मत बोलना, सतिगुरु सदा ही जागता है, वह मेरे अंग–संग है।'

मैं नहीं जानता तुम्हारे गुरु को। जो खबरें मिली हैं, वह बताती हैं कि गुरु सब खत्म......कोई नहीं बचा। सारा इलाका सिक्खों से खाली है। मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। तेरे रूप का दीवाना हो गया हूं। कहना मानो......अगर अब मेरे साथ खुशी से न बोली तो समझना– मैं बलपूर्वक उठा लूंगा।

ज़ालिम दुश्मन के मुंह से ऐसे वचन सुन कर बसन्त लता भयभीत नहीं हुई। उसको अपने सतिगुरु महाराज की अपार शक्ति पर मान था। उसने कहा–'मैं लाख बार कह चुकी हूं मैं मर जाऊंगी, पर किसी पुरुष की संगत नहीं करनी। मेरा सतिगुरु मेरी रक्षा करेगा। मेरे साथ जबरदस्ती करने का जो यत्न करेगा, वह मरेगा......मैं चण्डी हूं। मेरी पवित्रता का रक्षक भगवान है। वाहिगुरु ! सतिगुरु !'

पिछले शब्द बसन्त लता ने इतने जोर से कहे कि बन्दीखाना गूंज उठा। एक नहीं कई आवाज़ें पैदा हुईं। यह आवाज़ें सुन कर भी समुन्द खान को बुद्धि न आई। वह तो पागल हो चुका था। वासना ने उसको अंधा कर दिया था।

'मैं कहता हूं, कहना मान जाओ ! तेरी रक्षा कोई नहीं कर सकता तुम मेरे......!' यह कह कर वह आगे बढ़ा और उसने बसन्त लता

को बांहों में लेने के लिए बांहें फैलाई तो उसकी एक बांह में पीड़ा हुई। उसी समय बसन्त लता पुकार उठी–

'ज़ालिम ! पीछे हट जा ! वह देख, मेरे सतिगुरु जी आ गए। आ गए !' बसन्त लता को सीढ़ियों में रोशनी नजर आई। बसन्त लता के इशारे पर समुन्द खान ने पीछे मुड़ कर देखा तो उस को कुछ नजर न आया। उस ने दोबारा बसन्त लता को कहा–'ऐसा लगता है कि तुम पागल हो गई हो। डरो मत, केवल फिर मेरे साथ चल, नहीं तो......।'

'अब मैं क्यों तेरी बात मानूं ? मेरे सतिगुरु जी आ गए हैं, मेरी सहायता कर रहे हैं।' बसन्त लता ने उत्तर दिया।

'देखो ! महाराज देखो ! यह ज़ालिम नहीं समझता, इसको सद्-बुद्धि दो, इसको पकड़ो, धन्य हो मेरे सतिगुरु ! आप बन्दीखाने में दासी की पुकार सुन कर आए।'

समुन्द खान आगे बढ़ने लगा तो उसके पैर धरती से जुड़ गए, बाहें अकड़ गई, उसको इस तरह प्रतीत होने लगा जैसे वह शिला पत्थर हो रही थी। उस के कानों में कोई कह रहा था–

'इस देवी को बहन कह, अगर बचना है तो कह बहन।'

अद्भुत चमत्कार था, उधर बसन्त लता दूर हो कर नीचे पालथी मार कर दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगी, 'सच्चे पातशाह ! आप धन्य हो तथा मैं आप से बलिहारी जाती हूं। सतिनाम ! वाहिगुरु हे दाता ! आप ही तो अबला की लाज रखने वाले हो, दातार हो।'

समुन्द खान घबरा गया उसको इस तरह अनुभव हुआ जैसे कोई अगोचर शक्ति उसके सिर में जूते मार रही थी। उसकी आंखों के आगे मौत आ गई तथा वह डर गया। उसके मुंह से निकला, 'हे खुदा ! मुझे क्षमा करें, कृपा करो! मैं कहता हूं, बहन लता–बहन बसन्त लता !'

यह कहने की देर थी कि उसके सिर पर लगने वाले जूते रुक गए। एक बाजू हिली तो उसने फिर विनती की–हे खुदा ! हे सतिगुरु

जी आनंदपुर वाले सतिगुरु जी कृपा करो ! मैं आगे से ऐसी भूल कदापि नहीं करूंगा, बसन्त लता मेरी बहन है। बहन ही समझूंगा, जहां कहेगी भेज दूंगा। मैं कान पकड़ता हूं।' इस तरह कहते हुए जैसे ही उसने कानों की तरफ हाथ बढ़ाए तो वह बढ़ गए। उसकी बांह खुल गई तथा पैर भी हिल गए। उसका शरीर उसको हल्का-हल्का-सा महसूस होने लगा। उसने आगे बढ़ कर बसन्त लता के पैरों पर हाथ रख दिया तथा कहा-

'बहन ! मुझे माफ करो, मैं पागल हो गया था, तुम्हारा विश्वास ठीक है। तुम पाक दामन हो, मुझे क्षमा करो।'

'सतिगुरु की कृपा है, मैं कौन हूं, सतिगुरु जी ही तुम्हें क्षमा करेंगे। मैं बलिहारी जाऊं सच्चे सतिगुरु से। बसन्त लता ने उत्तर दिया तथा उठ कर खड़ी हो गई। समुन्द खान बसन्त लता को बहन बना कर बन्दीखाने में से बाहर ले आया तथा हरमों में ले जा कर बेगमों को कहने लगा-'यह मेरी बहन है।'

बसन्त लता का बड़ा आदर सत्कार हुआ, उसको देवी समझा गया। कोई दैवी शक्ति वाली पाकदामन स्त्री तथा उसको बड़ी शान से अपने किले से विदा किया, घुड़सवार साथ भेजे। वस्त्र तथा नकद रुपए दिए। उसी तरह जैसे एक भाई अपनी सगी बहन को देकर भेजता है। चंद्र प्रभा भी उसके साथ चल पड़ी तथा रास्ते में पूछते हुए 'सतिगुरु जी, किधर को गए।' वह चलते गए आखिर दीने के मुकाम पर पहुंचे जहां सतिगुरु जी रुके थे। सतिगुरु जी के महल माता सुंदरी जी तथा साहिब देवां जी भी घूमते-फिरते पहुंच गए।

बसन्त लता ने जैसे ही सतिगुरु जी के दर्शन किए तो भाग कर चरणों पर गिर पड़ी। चरणों का स्पर्श प्राप्त किया। आंखों में से श्रद्धा के आंसू गिरे। दाता से प्यार लिया।

॥ समाप्त ॥